‘धूल में लथपथ’ देश का बचपन

भारत में बच्चों पर खनन उद्योग के प्रभावों का अध्ययन

प्रस्तुती

धात्री रिसोर्स सेंटर फॉर वीमेन ऐण्ड चिल्ड्रेन-समता

हक: सेंटर फॉर चाइल्ड राइट्स

सहभागिता

माइन्स, मिनरल्स ऐण्ड पीपुल

‘धूल में लथपथ’ देश का बचपन

भारत में बच्चों पर खनन उद्योग
के प्रभावों का अध्ययन

प्रकाशकः
धात्री रिसोर्स सेंटर फॉर वीमेन ऐण्ड चिल्ड्रेन-समता, विशाखापत्तनम
हकः सेंटर फॉर चाइल्ड राइट्स, नई दिल्ली

सहयोगः **माइन्स, मिनरल्स ऐण्ड पीपुल**

आर्थिक सहायताः **टेरे डेस होम्स जर्मनी, एईआई ऐण्ड एएसटीएम लक्ज़मबर्ग**

मार्च 2010

आईएसबीएन नंबरः 978-81-906548-4-5

इस रिपोर्ट के किसी भी हिस्से को निम्नलिखित की अनुमति के साथ पुनः प्रकाशित या प्रस्तुत किया जा सकता हैः

धात्री-समता
14-37-9, कृष्णा नगर
महारानीपेट, विशाखापत्तनम-530002
आंध्र प्रदेश
ई-मेलः samata.india@gmail.com

हक : सेंटर फॉर चाइल्ड राइट्स
बी-1/2 मालवीय नगर
नई दिल्ली-110017
ई-मेलः info@haqcrc.org
www.haqcrc.org

योगदानः

शोध संयोजकः		**भानुमति कल्लूरी, इनाक्षी गांगुली ठुकराल**
फील्ड इन्वेस्टिगेटर्सः		**विनायक पवार, कुशा गरदा**
दस्तावेजीकरण सहायताः		**रिया मित्रा, जी रविशंकर, पारुल ठुकराल**
रिपोर्ट :	भाग 1 -	**इनाक्षी गांगुली ठुकराल एवं ऐमिली**
	भाग 2 -	**भानु कल्लूरी, सीमा मुंडोली, सुशीला मरार, ऐमिली**
अनुवादः		**योगेंद्र दत्त**
डिजाइन एवं प्रिंटिंगः		ऐस्पायर डिजाइन

आभार

'धूल में लथपथ' भारत का बचपन : देश के बच्चों पर खनन उद्योग के प्रभाव नामक इस रिपोर्ट की शुरुआत अप्रैल 2005 में उस समय हुई थी जब प्रस्तुत शोध से जुड़े कुछ संगठन एक जांच अभियान में काम कर रहे थे। अगर उस वक्त इन खानों में कुछ बच्चों से हमारी मुलाकात न हुई होती तो हमें शायद कभी इस बात का अंदाजा भी न हो पाता कि हमारे बच्चों पर खनन उद्योग के कारण कितने गहरे प्रभाव पड़ रहे हैं। हम बेल्लारी के उन बच्चों के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने खनन प्रभावित बच्चों की समस्याओं का पूरा फलक हमारे सामने खोल दिया था।

इस रिपोर्ट का मुख्य फोकस खनन उद्योग द्वारा प्रभावित समुदायों और खनन स्थलों से इकट्ठा किए गए आंकड़ों और सूचनाओं पर आधारित है। इस क्रम में हमें संतुलन (महाराष्ट्र), सखी (कर्नाटक), माइन लेबर प्रोटेक्शन कैम्पेन (राजस्थान), पत्थर खदान मजदूर संघ (मध्य प्रदेश), अंकुरण (उड़ीसा), गंगपुर आदिवासी फोरम फॉर सोशियो-कल्चरल अवेकनिंग (उड़ीसा), स्वराज फाउंडेशन (झारखंड), जनचेतना (छत्तीसगढ़) एवं ग्रामीण विकास सरधी एवं मास (आंध्र प्रदेश) से प्रत्यक्ष सहायता मिली है। इनके अलावा रीड्स (कर्नाटक), सीड्स (कर्नाटक), डॉन बॉस्को (कर्नाटक) एवं लूथेरान वर्ल्ड सर्विस (उड़ीसा) सहित कई संगठनों ने हमें आंकड़े इकट्ठा करने में काफी सहायता दी। कई साथियों ने हमारी फील्ड विजिट्स का आयोजन किया या सर्वेक्षण के लिए वे हमारे साथ गए। उनमें श्री कुमार (कोलार), श्री दयानिधि मरांडी, श्री संतोष कुमार दास, श्री नीलाद्री मिश्रा, श्री समित कार, श्री विजय कुमार, श्री किशोर कुजरू एवं श्री नवीन नायक जैसे कई दोस्तों और कार्यकर्ताओं के हम दिल से आभारी हैं। हम एमएम ऐण्ड पी गठबंधन के सभी घटक संगठनों को धन्यवाद देते हैं जिन्होंने केस स्टडीज के लिए चुने गए 8 राज्यों की फील्ड विजिट्स के दौरान हर मौके पर हमें मदद दी।

टेरे डेस होम्स (टीडीएच) जर्मनी, एईआई ऐण्ड एएसटीएम लक्ज़मबर्ग से मिली आर्थिक सहायता के बिना इस रिपोर्ट का प्रकाशन संभव नहीं था। कई परेशानियों के बावजूद उन्होंने इस मुद्दे को प्राथमिकता दी जिसके लिए हम उनके आभारी हैं। हम टीडीएच, जर्मनी के रवि और जॉर्ज चिरा से मिली सहायता के लिए विशेष रूप से धन्यवाद देते हैं। उन्होंने अध्ययन के दौरान तथा रिपोर्ट को अंतिम रूप देने के चरण में अपनी टिप्पणियों के रूप में हमें महत्वपूर्ण सहायता दी है।

यह रिपोर्ट भारत के सभी बच्चों को समर्पित है। यह रिपोर्ट अपनी जमीनों से उजाड़ दिए गए दलित, आदिवासी और हाशियाई बच्चों, खतरनाक परिस्थितियों में काम कर रहे बाल खान मजदूरों, बुलडोजरों और अमानवीय परिस्थितियों में खानों के इर्द-गिर्द रह रहे ऐसे सभी बच्चों को समर्पित है जो इस देश को वैश्विक आर्थिक और राजनीतिक महाशक्ति बनाने के लिए चुपचाप अपना योगदान दे रहे हैं।

सबसे बढ़कर हम समता व हक की शोध व प्रशासकीय टीमों का आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने अध्ययन के दौरान इतनी गहरी प्रेरणा और लगन से काम किया है।

निशान्त सिंह और सुखविंदर सिंह ने भी हमारी उम्मीदों को कायम रखा और बहुत कम वक्त में रिपोर्ट को डिजाइन करके छाप दिया। हम उनके आभारी हैं।

हम उम्मीद करते हैं कि ये रिपोर्ट "खनन बालकों" को राष्ट्रीय एजेंडा पर लाने और ये सुनिश्चित करने में कारगर भूमिका निभाएगी कि उनकी दशा पर भी कुछ ध्यान दिया जाना जरूरी है।

भानुमति कल्लूरी
धात्री

इनाक्षी गांगुली ठुकराल
हक : सेंटर फॉर चाइल्ड राइट्स

संकेताक्षरों की सूची

एईआई – आइद'एल एनफांसे दे'ल इन्दे

एएनएम – ऑग्जीलरी नर्स कम मिडवाइफ

एआरआई – गंभीर श्वास रोग (एक्यूट रेस्पीरेटरी इलनेस)

एएसईआर – वार्षिक शिक्षा स्थिति रिपोर्ट (एन्युअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट)

एएसपीएम – ऐक्शन सॉलिडारिते टीएर्स मोन्दे

एडब्ल्यूसी – आंगनवाड़ी केंद्र

बीसीसीएल – भारत कुकिंग कोल लिमिटेड

बीजीएमएल – भारत गोल्ड माइन्स लिमिटेड

भेल – भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्स लिमिटेड

बीआईएफआर – औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड (बोर्ड फॉर इंडस्ट्रियल ऐण्ड फाइनेंशियल रीकंस्ट्रक्शन)

बीपीएल – गरीबी की रेखा से नीचे

बीपीओ – बिजनेस प्रोसेस आउटसोर्सिंग

बीआरसी – ब्लॉक संसाधन संयोजक

बीएसएल – बिसरा स्टोन लाइम कंपनी लिमिटेड

सीसीएल – सेंट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड

सीएचसी – सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र

सीआईसीएल – गैर-कानूनी गतिविधियों में फंसे बच्चे (चाइल्ड इन कॉन्फ्लिक्ट विद लॉ)

सीएमपीडीआई – केंद्रीय खान नियोजन एवं रूपरेखा संस्थान (सेंट्रल माइन प्लानिंग ऐण्ड डिजाइन इंस्टीट्यूट)

सीएनसीपी – देखभाल और सुरक्षा के जरूरतमंद बच्चे

सीएसई – सेंटर फॉर साइन्स ऐण्ड एनवायर्नमेंट

सीएसआर – औद्योगिक सामाजिक उत्तरदायित्व (कॉरपोरेट सोशल रिस्पॉन्सीबिलिटी)

सीडब्ल्यूएसएन – विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चे

डीआईएसई – जिला शिक्षा सूचना व्यवस्था (डिस्ट्रिक्ट इन्फॉर्मेशन सिस्टम फॉर एजुकेशन)

डीपी कैम्प – विस्थापित व्यक्तियों का शिविर

ईटीएल – ईस्टर्न कोलफील्ड लिमिटेड

ईआईए – पर्यावरण प्रभाव आकलन (एनवायर्नमेंटल इम्पैक्ट असेसमेंट)

एफबीआई – विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (फॉरेन डायरेक्ट इन्वेस्टमेंट)

एफआईआर – प्रथम सूचना रिपोर्ट

एफपीआईटी – अग्रिम स्वतंत्र एवं सचेत सहमति (फ्री प्रायर ऐण्ड इन्फॉर्म्ड कॉन्सेंट)

जीएएफएससीए – गंगपुर आदिवासी फोरम फॉर सोशल ऐण्ड कल्चरल अवेकनिंग

जीडीपी – सकल घरेलू उत्पाद (ग्रॉस डोमेस्टिक प्रोडक्ट)

जीएसडीपी – सकल राज्य घरेलू उत्पाद (ग्रॉस स्टेट डोमेस्टिक प्रोडक्ट)

एचएएल – हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड

एचडीआई – मानव विकास सूचकांक (ह्यूमन डेवलेपमेंट इंडेक्स)

एचआईवी/एड्स – ह्यूमन इम्यूनो डेफिशिएंसी वायरस/एक्वायर्ड इम्यूनो डेफिशिएंसी सिंड्रोम

आईसीडीएस – एकीकृत बाल विकास योजना (इंटिग्रेटेड चाइल्ड डेवलेपमेंट स्कीम)

आईआईईएफ – अंतर्राष्ट्रीय जनसंख्या विज्ञान संस्थान (इंटरनैशनल इंस्टीट्यूट फॉर पापुलेशन साइंस)

आईएलए – अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (इंटरनैशनल लेबर ऑर्गेनाइजेशन)

आईएमआर – शिशु मृत्यु दर

आईपीईसी/आईपैक – अंतर्राष्ट्रीय बाल श्रम उन्मूलन कार्यक्रम (इंटरनैशनल प्रोग्राम ऑन दि एलिमिनेशन ऑफ चाइल्ड लेबर)

केजीएफ – कोलार गोल्डफील्ड्स

केएमएमआई – करीगनुर मिनरल माइनिंग इंडस्ट्री

एलडब्लयूएसआई – लूथेरान वर्ल्ड सर्विस इंडिया

मास – मित्रा एसोसिएशन फॉर सोशल सर्विस

एमसीएल – महानदी कोलफील्ड्स लिमिटेड

एमडीजी – सहस्राब्दी विकास लक्ष्य (मिलेनियम डेवलेपमेंट गोल्स)

एमएलपीसी – खान श्रमिक सुरक्षा अभियान

एमएम ऐण्ड पी – माइन्स मिनरल्स ऐण्ड पीपुल

एमएमडीआर ऐक्ट – खान एवं खनिज (विकास एवं नियमन) अधिनियम

नाको – राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संस्थान

नालको – नैशनल एल्युमीनियम कंपनी

एमसीएलपी – राष्ट्रीय बाल श्रमिक परियोजना

एनसीआरपी – राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो

एनएफएचएस – राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण

एनजीओ – गैर-सरकारी संगठन

एनआईओएच – राष्ट्रीय व्यावसायिक स्वास्थ्य एवं सुरक्षा संस्थान (नैशनल इंस्टीट्यूट फॉर ऑक्यूपेशनल हैल्थ ऐण्ड सेफ्टी)

एनएमडीसी – राष्ट्रीय खनिज विकास निगम

एनआरईजीए – राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम

एनएसएसओ – राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संस्थान

ओबीसी – अन्य पिछड़ा वर्ग

पीएपी – परियोजना प्रभावित व्यक्ति

पीडीएस – सार्वजनिक वितरण प्रणाली

पीएचसी – प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र

पीआईओ – लोक सूचना अधिकारी

पीकेएमएस – पत्थर खदान मजदूर संघ

पॉस्को – पोहांग आयरन ऐण्ड स्टील कंपनी

पीएसएसपी – प्राकृतिको संपदो सुरक्ष्या परिषद

रीड्स – रूरल एजुकेशन ऐक्शन डेवलेपमेंट सोसायटी

आर ऐण्ड आर – पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन

आरटीआई – सूचना का अधिकार

सेल – स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड

एससीसीएल – सिंगरेनी कोलियरीज़ कंपनी लिमिटेड

अजा/एससी – अनुसूचित जाति

एसडीपी – राज्य घरेलू उत्पाद

सीड्स – सोशल इकॉनॉमिकल एजुकेशनल डेवलेपमेंट सोसायटी

सेज़ – विशेष आर्थिक क्षेत्र (स्पेशल इकोनॉमिक ज़ोन)

एसजीवीएफ – सोसायटी ऑफ ग्राम विकास सरधी

एसएचजी – स्वयं सहायता समूह

एसओपी – नियोजन एवं क्रियान्वयन सुपरिटेंडेंट

एसटीडी – यौन संक्रामक रोग

अजजा/एसटी – अनुसूचित जनजाति

टीबी – तपेदिक

टीडीएच – टेरे डेस होम्स

यूएआईएल – उत्कल एल्युमिना इंटरनैशनल लिमिटेड

यूसीआईएल – यूरेनियम कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड

वीआरडीएफ – वेनेल्ला रूरल डेवलेपमेंट सोसायटी

वीआरएस – स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना (वॉलंटरी रिटायरमेंट स्कीम)

विषय सूची

अध्ययन के बारे में **3**

खनन प्रभावित बच्चे - प्रस्तावना और परिस्थिति **5**

भाग 1 **13**
राष्ट्रीय स्थिति

भाग 2 45
राज्यवार रिपोर्टें

1. कर्नाटक 47
2. महाराष्ट्र 65
3. राजस्थान 79
4. मध्य प्रदेश 93
5. छत्तीसगढ़ 103
6. झारखंड 115
7. उड़ीसा 127
8. आंध्र प्रदेश 165

भाग 3 **177**
सार-संकलन और सिफारिशें

भाग 4 **189**
परिशिष्ट - सूचना अधिकार अधिनियम के हमारे अनुभव
अनुलग्नक

(क) टेबल 199
(ख) शब्दावली 203

अध्ययन के बारे में

यह अध्ययन हक़:सेंटर फॉर चाइल्ड राइट्स एवं समता द्वारा माइन्स, मिनरल्स ऐण्ड पीपुल (एमएम ऐण्ड पी) राष्ट्रीय नेटवर्क एवं धात्री रिसोर्स सेंटर फॉर वीमेन ऐण्ड चिल्ड्रेन के साथ मिलकर संयुक्त रूप से किया गया है। इस अध्ययन को टेरे डेस होम्स जर्मनी (टीडीएच), एईआई ऐण्ड एएसटीएम, लक्ज़मबर्ग की सहायता से प्रकाशित किया गया है। यह अनुसंधान कर्नाटक के बेल्लारी जिले में स्थित लौह अयस्क खानों में कुछ साल पहले की गई एक जांच की ही अगली कड़ी है। यह अध्ययन न केवल पहली बार इन मुद्दों को एक समग्र दृष्टि से देखने की कोशिश करता है बल्कि यह **इस मुद्दे पर मोबिलाइजेशन और एडवोकेसी का आधार भी बन सकता है।** हमें उम्मीद है कि एमएम ऐण्ड पी नेटवर्क के साथ मिलकर हम इस काम को आगे बढ़ाएंगे और भारत में खनन गतिविधियों से प्रभावित बच्चों के जीवन में ठोस सुधार लाने की मुहिम में योगदान दे पाएंगे।

इस रिपोर्ट में खनन प्रक्रियाओं के तीन चरणों की पड़ताल की गई है। हमने उन इलाकों को भी देखा है जहां अभी खनन कार्य शुरू नहीं हुए हैं यानी ऐसे इलाके जहां परियोजनाएं प्रस्तावित हैं और जमीन का अधिग्रहण किया जाना है। इसके अलावा हमने चालू खनन क्षेत्रों का भी अध्ययन किया है यानी ऐसे इलाके जहां खनन गतिविधियां शुरू हो चुकी हैं। इनके साथ ही हमने खनन पश्चात क्षेत्रों यानी उन स्थानों की भी पड़ताल की है जहां पहले काफी खनन कार्य चल रहे थे लेकिन अब बंद हो गए हैं।

तरह-तरह की स्थितियों और विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थों से बच्चों पर पड़ने वाले प्रभावों को समझने के लिए आठ राज्यों में स्थानीय स्तर पर अनुसंधान किए गए। इस क्रम में जिन राज्यों को चुना गया वे थे - कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ एवं झारखंड। उड़ीसा में हमने बहुत सारे अलग-अलग स्थानों पर केस स्टडीज की हैं क्योंकि उड़ीसा में खनन उद्योग सबसे व्यापक पैमाने पर फैला हुआ है और आगे भी खनिज अन्वेषण व उत्पादन के लिए इस राज्य पर सबसे ज्यादा जोर दिया जा रहा है।

पद्धति

यह रिपोर्ट स्थानीय स्तर पर इकट्ठा की गई सूचनाओं और द्वितीयक स्रोतों से इकट्ठा की गई जानकारियों को मिलाकर तैयार की गई है। फील्ड वर्क के लिए स्थानों का चुनाव इस बात को ध्यान में रखते हुए किया गया कि छोटे और बड़े, सभी तरह के ज्यादा से ज्यादा प्रकार के खनिज पदार्थों और अधिकतम व्यापक इलाके का अध्ययन किया जाए। फील्ड रिसर्च का इलाका चुनते हुए इस बात पर भी ध्यान दिया गया कि वहां कोई साझीदार संगठन या एमएम ऐण्ड पी का कोई घटक संगठन सक्रिय हो। इसके दो कारण थे। पहला कारण यह था कि अगर उस इलाके में कोई साझीदार संगठन सक्रिय है तो उससे अनुसंधान में स्थानीय स्तर पर मदद मिल सकती है। इसका दूसरा मकसद यह सुनिश्चित करना था कि बाद में स्थानीय संगठन इस अभियान को आगे बढ़ा सकते हैं और प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर अपने-अपने राज्यों में मोबिलाइजेशन व एडवोकेसी कर सकते हैं।

जनगणना के आंकड़ों या सार्वजनिक स्तर पर उपलब्ध दूसरे दस्तावेजों से प्रायः सारे आंकड़े नहीं मिल पाते हैं। लिहाजा, जो सूचनाएं सार्वजनिक स्तर पर उपलब्ध नहीं थीं उन्हें हासिल करने के लिए सूचना के अधिकार (आरटीआई अधिनियम) का सहारा लिया गया। इस मद में बहुत सारे सरकारी विभागों को आरटीआई आवेदन भेजे गए। हमने सरकारी खनन कंपनियों के पास भी सूचना के लिए आवेदन भेजे ताकि यह पता लगाया जा सके कि इन कंपनियों की खानों में कितने बाल खनिक काम कर रहे हैं, उनकी परियोजनाओं से कितने लोग विस्थापित हुए हैं, प्रभावित इलाकों में रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य से संबंधित आंकड़ों को जाना जा सके और ऐसी अन्य सूचनाएं हासिल की जा सकें जो सहज उपलब्ध नहीं हैं (आरटीआई आवेदनों पर मिली प्रतिक्रियाओं के लिए भाग 2 का आखिरी हिस्सा देखें)।

स्थानीय केस स्टडीज के लिए जो मुख्य पद्धति अपनाई गई वह खानों के इर्द-गिर्द रहने वाले बच्चों के विकास संबंधी संकेतकों की समझ पर आधारित थी। इसके अलावा खानों में काम करने वाले बच्चों को पहचानने, उनके काम के स्वरूप और काम के हालात को समझने तथा मजदूरों, ट्रक ड्राइवरों/हेल्परों, ठेकेदारों, व्यापारियों व अन्य बाहरी लोगों की उपस्थिति से उनके सामाजिक जीवन पर पड़ रहे प्रभावों को भी समझने का प्रयास किया गया। ऐसे बच्चे खानों के इर्द-गिर्द एक अस्थिर और अकसर विकृत रुझानों से ग्रस्त निरंतर परिवर्तनशील आबादी के बीच रहते हैं। इस संबंध में हमने गाँवों, स्कूलों, आंगनवाड़ी केंद्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों, अनाथालयों, कंपनी द्वारा चलाए जा रहे स्कूलों और अस्पतालों के भी दौरे किए तथा पंचायत के मुखियाओं, गाँव के बुजुर्गों, महिला समूहों, मजदूर यूनियनों, स्थानीय अधिकारियों व गैर-सरकारी संगठनों के प्रतिनिधियों से भी मुलाकात की। साथ ही हमने कई खानों का दौरा भी किया गया।

हमने जिन राज्यों और जिलों का दौरा किया उनकी सूची इस प्रकार है।

* पुणे एवं नासिक जिले, महाराष्ट्र, जून 2009 (सितंबर 2009 में फॉलोअप)
* कोरापुट एव रायगड़ा जिले, उड़ीसा, जून 2009 (अक्तूबर 2009 तथा जनवरी-फरवरी 2009 में फॉलोअप)
* जिला कोलार एवं जिला बेल्लारी, कर्नाटक, जून 2009 (बेल्लारी में दिसंबर 2009 में फॉलोअप)
* जिला क्योंझर, उड़ीसा, जुलाई 2009 (फरवरी 2009 में फॉलोअप)
* जिला जोधपुर, जिला जैसलमेर एवं जिला बाड़मेर, राजस्थान, जुलाई 2009 (जोधपुर में अक्तूबर 2009 में फॉलोअप)
* जिला पन्ना, मध्य प्रदेश, अगस्त 2009
* जिला चित्तूर, जिला कुडप्पा, जिला विशाखापत्तनम, आंध्र प्रदेश, जून अगस्त एवं अक्तूबर 2009
* जिला कड्डालोर, तमिलनाडु, अगस्त 2009
* जिला हजारीबाग, झारखंड, सितंबर 2009
* जिला रायगढ़, छत्तीसगढ़, नवंबर 2009
* जिला सुंदरगढ़, उड़ीसा, नवंबर 2009

चुनौतियां

इस अनुसंधान के दौरान अध्ययन टीम को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा।

सबसे पहले चुनौती यह थी कि जगहों का चुनाव कैसे किया जाए। इसके लिए सबसे पहले खनिज पदार्थों, भौगोलिक स्थिति और एमएम ऐण्ड पी के साझीदार संगठनों की उपस्थिति के आधार पर कुछ इलाकों की प्रारंभिक सूची तैयार की गई। बाद में इनमें से कुछ स्थानों के नाम हटा दिए गए क्योंकि या तो उनके बारे में पर्याप्त सूचना उपलब्ध नहीं थी या वहां सक्रिय साझीदार संगठन पर्याप्त सहायता उपलब्ध कराने की स्थिति में नहीं था।

यह एक समयबद्ध शोध परियोजना थी। इसका परिणाम ये हुआ कि परियोजना का समय बरसात के मौसम में होने के कारण हमें शुरुआती सूची में चुने गए कुछ खान स्थलों को पूरी तरह छोड़ना पड़ा।

ज्यादातर समुदाय इस बात को तो समझ रहे थे कि उनके जीवन में खनन गतिविधियों के कारण मोटा-मोटी क्या असर पड़ रहे हैं लेकिन **सभी समुदाय इस बात को समझने में सक्षम नहीं थे कि खनन संबंधी कौन सी चीजें केवल बच्चों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं।** यह अध्ययन खनन गतिविधियों से बच्चों पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में ही था इसलिए यह समस्या शोध टीम के लिए एक बड़ी चुनौती थी। यहां तक कि खनन प्रभावित समुदायों के अधिकारों पर अभियान चला रहे स्थानीय संगठनों के लिए भी इस बारे में ठोस जानकारियां और आंकड़े उपलब्ध कराना बहुत मुश्किल था कि बच्चों पर कौन से असर पड़ रहे हैं क्योंकि **सारे प्रभाव और समस्याएं बच्चों पर प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं पड़ रही थीं।** हालांकि स्थानीय संगठनों को बाल मजदूरी और अन्य मुद्दों के बारे में मालूम है लेकिन खनन एवं राजनीतिक ताकतों की ओर से खतरे के चलते वे बच्चों से संबंधित मुद्दों पर राज्य/शासन के साथ कोई सीधा टकराव लेने की स्थिति में नहीं आ पाते।

खनन कार्य राजनीतिक रूप से संवेदनशील होते हैं और उन पर भारी राजनीतिक खींचतान चलती है। इसके कारण बच्चों और खनन गतिविधियों से संबंधित सूचनाएं इकट्ठा करना बहुत मुश्किल हो जाता है। बहुत सारे लोग हमसे बात करने में भी डर रहे थे क्योंकि इस तरह की बातचीत उनके भीतर तरह-तरह की आशंकाओं को जन्म दे रही थी। जहां तक प्रत्यक्ष पहुंच का सवाल है तो **बच्चों से सीधे-सीधे बात कर पाने के मौके बहुत मुश्किल से मिलते हैं** और खनन उद्योग के विषय में निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है। शोधकर्ताओं ने खान स्थलों पर बच्चों के निकट जाने में पूरी अहतियात बरती ताकि उनकी उपस्थिति के कारण बाद में बच्चों को किसी तरह की परेशानियों का सामना न करना पड़े। जब गाँवों में जाकर समुदायों से बात की गई तो हमारे सवालों का जवाब देने में बड़े-बूढ़े सबसे मुखर दिखाई दिए। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों से हमें विभिन्न बीमारियों के बारे में मात्रात्मक आंकड़े उपलब्ध नहीं हो पाए। ज्यादातर स्थानों पर स्कूल अगर थे भी तो वहां फील्ड वर्क के समय हमें कोई अध्यापक दिखाई नहीं दिया। लिहाजा, मात्रात्मक आंकड़े और जानकारियां इकट्ठा करने की इन परेशानियों के चलते हम **बच्चों पर खनन उद्योग के प्रभावों के बारे में एक हद तक सांकेतिक सूचना ही इकट्ठा कर पाए।**

प्रासंगिक सूचनाएं हासिल करने के लिए हमने सूचना अधिकार अधिनियम के तहत आवेदन भेजे। ये काम भी बहुत आसान साबित नहीं हुआ। आरटीआई अधिनियम, 2005 के तहत सूचनाएं हासिल करने के लिए ये बहुत जरूरी है कि सही व्यक्ति को आवेदन भेजा जाए। बहरहाल, इस अध्ययन के प्रसंग में यह भी हमारे लिए एक महत्वपूर्ण अनुभव साबित हुआ है।

इस रिपोर्ट के बारे में

इस रिपोर्ट में द्वितीयक सूचनाओं और प्राथमिक आंकड़ों का समावेश किया गया है। यह रिपोर्ट दो भागों में प्रस्तुत की गई है। भाग I में राष्ट्रीय स्थिति प्रस्तुत की गई है। इस भाग में फील्ड रिसर्च के दौरान हासिल हुए आंकड़ों का सार-संकलन किया गया है। भाग II में राज्यों से संबंधित रिपोर्टों को शामिल किया गया है। ये रिपोर्टें संबंधित राज्य और वहां की खनन गतिविधियों के बारे में मिली द्वितीयक सूचनाओं और फील्ड वर्क के इलाकों से मिले आधारभूत अध्ययनों, दोनों पर आधारित हैं। भाग III में सारांश व सिफारिशें तथा भाग IV में परिशिष्ट दिया गया है जहां इस अध्ययन के लिए सूचना अधिकार अधिनियम के प्रयोग की प्रक्रिया में मिले अनुभवों का ब्यौरा भी देखा जा सकता है।

खनन प्रभावित बच्चे
प्रस्तावना और परिस्थिति

हमारे देश में खनिज संसाधनों का एक विशाल भंडार मौजूद है। दूसरी तरफ, जमीन से ज्यादा से ज्यादा संसाधनों को खोद निकालने की इंसानी चाह भी सदियों से जारी है और दिनोदिन बढ़ती जा रही है। हमने धातु, पत्थर, तेल, गैस और यहां तक कि तरह-तरह की मिट्टियों के लिए भी जमीन को जगह-जगह से खोखला कर दिया है। स्टील, एल्युमीनियम और ऐसे अन्य खनिज पदार्थों व संयंत्रों को तरक्की और औद्योगिक उन्नति का प्रतीक माना जाने लगा है। ऊर्जा की कभी न खत्म होने वाली चाह को पूरा करने के लिए जीवाश्म ईंधनों और कोयले के भंडारों को खाली किया जा रहा है। जब भी कहीं कोई खनन परियोजना शुरू होती है तो वहां चमचमाते विकास और उन्नति के बड़े-बड़े वायदे किए जाते हैं लेकिन शायद ही कहीं ये वायदे हकीकत की शक्ल ले पाते हैं।

समूचे इतिहास में **खनन व्यवसाय को इंसानी आवश्यकताओं और इंसानी लालच के बीच संघर्ष का प्रतीक माना जाता रहा है।** धरती को खोद कर उसके संसाधनों पर कब्जा करने की इंसानी जरूरत लगातार बनी रही है। अब हमारा देश भी बड़े पैमाने पर इस होड़ में कूद पड़ा है। उद्योग व बुनियादी ढांचे के विकास और निवेश आकर्षित करने की जरूरत को इस होड़ में भारत के शामिल होने की निर्णायक वजह बताया जाता रहा है। इसका सीधा निष्कर्ष ये निकलता है कि सभी भारतीय राज्य ज्यादा से ज्यादा खनिज पदार्थ निकालें और इस सपने को साकार करने के लिए उनका प्रसंस्करण करे। विकास की इन कल्पनाओं को आम लोगों के ज़हन में जड़ें जमाए बैठी मान्यताओं से भी बल मिला है। इनमें से पहली मान्यता ये है कि खनन गतिविधियों से राष्ट्रीय और स्थानीय, यानी हर स्तर पर आर्थिक खुशहाली आती है। यह मान्यता इस सोच पर आधारित है कि खनन गतिविधियों से जो आमदनी हासिल होगी वह गरीबी के मारे और हाशियाई समुदायों व कामगारों को आर्थिक रूप से मजबूत ऐसे समुदायों में तब्दील कर देगी जिनके पास रोजगारों, स्वास्थ्य सुविधाओं, शिक्षा, स्थानीय बुनियादी ढांचे के विकास की नई संभावनाएं होंगी और उनके सामने अवसरों का एक नया फलक खुल जाएगा।

व्यापक तस्वीर

भारत में फिलहाल 89 खनिज पदार्थों का उत्पादन होता है। उनमें से 4 ईंधन खनिज हैं, 11 धातु खनिज हैं, 52 अधातु खनिज और 22 लघु खनिज (जैसे निर्माण पत्थर) हैं। ईंधन, धातु और अधातु औद्योगिक खनिजों का खनन देश के लगभग आधे जिलों में चल रहा है।[1] कोयले और धातु खनिज पदार्थों के घने भंडार मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, उड़ीसा, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश में फैले हुए हैं। लौह अयस्क के भंडार उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और झारखंड तथा दक्षिण में कर्नाटक और गोवा में स्थित हैं। उत्तर में हिमाचल प्रदेश से लेकर दक्षिण में आंध्र प्रदेश और पश्चिम में गुजरात से पूर्व में मेघालय तक चूना पत्थर की खानें हैं। खनिज भंडारों के मामले में झारखंड, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ सबसे संपन्न राज्य हैं।[2]

भारत के जीडीपी में 2008-09 में खनन एवं खदान क्षेत्र का योगदान 648. 91 अरब रुपये यानी कुल जीडीपी का केवल 1.94 प्रतिशत था।[3] लेकिन भारत एवं अन्य विकासशील देशों में धातु एवं खनिज पदार्थों की मांग बढ़ती जा रही है जिसके चलते देश का खनिज उद्योग भी लगातार फैल रहा है।[4] 2008-09 में खनन उद्योग पिछले साल के मुकाबले 4.7 प्रतिशत बढ़ा और जब भारतीय अर्थव्यवस्था भी वैश्विक मंदी की चपेट में आने लगी तो खनन एवं खदान उद्योग ही अर्थव्यवस्था का एकमात्र ऐसा हिस्सा था जिसकी विकास दर में बहुत तेज गिरावट नहीं आई।[5] लेकिन याद रखने की बात यह है कि **तेजी से फैलती भारतीय अर्थव्यवस्था में खनन उद्योग का हिस्सा अभी भी बहुत मामूली है।**

2008 की राष्ट्रीय खनिज नीति में सरकार ने इस बात को स्वीकार किया है कि:

"विकास के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन के रूप में खनिज पदार्थों की खुदायी और प्रबंधन को देश के आर्थिक विकास की व्यापक रणनीति से जोड़ना जरूरी है। खनिज पदार्थों के दोहन को दीर्घकालिक राष्ट्रीय लक्ष्यों और दृष्टिकोणों के अनुसार संचालित किया जाना चाहिए।"

1. सेंटर फॉर साइंस ऐण्ड एनवायर्नमेंट, "रिच लैंड्स, पुअर पीपुल", स्टेट ऑफ इंडियाज एनवायर्नमेंट : 6, 2008, पृष्ठ 3
2. उपरोक्त।
3. खान मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट, 2008-09, पृष्ठ 10.
4. यूएस जियोलॉजिकल सर्वे, 2007 मिनरल्स ईयर बुक : इंडिया, पृष्ठ 11.1
5. rediff.com, इंडियाज़ जीडीपी फॉल्स टू 6.7 परसेंट इन एफवाई 09, http://business.rediff.com/report/2009/may/29/bcrisis-indias-gdp-falls.htm, 29 मई 2009

परंतु वर्तमान खनन क्षेत्र को नजदीक से देखने पर पता चलता है कि केंद्र और राज्य सरकारें, दोनों ही खनिज उत्पादन को अल्पकालिक आय और आर्थिक वृद्धि दर को बढ़ाने वाले साधन के रूप में देख रही हैं। वे इस उद्योग को देश के व्यापक, दीर्घकालिक विकास लक्ष्यों, मानव विकास संकेतकों और पर्यावरण व पानी जैसे प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा की दृष्टि से नहीं देखतीं।

नई आर्थिक नीति के बाद खनन क्षेत्र में बहुत सारे बदलाव आए हैं। हालांकि परंपरागत रूप से यह उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में रहा है लेकिन नब्बे की दशक की शुरुआत से इस क्षेत्र में **निजीकरण बढ़ता जा रहा है।** अब बहुत सारी खानें निजी मालिकाने में हैं। इस क्षेत्र में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश पर खूब जोर दिया जा रहा है। केंद्र और राज्य सरकारें, दोनों ही न केवल कोयला राष्ट्रीयकरण अधिनियम और श्रम कानूनों के उदारीकरण व विनियमन पर जोर दे रही हैं बल्कि वे पर्यावरण जैसे अन्य संबंधित क्षेत्रों में भी उदारीकरण और विनियमन के रास्ते पर चलने लगी हैं। इससे रोजगारों की स्थिति पर भी असर पड़ा है क्योंकि बहुत सारे खान मजदूरों को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना (वीआरएस) के तहत नौकरी से हटा दिया गया है। **पांचवीं अनुसूची में आने चाले क्षेत्र यानी ऐसे क्षेत्र जिनको संवैधानिक रूप से आदिवासी आबादी के लिए आरक्षित माना जाता है, उनको भी विदेशी प्रत्यक्ष निवेश और निजी उद्योगों के लिए खोला जा रहा है। इन क्षेत्रों को मुख्य रूप से खनन व्यवसाय के लिए खोला जा रहा है जिससे जंगल खत्म हो रहे हैं और आदिवासी विस्थापित होते जा रहे हैं।** सबसे खतरनाक बात यह है कि उप-ठेकेदारी खनन एवं खदान गतिविधियों के कारण अनौपचारिक खान उद्योग में जबर्दस्त इजाफा हुआ है।

लेकिन इस अध्ययन में खनन व्यवसाय का विश्लेषण नहीं किया जा रहा है। यह अध्ययन बाल अधिकारों और खनन उद्योग के संबंधों पर केंद्रित है। यह अध्ययन इस सवाल को संबोधित करता है कि खनन गतिविधियों से बच्चों पर क्या असर पड़ रहे हैं? सबसे ताजा भारतीय जनगणना (2001) के मुताबिक भारत की आबादी में बच्चों की संख्या 40 प्रतिशत से ज्यादा बैठती है और उनमें से बहुत सारे बच्चे खनन इलाकों में रहते हैं। इस अध्ययन में ऐसे बच्चों को हमने "खनन प्रभावित बच्चों" के रूप में संबोधित किया है।

2005 में कर्नाटक के बेल्लारी जिले में स्थित होसपेट की लौह अयस्क खानों में एक जांच की गई थी जिसमें पहली बार इस अध्ययन में शामिल संगठनों को पता चला कि खनन उद्योग से बच्चों के जीवन पर कितने भीषण प्रभाव पड़ रहे हैं। लिहाजा, उस जांच अध्ययन के आधार पर ये महसूस किया गया कि इस विषय को और अच्छी तरह समझने के लिए एक ज्यादा व्यवस्थित शोध किया जाए।

हमारी सरकार बच्चों के लिए उपलब्ध कई कानूनी सुरक्षाओं का दावा करती रही है। इस क्रम में शिक्षा के अधिकार को हाल ही में मौलिक अधिकार का दर्जा भी दिया गया है। बच्चों को गरीबी और हाशियाकरण से बाहर निकालने वाली सकारात्मक योजनाओं से इन कानूनों और दावों को और बल मिला है। **खनन गतिविधियों का विरोधाभास इस तथ्य में निहित है कि खनन उद्योग या खान प्रशासन बच्चों के ज्यादातर अधिकारों और उनकी विकास संबंधी आवश्यकताओं को सुनिश्चित करने के लिए कानूनन बाध्य नहीं है।** खनन गतिविधियों की वजह से बच्चों के जीवन में जो तबाही पैदा हुई है उसे अब बाल कल्याण, शिक्षा, आदिवासी कल्याण, श्रम एवं अन्य विभागों के जरिए संबोधित किया जा रहा है जिससे इन विभागों के बीच टकराव पैदा हुए हैं और सरकारी जवाबदेही सुनिश्चित करना मुश्किल हो गया है। इस प्रक्रिया में बच्चों का सवाल लगातार धुंधलाता जा रहा है। लिहाजा, बच्चों पर खनन गतिविधियों से पड़ने वाले हृदय विदारक प्रभावों को दूर करने के लिए ऐसे बहुत कम कानूनी समाधान उपलब्ध हैं जिनके जरिए विभिन्न पक्षों की जवाबदेही सुनिश्चित की जा सके।

समुदायों के जीवन पर खनन गतिविधियों से पड़ने वाले प्रभावों के बारे में तो कई अध्ययन और दस्तावेज उपलब्ध हैं लेकिन खनन गतिविधियों से बच्चों पर पड़ने वाले व्यापक प्रभावों के बारे में छिट-पुट और आंशिक सूचनाओं के अलावा ज्यादा कुछ उपलब्ध नहीं है। **खान उद्योग और बच्चों पर हुए अनुसंधानों में मोटे तौर से बाल मजदूरी पर ही ध्यान दिया गया है,** और यह पहलू भी केवल उन खनिज पदार्थों के खनन तक ही सीमित है जिनका आमतौर पर निर्यात किया जाता है और जिनका जिक्र करके पश्चिमी उपभोक्ताओं को झिंझोड़ा जा सकता है। **खनन गतिविधियों से बच्चों पर जो नाना प्रकार के असर पड़ रहे हैं उनको पूरी तरह से नजरअंदाज किया गया है।** कहने की जरूरत नहीं है कि न तो खनन संबंधी मुद्दों पर काम करने वाले समूह और अभियान, और न ही बच्चों के बीच काम करने वाले संगठनों ने इस मसले पर उतना ध्यान दिया है जितना दिया जाना चाहिए।

इस रिपोर्ट में भारतीय खान क्षेत्रों में रहने वाले, काम करने वाले, उससे प्रभावित और उसके कारण शोषित बच्चों के जीवन की सिर्फ कुछ झलकियां दी गई हैं। हम आशा करते हैं कि इस रिपोर्ट के जरिए हमने जिन थोड़े से बच्चों के जीवन को छूने का प्रयास किया है उनकी व्यथा एक राष्ट्रीय समीक्षा और चिंतन को जन्म देगी और इस बारे में विचार किया जा सकेगा कि भारत में खान उद्योग से प्रभावित लाखों बच्चों की क्या दशा है।

हमें आशा है कि यह रिपोर्ट एक बार फिर 'भारत के समावेशी विकास' के इस विरोधाभास को फिर राष्ट्रीय बहस में ला देगी कि हमारे देश के ज्यादातर बच्चों की दशा आज भी चिंता का विषय नहीं है। जब यह कहकर राष्ट्रीय भावनाओं को झकझोरा जाता है कि बच्चे ही हमारे राष्ट्र का भविष्य हैं तो इस बात का आकलन करना जरूरी हो जाता है कि क्या विकास के हमारे मॉडल वाकई भारत के बच्चों के लिए एक सुंदर भविष्य गढ़ने में सक्षम हैं; वे देश के अधिकांश बच्चों के वर्तमान या भविष्य के नाम पर कुछ भी दे पा रहे हैं या नहीं? लिहाजा इस रिपोर्ट में सवाल उठाया गया है कि "मानव विकास के लक्ष्यों को हासिल करने की दृष्टि से हम एक राष्ट्र के रूप में खुद को कैसे आंकते हैं?"

इस अध्ययन में दिखाया गया है कि हमारे नीति निर्माताओं और राजनीतिक नेतृत्व ने विकास की जो आकांक्षाएं गढ़ी हैं वे इस देश के बच्चों के बीच विभेदों की कितनी गहरी आशंका को जन्म दे रही हैं। उनके ये मंसूबे बच्चें के बीच

सामाजिक-आर्थिक और ग्रामीण-शहरी, दोनों तरह के विभेदों को गहराते जा रहे हैं। आदिवासी और दलित बच्चों में खनन गतिविधियों और खनन संबंधी गतिविधियों के कारण जो विस्थापन, निर्धनता और कर्जों का बोझ पैदा हो रहा है उससे पता चलता है कि उनके पास प्राथमिक शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे बुनियादी अधिकारों को हासिल करने के लिए भी कितने कम अवसर बचे हैं। ऐसे बच्चों को अपने परिवारों का पेट पालने के लिए बेहद कठोर शोषण भरी परिस्थितियों में वयस्कों वाली आर्थिक भूमिकाएं निभाने के लिए मजबूर किया जा रहा है। यह बात 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान इन सामाजिक समूहों के लिए सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों (एमडीजी) को हासिल करने की दृष्टि से कोई उत्साहजनक संकेत नहीं है। इसने भारत के बच्चों के बीच सामाजिक-आर्थिक असमानताओं का रास्ता खोल दिया है।

अध्ययन यह भी दिखाता है कि बच्चे और उनके समुदाय उस तरक्की और विकास की तस्वीर में कहीं नहीं आते जिसका खनन उद्योग आश्वासन देता है। मिसाल के तौर पर, नालको खनन परियोजना को शुरू हुए 30 साल से ज्यादा समय हो चुका है। यह एक सरकारी उपक्रम है जो उड़ीसा के कोरापुट जिले में शुरू हुआ था। केस स्टडीज़ से मिली जानकारियों व आंकड़ों के आधार पर पता चलता है कि इन 30 सालों के दौरान इस इलाके में प्रभावित परिवारों के बच्चों को शैक्षिक या आर्थिक, किसी भी दृष्टि से ऊपर उठने के ज्यादा मौके नहीं मिले हैं। यह स्थिति तो एक सार्वजनिक क्षेत्र परियोजना से प्रभावित बच्चों की है जिसके बारे में माना जाता है कि सामाजिक उत्तरदायित्व ऐसी सरकारी परियोजना का केंद्रीय एजेंडा होता है। हमारे सामने एक भी खनन परियोजना ऐसा नहीं है जिसमें पुनर्वास के आश्वासन को इस तरह पूरा किया गया हो कि उससे प्रभावित समुदायों के जीवन में सुधार आया हो। न ही इन परियोजनाओं ने ऐसे श्रेष्ठ आचरण का उदाहरण प्रस्तुत किया है जिसे सरकार निजी खान कंपनियों के सामने एक पूर्वशर्त या मिसाल के रूप में प्रस्तुत कर सके। इसके अलावा, पुनर्वास की स्थिति, खासतौर से बच्चों की स्थिति के संदर्भ में पुनर्वास की स्थिति का भी जायजा या आकलन नहीं किया गया है।

इस अध्ययन के निष्कर्षों से यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जाता है कि खान क्षेत्रों में बच्चों की स्थिति का एक समग्र आकलन करना बहुत जरूरी है। इस क्रम में न केवल खान मजदूरों के बच्चों बल्कि स्थानीय समुदायों के बच्चों, खनन गतिविधियों में लगे बाल मजदूरों और उनके लिए उपलब्ध संस्थागत संरचनाओं, सभी की स्थिति का आकलन किया जाना चाहिए। यह अध्ययन सामान्य रूप से पूरे खान उद्योग और खासतौर से छोटी, लघु खनन गतिविधियों में **बच्चों से संबंधित कानूनों, नीतियों और उनके क्रियान्वयन के बीच भारी फर्क** को सामने ला देता है। इस अध्ययन से पता चलता है कि प्रवासी मजदूरों और संगठित क्षेत्र के बारे में दिशा-निर्देश तय करने और खनन पट्टे जारी करने की पूर्वशर्तें तय करने की स्थिति कितनी खराब है। इन क्षेत्रों में बाल मजदूरी विरोधी अभियानों और **बच्चों के लिए सुरक्षा प्रणाली का सुदृढ़ीकरण करना सबसे पहली जरूरत है।**

'बच्चे' की परिभाषा क्या है?

हमारे देश में बाल अधिकारों पर काम करने वाली ताकतों के सामने एक मुख्य चुनौती यह है कि उम्र के लिहाज से एक बच्चे को कैसे परिभाषित किया जाए यानी किस उम्र के व्यक्ति को बच्चा माना जाए। 1989 में पारित और भारत द्व ारा 1992 में स्वीकृत संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार संधि में "18 वर्ष से कम उम्र के प्रत्येक व्यक्ति" को बच्चा माना गया है। भारतीय कानून में भी 18 साल के व्यक्ति को ही बालिग माना जाता है।[6] लेकिन हमारे ही देश के कई दूसरे कानून इस विषय में भारी भ्रम पैदा कर देते हैं। बहुत सारे कानून केवल 14 साल की उम्र तक ही बचपन मानते हैं। मिसाल के तौर पर, खतरनाक व्यवसायों में बच्चों को काम पर रखना निषिद्ध घोषित किया गया है और इन खतरनाक व्यवसायों में खनन एवं खदान गतिविधियां भी शामिल हैं लेकिन बच्चे का आशय 14 साल तक की उम्र के व्यक्ति से ही है। अगर बच्चे की उम्र 15 से 18 साल के बीच है तो उसके लिए ऐसा कोई कानून नहीं है, उसे खतरनाक व्यवसायों में भी काम पर रखा जा सकता है।[7]

हाल ही में पारित किए गए शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) में भी यही समस्या दिखाई देती है। इस कानून में 6-14 साल की उम्र के सभी बच्चों को शिक्षा का अधिकार दिया गया है लेकिन 15 साल या उससे अधिक उम्र के बच्चों के लिए ऐसी कोई गारंटी नहीं है। भारत के **सभी** बच्चों के अधिकारों को समर्पित संगठन के नाते **इस अध्ययन में हक एवं समता ने 18 साल तक की उम्र के सभी बच्. चों पर खनन गतिविधियों के प्रभावों का अध्ययन किया है।** आंकड़ों के लिहाज से यह आसान काम नहीं था क्योंकि जनगणना 2001 जैसे ज्यादातर आंकड़ों में कामकाजी बच्चों की संख्या केवल 14 साल की उम्र तक ही गिनी गई है।

कानूनी और नीति

अंतर्राष्ट्रीय मानक

संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार संधि में **खतरनाक कामों से बचाव के अधिकार को भी बाल अधिकारों** में शामिल किया गया है। अर्थात्, बच्चों को इस बात का अधिकार है कि उन्हें आर्थिक शोषण और ऐसे किसी भी काम से बचाया जाए जो उनके लिए खतरनाक हो सकता है या उनकी शिक्षा को बाधित कर सकता है या उनके स्वास्थ्य अथवा शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, नैतिक या सामाजिक विकास को हानि पहुंचा सकता है। यह संधि इस बात को मान्यता देती है कि बच्चों को भी शिक्षा का अधिकार है और फलस्वरूप इसमें विभिन्न सदस्य देशों से आग्रह किया गया है कि वे स्कूलों में नियमित हाजिरी सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक कदम उठाएं और ड्रॉपआउट दर पर अंकुश लगाने के लिए प्रयास करें क्योंकि कामकाजी बच्चों के बीच यह एक बड़ी समस्या है।

6. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, डेफिनिशन ऑफ दि चाइल्ड, http://wcd.nic.in/crcpdf/CRC-2.PDF, 10 अगस्त 2009 को अपलोड किया गया।
7. बाल श्रम (निषेध एवं नियमन) अधिनियम, 1986

खनन एवं खदान उद्योग में बच्चों द्वारा किए जाने वाले तकरीबन सारे काम खतरनाक कार्यों की श्रेणी में आते हैं। **उन्हें बेहद निकृष्ट व खतरनाक किस्म का बाल श्रम माना जाता है।** इस बात को निकृष्टतम बाल श्रम कन्वेंशन, 1999 (संख्या 182) में भी परिभाषित किया गया है।[8] भारत ने इस संधि का अनुसमर्थन/रेटीफिकेशन नहीं किया है और बाल मजदूरी के खिलाफ सक्रिय कार्यकर्ता व अभियान भी ऐसी किसी कन्वेंशन पर दस्तखत करने के पक्ष में नहीं है जो बच्चों के लिए खतरनाक और गैर-खतरनाक श्रम के विभेद को मान्यता देती है। उनकी दलील ये है कि **तमाम** किस्म का श्रम या ऐसा कोई भी काम जो बच्चों के मौलिक अधिकारों का हनन करता है वह शोषणपरक है और इसलिए खतरनाक है और उसमें बच्चों को काम पर रखने पर पूरी तरह पाबंदी लगा देनी चाहिए।

खनन गतिविधियों से जबरन बेदखली को बढ़ावा मिलता है। संयुक्त राष्ट्र जबरिया बेदखली आर्थिक सांस्कृतिक एवं सामाजिक अधिकार कमेटी द्वारा स्वीकृत सामान्य टिप्पणी 7 में सदस्य देशों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया गया है कि वे सुनिश्चित करें कि "कानूनी और अन्य प्रावधान इतने पर्याप्त हों कि निजी व्यक्तियों या निकायों द्वारा समुचित सुरक्षात्मक प्रावधानों के बिना की जा रही जबरन बेदखली को रोक सकें और अगर उचित हो तो दोषियों को दंडित कर सकें।"[9]

राष्ट्रीय कानून और नीति

भारत का संविधान और बहुत सारे कानून व नीतियां भारत के सभी बच्चों के अधिकारों को मान्यता व सुरक्षा प्रदान करते हैं। 1974 की राष्ट्रीय बाल नीति और हाल ही में राष्ट्रीय बाल कार्ययोजना, 2005 तथा 11वीं पंचवर्षीय योजना में इन अधिकारों के क्रियान्वयन की रूपरेखा और दिशा तय की गई है। इनमें बच्चों को शोषण व उत्पीड़न से बचाने और उन्हें निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा का अधिकार देने का संकल्प भी शामिल है। बच्चों को गरीबी और हाशियाकरण से बाहर निकालने के लिए बनाई गई कई सकारात्मक योजनाओं से ऐसे कानूनों को निश्चय ही बल मिला है। ये कानून सभी बच्चों के लिए हैं। **ऐसे कानून बहुत थोड़े हैं जिनमें खासतौर से खनन प्रभावित बच्चों की सुरक्षा या राहत का प्रावधान किया गया है या उनकी स्थिति को संबोधित किया गया है। इसका कारण ये है कि खान मंत्रालय का केंद्रीय दायित्व सिर्फ खनिजों की खुदायी करने तक ही सीमित माना गया है।** खनन गतिविधियों के कारण, खासतौर से बच्चों के संदर्भ में जिस तरह मानवाधिकारों और दूसरे कानूनों का हनन होता है उनको संबोधित करना खान मंत्रालय के दायित्वों में नहीं आता। यह जिम्मेदारी दूसरे निकायों की है इसलिए यहां विभिन्न विभागों के हितों में टकराव पैदा हो जाता है और बच्चे इन पाटों के बीच फंस कर रह जाते हैं।

खनन गतिविधियों से संबंधित कानूनों में बहुत सारे कानून बच्चों की जरूरतों और अधिकारों या यहां तक कि सामान्य मानवाधिकारों को भी संबोधित नहीं करते। मिसाल के तौर पर, हमारे यहां खनन गतिविधियों के बारे में कई कानून और नीतियां मौजूद हैं[10] जिनमें केंद्रीय कानून व नीतियों के साथ-साथ राज्य स्तरीय कानून और नीतियां भी शामिल हैं। ऐसी नीतियां और कानून भी हैं जो खान परियोजनाओं के साथ विस्थापित हुए लोगों के पुनर्वास और पुनर्स्थापन से संबंधित हैं[11] और ऐसी नीतियां भी हैं जो कोयले जैसे खास खनिज पदार्थों से संबंधित हैं।[12] हालांकि प्रतयक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लोग सबसे ज्यादा तब प्रभावित होते हैं जब खान गतिविधियां चल रही होती हैं लेकिन **खनन गतिविधियों से संबंधित ज्यादातर कानून और नीतियों में मजदूरों के अलावा और किसी भी प्रकार के लोगों के हितों का कोई खास जिक्र नहीं किया गया है।**

हैरानी की बात नहीं है कि इन कानूनों और नीतियों में **बच्चों का तो कतई जिक्र नहीं आता,** हालांकि हो सकता है उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएं और दूसरी सुविधाएं छिन चुकी हों; हो सकता है वे प्रदूषण तथा अन्य पर्यावरणीय प्रभावों की चपेट में आ गए हों; हो सकता है कि उन्हें मजदूरी की दुनिया में धकेल दिया गया हो और वे खनन उद्योग की वजह से अकुशल और हमेशा के लिए अनपढ़ रह गए हों।

खनन गतिविधियों का सबसे खतरनाक प्रभाव बाल मजदूरी के रूप में दिखाई पड़ता है। इस तरह की खतरनाक परिस्थितियों में बच्चों के रोजगार पर अंकुश लगाने के लिए बनाए गए कानून काफी कमजोर हैं। 14 साल से कम उम्र के बच्चों को भूमिगत और पानी के भीतर स्थित खानों और खदानों (अनुसूची भाग 1) में नौकरी पर रखना निषिद्ध घोषित किया गया है। यह कानून अनुसूची बी में सूचीबद्ध कुछ खनन संबंधी प्रक्रियाओं में भी बच्चों के रोजगार को निषिद्ध घोषित करता है।[13] **यह इस कानून की एक बहुत बड़ी खामी है क्योंकि यह कानून सभी प्रकार की खनन गतिविधियों में सभी बच्चों के रोजगार पर चौतरफा पाबंदी नहीं लगाता** और इस तरह बच्चों के उत्पीड़न व शोषण के असंख्य रास्ते खुले रह जाते हैं। खान अधिनियम में बच्चों को खानों में नौकरी पर रखने पर तो पाबंदी लगाई गई है लेकिन यहां भी उनके शोषण की गुंजाइश खुली रह जाती है। खान अधिनियम, 1952 और खान (संशोधन अधिनियम), 1983, इन दोनों कानूनों में प्रावधान किया गया है कि 18 साल से कम उम्र के व्यक्ति को किसी भी खान

8. बाल श्रम के निकृष्टतम रूपों में ऐसे काम भी शामिल हैं जो बच्चों के स्वास्थ्य, सुरक्षा व नैतिक व्यक्तित्व को क्षति पहुंचा सकते हैं।

9. और अधिक जानकारी के लिए देखें, ए हैंडबुक ऑन यूएन बेसिक प्रिंसिपल्स ऐण्ड गाइडलाइंस बेस्ड ऑन डेवलेपमेंट बेस्ड ऐविक्शन ऐण्ड डिस्प्लेसमेंट, ऐमनेस्टी इंटरनैशनल इंडिया, हाउसिंग ऐण्ड लैंड राइट्स नेटवर्क एवं यूथ फॉर यूनिटी ऐण्ड वॉलंटरी ऐक्शन, http://www.hic-sarp.org/UN%20Handbook.pdf

10. जैसे, खान अधिनियम, 1952 (संशोधन अधिनियम 1983); खान एवं खनिज (विकास एवं नियमन) अधिनियम, 1957 (20 दिसंबर 1999 तक संशोधित); भारत सरकार, खान मंत्रालय की राष्ट्रीय खनिज नीति, 2008 (गैर-ईंधन एवं गैर-कोयला खनिजों के लिए); तथा कर्नाटक खनिज नीति 2008 जैसी राज्य स्तरीय नीतियां।

11. राष्ट्रीय पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन नीति, 2007

12. बहुत सारे अधिनियम और कानून भारत में कोयला उद्योग को केंद्र में रखकर बनाए गए हैं। और अधिक विवरण के लिए देखें http://coal.nic.in/acts.htm एवं http://policies.gov.in/department.asp?id=76.

13. माइका कटाई एवं तोड़ना; स्लेट पेंसिलों का निर्माण (पैकिंग सहित); शीशा, पारे जैसी विषैली धातुओं व पदार्थों पर आधारित विनिर्माण प्रक्रियाएं; फैब्रिकेशन वर्कशॉप (लौह एवं अलौह); हीरा कटाई और पॉलिश; क्रोमाइट और मैगनीज अयस्कों को संभालना; चूना भट्टी और चूना विनिर्माण; पत्थर तोड़ना व क्रशिंग; आदि।

या उसके किसी भी हिस्से (अनुच्छेद 40) या खान गतिविधि से संबंधित अथवा उसके लिए आवश्यक किसी कार्य (अनुच्छेद 45) में नौकरी पर नहीं रखा जाएगा। लेकिन यह कानून इस बात की छूट देता है कि 16 साल तक की उम्र के बच्चों को प्रशिक्षु के रूप में काम पर रखा जा सकता है। ये तय करना भी निरीक्षकों के विवेक पर छोड़ दिया गया है कि कोई व्यक्ति बाकायदा मजदूर है या वह प्रशिक्षु/नौसिखिया है और इस आधार पर वह काम के लिए उपयुक्त है अथवा नहीं (अनुच्छेद 43.1)। राष्ट्रीय खनिज नीति के बुनियादी ढांचा विकास वाले खंड (खंड 7.7 में) एक वाक्य में अप्रत्यक्ष रूप से बच्चों का जिक्र किया गया है और कहा गया है कि "स्वास्थ्य, शिक्षा, पेय जल, सड़क एवं अन्य संबंधित सुविधाओं के विकास पर और ज्यादा जोर दिया जाएगा..." लेकिन इस बात का जिक्र नहीं किया गया है कि यह काम कौन करेगा और यह काम कैसे किया जाएगा।

खानों में बाल मजदूरी तथा खनन गतिविधियों के कारण पैदा होने वाली किसी भी तरह की संवेदनीशल स्थिति से निपटने के लिए **सबसे असरदार कानून किशोर न्याय (देखभाल एवं सुरक्षा) अधिनियम 2000, 2006 में संशोधित, ही हो सकता है** जिसमें 18 साल तक की उम्र के सभी व्यक्तियों को बच्चों की श्रेणी में रखा गया है। यह कानून दो तरह के बच्चों पर ध्यान देता है - एक, ऐसे बच्चे जिन्हें सुरक्षा व देखभाल की आवश्यकता है (सीएनसीपी) तथा दो, ऐसे बच्चे जो गैर-कानूनी गतिविधियों में फंसे हुए हैं (सीआईसीएल)। इस कानून के अनुच्छेद 2बी में देखभाल व सुरक्षा के जरूरतमंद बच्चे को एक ऐसे बच्चे के रूप में परिभाषित किया गया है जो शोषित या पीड़ित है या जो किसी तरह के उत्पीड़न या शोषण की आशंका में घिरा हुआ है। इस श्रेणी में विस्थापित और बेघर बच्चे, खरीदे-बेचे गए बच्चे या बाल मजदूर या इस तरह की परिस्थितियों की आशंका से घिरे बच्चों को रखा जाता है।

खान और खनिज (विकास एवं नियमन) (एमएमडीआर) अधिनियम, 1997 एक ऐसा कानून है जिसके तहत खनन गतिविधियां संचालित की जाती हैं और दावा किया जाता है कि इस कानून के तहत खनिज पदार्थों का "वैज्ञानिक" ढंग से प्रयोग किया जाता है। ये प्राथमिक कानून है जिसमें संशोधन होने जा रहा है। इस कानून में **राष्ट्रीय खनिज नीति** की रूपरेखा के अंतर्गत भारत में खनन के संबंध में संशोधन होने वाला है। इस कानून के तहत जो नियम तय किए गए हैं वे मुख्य रूप से खान नियोजन, खनन प्रक्रियाओं, तकनीक के स्वरूप, खनन पट्टे हासिल करने की प्रणाली व योग्यता और खानों से संबंधित दूसरे आयामों से संबंधित हैं। इस कानून में **इस बात का कोई जिक्र नहीं है कि सामाजिक दृष्टि से खनन गतिविधियां किस तरह संपन्न की जाएंगी। पर्यावरण, पुनर्वास एवं सामाजिक प्रभावों की दृष्टि से केवल कुछ मोटा-मोटी दिशा-निर्देश दिए गए हैं।** खनन गतिविधियों से बच्चों पर पड़ने वाले भारी नकारात्मक प्रभावों को देखते हुए **ये जरूरी है कि खनन पट्टे जारी करने से पहले एक-एक पूर्व शर्त को स्पष्ट रूप से तय किया जाए** और खनन कंपनियों से इस बात का आश्वासन लिया जाए कि वे बच्चों के विकास व सुरक्षा के लिए कौन से ठोस कदम उठाएंगी। जब तक निम्नलिखित सामाजिक प्रभाव एवं उत्तरदायित्व, खासतौर से बच्चों के विषय में सामाजिक प्रभाव और उत्तरदायित्वों को इस कानून और खान योजनाओं में शामिल नहीं किया जाएगा तब तक खनन क्षेत्रों में बाल अधिकारों की अवहेलना बंद नहीं होगी।

पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन विधेयक, 2009 लोकसभा में 25 फरवरी 2009 को पारित किया गया। इस विधेयक का निश्चित अवधि के भीतर अनुमोदन नहीं हो पाया है और यह अधिनियम नहीं बन पाया। **जैसा सभी सर्वसमावेशी कानूनों और नीतियों में प्रायः होता है, इस विधेयक में भी बच्चों को स्पष्ट और विशेष मान्यता नहीं दी गई थी** सिवाय इसके कि उसमें सामाजिक प्रभाव आकलन के तहत शैक्षिक संस्थानों का भी जिक्र किया गया था और संवेदनशील व्यक्तियों की सूची में यतीमों का भी जिक्र था।[14] इस विधेयक की उपधारा 4(2) के अंतर्गत सामाजिक प्रभाव आकलन के संबंध में कहा गया था कि संबंधित शासन स्वास्थ्य सुविधाओं, स्कूलों व शैक्षिक अथवा प्रशिक्षण सुविधाओं, आंगनवाड़ियों, बच्चों के पार्कों[15] आदि सुविधाओं पर ध्यान देगा और इससे संबंधित रिपोर्ट शासन में स्थित एक विशेषज्ञ दल के पास जमा करायी जाएगी जिसमें "महिलाओं एवं बच्चों, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण से संबंधित सरकारी विभाग के सचिव या उसकी ओर से पदेन मनोनीत अधिकारी" को जरूर शामिल किया जाएगा (5(2बी))। राष्ट्रीय बाल अधिकार सुरक्षा आयोग अध्यक्षा की ओर से ग्रामीण विकास मंत्री को लिखे गए एक पत्र में इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट कराया गया था कि विकास कार्यों तथा आपदा व तनावपूर्ण परिस्थितियों के कारण विस्थापन के क्षेत्र में बच्चों की स्थिति की समीक्षा से पता चलता है कि ज्यादातर पुनर्वास कार्यक्रमों में बच्चों पर पड़ने वाले प्रभावों पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। क्योंकि विस्थापन से पोषण, शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य सुविधाओं तक बच्चों की पहुंच प्रभावित होती है और इस तरह बच्चों के अधिकारों का हनन हो सकता है इसलिए बच्चों पर पड़ने वाले प्रभावों और सुविधाओं तक उनकी पहुंच पर पड़ने वाले असर का आकलन आवश्यक है। यह आकलन जेंडर और आयु वर्गों के अनुसार किया जाना चाहिए।[16]

राष्ट्रीय पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन नीति में बच्चों को प्रभावित व्यक्तियों के रूप में दर्ज नहीं किया गया है इसलिए यह नीति इस बात को पहचानने या मान्यता देने में चूक जाती है कि खनन या किसी भी परियोजना के कारण होने वाले विस्थापन से बच्चों पर किस तरह के खास प्रभाव पड़ते हैं। बच्चों पर जो प्रभाव पड़ते हैं वे वयस्कों पर पड़ने वाले प्रभावों से भिन्न होते हैं। इस नीति में इस बात का कोई जिक्र नहीं किया गया है कि विस्थापन से भोजन, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुंच तथा सर्वांगीण विकास की दृष्टि से बच्चों पर कितना गहरा असर पड़ेगा।

---

14. अनुच्छेद 21 (2-iii व iv) में कहा गया है कि विकलांग, बेसहारा, अनाथ, विधवा, अविवाहित लड़कियों और अन्य संवेदनशील व्यक्तियों को तथा अनुसूचित जातियों व जनजातियों के परिवारों को भी सर्वेक्षण में शामिल किया जाएगा।

15. 4(2) "उप अनुच्छेद (1) के अंतर्गत सामाजिक प्रभाव आकलन करते हुए संबंधित शासन/सरकार अन्य चीजों के अलावा इस बात पर भी ध्यान देगी कि परियोजना से सार्वजनिक एवं सामुदायिक संपदाओं, परिसंपत्तियों एवं बुनियादी ढांचे पर क्या असर पड़ेगा; खासतौर से सड़कें, सार्वजनिक परिवहन, निकासी, स्वच्छता, पेयजल स्रोत, मवेशियों के लिए उपलब्ध जल स्रोत, सामुदायिक तालाब, चरागाह, बागान, सार्वजनिक सुविधाएं जैसे डाकघर, उचित दर दुकान, खाद्य भंडारण गोदाम, विद्युत आपूर्ति, स्वास्थ्य सुविधाओं, स्कूल व शैक्षिक अथवा प्रशिक्षण सुविधाओं, आंगनवाड़ियों, बच्चों के पार्क, पूजा स्थलों, परंपरागत जनजातीय संस्थानों के लिए जमीन, कब्रगाह और श्मशान भूमि आदि।"

16. राष्ट्रीय बाल अधिकार सुरक्षा आयोग, इनफोकस, खंड 1, संख्या 4

प्रभाव

खनन गतिविधियों से बच्चों पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, दोनों तरह के प्रभाव पड़ते हैं। जमीन छिन जाने के कारण विस्थापन और बेदखली, प्रदूषण व पर्यावरण विनाश के कारण शारीरिक-मानसिक विकास में गिरावट, खनन गतिविधियां शुरू हो जाने के बाद जीवन की गुणवत्ता का लगातार पतन, स्कूल ड्रॉपआउट बच्चों की संख्या में इजाफा और बाल मजदूरों की बढ़ती संख्या **प्रत्यक्ष प्रभावों** की श्रेणी में आते हैं।

खनन गतिविधियों के अप्रत्यक्ष प्रभाव प्रायः कुछ समय बीत जाने के बाद ही दिखाई देते हैं। पोषण के स्तर में गिरावट की वजह से कुपोषण, पानी, मिट्टी और हवा के दूषित हो जाने की वजह से बीमारियों में इजाफा और मां-बाप के रोजगार की अस्थिर संभावनाओं के चलते प्रवासन आदि खनन गतिविधियों के **अप्रत्यक्ष प्रभाव** होते हैं।

यह विरोधाभासी बात है कि यद्यपि खनन गतिविधियों को तरक्की और खुशहाली का स्रोत बताया जाता है लेकिन, अगर इसका मकसद वाकई एक बेहतर जीवन साकार करना है तो ऐसा क्यों है कि जिन स्थानीय लोगों - स्थानीय महिलाओं, पुरुषों और बच्चों - की जमीन पर खुदायी की जा रही है, या जिनको मजदूर के तौर पर वहां लाकर रखा गया है उनके जीवन में यह खुशहाली दिखाई नहीं देती।

"उड़ीसा के लोगों के लिए खुशहाली की खदान" - ये एक खनन कंपनी का वादा है। एक और कंपनी का वादा है, **"हर कदम पर स्टील, हर दिल में गान।"** अगर ऐसा है तो खनन गतिविधियों से प्रभावित लोग क्यों परेशान हैं? "सरकार हमें कहती है कि यह खनन देश के लिए फायदेमंद है और इससे भारत का विकास होगा...। लेकिन अगर ये भारत का विकास है तो क्या हम भारत का हिस्सा नहीं हैं? सरकार हमारी परवाह क्यों नहीं करती?"

स्रोतः 1. उड़ीसा में खनन कंपनियों के साईन बोर्ड।
2. जिला बाड़मेर, राजस्थान में लिग्नाइट खनन परियोजना से विस्थापित एक व्यक्ति, जुलाई 2009.

खनन गतिविधियों से बच्चों पर पड़ने वाले प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव

1. **अवरुद्ध विकास और बीमारियांः** खनन प्रभावित बच्चों का विकास तेजी से मंद पड़ने लगता है। खनन इलाकों में रहने और खानों में काम करने के कारण ये बच्चे ज्यादा बीमारियों की चपेट में आने लगते हैं।

2. **खाद्य असुरक्षा और कुपोषण में इजाफा :** हालांकि देश के बहुत सारे राज्यों में तकरीबन 50 प्रतिशत बच्चे कुपोषण का शिकार हैं लेकिन खनन इलाकों में तो बच्चे कुपोषण, भूख और खाद्य असुरक्षा की और भी गंभीर आशंका में जीते हैं।

3. **शोषण व उत्पीड़न की आशंका में इजाफा :** जो बच्चे विस्थापित हैं, बेघर हैं या अपर्याप्त आवास सुविधाओं में जी रहे हैं, या जिनको स्कूल छोड़ना पड़ा, ऐसे बच्चे उत्पीड़न, शोषण की आशंका में पहुंच जाते हैं। उनको माफिया गिरोह गैर-कानूनी गतिविधियों के लिए अपने साथ जोड़ लेते हैं और यहां तक कि उनकी खरीद-फरोख्त भी होने लगती है।

4. **शिक्षा अधिकार का हनन :** सबको शिक्षा के लक्ष्य की दृष्टि से देखें तो खनन प्रभावित क्षेत्रों में भारत पीछे की तरफ मुंह करके चलता दिखाई दे रहा है। खनन प्रभावित बच्चों के पास या तो स्कूल की सुविधा ही नहीं है या खनन गतिविधियों के कारण पैदा होने वाली परिस्थितियों के चलते उनकी पढ़ाई बंद हो जाती है।

5. **बाल मजदूरी में इजाफा :** खनन इलाकों में बच्चों की एक विशाल संख्या बेहद खतरनाक गतिविधियों में काम कर रही है।

6. **आदिवासी एवं दलित बच्चों का और अधिक हाशियाकरणः** विशाल खनन परियोजनाएं मुख्य रूप से आदिवासी इलाकों में स्थित हैं और आदिवासी बच्चे पांचवीं अनुसूची के तहत मिले अपने संवैधानिक अधिकारों से वंचित होते जा रहे हैं। विस्थापन, अपनी जमीन से अलगाव और खनन परियोजनाओं के चलते प्रवासन के कारण उनके संवैधानिक अधिकार नष्ट होते जा रहे हैं। आदिवासी बच्चों की तरह खनन प्रभावित दलित बच्चे भी खानों की वजह से विस्थापित हो रहे हैं, उनकी पढ़ाई बंद हो जाती है और उनको खानों में नौकरी करनी पड़ती है।

7. **प्रवासी बच्चे बेठिकाना रह जाते हैंः** खनन क्षेत्र मुख्य रूप से प्रवासी आबादी पर निर्भर हैं जहां बच्चों के पास जीवन की कोई सुरक्षा नहीं होती। वहां बच्चे खानों में नौकरी करते या खनन गतिविधियों की वजह से अन्य व्यवसायों में मजदूरी करते पाए जाते हैं।

8. **सरकार के लिए खनन प्रभावित बच्चे लावारिस होकर रह जाते हैंः** बच्चों का कल्याण खान मंत्रालय की जिम्मेदारी नहीं है जबकि यही मंत्रालय है जो उनकी ऐसी दशा और उनके अधिकारों के हनन के लिए जिम्मेदार है। खनन गतिविधियों की वजह से बच्चों की जिंदगी में जो तबाही पैदा हुई है उसको बाल कल्याण, शिक्षा, आदिवासी कल्याण, श्रम, पर्यावरण एवं अन्य दूसरे मंत्रालयों द्वारा संबोधित किया जाता है। जब तक इन सभी विभागों और एजेंसियों के बीच समन्वय नहीं होगा तब तक खनन प्रभावित बच्चे इन निकायों के बीच बनी नीतिगत दरारों के शिकार होते रहेंगे। खनन एवं संबंधित प्रक्रियाओं के बारे में बनाए गए तमाम कानून और नीतियां खनन प्रभावित बच्चों के खास अधिकारों और आवश्यकताओं को संबोधित नहीं करते।

सिफारिशें

बच्चों के विषय में

- सरकार को इस बात को जरूर मान्यता देनी चाहिए कि खनन गतिविधियों के कारण बच्चे नाना प्रकार से प्रभावित होते हैं और खनन चक्र के सभी चरणों - खनन गतिविधियां शुरू होने से पहले, खनन गतिविधियां शुरू होने के बाद और खनन गतिविधियां बंद हो जाने के बाद - में इन सभी प्रभावों को ध्यान में रखा जाए।
- खनन संबंधी सभी कानूनों और नीतियों - राष्ट्रीय खनिज नीति 2008; खान एवं खनिज (विकास एवं नियमन) (एमएमडीआर) अधिनियम; खान (संशोधन) अधिनियम, 1983 - में खनन प्रभावित बच्चों के सरोकारों को जगह मिलनी चाहिए।
- मौजूदा अभिशासन संरचना में बच्चों की चिंताएं केंद्रीय मंत्रालयों और प्रांतीय विभागों में अलग-अलग बंटी हुई हैं इसलिए ये सुनिश्चित करना बहुत जरूरी है कि कानून और नीति के स्तर पर एक समन्वय हो और खनन प्रभावित बच्चों को न्याय दिया जा सके।
- राष्ट्रीय बाल अधिकार सुरक्षा आयोग तथा राज्य बाल अधिकार सुरक्षा आयोगों जैसे मौजूदा बाल सुरक्षा संस्थानों को खनन प्रभावित बच्चों से जोड़ा जाना चाहिए और राज्य एवं जिला स्तर पर निगरानी समितियों का गठन किया जाना चाहिए जिनमें उन सभी विभागों के प्रतिनिधियों को रखा जाए जो बच्चों के कल्याण और अधिकारों की सुरक्षा से संबंधित हों। इन कमेटियों को स्थिति पर नजर रखने के साथ-साथ विशेष स्थितियों में हस्तक्षेप करने और बच्चों की शिकायतों या परेशानियों को हल करने का भी अधिकार दिया जाना चाहिए।
- सरकार और समाज, दोनों को अब ये दुहाई देना बंद कर देना चाहिए कि खानों में बाल मजदूरी नहीं है। लिहाजा, सरकार और समाज को संबंधित कानूनों में संशोधन पर ध्यान देना चाहिए। इस व्यवसाय के बेहद खतरनाक स्वरूप को देखते हुए खान अधिनियम, 1952 तथा खान (संशोधन) अधिनियम, 1983 में संशोधन किया जाना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि 18 साल से कम उम्र के किसी भी बच्चे को न केवल मजदूर के रूप में बल्कि प्रशिक्षु और नौसिखिये के रूप में भी खानों में काम पर न रखा जा सके। खानों में काम करने वाले बाल मजदूरों के संबंध में बाल श्रम (निषेध एवं नियमन), 1986 में जो खामियां रह गई हैं उनको फौरन दूर किया जाना चाहिए। इसके लिए कानून में संशोधन किया जाना चाहिए और सभी खनन कार्यों/प्रक्रियाओं को बच्चों के लिए निषिद्ध व्यवसायों की अनुसूची ए में शामिल किया जाना चाहिए।[17]
- विभिन्न नीतियों में बाल अधिकारों को एक मुख्य विषय के रूप में शामिल किया जाना बहुत जरूरी है। इसके लिए खान उद्योग से संबंधित मौजूदा कानूनों में संशोधन किए जाने चाहिए और संबंधित मंत्रालयों द्वारा पुनर्वास, सामाजिक सुरक्षा या भूमि अधिग्रहण एवं अन्य मदों में जो कानून प्रस्तावित किए जा रहे हैं उन सभी में बाल अधिकारों पर स्पष्ट रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए।
- खनन इलाकों में बच्चे भारी कुपोषण, भुखमरी और खाद्य असुरक्षा से जूझ रहे हैं। इस समस्या को फौरन दूर किया जाना चाहिए। अध्ययन के दौरान अकसर ऐसी भयावह स्थितियां पाई गईं इसलिए भोजन अधिकार मामले में सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों का पालन करने के लिए[18] खनन इलाकों में आईसीडीएस परियोजनाओं के क्रियान्वयन और समीक्षा की प्रक्रिया फौरन शुरू की जानी चाहिए।
- खनन प्रभावित प्रवासी आदिवासी और दलित बच्चों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि वे औरों से ज्यादा हाशियाई स्थिति में होते हैं।
- खनन गतिविधियों के कारण बच्चों के सामने शोषण और उत्पीड़न की जो अतिरिक्त आशंकाएं पैदा हो जाती हैं उनको देखते हुए सरकार को एकीकृत बाल सुरक्षा योजना (आईसीपीएस) नामक महत्वपूर्ण योजना को खनन क्षेत्रों तथा अन्य संवेदनशील क्षेत्रों में सबसे पहले लागू करना चाहिए। इस योजना का मकसद बच्चों के सामने मौजूद खतरों पर ज्यादा से ज्यादा नियंत्रण लगाना है ताकि ऐसे बच्चों को सुरक्षा प्रदान की जा सके जो सामाजिक सुरक्षा के दायरे से बाहर जा चुके हैं।
- खनन क्षेत्रों में बच्चों की स्थिति को संबोधित करने के लिए बाल न्याय अधिनियम, 2000 को इस तरह लागू किया जाना चाहिए कि उनकी स्थिति में सुधार आए, उनको बेहतर सुरक्षा मिले, उनको निगरानी एवं शिकायतों की सुनवाई का आश्वासन मिले और खनन प्रभावित बच्चों की सुरक्षा के लिए बाल कल्याण समिति जैसी सहायक संरचनाएं सामने आएं।
- बाल न्याय बोर्ड, बाल कल्याण समितियों (सीडब्ल्यूसी) तथा राज्य बाल पुलिस ईकाइयों की ओर से उन इलाकों में आदिवासी बच्चों को सहायता उपलब्ध कराना बहुत आवश्यक है जहां विस्थापन और भूमिहीनता के कारण बच्चों का शोषण हो रहा है या वे गैर-कानूनी गतिविधियों में फंस गए हैं।
- आवास स्थल के आसपास स्तरीय शिक्षा के अधिकार के तहत खनन प्रभावित क्षेत्रों के अधिकारियों के बच्चों की तरह सभी खनन प्रभावित बच्चों को निःशुल्क एवं सार्वभौमिक प्रारंभिक अनिवार्य शिक्षा का आश्वासन दिया जाना चाहिए है। प्राथमिक और प्रारंभिक स्कूलों की संख्या, गुणवत्ता, पहुंच, बुनियादी ढांचे और शैक्षिक स्तर में उचित सुधार लाया जाना चाहिए।
- राष्ट्रीय बाल श्रम कार्यक्रम (एनसीएलपी) को विस्तार देकर सभी खान प्रभावित बच्चों को उसके दायरे में लाया जाना चाहिए। यानी, इस कार्यक्रम को उल्लेखनीय विस्तार दिया जाना चाहिए, इसके लिए आवंटित वित्तीय संसाधनों में इजाफा किया जाना चाहिए और डिलीवरी की गुणवत्ता में सुधार लाया जाना चाहिए। एनसीएलपी स्कूलों में जाने वाले सभी बच्चों

17. फिलहाल अनुसूची ए में खनन एवं कोलियरीज को ही खनन संबंधी गतिविधियों के रूप में शामिल किया गया है।
18. विवरण के लिए देखें http://www.righttofoodindia.org/icds/icds_orders.html (13 मार्च 2010 को देखा), खनन प्रभावित समुदायों के साथ साक्षात्कार, जिला काशीपुर, उड़ीसा, जून 2009.

को नियमित स्कूलों में दाखिला दिलाया जाना चाहिए। खानों में मजूदरी से निकाले गए बच्चों के लिए यह बात अवश्य सुनिश्चित की जानी चाहिए।

- खनन इलाकों में रहने वाले और काम करने वाले बच्चों की सेहत पर पड़ रहे प्रभावों का समग्र आकलन और विश्लेषण किया जाना चाहिए। खनन गतिविधियों के कारण पर्यावरण में भारी प्रदूषण और व्यावसायिक रोगों में इजाफे को देखते हुए मंत्रालय को चाहिए कि वह ऐसी डिलीवरी सेवाएं उपलब्ध कराए जो बाल स्वास्थ्य और मृत्यु दर संबंधी मुद्दों को संबोधित कर सकें। ये सेवाएं समुदायों के पोषण और खाद्य सुरक्षा को प्रभावित करने वाले प्रदूषण, गंदगी, विषैलेपन, जल संसाधनों के विनाश जैसी समस्याओं की रोकथाम में सक्षम होनी चाहिएं।
- खान कंपनियों के साथ होने वाले खनन समझौतों में पुनर्वास को एक अभिन्न हिस्से के रूप में जोड़ा जाना चाहिए। पुनर्वास योजना में बच्चों पर पड़ने वाले प्रभावों और उनसे संबंधित योजनाओं का स्पष्ट विवरण होना चाहिए और इन योजनाओं का क्रियान्वयन खान परियोजना शुरू होने से पहले एक निश्चित समय पर शुरू हो जाना चाहिए। इस पुनर्वास योजना में शौचालय एवं पीने के पानी से पर्याप्त एवं मानवोचित आवास, पुनर्वास/पुनर्स्थापन बस्ती के भीतर अच्छी गुणवत्ता वाले स्कूल, बिजली, गर्भवती महिलाओं व एकल माताओं के लिए पूरक पोषण देने में सक्षम आंगनवाड़ी केंद्र, कॉलेज, स्वास्थ्य संस्थान, सड़क और परिवहन आदि सुविधाएं शामिल होनी चाहिए।
- अगर इनमें से किसी भी प्रावधान का हनन होता है और इससे बच्चों पर असर पड़ता है तो संबंधित खान का पट्टा रद्द कर दिया जाना चाहिए। अगर पुनर्वास योजना को पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार लागू नहीं किया जाता है तो निगरानी समिति के आकलन और सिफारिशों के अनुसार सजा या जुर्माना भी तय होना चाहिए।

व्यापक सिफारिशें

- खान मंत्रालय को संबंधित स्थानीय प्रशासन संस्थानों (जिला, ब्लॉक स्तर) और समुदाय के साथ मिलकर क्षेत्रीय योजनाएं विकसित करनी होंगी जिनमें इस बात का स्पष्ट प्रावधान होगा कि जो अयस्क निकाले जाएंगे उनकी मात्रा और गुणवत्ता कैसी होगी, कितने इलाके में खनन कार्य चलेगा, उस इलाके की जनसांख्यिकीय रूपरेखा कैसी है, खनन के लिए आर्थिक नियोजन जिसमें मजदूरों की संख्या, मजदूरों की किस्म (स्थानीय, प्रवासी), तकनीक आदि का ध्यान रखा जाएगा। इसके अलावा मजदूरी, मजदूरों के अनुमान और सुनिश्चित कार्यावधि सहित सामाजिक लागतों पर भी ध्यान दिया जाएगा। प्रवासी मजदूरों को आवास, पीने के पानी, बिजली, छोटे बच्चों की देखभाल की सुविधा, स्तरीय शिक्षा, शौचालय, सार्वजनिक वितरण प्रणाली से अनाज की सुविधा और अन्य साधन दिए जाएं जिससे उन्हें कम से कम न्यूनतम स्तर का जीवन जरूर मिल सके। इन कामों के लिए धन की व्यवस्था सरकारी खजाने से नहीं बल्कि प्रोमोटर या व्यवसायी से की जानी चाहिए।
- सरकारी या सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों को खनन क्षेत्र में एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। उन्हें स्थिति को व्यवस्थित करके बच्चों व उनके परिवेश में मौजूदा खानों के कारण हुई तबाही को संबोधित करना चाहिए। उन्हें एक निश्चित समय-सीमा के भीतर यह काम पूरा कर लेना चाहिए। इस बारे में समय-समय पर किसी स्वतंत्र समिति से जांच कराई जानी चाहिए। चीजों को व्यवस्थित करने की इस प्रक्रिया में यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि इस काम के लिए प्रत्येक कंपनी ने कितना बजट तय किया है। कमेटी के सामने इस मद में जुड़े खर्चे का ब्यौरा भी दिया जाना चाहिए।
- लाभों के बंटवारे की व्यवस्था फौरन लागू की जानी चाहिए ताकि यह व्यवस्था केवल तात्कालिक अल्पावधि नकद लाभ तक सीमित न हो बल्कि उसमें समुदायों और मजदूरों के दीर्घकालिक स्थायित्व की भी व्यवस्था हो। इस प्रणाली में खनन कार्य बंद हो जाने के बाद जमीन को दोबारा चालू करने और ऐसे आजीविका कार्यक्रम विकसित करने पर जोर दिया जाना चाहिए जिनसे परिणामों को मापा जा सकता है। कंपनियों को जो टैक्स या लाभ मिल रहे हैं उनका एक हिस्सा बच्चों के लिए खोले जाने वाले संस्थाओं पर खर्च होना चाहिए।
- नए खनन पट्टे तब तक जारी नहीं किए जाने चाहिए जब तक पिछली अस्त-व्यस्तता को दूर न कर लिया जाए और जब तक संस्थागत व्यवस्था लागू न कर ली जाए। अनुसूचित क्षेत्रों में निजी खान कंपनियों को खनन पट्टे नहीं दिए जाने चाहिए और समता निर्णय का उसकी सही भावना के अनुसार पालन किया जाना चाहिए।
- राष्ट्रीय असंगठित क्षेत्र आयोग ने जो नया सामाजिक सुरक्षा विधेयक प्रस्तावित किया है उसमें उपरोक्त वैधानिक एवं नीतिगत सिफारिशों को ध्यान में रखा जाना चाहिए, खासतौर से प्रवासी खान मजदूरों से संबंधित सिफारिशों को जरूर शामिल किया जाना चाहिए। इस विधेयक में ऐसे पर्याप्त सामाजिक सुरक्षा लाभों का भी समावेश किया जाना चाहिए जो सीधे-सीधे बच्चों की सुरक्षा व विकास पर केंद्रित हों।

भाग 1

राष्ट्रीय स्थिति

राष्ट्रीय स्थिति

खान उद्योग के विकास की प्रक्रिया में अलग-अलग अवसरों पर लोग अलग-अलग तरह से प्रभावित होते हैं। इस व्यवसाय का स्वरूप ही ऐसा है कि यह **आमूल रूप से गैर-टिकाऊ दिखाई देता है क्योंकि सभी प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं और अंततः समाप्त हो जाएंगे।** खनन उद्योग से खानों में काम करने वालों पर तो गहरा असर पड़ता ही है, स्थानीय समुदाय पर भी भारी प्रभाव पड़ते हैं। खनन गतिविधियों से आसपास के इलाके में स्वास्थ्य संबंधी नई समस्याएं पैदा होती हैं और कई दूसरे नकारात्मक प्रभाव पहले से जयादा तीखे हो जाते हैं। **खनन-पूर्व** चरण में समुदायों को खनन गतिविधियों के लिए विस्थापित किया जाता है। इससे न केवल उनकी खेती की जमीन छिन जाती है बल्कि कई बार उनके मकान भी छिन जाते हैं।

चालू खनन कार्यो की अवधि इस बात पर निर्भर करती है कि उस इलाके में खनिज पदार्थों की कितनी मात्रा उपलब्ध है। बहरहाल, चाहे कहीं कितने भी खनिज हों, आखिरकार सभी खानों को बंद करना ही पड़ता है। **खनन-पश्चात चरण** की भी अपनी समस्याएं होती हैं। खनन कंपनियां विरले ही कभी समुचित खान बंदी योजना तैयार करती हैं जिसके जरिए खान बंदी के बाद समुदाय को सुरक्षा प्रदान की जा सके। खान कंपनियां अकसर खदानों को छोड़ कर चली जाती हैं जिससे वह जमीन किसी भी काम के लायक नहीं रहती। ऐसी जमीन को आसानी से दोबारा खेतिहर जमीन में तब्दील नहीं किया जा सकता। इस तरह, खान बंद हो जाने पर न केवल स्थानीय समुदाय बेरोजगार हो जाता है बल्कि उसकी जमीन भी बेकार हो जाती है।

औपचारिक एवं अनौपचारिक खनन क्षेत्रों में कार्य परिस्थितियां बहुत अलग-अलग हैं। भारत के औपचारिक क्षेत्र खान मजदूरों की औसत दिहाड़ी मजदूरी 2007 में 444.21 रुपये थी।[19] इसके अलावा उन्हें वेतन सहित छुट्टी और परिजनों के स्वास्थ्य व शिक्षा जैसी अतिरिक्त सुविधाएं भी प्रायः मिलती हैं।

टेबल 1.1 : सामान्य खनन परिवेश में खतरे और जोखिम

जीवन परिवेश में मौजूद खतरे/जोखिम	संभावित परिणाम
• अमानवीय जीवन परिस्थितियां (स्वच्छता, पेयजल का अभाव, बेहद कठोर भौगोलिक एवं वायुमंडलीय स्थानों पर निवास); • जटिल निर्भरता संबंध बनाने पड़ते हैं; • सामाजिक वातावरण का क्षय होता है (अपराध, वेश्यावृत्ति); • यौन संक्रामक रोगों, एड्स आदि की आशंका बढ़ने लगती है; • पुरुषों और महिलाओं के बीच गैरबराबरी बढ़ जाती है (पुरुष आर्थिक संसाधनों को समाप्त करने लगते हैं); पारिवारिक एवं सामाजिक संरचना का क्षरण होने लगता है; • बाल मजदूरों के प्रति हिंसक व्यवहार बढ़ता जाता है; • खनिकों एवं आसपास के समुदायों के बीच हिंसक टकराव होने लगते हैं; • कानून व्यवस्था का अभाव पैदा हो जाता है।	• नैतिक मूल्य-मान्यताओं का क्षरण; • अपराधों या हिंसा के कारण चोट या मृत्यु की घटनाएं; • शिक्षा और स्कूलों का समाप्त हो जाना; • साफ-सफाई और स्वच्छता के अभाव की वजह से बीमारियों की आशंका; • स्वास्थ्य सेवाओं के अभाव की वजह से चोटों और बीमारियों में इजाफा।

स्रोत : इंटरनैशनल प्रोग्राम ऑन ऐलिमिनेशन ऑफ चाइल्ड लेबर, अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय, ऐलिमिनेटिंग चाइल्ड लेबर इन माइनिंग ऐण्ड क्वेरींग बैकग्राउंड डॉक्यूमेंट, विश्व बाल श्रम विरोधी दिवस, 12 जून 2005,

19. श्रम एवं रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार, सेलेक्टेड स्टेटवाइज ऐवरेज डेली अर्निंग्स ऑफ वर्कर्स इन माइनिंग इंडस्ट्रीज बाई सेक्स-एज़ इन इंडिया, 2007

लेकिन औपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले लोगों की संख्या बहुत छोटी है। 2005 में इस क्षेत्र के कर्मचारियों की संख्या 5,59,100 थी।[20] हमारे देश के खनन एवं खुदाई क्षेत्र में काम करने वाले ज्यादातर लोग अनौपचारिक क्षेत्र में आते हैं जो ज्यादा श्रम सघन है, जहां मशीनीकरण का स्तर कम है और जो कम संगठित है। इन मजदूरों को अपनी मेहनत के अनुपात में दिहाड़ी नहीं मिलती। आमतौर पर उन्हें इस आधार पर मजदूरी दी जाती है कि उन्होंने कितना उत्पादन किया है। उनके पास कोई औपचारिक रोजगार अनुबंध नहीं होता इसलिए प्रायः उनके पास कोई रोजगार अधिकार भी नहीं होते। उनमें से बहुत सारे प्रवासी मजदूर होते हैं जो खानों के आस-पास ही कामचलाऊ झुग्गी-झोपड़ियों में रहते हैं। कर्नाटक के बेल्लारी जिले में पड़ने वाले मरियम्मनहल्ली गांव के लोगों ने बताया कि वहां खान मजदूरों के लिए कोई सुविधाएं नहीं हैं। वहां जो सुविधाएं मुहैया कराई जा रही हें - जैसे उनके बच्चों के लिए शिक्षा, आवास, पानी और स्वास्थ्य सुविधाएं - वे केवल तकनीकी स्तर के मजदूरों तथा विशाल खान कंपनियों के अधिकारियों को ही उपलब्ध हैं। अनौपचारिक खान मजदूरों को कुछ नहीं दिया जाता। लेकिन वे इतनी नाजुक स्थिति में हैं कि किसी यूनियन की सदस्यता लेने या शिकायत करने से भी डरते हैं क्योंकि उनकी नौकरी कभी भी छीनी जा सकती है।[21] **इस तरह, उनका रोजगार मोटे तौर पर अस्थायी होता है।**

गैरकानूनी खनन

हमारे देश में गैरकानूनी खनन बेतहाशा फैलता जा रहा है। अनुमान लगाया जाता है कि महाराष्ट्र में लगभग 25 प्रतिशत पत्थर की खदानें गैरकानूनी ढंग से चलाई जा रही हैं।[22] कुछ ऐसी ही स्थिति उन सभी दूसरे राज्यों में पाई गई जिनका हमने दौरा किया। कई इलाकों में लगभग 50 प्रतिशत खान और खदानें या तो गैरकानूनी हैं या वहां खनिज पदार्थों का गैरकानूनी ढंग से दोहन किया जा रहा है। मिसाल के तौर पर, कर्नाटक में होसपेट के पास स्थित छोटे से गांव जम्बुनाथल्ली में शोध टीम ने पाया कि 100 एकड़ से भी ज्यादा जमीन में गैरकानूनी लघु खनन कार्य चल रहे हैं। शोधकर्ताओं ने यहां तीन स्थानों का दौरा किया जहां मुख्य रूप से राज्य के दूसरे भागों से आए प्रवासी मजदूर काम कर रहे थे। लोगों ने बताया कि वहां कम से कम 40 गैरकानूनी खानें चल रही थीं लेकिन आर्थिक मंदी के कारण इनमें से कुछ खान बंद हो गई हैं।[23] पुणे के जिला खनन अधिकारी के मुताबिक वहां 412 पत्थर की खदानें हैं लेकिन अगर आप मौके पर जाकर देखें तो इससे दोगुना अवैध खानें चल रही हैं। अनधिकृत रूप से लोगों ने स्वीकार किया कि तमाम चालू खानों में से 25 से 40 प्रतिशत खानें अवैध हैं।

टेबल 1.2 में पूरे देश में चालू गैरकानूनी खानों की संख्या का अनुमान दिया गया है। ये अनुमान राज्य सरकारों द्वारा जारी किए गए हैं।

इस टेबल में स्पष्ट रूप से दिखाया गया है कि राज्य सरकारों द्वारा चिन्हित की गई गैरकानूनी खानों की संख्या कितनी बड़ी है। मिसाल के तौर पर, आंध्र प्रदेश में 2008 में 13,478 गैरकानूनी खानें चल रही थीं लेकिन इस नतीजे पर पहुंचने के बाद भी इस बारे में कोई ठोस कार्रवाई नहीं की गई है। एक भी खान या व्यक्ति के खिलाफ न तो एफआईआर दर्ज की गई और न ही किसी के खिलाफ मुकदमा दायर किया गया। दूसरे राज्यों में भी हाल के सालों में गैरकानूनी खानों की संख्या तेजी से बढ़ी है। उड़ीसा में 2006 में ऐसी 284 खानें थीं जिनकी संख्या 2008 में 1,059 तक पहुंच गई थी।

खान-बंदी

'खनन पश्चात' परिस्थितियों के बारे में बहुत कम ध्यान दिया जाता है। खानों के बंद हो जाने के बाद स्थानीय समुदायों पर किस तरह के गहरे असर पड़ते हैं, इस बात की सबसे ज्यादा उपेक्षा की जाती है। ज्यादातर खान-बंदी योजनाओं में इस बात को संबोधित नहीं किया जाता है कि खान बंद हो जाने से मजदूरों या खनन गतिविधियों पर आश्रित समुदायों के ऊपर क्या असर पड़ेगा। इन मजदूरों और समुदायों के पुनर्वास पर विरले ही ध्यान दिया जाता है। राजस्थान के जैसेलमेर जिले में कई स्थानों पर पत्थर की खदानें बंद हो चुकी है लेकिन वहां आजीविका के वैकल्पिक साधन पैदा नहीं किए गए हैं। लिहाजा, भूतपूर्व खान मजदूर अपने गांव-घर छोड़ने को विवश हो रहे हैं। वे दूसरे राज्यों में काम पाने के लिए धक्के खा रहे हैं।[24]

कर्नाटक के कोलार जिले में स्थित कोलार गोल्डफील्ड्स (केजीएफ) की स्वर्ण खनन परियोजनाओं के बंद हो जाने से एक विशाल समुदाय के पास आजीविका का कोई साधन नहीं बचा है। 2002 में जब इस कंपनी को अचानक बंद कर दिया गया तो केजीएफ की पूरी आबादी एक गहरे संकट में फंस गई थी क्योंकि उनके पास आय या आजीविका का कोई साधन नहीं था। मजदूरों ने बताया कि हालांकि उनकी तनख्वाहें बहुत ज्यादा नहीं थीं लेकिन कंपनी की तरफ से उन्हें जो बुनियादी ढांचा और निःशुल्क सेवाएं मिल रही थीं उनके सहारे वे स्वास्थ्य, शिक्षा और लोक सेवाओं की अपनी बुनियादी जरूरत पूरी कर लेते थे। जब कंपनी ही बंद हो गई तो न केवल उनको मिलने वाली तनख्वाह रुक गई बल्कि ये सारी आधारभूत सेवाएं भी समाप्त हो गईं। बंदी के बाद इस कंपनी ने मजदूरों को मिलने वाली सारी सुविधाएं वापस ले लीं। राजकीय संस्थानों ने भी उन मजदूरों का जिम्मा नहीं लिया क्योंकि मजदूर इन सेवाओं की लागत चुकाने की स्थिति में नहीं थे। मजदूरों के बच्चे कंपनी के फैसले से सबसे ज्यादा प्रभावित थे। उनकी शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा पर होने वाले खर्चे में सबसे पहले कटौती हुई। अब बच्चों को निःशुल्क शिक्षा नहीं मिल रही थी इसलिए हड़ताल के दौरान बहुत सारे मजदूर अपने बच्चों के स्कूल की फीस नहीं चुका पाए। स्कूल में बच्चे अपमानित होने लगे और उनमें से बहुत सारों को पढ़ाई छोड़कर अपने परिवार

20. श्रम एवं रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार, सेलेक्टेड स्टेटवाइज एवरेज डेली एम्प्लोयमेंट ऐण्ड नंबर ऑफ रिपोर्टिंग माइन्स इन इंडिया, 2002-2005
21. खान मजदूरों के साथ साक्षात्कार, मरियम्मानहल्ली, बेल्लारी जिला, कर्नाटक, जून 2009
22. श्री बास्तु रेगे, निदेशक, संतुलन के साथ साक्षात्कार, सितंबर 2009
23. होसपेट क्षेत्र, बेल्लारी, कर्नाटक में लिए गए साक्षात्कार, जून 2009
24. जेठवाई गांव, जिला जैसलमेर, राजस्थान के निवासियों से लिए गए साक्षात्कार, जुलाई 2009

टेबल 1.2 : भारत में गैरकानूनी खानों की संख्या, 2009

राज्य / वर्ष	राज्य सरकारों द्वारा चिन्हित की गई खानों की संख्या				राज्य सरकारों द्वारा की गई कार्रवाई			
	2006	2007	2008	2009 (जून तक) 2009	जब्त किए गए वाहन	एफआईआर	अदालत में मुकदमे	वसूल किया गया जुर्माना
आंध्र प्रदेश	5385	9216	13478	7332	844	----	----	2112.95
छत्तीसगढ़	2259	2352	1713	599	----	----	2181	309.16
गुजरात	7435	6593	5492	3720	106	114	8	7085.67
हरियाणा	504	812	1209	416	103	138	2	133.33
गोवा	313	13	159	2	322		----	15.68
गुजरात	7435	6593	5492	3720	106	114	8	7085.67
हरियाणा	504	812	1209	416	103	138	2	133.33
हिमाचल प्रदेश	478	----	503	375	----	----	464	21.04
झारखंड	631	82	225	----	5592	202	39	108.41
कर्नाटक	3027	5180	2997	692	43585	931	771	3630.13
केरल	1595	2593	2695	802	----	----	----	532.7
मध्य प्रदेश	5050	4581	3895	2542	----	05	14831	1057.98
महाराष्ट्र	4919	3868	5828	3285	15212	13	----	1129.01
उड़ीसा	284	655	1059	365	1242+ 75 चक्र	57	86	2309.36
पंजाब	218	26	50	48	----	----	----	.96
राजस्थान	2359	2265	2178	1130	368	441	59	413.49
तमिलनाडु	2140	1263	1573	98	18722	133	155	6369.96
उत्तराखंड	----	----	191		683	----	----	38.50
पश्चिम बंगाल	80	426	315	51	3680	897	167	----

स्रोत : लोकसभा, राज्यवार गैरकानूनी खानें, लिखित उत्तर, 24 नवंबर 2009, http://www.pib.nic.in/release/release.asp?relid=54493

के पालन-पोषण का जिम्मा संभालना पड़ा। उनमें से बहुत सारे रोजगार की तलाश में बंगलौर की तरफ निकल गए। यहां से हर रोज रेलगाड़ियों में भरकर 7,000-12,000 युवक-युवतियां बंगलौर जाते हैं और देर रात गए इन्हीं गाड़ियों से लौट आते हैं। हमारी अध्ययन टीम ने देखा कि इन नौजवान कामगारों की विशाल भीड़ सवेरे 6 बजे घर से निकल जाती है और रात में नौ बजे केजीएफ तक आने वाली आखिरी ट्रेन से ये लोग वापस लौट आते हैं। गौर करने की बात है कि इन दैनिक सवारियों में से आधी से ज्यादा किशोर लड़कियां थीं। जब हमने बातचीत की तो इन रेलगाड़ियों से रोज आने-जाने वाली इन लड़कियों ने माना कि वे हर रोज शारीरिक एवं यौन उत्पीड़न के खतरे में रहती हैं क्योंकि रेलगाड़ियों में भारी भीड़ रहती है। लेकिन इन लड़कियों ने इसे एक ऐसी समस्या बताया जिससे वे बचकर नहीं चल सकतीं क्योंकि उनके पास अपने परिवारों का पेट पालने के लिए और कोई साधन नहीं है। इससे भी ज्यादा बुरी बात यह थी कि बहुत सारे लड़के आपराधिक गतिविधियों में फंसने लगे हैं। वे छोटी-मोटी चोरी और दूसरे आपराधिक काम करने लगे हैं। कई युवाओं को राजनीतिक और आपराधिक गिरोह बंगलौर में हिंसक और गैरकानूनी गतिविधियों के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं। केजीएफ के लोग इस तरह की खबरों को सामने नहीं आने देते क्योंकि इससे सनसनी तो पैदा होती है लेकिन लोगों की असली समस्या हल नहीं हो सकती। लोगों ने चोरी को खुद एक बहुत बड़ी समस्या बताया। लोगों का कहना था कि लड़कों के गिरोह कंपनी के परिसर से धातु की चादरें, मशीनरी और दूसरा कबाड़ चुरा लेते हैं। (और विवरण के लिए देखें, कर्नाटक राज्य रिपोर्ट, भाग 2)।

बाल विकास के स्तर पर भारत के खनन क्षेत्रों की क्या स्थिति है?

भारत में बच्चों पर खनन गतिविधियों से पड़ने वाले प्रभावों की पड़ताल करने के लिए ये बेहतर होगा कि पूरे देश के मुख्य खनन क्षेत्रों में **बाल विकास संकेतकों** का विश्लेषण किया जाए। टेबल 1.3 में ऐसे 15 जिलों से संबंधित संकेतकों का ब्यौरा दिया गया है जहां इस अध्ययन के दौरान फील्ड रिसर्च की गई। इनके अलावा 9 दूसरे जिलों में भी इन संकेतकों का अध्ययन किया गया क्योंकि वे देश के सबसे सघन खनन क्षेत्र हैं। इनमें से ज्यादातर जिलों में बच्चों की स्थिति पर और विस्तार से चर्चा केस स्टडीज वाले हिस्से में की जाएगी जहां राज्यों पर चर्चा की गई है। लेकिन इस टेबल पर एक उड़ती नजर डालने से ही पता चल जाता है कि बहुत सारे जिलों में खनन संपदा बच्चों के लिए बेहतर विकास का रास्ता नहीं खोल पा रही है। जो जिले खनन गतिविधियों पर ज्यादा निर्भर हैं उनमें से ज्यादातर जिलों में राष्ट्रीय औसत साक्षरता दर से भी कम साक्षरता पाई गई है; 14 साल तक के 10 प्रतिशत से ज्यादा बच्चे अभी भी स्कूल नहीं जा रहे हैं और उनमें बाल मजदूरों की संख्या बहुत ज्यादा है। पांच वर्ष से कम उम्र में मृत्यु दर से संबंधित एक राष्ट्रीय अध्ययन में भी ये जिले निचले छोर के आसपास दिखाई देते हैं (देखें: दांतेवाड़ा, छत्तीसगढ़; पन्ना, मध्य प्रदेश; कोरापुट, रायगड़ा, उड़ीसा)। इसके विपरीत, **जिन जिलों में ज्यादा विविधतापूर्ण अर्थव्यवस्था है और जो खनन गतिविधियों पर कम आश्रित हैं वहां हर मामले में बच्चों के लिए विकास के परिणाम बेहतर दिखाई देते हैं,** जैसे, कड्डालोर (तमिलनाडु) एवं पुणे (महाराष्ट्र)।

खनन से कौन प्रभावित हो रहा है?

खनन क्षेत्र में प्रायः सबसे निर्धन और सबसे हाशियाई तबके के लोग दिखाई देते हैं। **ये गहरी विडंबना है कि समाज के सबसे गरीब लोग उस जमीन पर रह रहे हैं जो प्राकृतिक संसाधनों से लदी हुई है।** इसका कारण यह है कि हमारे देश में ज्यादातर खनन कार्य आदिवासी इलाकों में चल रहे हैं। **गौरतलब है कि जब आदिवासी परिवारों को उनकी जमीन से विस्थापित कर दिया जाता है तो पांचवीं अनुसूची के अंतर्गत आने वाले आदिवासी बच्चे अपनी जमीन और जंगलों पर अपना संवैधानिक अधिकार भी खो बैठते हैं।**

1997 में पारित किया गया समता फैसला अपनी जमीन पर आदिवासियों के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए जारी किया गया था। लेकिन इस फैसले के आने के बाद भी उनके अधिकारों का खुलेआम हनन हो रहा है और इस बीच एक करोड़ से ज्यादा आदिवासी अपनी जमीन गंवा चुके हैं। पूरे देश में 77 जिले या जिलों के हिस्सों को पांचवीं अनुसूची क्षेत्रों के रूप में चिन्हित किया जा चुका है।[25] पांचवीं अनुसूची में 10 राज्यों के आदिवासी इलाके आते हैं और इसमें प्रावधान किया गया है कि निजी कंपनियों को इन इलाकों में खनन पट्टे जारी नहीं किए जा सकते। इस संवैधानिक सुरक्षा प्रावधान का खुलेआम उल्लंघन हो रहा है। इसके लिए अनुसूचित इलाकों की जमीन को पहले ऐसे व्यक्तियों के नाम पर बेनामी हस्तांतरित कर दिया जाता है जो अनुसूचित जनजाति के नहीं हैं। सरकार ने सत्तर के दशक में पहले तो जमीन को सार्वजनिक क्षेत्र खान कंपनियों के सुपुर्द किया था और नब्बे के दशक में यह जमीन या तो संयुक्त उद्यमों के रूप में या निजी संयुक्त उद्यमों के रूप में या निजी कंपनी के नाम पर निजी एवं बहुराष्ट्रीय खनन कंपनियों को दी जाने लगी। (रियो टिंटो एवं उड़ीसा खनिज विकास निगम के बीच हुए संयुक्त उद्यम में सरकार के पास आधे से अधिक स्वामित्व था जबकि उत्कल ऐल्युमीना लिमिटेड को काशीपुर, उड़ीसा में निजी संयुक्त उद्यम के रूप में जमीन दी गई। इसी तरह उड़ीसा के लांजीगढ़ में वेदांता और स्टरलाइट को एक निजी कंपनी के रूप में खनन का अधिकार दिया गया)। निजी खान कंपनियों के लिए ज्यादा से ज्यादा जमीन मुहैया करा दिए जाने के कारण आदिवासी समुदाय जबरन विस्थापन का शिकार हो रहे हैं।

रूढ़िवादी आकलनों से भी पता चलता है कि पिछले पचास साल के दौरान लगभग **2.013 करोड़ लोग खान एवं बांध जैसी विशाल परियोजनाओं के कारण विस्थापित हो चुके हैं। इनमें से कम से कम 40 प्रतिशत लोग देशी जनजातीय समूहों के लोग रहे हैं।** इन लोगों में से केवल पांचवां हिस्सा ऐसे लोगों का है जिनको पुनर्वास

समता फैसला

भारतीय संविधान की पांचवीं अनुसूची में अनुसूचित क्षेत्रों के शासन व नियंत्रण तथा इन क्षेत्रों में रहने वाली अनुसूचित जनजातियों के शासन की व्यवस्था की गई है। इस अनुसूची में भारत के 10 राज्यों के आदिवासी इलाके आते हैं : आंध्र प्रदेश, झारखंड, गुजरात, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और सिक्किम। मूल रूप से इस अनुसूची को आदिवासियों को सुरक्षा प्रदान करने और अनुसूचित क्षेत्रों की जमीन को गैर-आदिवासियों के हाथों में जाने से बचाने के लिए तैयार किया गया था। जब आंध्र प्रदेश में विशाखापत्तनम जिले में अनुसूचित क्षेत्र की जमीन को बिरला पेरीक्लेज और 17 अन्य खनन कंपनियों को हस्तांतरित कर दिया गया था तो पांचवीं अनुसूची की इस अवहेलना के खिलाफ समता नामक गैर-सरकारी संगठन ने राज्य सरकार के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में एक मुकदमा दायर किया था और ये दलील दी थी कि आदिवासियों की जमीन को निजी खान कंपनियों को पट्टे पर देना गैरकानूनी है। इस मुकदमे के फलस्वरूप जुलाई 1997 में ऐतिहासिक समता फैसला आया जिसमें अनुसूचित क्षेत्रों में निजी खनन कंपनियों को जारी किए गए तमाम खान पट्टों को निरस्त और निष्प्रभावी घोषित कर दिया और भविष्य में भी इन इलाकों की जमीन को गैर-आदिवासियों के नाम पर हस्तांतरित करने या पट्टे पर देने पर पाबंदी लगा दी।

25. समता, फिफ्थ शेड्यूल एरियाज, http://www.mmpindia.org/Fifth_Schedule.htm, 11 दिसंबर 2009 को अपलोड किया गया।

26. शांति सवैयां, फोर्सिबल डिस्प्लेसमेंट ऐण्ड लैंड ऐलिएनेशन इज अनजस्ट : मोस्ट ऑफ दि फोर्सिबली डिस्पलेस्ड इन झारखंड आर आदिवासीज, तृतीय अंतर्राष्ट्रीय एवं महिला खनन सम्मेलन, 2004 में प्रस्तुत किया गया पर्चा।

टेबल 1.3 खनन बिलों में मुख्य संकेतक

जिला/राज्य	बच्चों की आबादी* (0-14 वर्ष)	कुल आबादी में अजा प्रतिशत*	कुल आबादी में अजजा प्रतिशत*	साक्षरता दर*	स्कूल न जाने वाले 6-14 साल के बच्चों का प्रतिशत#	बाल मजदूरों की संख्या (0-14 वर्ष)*	एनसीएलपी जिला+	पांच साल से नीच मृत्यु दर (593 जिलों में रैंकिंग)^	पिछड़ा जिला~
आदिलाबाद, आंध्र प्रदेश	902,720	18.54	16.74	52.68	8.1	48,974	हाँ	122	हाँ
बस्तर, छत्तीसगढ़	496,762	2.96	66.31	43.91	6.0	49,289	नहीं	496	हाँ
दांतेवाड़ा, छत्तीसगढ़	283,002	3.36	78.52	30.17	N/A	30,121	हाँ	578	हाँ
रायगढ़, छत्तीसगढ़	430,372	14.20	35.58	70.17	3.2	14,599	हाँ	443	हाँ
सरगुजा, छत्तीसगढ़	763,783	4.81	54.60	54.79	7.3	55,788	हाँ	393	हाँ
हजारीबाग, झारखंड	937,835	15.02	11.78	57.74	1.5	26,079	हाँ	193	हाँ
पूर्वी सिंहभूम, झारखंड	644,316	4.75	27.85	68.79	4.6	14,781	नहीं	189	हाँ
पश्चिमी सिंहभूम, झारखंड	811,610	4.88	53.36	50.17	N/A	45,663	हाँ	362	हाँ
बेल्लारी, कर्नाटक	749,227	18.46	17.99	57.40	14.1	66,897	हाँ	380	नहीं
गुलबर्गा, कर्नाटक	1,240,869	22.92	4.92	50.01	13.6	98,912	हाँ	224	हाँ
कोलार, कर्नाटक	803,954	26.49	8.11	62.84	0.7	44,354	नहीं	117	नहीं
पन्ना, मध्य प्रदेश	349,322	20.00	15.39	61.36	1.5	13,113	नहीं	587	हाँ
चंद्रपुर, महाराष्ट्र	646,241	14.34	18.12	73.17	1.6	10,259	नहीं	311	हाँ
नासिक, महाराष्ट्र	1,737,036	8.62	50.19	64.86	1.9	55,927	हाँ	87	नहीं
पुणे, महाराष्ट्र	3,769,128	10.53	3.62	80.45	0.9	34,768	हाँ	4	नहीं
यवतमाल, महाराष्ट्र	832,599	10.28	19.26	73.62	3.7	20,732	हाँ	220	हाँ
वेस्ट खासी हिस्ल, मेघालय	140,566	0.01	98.02	65.15	0.0	6,882	नहीं	419	नहीं
क्योंझर, उड़ीसा	548,357	11.62	44.50	59.24	7.7	13,171	नहीं	455	हाँ
कोरापुट, उड़ीसा	423,358	13.04	49.62	35.72	17.0	23,903	हाँ	540	हाँ
रायगड़ा, उड़ीसा	303,760	13.92	55.76	36.16	17.7	16,893	हाँ	565	हाँ
सुंदरगढ़, उड़ीसा	611,228	8.62	50.19	64.86	4.8	19,537	नहीं	372	हाँ
बाड़मेर, राजस्थान	847,335	15.73	6.04	58.99	11.4	58,320	हाँ	407	नहीं
जैसलमेर, राजस्थान	216,264	14.58	5.48	50.97	15.0	12,869	नहीं	332	नहीं
जोधपुर, राजस्थान	1,170,568	15.81	2.76	56.67	12.1	51,206	हाँ	249	नहीं
कड्डालोर, तमिलनाडु	655,105	27.76	0.52	71.01	0.8	11,961	नहीं	104	हाँ
सोनभद्र, उत्तर प्रदेश	618,672	41.92	0.03	49.22	6.5	16,418	हाँ	460	हाँ
भारत	363,610,812	16.2	8.2	61	-	12,666,377	-	-	-

स्रोत : * जनगणना 2001; # प्रथम का एएसईआर 2008 सर्वेक्षण; + http://labour.nic.in/cwl/ChildLabour.htm;
^ जनसंख्या स्थिरता कोष; ~ योजना आयोग

दिया गया है।[26] उड़ीसा में वेदांता परियोजना से प्रभावित इलाके की आबादी में लगभग 47.9 प्रतिशत लोग अनुसूचित जनजातियों से हैं।[27]

कोयले को सबसे प्रदूषक खनन उद्योगों में माना जाता है और इससे वायुमंडलीय परिवर्तन पर गहरे असर पड़ रहे हैं। इसके बावजूद आने वाले एक दशक के दौरान कोयला खनन विस्तार के क्षेत्र में भारत का एजेंडा देश के बच्चों की एक विशाल आबादी, खासतौर से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति बच्चों की एक विशाल संख्या को गहरे तौर पर प्रभावित करने वाला है। भारत सरकार का इरादा है कि आने वाले एक दशक के दौरान देश की लगभग 70 प्रतिशत ऊर्जा संबंधी आवश्यकता कोयला आधारित बिजली के जरिए पूरी की जाएगी। इससे मध्य भारत में कोयला खनन क्षेत्रों में रहने वाले बच्चों और समुदायों पर बहुत गहरे असर पड़ने वाले हैं। छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और आंध्र प्रदेश के सबसे पिछड़े इलाके इस श्रेणी में आते हैं और मेघालय जैसे उत्तर-पूर्वी राज्य के कुछ हिस्से भी इस समस्या के शिकार होने वाले हैं।

आदिवासी बच्चों की खास स्थिति

आंकड़ों को देखकर पता चलता है कि सामान्य परिस्थितियों में भी भारत में आदिवासी बच्चे अभी शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाओं तक पहुंच हासिल नहीं कर पा रहे हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अनुसार 9.54 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं।[28] शिक्षा व्यवस्था के भीतर लगातार बेदखली और पक्षपात के चलते **दूसरे सामाजिक समूहों की तुलना में अनुसूचति जनजाति बच्चों की ड्रॉप-आउट दर सबसे ज्यादा बनी हुई है।** 2003-04 में 70 प्रतिशत से ज्यादा अनुसूचित जनजाति बच्चे कक्षा 1 से 8 के बीच पढ़ाई छोड़ चुके थे।[29]

राष्ट्रीय औसत के मुकाबले अनुसूचित जनजाति आबादी में बच्चों के स्वास्थ्य संबंधी ज्यादातर संकेतकों की स्थिति बहुत खराब है। 2007 में प्रकाशित सबसे हालिया राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण से पता चलता है कि **जनजातीय समुदायों में शिशु एवं बाल मृत्यु दर सबसे ज्यादा है।** आदिवासी बच्चों के टीकाकरण की संभावना भी प्रायः काफी कम होती है।[30] विशेष भोजन अधिकार संवीक्षक (स्पेशल रैपर्टियर ऑन दि राइट टू फूड) ज्याँ ज़ीगलर ने अगस्त 2005 में अपने भारत मिशन पर आधारित रिपोर्ट में लिखा था कि **भुखमरी के शिकार लोगों में सबसे बड़ी संख्या अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति समुदायों के बच्चों और महिलाएं की रही है। उनकी मौत मुख्य रूप से भोजन आधारित योजनाओं में भेदभाव का परिणाम है।** उनकी रिपोर्ट के मुताबिक, इसका कारण यह था कि भोजन एवं उत्पादक संसाधनों तक पहुंच के मामले में पक्षपात किया जाता है, इन लोगों को अकसर जमीनों से बेदखल कर दिया जाता है और पक्षपात व 'छुआछूत' को निषिद्ध घोषित करने वाले कानूनों के बावजूद भोजन आधारित योजनाओं के समूचित क्रियान्वयन का अभाव रहा है।[31] क्योंकि आदिवासी बच्चे अभी भी भोजन, शिक्षा और स्वास्थ्य तक पहुंच के मामले में बहुत भारी चुनौतियों का सामना कर रहे हैं इसलिए खनन परियोजनाओं के कारण विस्थापन से उनकी दुर्बलता और बढ़ जाती है और उनकी उत्तरजीविता और विकास पहले से भी ज्यादा नाजुक स्थिति में पहुंच जाते हैं। विस्थापन से बच्चों पर गहरे मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पड़ते हैं जिन्हें अपने लालन-पालन में एक न्यूनतम सुरक्षा और सुविधा की आवश्यकता होती है।

खान परियोजनाओं के विषय में आदिवासी समुदायों के विस्थापन से संबंधित एक आधारभूत चिंता **बच्चों के लिए संवैधानिक सुरक्षाओं के नष्ट हो जाने** के रूप में दिखाई देती है। पुनर्वास नीति और आदिवासी नीति पहले जमीन के बदले जमीन के सिद्धांत पर आधारित थी, लेकिन अब ऐसा नहीं है। अब ये प्रावधान कर दिया गया है कि अगर विस्थापितों को जमीन देना संभव नहीं है तो उन्हें केवल नकद मुआवजा दे दिया जाए। पुनर्वास नीति में ये भी कहा गया है कि अगर प्रभावित होने वाले परिवारों की संख्या 250 से कम है तो ऐसे अनुसूचित क्षेत्रों में कोई पुनर्वास नहीं किया जाएगा। यह व्यवस्था आदिवासी बच्चों की अगली पीढ़ी को पांचवीं अनुसूची के अंतर्गत भूमि हस्तांतरण नियमों की सुरक्षा से एक झटके में वंचित कर देती है क्योंकि उनके परिवार पहले ही खनन परियोजनाओं

राजस्थान स्थित जोधपुर के खनन क्षेत्रों में बच्चों की स्थिति गौरतलब है। भाट बस्ती के निवासी पहले घुमंतू किस्म के लोग थे जो अपने मवेशियों के साथ यहां से वहां गांवों में घूमते रहते थे। जैसे-जैसे मवेशियों को चराने के लिए जमीन सिमटती गई और शहरीकरण व औद्योगिकीकरण बढ़ता गया, उन्हें तकरीबन 20 साल पहले किसी न किसी जगह पर बसने का फैसला लेना पड़ा। अब इनमें से सभी वयस्क और बहुत सारे बच्चे स्थानीय पत्थर खदानों में दिहाड़ी मजदूर हैं। गांव के 200 से ज्यादा बच्चों में से एक भी बच्चा स्कूल नहीं गया है। सारे पूरी तरह निरक्षर हैं। वे पत्थर के बने कच्चे मकानों में रहते हैं जिन पर काली तिरपाल लिपटी हुई है। गांव में पानी, बिजली या सफाई की कोई व्यवस्था नहीं है। बच्चों को पोलियो के अलावा कोई टीका नहीं लगा था और सभी कुपोषण के शिकार थे। शोध टीम ने गंभीर कुपोषण का शिकार एक ऐसा बच्चा भी देखा जिसकी उम्र दो साल बताई जा रही थी लेकिन वह 9 महीने से ज्यादा बड़ा नहीं लगता था।

27. टाटा एआईजी रिस्क मैनेजमेंट सर्विसेज लिमिटेड, रैपिड एनवायर्नमेंटल इम्पैक्ट असेसमेंट रिपोर्ट फॉर बॉक्साइट माइन प्रॉपोज्ड बाई स्टरलाइट इंडस्ट्रीज नियर लांझीगढ़, उड़ीसा, अगस्त 2002, सारांश का पृष्ठ 7
28. अनुसूचित जनजाति बच्चों और शिक्षा की पूरी तस्वीर जानने के लिए देखें स्टेटस ऑफ चिल्ड्रेन इन इंडिया : 2008, हक : सेंटर फॉर चाइल्ड राइट्स।
29. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, चेप्टर ऑन ऐलीमेंट्री एजुकेशन (एसएसए ऐण्ड गर्ल्स एजुकेशन) फॉर दि 11थ प्लान वर्किंग ग्रुप रिपोर्ट, 2007, पृष्ठ 14
30. अनुसूचित जनजाति बच्चों और स्वास्थ्य की पूरी तस्वीर जानने के लिए देखें स्टेटस ऑफ चिल्ड्रेन इन इंडिया : 2008, हक : सेंटर फॉर चाइल्ड राइट्स।
31. पैराडॉक्स ऑफ हंगर अमिड्स्ट प्लेंटी, विशेष भोजन अधिकार संवीक्षक ज्यां ज़ीगलर की रिपोर्ट, कॉम्बैट लॉ वाल्यूम 5, अंक 3, जून-जुलाई 2006

के कारण अपनी जमीन गंवा चुके हैं। क्योंकि ये परिवार या तो मैदानी इलाकों की तरफ पलायन कर जाते हैं या अनुसूचित क्षेत्रों में ही रहते हुए भूमिहीन मजदूर बनकर रह जाते हैं इसलिए उनके पास पांचवीं अनुसूची के तहत मिलने वाली भूस्वामित्व संबंधी सुविधाएं खत्म हो जाती हैं। **यह किसी भी आदिवासी बच्चे के संवैधानिक अधिकारों का हनन है।**[32]

विस्थापन

खनन क्षेत्रों में भी मनुष्य रहते हैं। अगर खुदाई के लिए किसी जमीन को कब्जे में लेते हैं तो आप उस पर रहने वालों को विस्थापित कर देते हैं। उनकी जमीन खनन कार्यों या संयंत्र व कारखाने लगाने के लिए अधिग्रहित कर ली जाती है। इस जबरिया बेदखली से पूरे के पूरे समुदाय उखड़ जाते हैं। बच्चों को अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ती है, उनकी स्वास्थ्य सुविधाएं खत्म हो जाती हैं और वे अनजानी जगहों पर जा पहुंचते हैं। अकसर ऐसी स्थितियों में सरकार की तरफ से पुनर्वास के लिए कोई खास कोशिशें नहीं की जातीं। इससे विस्थापित बच्चों पर बहुत लंबे असर पड़ते हैं।

पूरी दुनिया में खनन गतिविधियों के कारण जनजातीय (या देशी) आबादियां विस्थापित होती जा रही हैं। देशी समुदायों में कनाडा से लेकर फिलीपींस और उगांडा से लेकर पापुआ न्यू गिनी व संयुक्त राज्य अमेरिका - जहां पहले **गोल्ड रश** के लिए और बाद में कोयले व यूरेनियम जैसे दूसरे खनिज पदार्थों के लिए नेटिव इंडियंस[33] का कत्लेआम किया गया था - तक असंख्य देशों में खनन विरोधी संघर्ष चल रहे हैं। खनिज संसाधन अकसर ऐसे स्थानों पर पाए गए हैं जहां देशी आबादी निवास करती है। फलस्वरूप जब खनन गतिविधियां शुरू होती हैं तो इन समुदायों को उन पहाड़ियों और जंगलों से विस्थापित कर दिया जाता है जहां वे सदियों से रहते आ रहे थे। इसके बाद न केवल वे अपने घर और जमीन पर नियंत्रण खो देते हैं बल्कि उनकी आजीविका के परंपरागत साधन भी समाप्त हो जाते हैं।[34] ज्यादातर स्थानों पर विस्थापितों को दिया गया मुआवजा बेहद नाकाफी रहा है और आदिवासी समुदाय दिनोंदिन गरीबी की गहरी गर्त में जा रहे हैं। न्यूनतम स्तर पर जिंदा रहने की उनकी क्षमता भी प्रायः नष्ट कर दी जाती है। संपन्नता के छोटे-छोटे आदिवासी प्रतीकों को किसी महत्व का नहीं माना जाता है। इस तरह खानों और कारखानों ने आत्मनिर्भर, स्वाभिमानी आदिवासी परिवारों को अस्त-व्यस्त पुनर्वास बस्तियों में शरणार्थियों की स्थिति में धकेल दिया है और बहुतों को पूरी तरह बेघर बना दिया गया है।[35]

राष्ट्रीय खान नीति, 2008 में कहा गया है कि 'खनन कार्यों में अकसर व्यक्तियों के स्वामित्व वाली जमीन का अधिग्रहण किया जाता है जिनमें कमजोर तबकों के लोगों की जमीन भी शामिल होती है।'[36] इस मान्यता से एक समुचित राहत एवं पुनर्वास (आर ऐण्ड आर) पैकेज की जरूरत स्पष्ट हो जाती है। इस नीति में यह भी कहा गया है कि 'अंतर्राष्ट्रीय श्रेष्ठ व्यवहार के सिद्धांतों पर आधारित सभी संबंधित पक्षों के हितों की रक्षा के मॉडल विकसित करके स्थानीय एवं देशी (जनजातीय) आबादी के हितों को विशेष सुरक्षा दी जाएगी।' लेकिन आर ऐण्ड आर नीति के मामले में कई समस्याएं हैं। जैसे, परियोजना की लागतों और नुकसानों को अकसर कम करके आंका जाता है, आर ऐण्ड आर नीति के लिए पैसे की पूरी व्यवस्था नहीं की जाती, प्रभावित समुदायों के साथ परामर्श पर ध्यान नहीं दिया जाता और घोषित पुनर्वास योजना को भी सही ढंग से लागू नहीं किया जाता है। ये खनन परियोजनाओं के संबंध में सरकार की कुछ गंभीर विफलताएं रही हैं। यह बात उड़ीसा में नालको के पुनर्वास शिविरों की केस स्टडी में भी दिखाई दी है।[37]

राष्ट्रीय खनिज नीति, 2008 में किए गए भव्य दावों और राष्ट्रीय पुनर्वास व पुनर्स्थापन नीति के पारित हो जाने के बावजूद अगर सरकार **समुदायों की जमीन पर समुदायों के अधिकार की तुलना में खनन उद्योग के मुनाफे** को ज्यादा तरजीह देती रहेगी तो हजारों लोग इसी तरह अपनी जमीन गंवाते रहेंगे और भयानक दरिद्रता का शिकार बनते रहेंगे। उड़ीसा में डोंगरिया कोंढ कबीले द्वारा वेदांता नामक ब्रिटिश खनन कंपनी के कारण हो रहे विस्थापन के खिलाफ चलाया गया संघर्ष इस बात का एक ताजा उदाहरण है। ये समूह इस इलाके में न जाने कितनी पीढ़ियों से रहते आ रहे हैं और न्यामगिरी पहाड़ी को बहुत पवित्र स्थान मानते हैं। वेदांता ने इसी पहाड़ी

> राजेश (परिवर्तित नाम) 15 साल का है और वह जालीगुड़ा गांव का रहने वाला है। वह दमनजोड़ी के डुमरीपुट में सड़क किनारे बने ढाबे में काम करता है। उसके परिवार की जमीन नालको परियोजना के कारण छिन चुकी है। इस घटना के बाद राजेश के पिता को शराब की लत लग गई क्योंकि न केवल उनकी जमीन छिन गई थी बल्कि उन्हें कंपनी में नौकरी भी नहीं मिली। इस अवसाद से उन्हें शराब की लत लग गई। धीरे-धीरे उन्होंने मुआवजे में मिला सारा पैसा शराब पर उड़ा दिया और परिवार सड़क पर आ गया। राजेश को पढ़ाई छोड़नी पड़ी और वह परिवार का पेट पालने के लिए काम की तलाश में दमनजोड़ी कस्बे में आ गया। वह ढाबे में काम करता है और लगभग 1200 रुपये माहवार कमाता है। जिसमें से 1000 रुपये वह घर भेज देता है। वह कहता है, "होटल का काम मुश्किल है। आधी रात से पहले आराम करने का मौका नहीं मिलता।"
>
> स्रोतः दमनजोड़ी, उड़ीसा में लिया गया साक्षात्कार, 3 फरवरी 2010

32. समता, अ स्टडी ऑन दि स्टेटस ऐण्ड प्रॉबल्मज़ ऑफ ट्राइबल चिल्ड्रेन इन आंध्र प्रदेश, 2007
33. कार्लोस डी दा रोज़ा, जेम्स एस लियोन, फिलिप एम होकर, गोल्डन ड्रीम्स, प्लॉजन्ड स्ट्रीम्स, मिनरल पॉलिसी सेंटर द्वारा प्रकाशित, अगस्त 1997
34. भानुमति कल्लूरी, रवि रेड्डाप्रागदा, 2009 डिस्पलेस्ड बाई डेवलेपमेंट - कॉन्फ्रंटिंग मार्जिनाइलेशन ऐण्ड जेंडर इनजस्टिस - दि समता जजमेंट - अपहोल्डिंग दि राइट्स ऑफ आदिवासी वीमैन, सेज पब्लिकेशन।
35. विद्या दास, ह्यूमन राइट्स, इनह्यूमन रॉग्स - प्लाइट ऑफ ट्राइबल्स इन उड़ीसा, इकॉनॉमिक ऐण्ड पोलिटिकल वीकली में प्रकाशित, 14 मार्च 1998
36. भारत सरकार, नैशनल मिनरल पॉलिसी, 2008
37. देखें कोरापुट, उड़ीसा में नाल्को परियोजना प्रभावित समुदाय से संबंधित केस स्टडी रिपोर्ट

के शिखर पर एक ऐल्युमीना रिफाइनरी स्थापित कर दी है और इस काम के लिए पर्यावरण एवं वन मंत्रालय से क्लीयरेंस लिए बिना गैरकानूनी ढंग से वन भूमि पर कब्जा जमा लिया है। इस इलाके में बॉक्साइट के विशाल भंडार हैं। कंपनी का दावा है कि यह रिफाइनरी 'स्थानीय आबादी के लिए उल्लेखनीय रोजगार और आर्थिक साधन' पैदा करेगी[38] लेकिन सच्चाई यह है कि स्थानीय समुदाय अपनी जमीन गंवा चुके हैं, उनका सबसे पवित्र पूजा स्थल नष्ट हो चुका है और वे व्यावसायिक गिरोहों की धमकियों और खौफ के तले दिन काट रहे हैं। इससे बच्चों और युवाओं का जीवन भी गहरे तौर पर प्रभावित हुआ है जो राज्य की कारगुजारियों और नाकामियों के निर्दोष शिकार बन गए हैं। यही स्थिति काशीपुर के आदिवासियों की है जो खनन कंपनियों के कारण पैदा हुए तनावों के चलते दैनिक टकरावों में फंस कर रह गए हैं।[39]

न तो राष्ट्रीय खनिज नीति, 2008 में और न ही पुनर्वास व पुनर्स्थापन नीति में बच्चों का जिक्र किया गया है। यानी, ये नीतियां इस बात को स्वीकार करने के लिए भी तैयार नहीं है कि खनन कार्यों के लिए होने वाले विस्थापन से बच्चों पर किस तरह के खास प्रभाव पड़ते हैं। बच्चों के विस्थापन की वजह से उनकी सुरक्षा के लिए भी गंभीर मसले पैदा हो जाते हैं। अध्ययनों में दिखाया गया है कि जो बच्चे विस्थापित हो जाते हैं उनके सामने मानव व्यापार और अन्य प्रकार के शोषण की आशंका बढ़ जाती है।[40]

खनन क्षेत्रों में कुछ समुदाय कई बार विस्थापित हो चुके हैं लेकिन उन्हें कभी कोई मुआवजा नहीं मिला और उनके लिए वैकल्पिक आजीविका की व्यवस्था भी नहीं की गई। **विश्व बैंक ने "पुनर्स्थापन" और "पुनर्वास" के बीच फर्क किया है।** विस्थापित लोगों के सामने दरिद्रता की ऐसी आशंका होती है जो सिर्फ संपत्ति छिन जाने से कहीं ज्यादा व्यापक होती है। पुनर्वास में सिर्फ मुआवजे और नई जगह पर बसा देने का ही मामला नहीं होता। इसमें यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि लोगों के पास आय के साधन हों, आजीविका हो और उनकी सामाजिक प्रणालियों को बहाल किया जाए। यानी, अपेक्षित परिणाम यह होता है कि विस्थापित लोग और उनके बच्चे परियोजना के फलस्वरूप पहले से बेहतर स्थिति में पहुंच जाएं।[41]

भारत के खनन विस्थापितों के मामले में शायद ही कभी ऐसा हो पाया है। डोंगरिया कोंढ कबीले के लोग बताते हैं कि उड़ीसा में वेदांता परियोजना के कारण वे अपनी आत्मनिर्भरता किस तरह गंवा चुके हैं और अब जिंदा रहने के लिए भी संघर्ष कर रहे हैं। एक महिला ने बताया कि वह सात हैक्टेयर साझा जमीन पर खेती करती थी। अब ये जमीन छिन चुकी है लेकिन उसे कोई मुआवजा नहीं मिला। वह कहती है, "पहले हम जिस तरह भी जी रहे थे, उसमें हम आत्मनिर्भर थे। हम इसी तरह पीढ़ियों से चले आ रहे थे। इसी तरह न जाने और कितनी पीढ़ियों तक हम जी सकते थे। पर इन लोगों ने सब कुछ तहस-नहस कर दिया। हम पुराने ढंग से जीने के लिए संघर्ष करते रहेंगे।"[42] आदिवासियों को डर है कि खनन कार्य शुरू हो जाने पर उनकी आजीविका पूरी तरह नष्ट हो जाएगी। वे कहते हैं, "जब वे खुदाई शुरू करेंगे तो पहाड़ों को ढहा देंगे और नदियां सूख जाएंगी। हमारे जीने के सारे साधन खत्म हो जाएंगे। हम बिन पानी की मछली जैसे छटपटाते रह जाएंगे। शहरों में जीने और काम करने का हमें कोई तरीका नहीं पता। वहां तो हम खत्म हो जाएंगे।"[43]

खान कंपनियों का दावा है कि वे स्थानीय आबादी के लिए नौकरियां पैदा करती हैं और उनका जीवन स्तर सुधारती हैं। अनुभव बताते हैं कि यह दावा खोखला है। जिन इलाकों का दौरा किया गया उनमें से ज्यादातर जगह **खान कंपनी स्थानीय लोगों का नौकरी नहीं दे रही थी बल्कि नौकरी के लिए बाहर से लोगों को लाया गया था।** झारखंड की उरीमरी कोयला खनन परियोजना में हमने पाया कि कंपनी का कोई कर्मचारी स्थानीय आदिवासी आबादी में से नहीं था। स्थानीय लोग सिर्फ दिहाड़ी मजदूर हैं जो ट्रकों की लोडिंग और अनलोडिंग जैसे काम करते हैं। खान श्रमिकों में से बहुत सारे स्थानीय गांवों की महिलाएं, बच्चे और युवा हैं जो अपनी जमीन गंवा चुके हैं।[44] 95 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति आबादी वाले 14 गांव सेंट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड (सीसीएल) की परियोजना के कारण विस्थापित हुए हैं। उन्हें नकद मुआवजे के अलावा कुछ नहीं मिला। उनके लिए एक स्कूल खोला गया था जो अब ठप्प पड़ा है। चिकित्सा सुविधाएं केवल कंपनी के कर्मचारियों को मिल रही हैं। स्थानीय समुदाय के स्वास्थ्य की कोई फिक्र नहीं की गई है।[45]

तमिलनाडु के कड्डालौर जिले में नेवेली लिग्नाइट निगम परियोजना के कारण 3,316 परिवार विस्थापित हुए थे। इससे असंख्य परिवारों की आजीविका पर भारी असर पड़ा है। लोग अपनी खेतिहर जमीन गंवा चुके हैं और अब उन्हें काम भी नहीं मिल पा रहा है। जिनके पास जमीन थी उनका कहना है कि उन्हें पूरा मुआवजा नहीं मिला। 20 साल पहले जब उनको हटाया गया था तो उन्हें केवल 3,500 रुपये प्रति एकड़ मुआवजा मिला था। इन बदलावों की

38. सरवाइवल इंटरनेशनल मीडिया वक्तव्य, 20 अगस्त 2008 पर वेदांता की प्रतिक्रिया, बिजनेस ऐण्ड ह्यूमन राइट्स रिसोर्स सेंटर वेबसाइट पर प्रकाशित
39. समता, पीपुल्स स्ट्रगल अगेंस्ट उत्कल एल्युमीना प्लांट इन काशीपुर, 2002
40. देखें युनिसेफ, डिस्पलेस्ड चिल्ड्रेन http://www.unicef.org/emerg/index_displacedchildren.html 10 फरवरी 2010 को अपलोड किया गया।
41. थ्योडोर ई. डाउनिंग, अवॉइडिंग न्यू पावर्टी : माइनिंग-इंड्यूस्ड डिस्प्लेसमेंट ऐण्ड रीसेटलमेंट, अप्रैल 2002, पृष्ठ 14
42. दि गार्जियन, गैथिंग चेंबरलेन, वेदांता वर्सेज़ दि विलेजर्स : दि फाइट फॉर दि सेक्रेड माउंटेन, 12 अक्तूबर 2009
43. उपरोक्त।
44. उरी मरी कोयला खनन क्षेत्र, झारखंड में खनन प्रभावित समुदायों के साथ साक्षात्कार, सितंबर 2009

सबसे बुरी मार यहां की अनुसूचित जाति आबादी पर पड़ी है। उनके पास कोई जमीन नहीं थी इसलिए वे दूसरों के खेतों में मजदूरी करते थे। जब जमीनें छीन ली गईं तो न उनको कोई मुआवजा मिला और न ही उनके रोजगार के साधन बचे।[46]

कर्नाटक के बेल्लारी जिले में मरियम्मानहाल्ली के परिवारों की खेतिहर जमीन जा चुकी है इसलिए अब उनके पास कोई आर्थिक सुरक्षा नहीं बची है। वे खान स्थलों पर दिहाड़ी मजदूर बन कर रह गए हैं। उनमें से बहुत सारे भूतपूर्व किसानों को अब अपने बच्चे मजदूरी पर भेजने पड़ रहे हैं क्योंकि वे उनकी पढ़ाई का खर्चा नहीं उठा सकते।[47] खानों में काम करने के अलावा इन बच्चों को परिधान उद्योग जैसे दूसरे कारखानों में भी मजदूरी ढूंढनी पड़ती है। होसपेट में सक्रिय चाइल्ड राइट्स ट्रस्ट के प्रतिनिधियों ने बताया कि जिले के परिधान उद्योग में बहुत सारे बच्चे मजदूरी कर रहे हैं। यह इलाका अपनी जीन्स के लिए मशहूर रहा है।[48]

शिक्षा और स्वास्थ्य पर विस्थापन के प्रभाव

विस्थापन से बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य पर बहुत गहरा असर पड़ता है। विस्थापन के बाद परिवारों को अकसर ऐसी जगह जाकर रहना पड़ता है जहां बुनियादी ढांचा बहुत कमजोर है या जहां बुनियादी सुविधाएं भी नहीं हैं। **बहुत सारे विस्थापित बच्चों को विरले ही दोबारा पढ़ाई शुरू करने का मौका मिल पाता है।** उनके मां-बाप अपनी आजीविका खो चुके होते हैं और महज प्रवासी दिहाड़ी मजदूर बनकर रह जाते हैं इसलिए विस्थापित परिवारों के बच्चों को भी अकसर मजदूरी करनी पड़ती है ताकि परिवार को जिंदा रख सकें।[49] ज्यादातर समुदायों में लड़कियों की शिक्षा को वैसे भी बहुत कम तरजीह दी जाती है। विस्थापन के बाद उनकी हालत और खराब हो जाती है। उड़ीसा के कोरापुट और रायगड़ा जिलों में बहुत सारे परिवार खनन परियोजनाओं के कारण विस्थापित हुए हैं। यहां के बहुत सारे गांवों में कोई स्कूल नहीं है। यहां के लोग अपने बच्चों को बोर्डिंग स्कूलों में भेजने की हालत में तो कतई नहीं हैं इसलिए उनके बच्चे पढ़ाई-लिखाई छोड़ कर पूरी तरह काम पर लग गए हैं।

विस्थापन के बाद समुदायों के स्वास्थ्य में भी गिरावट देखी गई है। विस्थापित लोगों के स्वास्थ्य की स्थिति पहले ही कमजोर रहती है लेकिन नए इलाके में जाने पर तो इस तनाव और सदमे से वे नई-नई मानसिक-शारीरिक समस्याओं में फंस जाते हैं। नई जगह पर साफ पानी और स्वच्छता की सुविधाएं न मिलने से समस्या और गंभीर हो जाती है।[51] बहुत सारे विस्थापित समुदायों को साफ पानी जुटाने में भारी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। कोरापुट, उड़ीसा में नालको परियोजना के आसपास स्थित विस्थापित शिविरों के निवासियों ने बताया कि उनके सामने अब पानी का अभाव ही सबसे बड़ी चुनौती है। खनन कंपनी ने शिविरों में लगभग प्रति 10 परिवारों पर एक बोर वैल की व्यवस्था की है जबकि कंपनी के अधिकारियों को 24 घंटे पानी की आपूर्ति दी जा रही है।[52]

हर रोज नई-नई खेतिहर जमीनें खानों के लिए जारी की जा रही हैं जिससे **बहुत सारे खनन इलाकों की खाद्य सुरक्षा पर भारी असर पड़ा है।** खनिज पदार्थ ज्यादातर उपजाऊ जमीनों में ही पाए गए हैं इसलिए खनन कार्यों से यह जमीन तो बेकार हो जाती है लेकिन इस खेतिहर जमीन का कोई दूसरा विकल्प नहीं ढूंढ़ा जा सकता। कंपनियों का तर्क ये है कि खान कार्यों से नए रोजगार और आर्थिक तरक्की पैदा होती है, **लेकिन खेती और चरवाही की जमीन छिन जाने से कुल मिलाकर लोगों की भुखमरी और कुपोषण में इजाफा ही हुआ है।**

उड़ीसा के कोरापुट जिले में नालको एल्युमीनियम परियोजना के कारण 597 परिवार विस्थापित हुए थे। खनन कार्यों के लिए जो जमीन छीनी गई उसमें से ज्यादातर खेती की जमीन थी। यहां के लोग इन खेतों में धान उगाते थे और उनका जीवन खेती पर ही आश्रित था।[53] जमीन छिन जाने के बाद अब ये लोग आजीविका के लिए खेती पर निर्भर नहीं रह सकते और उनके व्यवसाय का ढर्रा बदल गया है। अब वे कंपनियों के लिए या सरकारी योजनाओं में दिहाड़ी मजदूर हैं और उन्हें पूरे वक्त रोजगार भी नहीं मिल पाता। इससे उनके आहार पर भी असर पड़ा है। पहले वे खुद सब्जियां उगाते थे लेकिन अब ऐसा नहीं कर सकते। बहुत सारे परिवारों की स्थिति ऐसी भी नहीं है कि वे बाजार से नियमित रूप से सब्जियां खरीद सकें इसलिए उनके भोजन से बहुत सारी चीजें गायब हो गई हैं।[54]

राजस्थान के बाड़मेर जिले में स्थित थुमली गांव में बहुत सारे लोगों ने बताया कि पहले वे अपनी सब्जियां उगाते थे लेकिन अब उनकी जमीनें लिग्नाइट की खानों में चली गई हैं। अब सब्जियां इन लोगों के भोजन का

45. उपरोक्त।
46. कड्डालोर जिला, तमिलनाडु में खनन प्रभावित समुदायों से लिए गए साक्षात्कार, अगस्त 2009
47. मरियम्मानहल्ली, जिला बेल्लारी, कर्नाटक में खान मजदूरों से लिए गए साक्षात्कार, जून 2009
48. चाइल्ड राइट्स ट्रस्ट, होसपेट, कर्नाटक के साथ साक्षात्कार, जून 2009
49. भानुमति कल्लूरी, रवि रेब्बाप्रागदा, 2009, डिस्पलेस्ड बाई डेवलेपमेंट - कनफ्रंटिंग मार्जिनाइलेशन ऐण्ड जेंडर इन जस्टिस - दि समता जजमेंट - अपहोल्डिंग दि राइट्स ऑफ आदिवासी वीमैन, सेज पब्लिकेशन।
50. इंटरनल डिस्प्लेसमेंट मॉनिटरिंग सेंटर, इंटरनल डिस्प्लेसमेंट इन इंडिया, नवंबर 2007, http://lib.ohchr.org/HRBodies/UPR/Documents/Session1/IN/IDMC_IND_UPR_S1_2008_InternalDisc-placementMonitoringCenter_uprsubmission.pdf; 14 अक्तूबर 2009 को अपलोड किया गया।
51. थ्योडोर ई. डाउनिंग, अवॉइडिंग न्यू पावर्टी : माइनिंग-इंड्यूस्ड डिस्प्लेसमेंट ऐण्ड रीसेटलमेंट, अप्रैल 2002, पृष्ठ 11
52. दमनजोड़ी, उड़ीसा में साक्षात्कार, जून 2009
53. जिला कोरापुट, उड़ीसा में खनन प्रभावित समुदायों के साथ साक्षात्कार, जून 2009
54. उपरोक्त।

हिस्सा नहीं हैं क्योंकि स्थानीय बाजार में सब्जियां महंगी हैं जिन्हें वे नहीं खरीद सकते।[55] इससे बच्चों के पोषण की स्थिति पर बहुत गंभीर असर पड़ा है। लोगों ने बताया कि उनके गांवों में बाल कुपोषण की स्थिति बहुत गंभीर है। भारत के लगभग 50 फीसदी बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। इस तरह दुनिया के सबसे ज्यादा कुपोषित बच्चे हमारे देश में हैं। ऐसे में बच्चों के भोजन में से सब्जी और दूसरी आवश्यक चीजों का गायब हो जाना बहुत चिंता की बात है।

उरीमरी, झारखंड में कोयला खनन के कारण विस्थापित आबादी में बाल कुपोषण का स्तर बहुत बढ़ गया है। जब हमने आंगनवाड़ी कामगार से पूछा तो पता चला कि वह जिन बच्चों को देखने जाती है उनमें से ज्यादातर कुपोषित हैं। गांव में त्वचा रोग, मलेरिया और टीबी जैसी बीमारियां भी फैल रही हैं लेकिन उनके इलाज के लिए चिकित्सा सुविधाएं नहीं हैं जिसके चलते लोग अंधविश्वासों और जादू-टोने पर बहुत निर्भर हैं।[56] नए इलाके में स्वास्थ्य सुविधाओं की अनुपलब्धता या उनका पहुंच से बाहर होना समस्या को और गंभीर बना देता है। इसके असर बच्चों पर सबसे ज्यादा पड़ते हैं जो स्वास्थ्य समस्याओं के मामले में वयस्कों से ज्यादा संवेदनशील होते हैं। उन्हें नियमित रूप से स्वास्थ्य देखभाल व चेकअप की जरूरत होती है।

कोरापुट जिले में हमने जिन गांवों का दौरा किया वहां बाल मजदूरी बहुत बड़े पैमाने पर है। 2001 की जनगणना के मुताबिक जिले में बच्चों (0-14 वर्ष) की 5.67 प्रतिशत आबादी मजदूरी करती है।[57] लेकिन प्रथम द्वारा प्रकाशित ताजा वार्षिक शिक्षा सर्वेक्षण (एनुअल सर्वे ऑफ एजुकेशन - एएसईआर) रिपोर्ट में पाया गया कि कोरापुट के 17 प्रतिशत बच्चे स्कूल नहीं जाते। इस प्रकार, यह जिला उन जिलों में से एक है जहां सबसे ज्यादा बच्चे शिक्षा से वंचित हैं।[58] नालको इलाके के आसपास बाल मजदूरी बहुत बड़े पैमाने पर है हालांकि कंपनी परिसर के भीतर कोई बाल मजदूर नहीं है। इलाके के सात गांवों में खनन विस्थापित परिवारों के साथ साक्षात्कारों से पता चला कि यहां के ढाबों, चाय की दुकानों, पान की दुकानों में और घरों में बहुत सारे बच्चे काम कर रहे हैं।[59] लोगों ने बताया कि विस्थापन के बाद स्कूल ड्रॉपआउट दर बढ़ गई है क्योंकि बच्चों को परिवार का पेट पालने के लिए मजदूरी करनी पड़ रही है। डिस्प्लेस्ड पीपुल्स यूनियन का कहना है कि अमलबाड़ी और चंपापदर विस्थापित शिविरों में 100-200 बच्चे दिहाड़ी मजदूर हैं। विस्थापित शिविर के 131 परिवारों की मुखिया विधवा औरतें हैं इसलिए इन परिवारों के ज्यादातर बच्चे खनन एवं संबंधित गतिविधियों में शारीरिक श्रम करते हैं। इनमें से बहुत सारे बच्चे होटलों, ढाबों, पान की दुकानों और अन्य छोटी-मोटी दुकानों में काम करते देखे जा सकते हैं। अनुमान लगाया जा सकता है कि परियोजना प्रभावित क्षेत्र के लगभग 500-1000 बच्चे स्थानीय इलाके में मजदूरी कर रहे हैं। लोगों ने बताया कि बहुत सारे युवा रोजी-रोटी की तलाश में चेन्नई, मुंबई और हैदराबाद तथा दूसरे शहरों में भी चले गए हैं।[60] **नालको द्वारा विस्थापित समुदाय के विस्थापन के तीन दशक बाद भी उनका पुनर्वास अधूरा है।** इस दौरान इलाके का कोई प्रभाव आकलन नहीं किया गया है और पुनर्वास प्रक्रिया की या वहां उपलब्ध कराई जा रही आधारभूत सेवाओं की समीक्षा नहीं की गई है। इस बात का तो कतई आकलन नहीं किया गया है कि इन बदलावों से बच्चों पर क्या असर पड़े हैं जबकि यहां बाल मजदूरी, स्कूल ड्रॉपआउट दर और कुपोषण बहुत ज्यादा बढ़ गया है।

जबरिया पलायन

खनन कार्यों का स्वरूप ही ऐसा होता है कि इस क्षेत्र में लगे लोगों के लिए प्रवासन एक आवश्यक रणनीति बन जाता है। **मौसमी कारक, बाजार में आने वाले उतार-चढ़ाव और खनिज पदार्थों की मांग में बदलावों के चलते खान मजदूर नियमित रूप से अपना ठिकाना बदलते रहते हैं।** गर्मियों के महीनों में देश के ज्यादातर हिस्से भारी बरसात की चपेट में आ जाते हैं इसलिए बहुत सारे खान एवं खुदाई कार्य या तो बंद कर दिए जाते हैं या वे धीमे हो जाते हैं। मजदूर प्रायः अक्तूबर-नवंबर के आसपास खानों में आते हैं और प्रवासी परिवार अगले 6-8 महीने खान स्थलों पर गुजारने के बाद ही अगले मानसून में वापस लौटते हैं।

अनौपचारिक खान स्थलों की जीवन परिस्थितियां - महाराष्ट्र की केस स्टडी

"यहां हम दस साल से रह रहे हैं क्योंकि यह जगह खदान से सबसे पास है। यहां मकान बहुत छोटे हैं (4X6 फुट)। अगर कोई घर में आना चाहता है तो वह बैठ कर ही भीतर आ सकता है। हमारे पास बिजली नहीं है और पानी खदान मालिक की तरफ से आता है। हर रोज बस्ती में एक टैंकर आता है। हम इस पानी को पीकर अकसर बीमार पड़ जाते हैं।"

स्रोत : मोशी, महाराष्ट्र में लिया गया साक्षात्कार, सितंबर 2009.

55. गांव थुंबली, जिला बाड़मेर, राजस्थान में साक्षात्कार, जुलाई 2009
56. उरी मरी कोयला खनन क्षेत्र, झारखंड में खनन प्रभावित समुदायों के साक्षात्कार, सितंबर 2009
57. भारत की जनगणना, 2001
58. प्रथम, एनुअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन, 2008
59. जिला कोरापुट, उड़ीसा में खनन प्रभावित समुदायों के साथ साक्षात्कार, जून 2009
60. उपरोक्त

हमारे देश में खनन एवं खुदाई कार्यों के लिए होने वाले प्रवासन के स्तर से संबंधित ज्यादा आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं लेकिन **उपलब्ध साक्ष्यों से पता चलता है कि प्रवासन काफी बड़े पैमाने पर है** और इसमें शामिल 14 साल से कम उम्र के बच्चों की संख्या 90 लाख के आसपास जरूर होगी।[61] ये बच्चे शिक्षा और सामाजिक नेटवर्कों से कटे होते हैं। अनुमानों से पता चलता है कि छोटी खानों में काम करने वाले प्रवासी मजदूरों की संख्या 1.2 करोड़ तक हो सकती है।[62] खानों में काम की तलाश में बिहार, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, झारखंड और अन्य राज्यों की आदिवासी पट्टी से नए प्रवासियों के नियमित जत्थे निकलते जा रहे हैं। प्रवासी मजदूर समाज के सबसे संवेदनशील तबके के लोग होते हैं। उनमें से ज्यादातर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदाय के होते हैं।

खान ठेकेदार अकसर प्रवासी मजदूरों को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि उनको नियंत्रित करना आसान होता है और उनके संगठित होने की कम संभावना रहती है। प्रवासी मजदूर पर्याप्त रूप से संगठित नहीं होते इसलिए वे मालिकों पर कोई खास दबाव नहीं डाल पाते।[63] प्रवासी मजदूरों को रखने का एक फायदा यह है कि आप पूरे के पूरे परिवार को काम पर रख सकते हैं। इस तरह कागजों में भले ही परिवार के केवल वयस्क सदस्य नौकरी पर दिखाए गए हों लेकिन वास्तव में उनके साथ बच्चे भी काम में जुटे होते हैं। रोजगार का यह स्वरूप राजस्थान से लेकर महाराष्ट्र और कर्नाटक तक देश भर की असंगठित खानों में देखा जा सकता है। महाराष्ट्र के पुणे जिले की पत्थर खदानों में काम करने वाले बच्चों से बात करने पर पता चला कि वे नेपाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा जैसे दूर-दूर के इलाकों से यहां आए हैं।[64]

ये खनन समुदाय स्थानीय आबादी के समानांतर एक अलग दुनिया में रहते हैं। उनके पास स्कूल, स्वास्थ्य केंद्र और राशन कार्ड जैसी वे सारी सेवाएं और सुविधाएं नहीं होतीं जो आसपास के गांवों के लोगों के पास होती हैं। इनके लिए शुरू की गई सरकारी सेवाएं भी इन लोगों तक नहीं पहुंच पातीं और उन्हें बिना किसी सहायता के जीना पड़ता है। बहुत सारे प्रवासी मजदूरों के पास सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) राशन कार्ड भी नहीं हैं इसलिए उन्हें बाजार से महंगे दाम पर अनाज और किरोसिन खरीदना पड़ता है। ज्यादातर लोगों के पास पहचान का कोई सुबूत नहीं होता इसलिए वे स्थानीय सेवाओं का भी लाभ नहीं उठा पाते। वे इलाके में मौजूदा शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं का भी प्रायः लाभ नहीं उठा पाते। महाराष्ट्र के कुछ स्थानों पर मजदूरों ने बताया कि हालांकि उनके पास राशन कार्ड थे लेकिन खान मालिकों ने वे कार्ड अपने पास रख लिए हैं (शायद उन्हें बंधुआ मजदूर बनाकर रखने और उन्हें भागने से रोकने के लिए)। 62 साल की एक महिला ने शोध टीम को बताया कि चार महीने पहले उसे राशन कार्ड मिल गया था लेकिन राशन की दुकान वाले ने उसे 6 महीने बाद आने को कहा है क्योंकि उसका नाम अभी भी दुकान के रिकॉर्ड में 'दर्ज' नहीं हुआ है।[65] खान श्रमिकों को अपनी बुनियादी खाद्य जरूरतों पर भारी खर्च करना पड़ता है और इसके बावजूद उनका उपभोग स्तर दैनिक आवश्यकता से बहुत कम रहता है। खान श्रमिकों के बच्चों के भोजन में महज रोटी, मिर्च और यदा-कदा एक सब्जी या दाल ही होती है। यह खाना भी उन्हें एक दिन में ज्यादा से ज्यादा दो बार ही मिल पाता है। इस तरह, ज्यादातर बच्चे कुपोषित और खून की कमी से ग्रस्त रह जाते हैं।

आवास का अधिकार

निजी सुरक्षा, प्राइवेसी, स्वास्थ्य, सुरक्षा, प्रकृति से बचाव और साझी इंसानियत के लिए आवास की आवश्यकता के फलस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय समुदाय अब पर्याप्त आवास के अधिकार को एक आधारभूत मानवाधिकार का दर्जा दे चुका है।

अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में आईसीईएससीआर के सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणापत्र के अनुच्छेद 11(1) और अनुच्छेद 25 में कहा गया है कि :

"प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे जीवन स्तर का अधिकार है जो उसके अपने और उसके परिवार की स्वास्थ्य व कुशलक्षेम के लिए भोजन, कपड़े, आवास और चिकित्सा व अनिवार्य सामाजिक सेवाओं सहित पर्याप्त हो।"

तथा,

"सभी सदस्य देश इस अधिकार को साकार करने के लिए उचित कदम उठाएंगे और मुक्त सहमति पर आधारित अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के आधारभूत महत्व को मान्यता देंगे।"

सीआरसी में भी सदस्य देशों को ये निर्देश दिया गया है कि जरूरत पड़ने पर वे सभी परिवारों और बच्चों को भौतिक सहायता, खासतौर से आवास की सुविधा उपलब्ध कराएंगे। (अनुच्छेद 27 (3))

61. कन्सॉर्शियम फॉर रिसर्च ऑन एजुकेशनल ऐक्सेस, ट्रांजिशन ऐण्ड इक्विटी, डिस्ट्रेस सीजनल माइग्रेशन ऐण्ड इट्स इम्पैक्ट ऑन चिल्ड्रेन्स एजुकेशन, मई 2008, पृष्ठ 1, 2
62. सुदर्शन राव सर्दे, क्षेत्रीय प्रतिनिधि, आईएमएफ - एसएआरओ, माइग्रेशन इन इंडिया : ट्रेड यूनियन पर्सपेस्टिव इन दि कॉन्टेक्स्ट ऑफ नियोलिबरल ग्लोबलाइजेशन, पृष्ठ 2
63. उपरोक्त, पृष्ठ 5
64. जिला पुणे, महाराष्ट्र में बाल खान मजदूरों के साथ साक्षात्कार, सितंबर 2009
65. मोशी पत्थर खनन क्षेत्र, महाराष्ट्र में साक्षात्कार, सितंबर 2009

प्रवासी मजदूर बहुत कठोर आवास परिस्थितियों में रहते हैं। उनके पास बिजली, पानी या न्यूनतम स्वच्छता सुविधाओं का भी अभाव रहता है। इस अध्ययन के दौरान खनन क्षेत्रों में सबसे दर्दनाक जीवन परिस्थितियां प्रवासी समुदायों की ही दिखाई दी जो लगभग हर जगह खान स्थलों के निकट या खान स्थलों पर ही कामचलाऊ झुग्गियों में रह रहे थे। उनको प्लास्टिक की शीट्स की छत और टेढ़-मेडे पत्थरों की दीवारों के बने घर दिए गए हैं। अकसर 8X10 फुट के मकान में 10 लोग तक रह रहे थे। कई परिवारों को तो 4X6 फुट की ही जगह मिली हुई थी।

प्रवासी मजदूरों को स्थानीय समुदायों के असंतोष और दुश्मनी का भी सामना करना पड़ता है। स्थानीय लोग इन्हें बाहर का मानते हैं इसलिए प्रायः उनके साथ मेलजोल नहीं रखना चाहते। भले ही वे सालों से किसी खान के इर्द-गिर्द रह रहे हों, उन्हें स्थानीय समुदाय का हिस्सा नहीं माना जाता है। राजस्थान के जोधपुर जिले में हमें एक ऐसे अनुसूचित जनजाति समुदाय से मिलने का मौका मिला जिसे खान के निकट रहने के लिए नई जगह जाकर बसने को विवश किया गया था। यह समुदाय लगभग 20 साल से वहां रह रहा है लेकिन अभी भी दो स्थानीय गांव उन्हें स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। ये गांव वाले चाहते हैं कि उन्हें इस जमीन से हटा दिया जाए। इन लोगों को अभी तक अपनी जमीन के पट्टे नहीं मिले हैं।[66]

देश भर में प्रवासी खान मजदूरों के बच्चे धूल और गंदगी में अटे दिखाई देते हैं। उनके लिए खान स्थल ही उनका घर, खेल का मैदान और बिस्तरा है। महाराष्ट्र में हमने जिन नौ स्थानों का दौरा किया उन सभी स्थानों पर बच्चे बीमार दिखाई देते थे। वे खाँसी, जुकाम, बहती नाक, बुखार और त्वचा संक्रमणों से पीड़ित थे। औरतों ने बताया कि दस्त, पीलिया और मलेरिया उनके बच्चों की सबसे आम बीमारियां हैं क्योंकि पानी दूषित हो चुका है और खान के गड्ढों में जमा पानी से मच्छर पैदा हो रहे हैं। स्वच्छता सुविधाएं नहीं हैं इसलिए ज्यादातर शिशु और छोटे बच्चे अपने घरों के आसपास ही शौच जा रहे थे। महिलाओं के लिए तो स्वच्छता की समस्या और भी गंभीर है। उनके लिए न तो शौच की व्यवस्था है और न नहाने की।[67]

मौसमी प्रवासियों के बच्चों के लिए शिक्षा का सवाल सरकार या विकास एजेंसियों की नजर में नहीं है। हालांकि भारत के सभी शुष्क इलाकों में विस्थापन एक बड़ी परिघटना बन चुकी है लेकिन सरकार को इसकी फिक्र नहीं है। जब मां-बाप नई जगह जाते हैं तो बच्चे भी उनके साथ होते हैं और इस तरह उन्हें पढ़ाई छोड़नी पड़ती है। मौसमी आप्रवासन चक्र और स्कूली कैलेंडर के 6-7 महीने एक-दूसरे से टकराते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जो बच्चे स्कूल में दाखिला लेते हैं वे भी जून से अक्तूबर तक ही स्कूल जा पाते हैं। इसके बाद उन्हें पढ़ाई छोड़नी ही पड़ती है।[68] सरक. ारी शैक्षिक आंकड़ों में ड्रॉपआउट के इन मामलों को प्रायः नजरअंदाज कर दिया जाता है। ये बच्चे स्कूल में सिर्फ कुछ महीनों के लिए ही दाखिला लेते हैं और उसके बाद वे मां-बाप के साथ कहीं और चले जाते हैं। धीरे-धीरे उनकी पढ़ाई में यह अवरोध उन्हें दूसरे बच्चों से काफी पीछे धकेल देता है और आखिरकार वे स्कूल को पूरी तरह छोड़कर पूर्णकालिक मजदूर बन जाते हैं।[69]

मध्य प्रदेश के पन्ना जिले में लोगों ने बताया कि प्रवासन के कारण वहां स्कूल ड्रॉपआउट दर काफी ज्यादा है। समुदाय के बहुत सारे लोग हीरों की खुदाई में लगे रहते हैं। ये काम मौसमी होता है और साल में सिर्फ 6-8 महीने तक ही चलता है। बाकी महीनों में वे काम के लिए दूसरे इलाकों में चले जाते हैं। लोगों को इस बात पर एतराज था कि उन्हें पूरे साल जिले में रोकने के लिए चलाई जा रही राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (एनआरईजीए) जैसी सरकारी योजनाओं को प्रभावी ढंग से लागू नहीं किया जा रहा जिससे काम न मिलने के चलते वे दूसरे इलाकों में पलायन कर जाते हैं।[70] एनआरईजीए योजना के तहत लोगों को साल में सिर्फ 10 या 20 दिन का काम ही मिल रहा था और जॉब कार्ड के आवंटन में भी भारी भ्रष्टाचार था।[71]

इसी तरह की समस्या महाराष्ट्र की पत्थर खदानों में भी पाई गई। 2004-05 में वहां संतुलन की पाषाण शाला (खनन क्षेत्रों का स्कूल) में 2055 बच्चे

13 साल का संतोष (बदला हुआ नाम) पुणे जिले के मोशी गांव में स्थित पत्थर की खदान में काम करता है। वह नासिक से अपने परिवार के साथ यहां आया था। अब उसे यहां काम करते हुए साल भर से ज्यादा हो गया है। वह मुंह अंधेरे काम पर लग जाता है और शाम को अंधेरा होने पर ही लौटता है। वह दिन भर पत्थर तोड़ता है और उन्हें ट्रकों में लादता है। उसके चार भाई-बहन हैं जिनमें से एक विकलांग है। उसे रोज 70-90 रुपये दिहाड़ी मिलती है जो परिवार को भुखमरी से बचाने के लिए बहुत कम है। जब उससे बात की गई तो उसने बताया, "मैं तो पढ़ना चाहता था पर अब हमारा परिवार ऐसी हालत में नहीं है कि हमें स्कूल भेज सके। अब तो बहुत देर हो गई है, मैं पढ़ाई के बारे में सोच भी नहीं सकता। अब तो बस मैं मेहनत करना चाहता हूं ताकि मैं अपनी तनख्वाह से अपने छोटे भाइयों को स्कूल भेज सकूं।"

स्रोत : पुणे, महाराष्ट्र स्थित मोशी खदान में साक्षात्कार, 16 सितंबर 2009

66. खान मजदूरों के साथ साक्षात्कार, भाट बस्ती, जोधपुर, राजस्थान, जुलाई 2009
67. खान स्थलों का दौरा, महाराष्ट्र, सितंबर 2009
68. उपरोक्त पृष्ठ 2
69. उपरोक्त पृष्ठ 34
70. खनन प्रभावित समुदायों के साथ साक्षात्कार, पन्ना, मध्य प्रदेश, अगस्त 2009
71. उपरोक्त।

दाखिल थे। उसी साल इनमें से 946 बच्चे परिवार के साथ दूसरे इलाकों में चल गए।[72] कर्नाटक के बेल्लारी जिले में भूमिहीन परिवार भी काम की तलाश में इलाके के अलग-अलग भागों में जा रहे हैं। इसके कारण बच्चों की पढ़ाई छूट रही है।[73]

चाइल्ड लाइन द्वारा गुजरात के जूनागढ़ जिले की चूना पत्थर खदानों में किए गए अध्ययन से पता चला कि स्कूल न जाने वाले जिन बच्चों से बात की गई उनमें से 78 प्रतिशत ने पढ़ाई छोड़ने के लिए प्रवासन को सबसे बड़ा कारण बताया। ज्यादातर बच्चे स्थानीय ग्रामीण स्कूल में दाखिल थे लेकिन खानों के आसपास स्थित स्कूलों में दाखिला नहीं ले पाए। आंशिक रूप से इसका कारण ये था कि उनके पास स्कूल तक आने-जाने के साधन नहीं हैं। लेकिन, इसका एक कारण यह भी था कि उचित दस्तावेजों के न होन से स्थानीय स्कूल में दाखिला नहीं मिल पाता।[74]

प्रवासन चक्र और फलस्वरूप अस्थिरता के चलते भाषायी बाधा भी प्रवासी बच्चों को शिक्षा और स्वास्थ्य से वंचित कर देती है। जब प्रवासी परिवार किसी राज्य की सीमा पार करता है तो अकसर एक अनजाने भाषा प्रदेश में पहुंच जाता है। वे उस भाषा को इतना नहीं जानते कि उसमें पढ़ाई कर सकें। फिलहाल आंध्र प्रदेश और उड़ीसा जैसे कुछ ही राज्य हैं जहां इस समस्या से निपटने के लिए द्विभाषी या बहुभाषी शिक्षा शुरू की गई है।

स्वास्थ्य पर प्रभाव

खनन प्रभावित बच्चों के जीवन में स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव भिन्न-भिन्न प्रकार से सामने आते हैं। ये बच्चे इसलिए प्रभावित होते हैं क्योंकि खानों में काम करने वाले उनके मां-बाप बीमार पड़ जाते हैं या खनन प्रभावित माहौल में मजदूरी करने के कारण वे खुद बीमार पड़ने लगते हैं।

मां-बाप की बीमारी का बोझ ढोते बच्चे

बच्चे इसलिए समस्या में रहते हैं क्योंकि वे खनिकों के बच्चे हैं। आईएलओ के मुताबिक खान कार्य खेती और निर्माण के साथ तीसरा सबसे खतरनाक व्यवसाय है।[75] लंबे समय से खनन कार्यों को मजदूरों की सेहत के लिए गंभीर समस्या माना जाता रहा है। बीसवीं शताब्दी की शुरुआत तक ब्रिटेन और अमेरिका के कोयला खनिक खानों में केनरी नामक चिड़िया को लेकर जाते थे क्योंकि यह चिड़िया मीथेन और कार्बन मोनोऑक्साइड जैसी विषैली गैसों के रिसाव को फौरन पकड़ सकती है। यह चिड़िया विषैली गैसों के प्रति मनुष्यों के ज्यादा संवेदनशील थी। वह गैस का रिसाव होने पर खनिकों से पहले बीमार पड़ जाती थी और इस तरह मजदूरों को भाग निकलने या सुरक्षात्मक श्वास उपकरणों का इस्तेमाल शुरू करने का मौका दे देती थी। हालांकि अब यह प्रचलन खत्म हो चुका है लेकिन खान मजदूरों के सामने व्यावसायिक स्वास्थ्य जोखिम कम नहीं हुए हैं। मीडिया और एनजीओ रिपोर्टों में इस आशय की बहुत सारी खबरें आ चुकी हैं कि हानिकारक धूल, गैस और धुएं आदि के संपर्क में रहने से खान श्रमिकों को श्वास रोगों का सामना करना पड़ता है जिससे बाद में टीबी, सिलिकोसिस, फेफड़ों में गांठ, एसबेस्टॉसिस और एम्फीसीमा जैसी बीमारियां हो जाती हैं।[76]

खनन कार्यों के प्रभाव काफी विविध रहते हैं। इसके अलग-अलग प्रभाव संबंधित खनिजों और उनके दोहन के स्तर से तय होते हैं। सिलिका पत्थर में काम करने वाले मजदूर उसकी धूल से सिलिकोसिस की चपेट में आ जाते हैं। यह फेफड़ों की खतरनाक बीमारी है जिसका निदान भी बहुत मुश्किल होता है। इसको अकसर गलती से टीबी मान लिया जाता है और यह लाइलाज है। इसके लक्षण भी टीबी जैसे ही होते हैं इसलिए गलत. फहमी में इसके मरीजों को अकसर टीबी का ईलाज दिया जाने लगता है जो इस बीमारी की रोकथाम नहीं कर पाता। उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले में स्थित शंकरगढ़ ब्लॉक में 25,000 खदान मजदूरों में से लगभग एक तिहाई "शंकरगढ़ वाली टीबी" से यानी सिलिकोसिस से पीड़ित हैं। इस इलाके में खान मजदूरों का औसत जीवन 40 साल के आसपास ही रहता है।[77] हरियाणा स्थित प्रसार नामक संगठन ने राज्य के खदान मजदूरों में सिलिकोसिस के बारे में व्यापक अभियान चलाया है। संगठन का अनुमान है कि उत्तरांचल स्थित लाल कुंआ नामक एक ही स्थान पर 3,000 खदान मजदूर इस "टीबी" से मर चुके हैं। हालांकि टीबी संक्रमण का राष्ट्रीय औसत जोखिम 1.5 प्रतिशत है लेकिन इस क्षेत्र में हर दूसरा व्यक्ति प्रभावित है। सर्वेक्षण से पता चलता है कि टीबी के ऐसे ज्यादातर मामले असर में सिलिकोसिस के मामले हैं।[78]

बताया जाता है कि मध्य प्रदेश के सैकड़ों प्रवासी आदिवासी मजदूर मध्य गुजरात की बिल्लौर/क्वार्ट्ज क्रशिंग फैक्टरियों में काम करते हुए सिलिको. सिस से मर चुके हैं।[79] राष्ट्रीय व्यावसायिक स्वास्थ्य संस्थान एवं गुजरात

72. संतुलन, महाराष्ट्र के साथ साक्षात्कार, सितंबर 2009
73. खान मजदूरों के साथ साक्षात्कार, बेल्लारी, कर्नाटक, जून 2009
74. चाइल्ड लाइन इंडिया फाउंडेशन, लिविंग विद स्टोन्स - चिल्ड्रेन ऑफ दि माइन्स, चिल्ड्रेन ऐट रिस्क रिपोर्ट शृंखला का हिस्सा, 2008
75. आईएलओ, ऐलिमिनेटिंग चाइल्ड लेबर इन माइनिंग ऐण्ड क्वेरिंग : बैकग्राउंड डॉक्यूमेंट, 12 जून 2005
76. एमएलपीसी, ब्रोकन हार्ड http://www.indianet.nl/steengroeven/factsheet/Brokenhard.pdf, 11 फरवरी 2010 को अपलोड किया गया।
77. फ्रंटलाइन, ऐनी ज़ैदी, साइलेंट विक्टिम्स ऑफ सिलिकोसिस, 4 नवंबर 2005, http://www.flonnet.com/fl2222/stories/20051104002009200.htm 19 अक्तूबर 2009 को अपलोड किया गया।
78. उपरोक्त।
79. इकॉनॉमिक ऐण्ड पोलिटिकल वीकली, अमिता बाविस्कर, कांट्रेक्ट किलिंग्स : सिलिकोसिस अमंग आदिवासी माइग्रेंट वर्कर्स, 21 जून 2008

प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अध्ययनों से पता चला है कि इन फैक्ट्रियों में हवा की गुणवत्ता मजदूरों के लिए सुरक्षित मानकों से बहुत ज्यादा खराब है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा क्वार्ट्ज क्रशिंग फैक्ट्रियों के लिए सख्त प्रावधान किए गए हैं लेकिन निगरानी की कोई व्यवस्था नहीं है और दोषी फैक्टरी मालिकों के खिलाफ दंड का भी कोई प्रावधान नहीं है।[80] मध्य प्रदेश के झाबुआ जिले में 21 गांवों का सर्वेक्षण करने पर पता चला कि 281 परिवारों के 489 लोग सिलिका धूल की चपेट में आ चुके हैं। इनमें से 158 की मौत हो चुकी है और 266 सिलिकोसिस से बीमार हैं। इसका मतलब यह है कि 86 प्रतिशत लोग या तो मर चुके हैं या स्थायी रूप से बीमार हो चुके हैं। 94 प्रतिशत मौतें सिलिका धूल के संपर्क में आने से तीन साल के भीतर हो चुकी थीं।[81]

खानों में काम करने से औसत उम्र घट जाती है। ज्यादातर खान मजदूरों का जीवन महज 45 से 55 साल के बीच ही खत्म हो जाता है। बहुत कम उम्र से इस उद्योग में काम शुरू करने वाले बच्चे 30 या 35 की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते थक जाते हैं।[82] इतनी कम उम्र में असंख्य स्वास्थ्य समस्याओं की चपेट में आ जाने से उनकी आयु और जीवन की गुणवत्ता, दोनों बुरी तरह गिर जाती हैं। वयस्कों में बढ़ती बीमारियों से उनके बच्चों को भी परिवार का आर्थिक बोझ ढोना पड़ता है। राजस्थान के जिन मजदूरों से बात की गई उनमें से ज्यादातर ने बताया कि 40 की उम्र के बाद टीबी और सिलिकोसिस के कारण उन्हें अकसर काम से छुट्टी लेनी पड़ती है। इन इलाकों में खान मजदूरों की औसत उम्र राष्ट्रीय औसत से कम बताई गई है।[83]

सभी जगह प्रभावित समुदायों ने बताया कि किस तरह उनके बच्चों को स्कूल छोड़ना पड़ा क्योंकि उनके मां-बाप टीबी और सिलिकोसिस जैसी बीमारियों की चपेट में आ गए थे और अब बच्चों को मजदूरी करनी पड़ रही है। मध्य प्रदेश के पन्ना जिले के गांव में एक आदमी ने बताया कि उसके दो बेटे (जो 18 साल से कम उम्र के हैं) पत्थर और हीरे की खदानों में काम करते हैं क्योंकि उसे मलेरिया और टीबी हो गया था और अब वह काम पर नहीं जा सकता। परिवार को जिंदा रखने और दवाइयों का इंतजाम करने के लिए इन लड़कों को ही मजदूरी करनी पड़ती है।[84]

खान स्थलों पर रहने वाले बच्चे अपने मां-बाप के परिवारों की खराब सामाजिक-आर्थिक स्थिति और आसपास के कठोर वातावरण, दोनों के शिकार बनते हैं। एक ताजा अध्ययन में पता चला है कि मोशी, महाराष्ट्र की एक पत्थर खदान में काम करने वाले 50 प्रतिशत से ज्यादा बच्चों के फेफड़ों की क्षमता में गिरावट आ चुकी है और उनमें दमे के सारे लक्षण दिखाई देने लगे हैं। यह अध्ययन एक स्थानीय बाल चिकित्सक ने सत्तर बच्चों पर ढाई साल में पूरा किया था। डॉक्टर ने पाया कि जो बच्चे पांच साल से ज्यादा समय तक धूल के संपर्क में रह चुके थे वे सबसे ज्यादा प्रभावित थे और इनमें से ज्यादातर बच्चे जन्म से ही धूल भरे वातावरण में जी रहे थे।[85]

प्राइवेट डाक्टर खान मजदूरों से फायदा उठा रहे हैं

वघौली, महाराष्ट्र के पत्थर खदान इलाके में 60 से ज्यादा निजी डॉक्टरों के क्लीनिक हैं। अकसर वे रोगियों को गुमराह करने के लिए बताते हैं कि उन्हें ग्लूकोज़ की शीशी या फलां इंजेक्शन की जरूरत है ताकि इन लोगों से पैसा ऐंठ सकें। दिहाड़ी मजदूर किसी भी सूरत में काम नहीं छोड़ सकते इसलिए अगले दिन काम के वास्ते तैयार रहने के लिए वे इन डॉक्टरों को पैसा दे देते हैं। ये लोग इन डॉक्टरों पर इसीलिए भरोसा करते हैं क्योंकि उनके सहारे ही उन्हें अगले दिन काम पर जाने की उम्मीद बनी रहती है। ज्यादातर डॉक्टर उनकी असली बीमारियों का ईलाज नहीं करते।

स्रोत : संतुलन के डॉक्टर से बातचीत, महाराष्ट्र, सितंबर 2009.

वघौली पत्थर खदानों में कार्यरत संतुलन के डॉक्टर ने बताया कि इस इलाके के 40 प्रतिशत से ज्यादा बच्चे खून की कमी से पीड़ित हैं क्योंकि गरीबी के कारण उनके परिवार उन्हें पर्याप्त पोषक आहार नहीं दे पाते।[86] वह हर महीने फेफड़ों के रोगों और श्वास रोगों से ग्रस्त 200 खान मजदूरों का ईलाज करते हैं। ये बीमारियां पत्थर खदान मजदूरों में बहुत आम हैं। फेफड़ों का रोग शुरू में ब्रोंकाइटिस यानी सांस की नली में सूजन से शुरू होता है जो आगे चलकर दमे का और अंततः भीषण दमे का रूप ले लेता है। ये बीमारियां धूल में सांस लेने से होती हैं।[87]

राजस्थान में एनजीओ ग्रेविस द्वारा किए गए एक अध्ययन में पता चला कि वहां दो मुख्य कारक हैं जो बाल खनिकों के स्वास्थ्य को बुरी तरह प्रभावित करते हैं - कुपोषण और बेहद खतरनाक परिस्थितियों में मजदूरी करना।[88] उदयपुर जिले के मोरिल्ला गांव के सालंबर प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में एमएलपीसी द्वारा किए गए साक्षात्कार से भी यही बात सामने आई।[89]

80. इकॉनॉमिक ऐण्ड पोलिटिकल वीकली, अमिता बाविस्कर, कांट्रेक्ट किलिंग्स : सिलिकोसिस अमंग आदिवासी माइग्रेंट वर्कर्स, 21 जून 2008
81. उपरोक्त।
82. ग्रेविस, टेल्स ऑफ वो : अ रिपोर्ट ऑन चाइल्ड लेबर इन दि माइन्स ऑफ जोधपुर ऐण्ड मकराना, मार्च 2004, पृष्ठ 12
83. खनन प्रभावित समुदायों के साथ साक्षात्कार, राजस्थान, जुलाई 2009
84. भूतपूर्व खान मजदूर के साथ साक्षात्कार, जिला पन्ना, मध्य प्रदेश, सितंबर 2009
85. दि टाइम्स ऑफ इंडिया, 50परसेंट चिल्ड्रेन ऐट मोशी क्वेरी हैव अस्थमा, 18 नवंबर 2009 http://timesofindia.indiatimes.com/city/pune/50-children-at-Moshi-quarry-have-asthma/articleshow/5241904.cms.
86. उपरोक्त।
87. संतुलन के चिकित्सक से साक्षात्कार, वाघोली, महाराष्ट्र, सितंबर 2009
88. ग्रेविस, टेल्स ऑफ वो : ए रिपोर्ट ऑन चाइल्ड लेबर इन दि माइन्स ऑफ जोधपुर ऐण्ड मकराना, मार्च 2004, पृष्ठ 20
89. सालुंबर पीएचसी के साथ एमएलपीसी द्वारा साक्षात्कार, गांव मोरिल्ला, जिला उदयपुर, अक्तूबर 2009

भूरी देवी खान में काम करने वाली एक खान मजदूर महिला ने बताया **"हमें नहीं पता कल हमें खाने को मिल पाएगा कि नहीं।"** कई गांवों की महिलाओं ने बताया कि उनके बच्चों का वजन या लंबाई कभी नहीं मापी गई है। जिन बच्चों से बात की गई उनमें से बहुत थोड़े बच्चे नियमित रूप से सब्जी खाते थे और उनमें से किसी को भी फल या दुग्ध उत्पाद खाने को नहीं मिलते थे। इस तरह की संवेदनशील उम्र में एक संतुलित आहार न मिलना उनको स्थायी कुपोषण का शिकार बना देता है और उनकी शारीरिक और मानसिक बढ़त को रोक देता है। इसके साथ ही वे भविष्य में गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं की आशंका में भी पहुंच जाते हैं।[90]

बेल्लारी, कर्नाटक के लौह अयस्क खनन समुदायों में रहने वाले लोगों के मुताबिक वयस्क और बच्चे, सभी लाल धूल के संपर्क में रहने के कारण सांस की समस्याओं से पीड़ित हैं। इस इलाके में अस्थमा और टीबी सबसे आम बीमारियां बताई गईं।[91] इसी तरह की कहानियां देश भर के खान समुदायों में पाई गई हैं।

खानों में होने वाली दुर्घटनाओं से चोट और मृत्यु

दुनिया भर के खान और खुदाई मजदूर दुर्घटनाओं की भारी आशंकाओं में रहते हैं। हालांकि भारत के खनन उद्योग में दुर्घटनाओं की स्थिति और दर का विश्लेषण करने के लिए कोई समावेशी अध्ययन उपलब्ध नहीं हैं लेकिन यह निश्चित रूप से माना जा सकता है कि अनौपचारिक खानों और खदानों में दुर्घटनाएं काफी आम हैं। इस अध्ययन के दौरान जिन आठ राज्यों के मजदूरों के साक्षात्कार लिए गए उन सभी ने बताया कि वे अकसर घायल होते रहते हैं और मौतों की संख्या भी चिन्ताजनक रूप से अधिक है।

राजस्थान के जोधपुर जिले में स्थित एक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र से पता चला कि वहां हर रोज कम से कम 20 घायल मजदूर ईलाज के लिए आते हैं। इनमें से ज्यादातर मजदूरों को खानों में होने वाले विस्फोटों से चोटें लगती हैं।[92] राजस्थान में हमने जिन खान मजदूरों से बात की उन सभी का कहना था कि वे अपने कार्यस्थल पर दुर्घटनाओं का सामना कर चुके हैं। जोधपुर जिले में स्थित धीरमपुरी खनन क्षेत्र में पता चला कि वहां हर साल 7-8 लोग खानों में होने वाली दुर्घटनाओं के कारण मर जाते हैं। इस इलाके में काम करने वाले एक आदिवासी ने बताया कि एक बार काम करते हुए लोहे की एक छड़ उसकी छाती पर गिर गई थी और वह मरते-मरते बचा था। दुर्घटना की स्थिति में ठेकेदार इन मजदूरों को कोई मदद नहीं देते इसलिए इस मजदूर को भी अपने भाई के सहारे ही अस्पताल जाना पड़ा। दोनों भाई पास-पास ही काम कर रहे थे। उसके इलाज पर 7000 रुपये खर्च आया और वह लंबे समय तक काम पर नहीं जा सका। दिहाड़ी मजदूरों के पास कोई रोजगार अधिकार नहीं होता इसलिए ठेकेदार भी उनकी मौत या चोटों की कोई जिम्मेदारी नहीं लेते। अगर कोई मजदूर मारा जाता है तो उसके परिवार को थोड़ा-बहुत मुआवजा मिल जाता है; घायलों को बिना मजदूरी घर बैठना पड़ता है और इलाज का खर्चा भी खुद उठाना पड़ता है।

कर्नाटक के बेल्लारी जिले में जिन महिला खनिकों से बात की गई उन्होंने भी बताया कि वे लौह अयस्क खानों में दुर्घटनाओं से जूझती रही हैं। खान स्थल पर एक औरत के नवजात शिशु की मृत्यु के बारे में भी हमें पता चला। इसी तरह 20 साल की एक गर्भवती युवती पत्थरों में दब कर मर गई थी।[93]

12 साल की उम्र में येलप्पा चोगुले यतीम हो गया था क्योंकि उसके मां-बाप, दोनों पत्थर की एक खदान में मारे गए थे। इसके बाद उसकी चाची ने उसे भी एक खदान में मजदूरी पर रखवा दिया। पांच साल बाद उसे खदान से रिहा कराया गया और अब वह संतुलन द्वारा चलाए जा रहे स्कूल में पढ़ता है।

स्रोत : दगड़फूल, संतुलन पाषण शाला, 1997-2007.

"मेरा नाम मोहित (बदला हुआ नाम) है। मेरी उम्र 16-17 साल है। मुझे अपनी उम्र का ठीक से पता नहीं है। मैं सालारपेंठा गांव का हूं। जब खान कंपनी ने हमारे परिवार की जमीन छीन ली तो मेरे पिता कुछ समय तक खान कंपनी में काम करने के बाद टीबी से बीमार हो गए और अंत में उनकी मृत्यु हो गई। कंपनी ने वादा किया था कि सभी प्रभावित परिवारों को नौकरी दी जाएगी लेकिन अभी तक गांव में किसी को नौकरी नहीं मिली। मैं ही अपने गांव में सबसे ज्यादा पढ़ा-लिखा हूं। मैं मैट्रिक में फेल हुआ था। मैं खानों में दिहाड़ी मजदूरी करता हूं और मुझे रोज 60 रुपये मजदूरी मिलती है। अगर पूरे महीने काम मिल जाता है तो मुझे महीने में 1800 रुपये की मजदूरी मिलती है लेकिन हमेशा काम नहीं मिलता। हमारे पास पीने का पानी, चिकित्सा सुविधाएं या कंपनी की तरफ से आवास की व्यवस्था नहीं है। मेरी शादी हो चुकी है और मुझे परिवार चलाने के लिए भारी तनाव झेलना पड़ता है। कभी-कभी मैं इस तनाव से उबरने के लिए महुआ पी लेता हूं। मेरी मां को भी टीबी है। अब उसके इलाज का खर्चा उठाना और खाने का इंतजाम करना मुश्किल हो गया है। मैं कॉलेज जाना चाहता था लेकिन मुझे अपने परिवार की देखभाल करनी पड़ती है इसलिए मैं कॉलेज नहीं जा सकता।"

स्रोत : क्योंझर, उड़ीसा में लिया गया साक्षात्कार, 16 फरवरी 2010.

90. ग्रेविस, टेल्स ऑफ वो : ए रिपोर्ट ऑन चाइल्ड लेबर इन दि माइन्स ऑफ जोधपुर ऐण्ड मकराना, मार्च 2004, पृष्ठ 20
91. खान मजदूरों के साथ साक्षात्कार, जिला बेल्लारी, कर्नाटक, जून 2009
92. नर्स के साथ साक्षात्कार, फिदूसर चौपड़ प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, जिला जोधपुर, राजस्थान, जुलाई 2009
93. खान मजदूरों के साथ साक्षात्कार, जिला बेल्लारी, कर्नाटक, जून 2009

पत्थर की खदानों में विस्फोटों के कारण दुर्घटनाएं होती रहती हैं। नवंबर 2009 में अखबारों में खबर आई थी कि तमिलनाडु के चेंगलपट्टू से 15 किलोमीटर दूर स्थित माथुर गांव में एक खदान में आसमानी बिजली कड़कने से "अचानक विस्फोट" हो गया था। इस हादसे में 5 लोग मारे गए थे और 6 घायल हुए थे।[94] एक स्थानीय पुलिस अधिकारी ने बताया कि इलाके की कम से कम दो दूसरी खानों में भी इसी तरह की दुर्घटनाएं हो चुकी हैं। इससे पता चलता है कि इन खदानों में काम करने वालों की हिफाजत का कितना कम खयाल रखा जाता है। **जब परिवार के वयस्क खान दुर्घटनाओं में मारे जाते हैं या घायल हो जाते हैं तो उनके बच्चों पर भी सीधा असर पड़ता है।**

क्योंकि बच्चों का शरीर विकसित हो रहा होता है इसलिए खानों में मजदूरी से उनके सामने घायल होने या बीमार पड़ने का खतरा वयस्क मजदूरों से ज्यादा होता है। **बीमारी प्रायः तब तक दिखाई नहीं देती जब तक बाल मजदूर वयस्क नहीं हो जाता।**[95] क्योंकि ये बच्चे अपनी शारीरिक क्षमता से ज्यादा भारी काम करते हैं इसलिए वे भारी पीठ दर्द, रीढ़ की हड्डी में चोट, पेशियों व अस्थि तंत्र में विकारों के शिकार हो जाते हैं। उनकी ये बीमारियां तब तक स्पष्ट दिखाई नहीं देती जब तक यह बच्चे वयस्क नहीं हो जाते। नेपाल की खानों में काम करने वाले बच्चों पर किए गए एक अध्ययन से पता चला कि वहां इन बच्चों को अकसर चोटों का सामना करना पड़ता है। 59 प्रतिशत बाल मजदूरों ने बताया कि वे अकसर या कभी-कभी घायल होते रहते हैं।[96] बच्चों को खुली धूप में काम करना पड़ता है इसलिए वे भारी गर्मी से भी परेशान रहते हैं। भारत में ये समस्या और गंभीर है क्योंकि यहां खदानों में सबसे ज्यादा काम मानसून से ठीक पहले ही चलता है जब देश के बहुत सारे भागों में तापमान 40 डिग्री से भी ऊपर पहुंच जाता है।

गुजरात के जूनागढ़ जिले की चूना पत्थर खानों में चाइल्डलाइन द्वारा किए गए अध्ययन से पता चला कि इन खानों में काम करने वाले बहुत सारे बाल मजदूर अकसर खांसी, जुकाम और त्वचा रोगों की चपेट में आते रहते हैं। इस समुदाय के लोग खनन उद्योग से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में ज्यादा अवगत नहीं हैं इसलिए वे इन समस्याओं को मौसम की देन मानते हैं या इस बात को नहीं समझ पाते कि वे क्यों बीमार पड़ रहे हैं। वे अपनी बीमारियों को अपने काम से जोड़ कर नहीं देख पाते।[97]

क्योंकि खानों में बच्चों को नौकरी पर रखना प्रतिबंधित है इसलिए किसी रिकॉर्ड में इस बात का उल्लेख नहीं मिलता कि भारत में खनन दुर्घटनाओं में हर साल कितने बच्चे घायल हो जाते हैं। खनन क्षेत्रों में लोगों से मिली जानकारियों से पता चलता है कि वहां दुर्घटनाएं और चोटें काफी आम हैं। महाराष्ट्र में संतुलन द्वारा रखे गए एक रजिस्टर में 2004-07 के बीच वाघोली खनन क्षेत्र में 31 बड़ी खान दुर्घटनाओं का ब्यौरा दर्ज है जिनमें तीन बच्चे भी घायल हुए थे। ये आंकड़े भी अधूरे हैं। उनके आधार पर भी खान दुर्घटनाओं की पूरी और सही तस्वीर सामने नहीं आती। इसका सीधा कारण यह है कि खान मजदूर, खान मालिक या स्थानीय संगठन, कोई भी इन दुर्घटनाओं का पूरा रिकॉर्ड नहीं रखते। दुर्घटना होने पर ज्यादातर खान मालिक घायलों की फर्स्ट एड व शुरुआती इलाज तो करा देते हैं लेकिन चोट चाहे कितनी भी गंभीर हो वे बाद के इलाज या मुआवजे की जिम्मेदारी नहीं लेते। ऐसी दुर्घटनाओं में बहुत सारे मजदूर स्थायी रूप से विकलांग भी हुए हैं और अब वे मजदूरी नहीं कर सकते जिससे परिवार का पेट पालने की जिम्मेदारी उनके बच्चों पर आ गई है। मोशी, महाराष्ट्र में महिलाओं के एक समूह ने शोधकर्ताओं को बताया कि हाल ही में 15 साल के एक लड़के की पत्थर की खान में काम करते हुए मौत हो गई थी।[98] गुजरात में चाइल्डलाइन द्वारा किए गए अध्ययन में पाया गया कि जिन बच्चों से बात की गई उनमें से 30 प्रतिशत खानों में काम करते हुए दुर्घटनाओं को सामना कर चुके थे। ज्यादातर बच्चे पत्थर तोड़ते हुए और विस्फोटों के दौरान घायल हुए थे।[99]

खानों के आसपास रहने के कारण स्वास्थ्य पर प्रभाव

खानों के आसपास रहने से स्वास्थ्य पर खास तरह के असर पड़ते हैं। इनमें यूरेनियम खनन के प्रभावों पर सबसे ज्यादा अध्ययन हुए हैं। इन अध्ययनों में विकिरण के कारण होने वाली गंभीर बीमारियों और विकारों का दस्तावेजीकरण किया गया है। सरकार का कहना है कि यूरेनियम खनन से स्थानीय लोगों या मजदूरों को विकिरण संबंधी कोई खतरा नहीं है लेकिन जादूगोड़ा, झारखंड के लोगों की कहानी कुछ अलग है। इस इलाके में यूरेनियम और आणविक कचरे से होने वाला विकिरण स्वास्थ्य के लिए एक भारी खतरा बना हुआ है और इलाके के बच्चों में गंभीर विकार दिखाई देने लगे हैं।[100] जादूगोड़ा की यूरेनियम खानों के आसपास रहने वाली महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य में बहुत तरह की समस्याएं सामने आ रही हैं क्योंकि इन स्थानों पर विकिरण का स्तर स्वीकार्य सीमा से बहुत अधिक पाया गया है। इन महिलाओं का असामयिक गर्भपात और बच्चों में जन्मजात शारीरिक व मानसिक विकारों का होना एक आम घटना बन गई है।[101] जादूगोड़ा में कम से कम 50 बच्चे गंभीर विकारों से ग्रस्त हैं। इनमें से बहुत सारे बच्चे न तो बोल पाते हैं और

94. एक्सप्रेस बज़, डेनिस सेलवन, फाइव किल्ड इन स्टोन क्वेरी ब्लास्ट, 20 नवंबर 2009 http://www.expressbuzz.com/edition/story.aspx?Title=Five+killed+in+stone+quarry+blast&artid=8%7CXU1eGNYq8=.
95. आईएलओ, ऐलिमिनेटिंग चाइल्ड लेबर इन माइनिंग ऐण्ड क्वेरिंग : बैकग्राउंड डॉक्यूमेंट, 12 जून 2005
96. उपरोक्त।
97. चाइल्ड लाइन इंडिया फाउंडेशन, लिविंग विद स्टोन्स - चिल्ड्रेन ऑफ दि माइन्स, चिल्ड्रेन ऐट रिस्क रिपोर्ट शृंखला का भाग, 2008
98. मोशी, महाराष्ट्र में लिए गए साक्षात्कार, सितंबर 2009
99. चाइल्डलाइन इंडिया फाउंडेशन, लिविंग विद स्टोन्स - चिल्ड्रेन ऑफ दि माइन्स, चिल्ड्रेन एट रिस्क रिपोर्ट शृंखला का भाग, 2008
100. रंजन के पांडा, अंडरमाइनिंग डेवलेपमेंट, 2007, http://www.skillshare.org/skillshare_india_underminingdevelopment.html 20 अक्तूबर 2009 को अपलोड किया गया।

गुड़िया गहरी काली आंखों वाली एक छोटी सी बच्ची है। वह अपने घर के आंगन में चारपाई पर लेटी अपने पिता के लौटने का इंतजार करती रहती है। वह पिता को देखते ही मचल उठती है और उसकी काली आंखों में फीकी सी चमक आ जाती है। पिता भी मुस्करा कर अपनी बेटी को गोद में ले लेते हैं। लेकिन पिता की आंखों में चमक नहीं आती। उनकी आंखों में पानी है। गुड़िया बोल नहीं सकती। न वह चल-फिर पाती है। वह खुद खाना नहीं खा सकती। उसके हाथ - जिन्हें आप शायद हाथ न कहें - मुड़े हुए और विकृत हैं। उसकी टांगें पूरी तरह बेजान हैं। हां, आप समझ सकें तो उसकी आंखें बहुत कुछ कहती हैं। गुड़िया की उम्र अभी सिर्फ सात साल है।

उसके घर से कुछ ही कदम दूर एक और लड़की इसी तरह की चारपाई पर लेटी हुई है। उसकी उम्र 23 साल है। उसकी भी हालत गुड़िया जैसी है सिवाय इसके कि वह दर्द से कराहती दिखाई देती है। वह सांस लेने में भी थक गई है; उसके चेहरे पर एक दहशत है। वह पूरे कपड़े पहने हुए है लेकिन कभी बाहर नहीं जाती। वह कभी कहीं नहीं गई। 23 साल से उसकी यही जिंदगी है।

इन लड़कियों के माता-पिताओं को समझ में नहीं आता कि उनकी बेटियों की इस दुर्दशा का कारण क्या है। जादूगोड़ा गांव में ऐसी हालत से जूझते तकरीबन 50 और बच्चे रह रहे हैं....।

इन खानों के आलोचकों का कहना है कि ये बच्चे चाहे जितने दिन जिंदा रहें, उनकी उपस्थिति यूरेनियम खान के विषैले प्रभावों का सबसे अकाट्य प्रमाण है - किसी बच्चे की देहमुद्रा विकृत है, किसी की खोपड़ी पूरी तरह विकसित नहीं हुई है, किसी का सिर सूजा हुआ है, किसी के आंख या कान गायब हैं, किसी की उंगलियां आपस में चिपकी हुई हैं, कोई रक्त विकार और मस्तिष्क क्षति से पीड़ित है।

स्रोत : मार्क व्हिटेकर, जादूगोड़ाज़ हेल्पलैस चिल्ड्रन, दि हिंदू, 6 मई 2006.

न ही चल-फिर सकते हैं। मां-बाप को भी पता नहीं है कि इन बच्चों की समस्याओं का स्रोत क्या है।[102] यूरेनियम कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (यूसीआईएल) का कहना है कि इन समस्याओं के लिए कंपनी को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। कंपनी ने अदालत में भी अपने स्वास्थ्य और सुरक्षा रिकॉर्ड का बचाव किया है। लेकिन, विभिन्न अध्ययनों में पाया गया है कि इस इलाके में जन्मजात विकारों का स्तर अखिल भारतीय औसत से बहुत ज्यादा है और लोगों में जो लक्षण दिखाई दे रहे हैं वे रेडियोधर्मी कचरे से पैदा होने वाली समस्याओं जैसे हैं।[103]

पंजाब के भटिंडा और फरीदकोट जैसे शहरों में स्वास्थ्यकर्मियों ने जन्मजात विकारों के साथ पैदा होने वाले बच्चों की संख्या में तेज इजाफा पाया है। उनका कहना है कि बच्चों में शारीरिक और मानसिक विकास तथा कैंसर बढ़ता जा रहा है। जिले के 22 गांवों में किए गए वैज्ञानिक परीक्षण ों से पता चला कि यूरेनियम ने वहां के दूध, गेहूं, दालों और पानी को दूषित कर दिया है।[104] भूमिगत पानी में यह प्रदूषण भिवानी, हरियाणा स्थित तोशाम पहाड़ियों में पाए जाने वाले ग्रेनाइट का परिणाम हो सकता है क्योंकि ग्रेनाइट में यूरेनियम जैसी रेडियोधर्मी धातुएं होती हैं। परीक्षणों से यह भी पता चला है कि यहां के बच्चों के शरीर में यूरेनियम का स्तर काफी ऊँचा है। एक बच्चे के शरीर में अधिकतम सुरक्षित सीमा से 60 गुना ज्यादा यूरेनियम पाया गया। स्वास्थ्यकर्मियों का मानना है कि यह रेडियोधर्मी संक्रमण पास में स्थित बिजली घरों की देन है।[105]

कर्नाटक के बेल्लारी जिले में स्थानीय लोगों ने लौह अयस्क खानों से निकलने वाले धूल प्रदूषण के कारण सांस लेने में आ रही समस्याओं के बारे में बताया। वयस्कों और बच्चों, सभी का कहना था कि विस्फोटों के शोर की वजह से उनको सुनने में भी दिक्कत आने लगी है।[106]

उड़ीसा के सुंदरगढ़ में चूना पत्थर और डोलोमाइट की खुदाई होती है। यहां के स्थानीय समुदायों ने भी बहुत सारी स्वास्थ्य समस्याओं का जिक्र किया। बिरमित्रापुर स्थित सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र (सीएचसी) में तैनात मेडिकल ऑफिसर का कहना था कि इस इलाके में व्यावसायिक स्वास्थ्य समस्याएं काफी ज्यादा हैं। उनका कहना था कि यहां के लोगों में श्वास रोग, मलेरिया, तपेदिक (टीबी), फाइलेरिया और पानी से फैलने वाली अन्य बीमारियां बहुत हैं और ये सभी मुख्य रूप से खनन गतिविधियों का परिणाम हैं। उन्होंने यह भी बताया कि बीमारियों की भारी दर के कारण पीएचसी में दवाइयों की हमेशा कमी बनी रहती है लेकिन अस्पताल को समाज कल्याण के मद में भी खान कंपनियों की तरफ से किसी तरह की मदद नहीं मिलती।[107] इस इलाके में टीबी के दर्जशुदा मामले 2006 में 228 थे जो 2009 में 433 हो गए थे।[108]

छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले में कोयला, लौह अयस्क, डोलोमाइट और चूना पत्थर की खुदाई होती है। यहां बच्चों में मलेरिया, दस्त, न्यूमोनिया, त्वचा रोग, ब्रोंकाइटिस, आंत्रशोथ, पेट दर्द, जोड़ों का दर्द, पीलिया और श्वास रोग सबसे आम पाए गए हैं। पिछले पांच साल के दौरान यहां हाइड्रोसील में इजाफा हुआ

101. माइन्स, मिनरल्स ऐण्ड पीपुल, इम्पैक्ट्स ऑफ माइनिंग ऑन वीमेन्स हैल्थ इन इंडिया, 15 अप्रैल 2003
102. बीबीसी न्यूज़, मार्क व्हिटेकर, लिविंग नेक्स्ट टू इंडियाज यूरेनियम माइन, 4 मई 2006
103. इंडिया एनवायर्नमेंटल पोर्टल, अपर्णा पल्लवी, यूरेनियम माइन वेस्ट इम्पेराइल्स विलेजेज़ इन जादूगौडा, 14 मार्च 2008
104. इंडिया एनवायर्नमेंट पोर्टल, सैवी सौम्या मिश्रा, यूरेनियम इन फूड, वाटर इन भटिंडा, 30 अप्रैल 2009
105. दि ऑब्जर्वर, इंडियाज़ जैनरेशन ऑफ चिल्ड्रेन क्रिपल्ड बाई यूरेनियम वेस्ट, गेथिन चेंबरलेन, 30 अगस्त 2009
106. खनन प्रभावित समुदायों के साथ साक्षात्कार, जिला बेल्लारी, कर्नाटक, जून 2009
107. स्वास्थ्य अधिकारियों के साथ साक्षात्कार, जिला सुंदरगढ, उड़ीसा, नवंबर 2009
108. सीएचसी, बिरमित्रापुर द्वारा उपलब्ध कराया गया डेटा, सुंदरगढ़, उड़ीसा, नवंबर 2009

है।[109] कोरकेड, रायगढ़ स्थित स्वास्थ्य केंद्र में तैनात स्वास्थ्य अधिकारियों ने स्वीकार किया कि वहां पहले से बहुत ज्यादा मरीज आने लगे हैं और ये खान गतिविधियों के कारण पैदा हो रही स्वास्थ्य समस्याओं का परिणाम है।[110]

खनन क्षेत्रों में ऐसी स्वास्थ्य समस्याएं भी पाई गई हैं जिनका खनन प्रक्रियाओं से अकसर सीधा संबंध दिखाई नहीं देता लेकिन वे इसके कारण होने वाले प्रवासन से पैदा होती हैं। इस तरह की बीमारियों में यौन संक्रामक बीमारियों, खासतौर से एचआईवी और एड्स को सबसे ऊपर माना जा सकता है। यह दुनिया भर के खनन समुदायों की समस्या पाई गई है। खान मजदूरों जैसे प्रवासी मजदूरों में एचआईवी काफी व्यापक पाया जाता है और रोजमर्रा कामों में खानों के भीतर मजदूर जिस तरह के जोखिमों से जूझते हैं उनके चलते असुरक्षित सेक्स को अकसर वे मामूली खतरा मानते हैं।[111]

जैसे-जैसे समुदाय आर्थिक रूप से कमजोर होते जाते हैं, बच्चों और महिलाओं के सामने यौन शोषण और मानव व्यापार की आशंका बढ़ती जाती है। इस प्रकार उनके सामने यौन संक्रामक बीमारियों, एचआईवी और एड्स का खतरा भी बढ़ जाता है। झारखंड एड्स नियंत्रण सोसायटी द्वारा किए गए एक ताजा सर्वेक्षण में पता चला कि खान मजदूरों के सामने एड्स की भारी आशंका है। इसके लिए कम साक्षरता और खान इलाकों में स्वास्थ्य सुविधाओं की दुर्दशा को जिम्मेदार बताया गया है।[112]

उड़ीसा के कोरापुट जिले में स्थित अमलबाड़ी गांव में खान गतिविधियों के कारण विस्थापित हुए लोग रहते हैं। इन लोगों ने बताया कि वहां एचआईवी/एड्स ज्यादा तेजी से फैल रहा है। उनका कहना था कि वे प्रवासी मजदूर होने और आसपास चल रही वेश्यावृत्ति की वजह से इस बीमारी के भारी खतरे में आ गए हैं। गांव में लगभग 100-200 लोग एचआईवी पॉजिटिव हैं। यह इस जिले में सबसे अधिक संक्रमण दर है।[113]

पानी तक पहुंच का अभाव

खनन व्यवसाय से साफ पानी तक पहुंच भी प्रभावित होती है क्योंकि इन गतिविधियों में पानी की बहुत ज्यादा जरूरत होती है। देश के कई भागों में पानी के अभाव को लेकर गंभीर चिंताएं व्यक्त की जाने लगी हैं और इस बात पर भी चिंता व्यक्त की जा रही है कि खान उद्योग अपने हिस्से से ज्यादा पानी इस्तेमाल कर रहा है। खान कंपनियों को खनिज निकालने और उनका प्रसंस्करण करने के लिए पानी की जरूरत होती है। खनन कार्य, रिफाइनरीज़ और स्मेल्टर, सभी संयंत्रों में पानी की भारी जरूरत रहती है। इसके लिए बांधों का इस्तेमाल किया जा रहा है जिनको मूल रूप से स्थानीय आबादी के लिए सिंचाई व पेयजल साधनों के रूप में निर्मित किया गया था। अब खान कंपनियों ने इन बांधों का पानी अपने इस्तेमाल के लिए मोड़ दिया है।[114]

इससे भी बुरी बात यह है कि न केवल खनन कार्य पानी का अतिदोहन करने लगते हैं बल्कि बहुत सारे स्थानों पर तो स्थानीय समुदाय अपने पानी के लिए भी खान कंपनियों पर आश्रित होकर रह गए हैं। झारखंड के उरीमरी खनन क्षेत्र में कुछ विस्थापित गांव पानी के लिए पूरी तरह कंपनी पर आश्रित हो चुके हैं क्योंकि इस इलाके के जल स्रोत इतने दूषित हो गए हैं कि उनका किसी भी इंसानी जरूरत के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। कंपनी द्वारा भेजे जाने वाले पानी के ट्रक प्रायः आधी रात में आते हैं इसलिए औरतों को घंटों तक उनके आने का इंतजार करना पड़ता है।[115]

मिलुपाड़ा जैसे कुछ गांव खान स्थल से निकट होने के कारण जल प्रदूषण और वायु प्रदूषण, दोनों समस्याओं से जूझ रहे हैं। गांव वालों का कहना था कि यहां जल प्रदूषण महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य को भी नुकसान पहुंचा रहा है। इसके फलस्वरूप बच्चे या तो कमजोर पैदा होने लगे हैं या वे जन्मजात विकलांग/असामान्य होते हैं।[116] कोरकेड, रायगढ़ स्थित स्वास्थ्य केंद्र में तैनात स्वास्थ्य अधिकारियों ने बताया कि वहां फंगल संक्रमण और हेपेटाइटिस बढ़ता जा रहा है जो कि मुख्य रूप से प्रदूषित पानी की देन है।[117]

उड़ीसा और आंध्र प्रदेश में बॉक्साइट के ज्यादातर भंडार पहाड़ियों के ऊपर स्थित हैं। इन इलाकों के जल स्रोत इन भंडारों से नीचे स्थित हैं। फलस्वरूप, खनन कार्यों की गंदगी सीधे पानी में मिल जाती है। इससे खान स्थलों के आसपास रहने वाले बच्चों की सेहत प्रभावित हो रही है। इसी तरह की कहानी गोवा के लौह अयस्क खनन इलाकों में देखी जा सकती है। यहां नदियों और झीलों का विशाल नेटवर्क होते हुए भी पानी लगातार दुर्लभ होता जा रहा है। खनन कार्यों के लिए भूमिगत पानी का दोहन किया जा रहा है क्योंकि नीचे बहने वाली जलधाराओं से खानों में पानी भर जाता है। इस तरह, भूमिगत पानी को निकालने से इलाके में भूमिगत जल स्तर गिरने लगा है। यह स्थिति उत्तरी गोवा स्थित बिचोलिम स्थित शिरगाव गांव में देखी जा सकती है। इस खान के आसपास स्थित गांवों के लिए अब सिंचाई और पीने के लिए कहीं पानी नहीं बचा है। किसानों का कहना है कि जल व्यवस्था में इस उथल-पुथल से खेती पर बहुत बुरा असर पड़ा है।[118]

109. खनन प्रभावित समुदायों के साथ साक्षात्कार, जिला रायगढ़, छत्तीसगढ़ नवंबर 2009
110. स्वास्थ्य अधिकारियों के साथ साक्षात्कार, कोरकेड, रायगढ़, छत्तीसगढ़, नवंबर 2009
111. स्टेबलम ए, रॉयटर्स, इज एचआईवी ए टाइम बॉम अंडर दि माइनिंग इंडस्ट्री?, 18 जुलाई 2008
112. साबू एस, टेलीग्राफ इंडिया, माइन वर्कर्स 'प्रोन' टू एड्स, 29 जुलाई 2009
113. अमलबाड़ी गांव में साक्षात्कार, जिला कोरापुट, उड़ीसा, जून 2009
114. रवि रेब्बाप्रावदा, समता द्वारा प्रस्तुति, नई दिल्ली, अगस्त 2008
115. खनन प्रभावित समुदायों से साक्षात्कार, उरी मरी कोयला खनन क्षेत्र, झारखंड, सितंबर 2009
116. उपरोक्त।
117. स्वास्थ्य अधिकारियों के साथ साक्षात्कार, कोरकेड, रायगढ़, छत्तीसगढ़, नवंबर 2009
118. ई. बिल्ड, कार्पवॉच, गोवा कर्स्ड बाई इट्स मिनरल वेल्थ, अप्रैल 2009

कुछ इलाकों में गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं पहले ही दर्ज की जा चुकी हैं। प्रदूषित और दुर्लभ जल संसाधनों का प्रभाव बच्चों पर सबसे ज्यादा दिखाई देता है जो अस्वच्छ परिस्थितियों और अपर्याप्त जल उपभोग के कारण संकट में रहते हैं। मिसाल के तौर पर, उड़ीसा में क्रोमाइट खानों के आसपास किए गए एक अध्ययन से पता चला कि वहां के पानी में स्थित क्रोमियम से लोगों की श्वास नली में खुजली, नथुनों में घाव और न्यूमोनिया जैसी समस्याएं पैदा हो रही हैं। यहां कई ऐसे बच्चे देखे जा सकते हैं जिनके पूरे शरीर पर फुंसियां और जख्म बन गए हैं।[119] आंध्र प्रदेश के माइका खनन इलाकों में 20 साल जैसी कच्ची उम्र के युवा भी गठिया के दर्द से परेशान हैं। माइका खानों के कारण पानी में फैलने वाली गंदगी से जी मितलाने, उल्टी और दस्त जैसी गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं बढ़ती जा रही हैं।[120]

तमिलनाडु में कड्डालोर जिले की लिग्नाइट खानों के आसपास रहने वाले समुदायों ने बताया कि पहले उनके पास पानी की कोई समस्या नहीं थी। अब लिग्नाइट की खानें बहुत गहरी हो गई हैं जिसके कारण जलापूर्ति पर असर पड़ा है और किसानों को अपने खेतों के लिए पर्याप्त पानी भी नहीं मिल पा रहा है। पानी के बहाव की दिशा भी बदल गई है क्योंकि अब उसे खानों की तरफ मोड़ दिया गया है। अब पीने का पानी धूल से दूषित हो चुका है जिसके कारण पेट की समस्याएं बढ़ती जा रही हैं।[121]

राजस्थान के जोधपुर जिले में एक महिला ने बताया कि उसके गांव में पानी की इतनी किल्लत है कि वह अपने बच्चों को नहलाने का सपना भी नहीं देख सकती। उसकी 6 बेटियां सदा धूल और कालिख से अंटी रहती हैं। जब उससे उनकी सेहत और साफ-सफाई के बारे में पूछा गया तो उसने बताया कि उसके पास इतना कम पानी है कि वह उसे बच्चों के नहाने पर बर्बाद नहीं कर सकती। उसे वह पानी पीने के लिए बचाना पड़ता है।[122]

कर्नाटक के बेल्लारी जिले में स्थित धनपुर में ज्यादातर लोग पहले खेती किया करते थे। बाद में निजी कंपनियों ने सरकार के जरिए उनकी जमीन खरीद ली और यहां खुदाई शुरू कर दी। किसानों का कहना है कि अब उनके पास खेती के लिए पानी नहीं बचा है क्योंकि सारा पानी खान कंपनियां इस्तेमाल कर रही हैं। खानों से निकलने वाली धूल के कारण उनकी रही-सही फसलें भी नष्ट हो रही हैं। बहुत सारे किसान खेती छोड़ चुके हैं क्योंकि उन्हें अपनी जमीन खान कंपनियों को बेचने के लिए मजबूर कर दिया गया था।[123]

स्वास्थ्यः मौजूदा कानूनी, नीतिगत या कार्यक्रम संबंधी प्रयास

खान अधिनियम, 1952 में मजदूरों की सुरक्षा के लिए दिशा-निर्देश तय किए गए हैं। इस कानून में यह जिम्मेदारी खान मालिकों को दी गई है कि वे खानों में स्वास्थ्य और सुरक्षा का खयाल रखें। यह भी तय किया गया है कि खानों में पाली कितने घंटे की होगी, न्यूनतम मजदूरी क्या होगी। यह कानून बड़ी, औपचारिक क्षेत्र खानों में तो लागू हुआ है लेकिन छोटे पैमाने की खानों में इसको लागू करना अभी भी असंभव साबित हो रहा है जबकि देश के ज्यादातर खान मजदूर छोटी खानों में ही काम कर रहे हैं।

वायु (प्रदूषण निषेध एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981 और पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 में कहा गया है कि धूल, उत्खनन कार्यों के दौरान निकलने वाली गैसों, खनन, धात्विक क्रियाओं तथा अन्य संबंधित **गतिविधियों से पैदा होने वाले वायु प्रदूषण को नियंत्रित किया जाएगा और उसे "स्वीकार्य सीमा" के भीतर रखा जाएगा। लेकिन यह स्वीकार्य सीमा क्या हो, इस बारे में हमेशा विवाद रहा है।**[124]

खनन कार्यों के कारण पैदा होने वाली बाल स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को संबोधित करने के लिए कोई कानून नहीं है। आधारभूत स्वास्थ्य कार्यक्रम और सेवाएं भी बच्चों तक नहीं पहुंच पातीं क्योंकि प्रशासकीय तंत्र इन कार्यक्रमों में ऐसे बदलाव नहीं कर पाता जिससे स्थानीय परिवेश में वे उपयोगी हों और प्रवासी और खनन प्रभावित बच्चों को लाभ पहुंचा सकें। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में भी सिलिकोसिस जैसी उन बीमारियों से निपटने की व्यवस्था नहीं है जो खनन प्रभावित समुदायों में अकसर पाई जाती हैं। यहां तक कि कुपोषण पर अंकुश लगाने के लिए चलाए जा रहे आंगनवाड़ी केंद्रों जैसी न्यूनतम सहायक संरचना भी ऐसे बहुत सारे खनन इलाकों में निष्क्रिय पाई गई है।

शिक्षा तक पहुंच का अभाव

सभी बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा का अधिकार है। लेकिन दुनिया भर के खनन इलाकों में बच्चे स्कूल जाने की बजाय खानों और गड्ढों में खटते दिखाई देते हैं। इसके लिए सिर्फ गरीबी ही जिम्मेदार नहीं है। हम जिस वैश्विक अर्थव्यवस्था में जी रहे हैं उसमें बाल मजदूरी से श्रम बाजार में मजदूरी गिरती चली जाती है इसलिए खान मालिक बाल मजदूरी को छोड़ने को तैयार नहीं हैं। इस क्षेत्र में बहुत सारी कंपनियां बच्चों को इसलिए

119. माइन्स, मिनरल्स ऐण्ड पीपुल, इम्पैक्ट्स ऑफ माइनिंग ऑन वीमेन्स हेल्थ इन इंडिया, 15 अप्रैल 2003
120. उपरोक्त।
121. खनन प्रभावित समुदायों के साथ साक्षात्कार, जिला कड्डालोर, तमिलनाडु, अगस्त 2009
122. भाट बस्ती में साक्षात्कार, जिला जोधपुर, राजस्थान, अक्तूबर 2009
123. धानापुर में किसानों के साथ साक्षात्कार, जिल्ला बेल्लारी, कर्नाटक, जून 2009
124. माइन्स मिनरल्स ऐण्ड पीपुल (एमएम ऐण्ड पी) द्वारा इंडियन वीमेन ऐण्ड माइनिंग सेमिनार के लिए तैयार किया गया बैकग्राउंड पेपर, इम्पैक्ट ऑफ माइनिंग ऑन वीमेन्स हेल्थ इन इंडिया, अप्रैल 2003

नौकरी पर रखती हैं क्योंकि वे समान श्रम के लिए वयस्कों के मुकाबले कम मजदूरी पर काम कर सकते हैं। निजीकरण और अनौपचारीकरण में हो रहे इजाफे से बाल मजदूरी बढ़ी है। खनन उद्योग में यह समस्या खासतौर से दिखाई देती है जहां मजदूर लगातार गरीबी और कर्जों के जाल में फंसे रहते हैं। तंज़ानिया के खनन क्षेत्र में किए गए एक अध्ययन से पता चला है कि वहां संसाधनों के अभाव की वजह से बच्चों को स्कूल छोड़ना पड़ा। इस इलाके के प्राथमिक स्कूलों में कमरे, पाठ्य पुस्तकें और शैक्षिक उपकरण बहुत खस्ता हालत में पाए गए हैं। इन स्कूलों में पढ़ने वाले बहुत कम बच्चे प्राथमिक से माध्यमिक स्तर तक जा पाते हैं इसलिए आगे की शिक्षा और प्रशिक्षण के अभाव में वे खानों में काम करने लगते हैं।[125]

> "यहां शिक्षा का अभाव सबसे बड़ी समस्या है। हम सरकार से कहना चाहते हैं कि हम जमीन और इमारत का इंतजाम खुद कर लेंगे लेकिन हमें एक अच्छा स्कूल तो दे दीजिए। खानें तो कभी भी बंद हो जाएंगी लेकिन अगर हमारे बच्चे पढ़-लिख गए तो कम से कम वे कहीं और तो काम ढूंढ लेंगे।"
>
> स्रोत : जेठवाई गांव, जिला जैसलमेर, राजस्थान के एक खान मजदूर का बयान, जुलाई 2009.

खनन क्षेत्रों में शिक्षा तक पहुंच की समस्या बच्चों के जन्म से ही शुरू हो जाती है। हमारे समाज में प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा के महत्व को काफी मान्यता मिल चुकी है लेकिन बहुत सारे खनन क्षेत्रों में अभी भी ये सुविधाएं नहीं हैं। इन जिलों में बालवाड़ी और आगंनवाड़ी केंद्रों के अभाव की वजह से खान मजदूर मांओं के पास अकसर अपने बच्चों को काम पर साथ ले जाने के अलावा और कोई चारा नहीं होता। ऐसे में बच्चे न केवल न्यूनतम शिक्षा और विकास के अवसरों से वंचित रह जाते हैं बल्कि सारा दिन खानों के आसपास रहना भी छोटे बच्चों के लिए अपने आप में बहुत खतरनाक साबित होता है। एएसईआर आंकड़ों से पता चलता है कि देश के भारी खनन वाले ज्यादातर जिलों में आंगनवाड़ी केंद्रों में 3 से 6 साल की उम्र के बच्चे बाकी इलाकों के मुकाबले सबसे कम होते हैं। उड़ीसा में कोरापुट के 56.9 प्रतिशत बच्चों और रायगड़ा में 48.3 प्रतिशत बच्चों के नाम किसी आंगनवाड़ी केंद्र में दर्ज नहीं हैं। राजस्थान के जोधपुर में 51.4 प्रतिशत और उदयपुर में 36.5 प्रतिशत बच्चे आंगनवाड़ी केंद्रों से बाहर हैं।[126] इन दो राज्यों में हमने जिन खनन समुदायों का दौरा किया वहां बहुत सारे लोगों ने इन इलाकों में आंगनवाड़ी सुविधाओं के अभाव का जिक्र किया।

छत्तीसगढ़ में जिन मुख्य गांवों का अध्ययन किया गया उनमें तमनार ब्लॉक का गारे गांव भी एक है जिसकी आबादी 741 है। इस गांव में 18 साल से कम उम्र के 400 बच्चे हैं। गांव में दो प्राथमिक स्कूल, एक मिडिल स्कूल और एक आंगनवाड़ी केंद्र है। इन संस्थाओं में बुनियादी ढांचे और पढ़ाई का स्तर काफी खराब है लेकिन जिंदल ग्रुप द्वारा खोला गया स्कूल भी गांव से काफी दूर और स्थानीय लोगों के लिए काफी महंगा है जिस कारण यहां के लोग उस स्कूल में भी नहीं जा पाते। इस स्कूल में जिंदल ग्रुप के कर्मचारियों के बच्चे ही पढ़ते हैं।

छत्तीसगढ़ का खमाड़िया गांव भी खनन गतिविधियों से प्रभावित है। यहां एक आंगनवाड़ी केंद्र है लेकिन उसमें नियमित रूप से सिर्फ 10-15 बच्चे ही जाते हैं। इसका कारण यह है कि आंगनवाड़ी की इमारत बहुत जर्जर है। लोगों ने बताया कि उसकी छत कभी भी गिर सकती है इसलिए बच्चों को वहां बिठाना खतरनाक है। आंगनवाड़ी के रिकॉर्ड्स में 28 बच्चों के नाम दर्ज हैं लेकिन जब हमारी टीम वहां पहुंची तो केंद्र में सिर्फ 2 बच्चे मौजूद थे।[127] **कभी-कभी खान कंपनियां अपना काम आगे बढ़ाने के लिए स्कूल के परिसर को भी चपेट में ले लेती हैं या स्कूल को ढहा देती हैं। गोवा में ऐसी घटनाएं देखी जा सकती हैं। आंध्र प्रदेश में एक स्कूल को बिरला पेरीक्लेज के एजेंट गोदाम की तरह इस्तेमाल कर रहे थे।**[128]

ज्यादातर खानें दुर्गम इलाकों में होती हैं इसलिए भी शिक्षा, खासतौर से माध्यमिक स्तर की शिक्षा तक पहुंच और मुश्किल हो जाती है। झारखंड स्थित पोतांगा गांव के हाईस्कूल के हैडमास्टर इस बात से परेशान थे कि **खनन गतिविधियां बच्चों के लिए अच्छी नहीं हैं क्योंकि इन कार्यों में मजदूरी से बच्चों को जो पैसा मिलता है उसके कारण वे स्कूल छोड़ने लगते हैं।**[129]

भारत के सर्वाधिक खनन प्रभावित जिलों में शिक्षा के आंकड़े बहुत चिंताजनक दिखाई देते हैं। प्रथम द्वारा किए गए सबसे ताजा एएसईआर सर्वेक्षण के मुताबिक उड़ीसा के कोरापुट और रायगड़ा जिलों में स्कूल न जाने वाले बच्चों का अनुपात देश में सबसे ज्यादा है। इन जिलों में 2008 में 6-14 साल की उम्र के क्रमशः 17 प्रतिशत और 17.7 प्रतिशत बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं।[130] लगभग ऐसी ही स्थिति देश भर के दूसरे खनन जिलों में देखी जा सकती है। कर्नाटक के बेल्लारी जिले में 14.1 प्रतिशत बच्चे और राजस्थान के जोधपुर व उदयपुर जिलों में - जहां हजारों लोग छोटी पत्थर खदानों में मजदूरी करते हैं - क्रमशः 12.1 प्रतिशत और 10 प्रतिशत बच्चे पूरी तरह शिक्षा तंत्र से बाहर हैं। जाहिर है कि इन जिलों में खनन उद्योग शिक्षा और विकास को बढ़ावा नहीं दे पा रहा है और उसने **एक ऐसी संस्कृति को जन्म दिया है जिसमें बच्चे स्कूल जाने की बजाय काम पर जाने को ज्यादा तरजीह देते हैं।**

125. आईएलओ, ऐलिमिनेटिंग चाइल्ड लेबर इन माइनिंग ऐण्ड क्वेरीज़ : बैकग्राउंड डॉक्यूमेंट, 12 जून 2005, प्रथम, एनुअल सर्वे ऑफ एजुकेशन, 2008
126. प्रथम, एनुअल सर्वे ऑफ एजुकेशन, 2008
127. आंगनवाड़ी कामगार के साथ साक्षात्कार, खमाड़िया गांव, छत्तीसगढ़, नवंबर 2009
128. भानुमति कल्लूरी, कैम्पेन अगेंस्ट इलिगल माइन्स।
129. पोतांगा हाई स्कूल हैडमास्टर के साथ साक्षात्कार, जिला हजारीबाग, झारखंड, सितंबर 2009
130. प्रथम, एनुअल सर्वे ऑफ एजुकेशन, 2008

राजस्थान में कई जिलों के खान मजदूरों ने बताया कि वे अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए भारी आर्थिक संकट उठाते हैं लेकिन कई साल तक सरकारी स्कूलों में जाने के बाद भी उनके बच्चे अभी तक पढ़ना-लिखना नहीं सीख पाए हैं। इसका एक कारण ये है कि इन स्कूलों में पढ़ाई की स्थिति खराब है और शिक्षक अकसर स्कूल नहीं आते। जैसेलमेर जिले के एक गांव में 90 प्रतिशत लोग खानों में काम करते हैं। इस गांव के लोगों ने बताया कि अब उन्होंने सरकारी स्कूल को छोड़कर गांव में अपना प्राइवेट स्कूल खोल लिया है। लेकिन सारे परिवार इस स्कूल में अपने बच्चों को भेजने का खर्चा नहीं उठा पाते।

कर्नाटक के बेल्लारी जिले के खान क्षेत्र में बहुत सारे परिवारों ने बताया कि उनकी आर्थिक स्थिति इतनी खराब है कि उनके बच्चों को स्कूल जाने की बजाय मजदूरी पर जाना पड़ता है। आर्थिक मंदी के कारण इस इलाके की खनन गतिविधियों में कमी आई है जिसके चलते कुछ बच्चे मजदूरी छोड़कर दोबारा स्कूल जाने लगे हैं लेकिन बहुत सारे बच्चे फिर भी स्कूल नहीं जा सकते क्योंकि उन्हें आमदनी के दूसरे जरिए ढूंढने पड़ते हैं। कुछ बच्चे सुबह स्कूल जाते हैं और दोपहर को मजदूरी करते हैं, जबकि कुछ बच्चे मौसमी मजदूर हैं। सबसे ज्यादा संख्या ऐसे बच्चों की है जो पूर्णकालिक मजदूर बन गए हैं।[131]

लड़कियों के स्कूल न जा पाने की संभावना सबसे ज्यादा रहती है क्योंकि मां-बाप भी उनके लिए शिक्षा के महत्व को नहीं मानते। अकसर उनका कहना होता है कि "कुछ सालों में उनकी शादी हो जाएगी इसलिए पढ़ाने की क्या जरूरत है?"[132] मरियम्मानहल्ली गांव के कुछ परिवारों की जमीन खनन उद्योग के चपेट में जा चुकी है। फलस्वरूप उन्हें अपने बच्चे स्कूल से निकाल कर मजदूरी पर भेजने पड़ रहे हैं। होसपेट में डॉन बोस्को शेल्टर के लोगों ने बताया कि बाल मजदूरों के मां-बाप अपने बच्चों को स्कूल भेजना चाहते हैं लेकिन वे इतने गरीब हैं कि उन्हें जिंदा रहने के लिए अपने बच्चों को भी काम पर भेजना पड़ता है।[133]

शिक्षा के क्षेत्र में मौजूदा कानून, नीतियां या कार्यक्रम

16 साल तक चर्चा और विवादों में रहने के बाद सितंबर 2009 में आखिरकार निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिकार विधेयक, 2009 संसद से पारित हो गया। इसमें 6 से 14 साल की उम्र के सभी बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रावधान किया गया है। इस अधिनियम का मुख्य पहलू ये है कि बच्चों को मिलने वाली शिक्षा के स्तर में सुधार की भी व्यवस्था की गई है। बेशक, अच्छी शिक्षा की दिशा में यह एक सकारात्मक कदम है लेकिन अभी यह देखना बाकी है कि खनन क्षेत्रों में इस कानून को कैसे और किस हद तक लागू किया जाएगा जहां बहुत सारे बच्चे अभी भी स्कूल जाने की बजाय मजदूरी पर जाने के लिए विवश हैं और जहां विस्थापन व प्रवासन जैसे मुद्दे बच्चों के शिक्षा अधिकार को गहरे तौर पर प्रभावित करते हैं।

सर्वशिक्षा अभियान सरकार की एक महत्वाकांक्षी योजना है। यह कार्यक्रम पूरे भारत में सभी बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से शुरू किया गया था। इस कार्यक्रम में बहुत सारी खामियां बनी हुई हैं। मिसाल के तौर पर, इस योजना में शिक्षा की समानांतर व्यवस्था को बढ़ावा देने का मतलब यह है कि देश भर के बच्चों को अच्छी शिक्षा के समान अवसर से वंचित किया जा रहा है। हालांकि इस योजना के जरिए दाखिलों में इजाफा हुआ है लेकिन बच्चों को पढ़ाई जारी रखने के वास्ते प्रेरित करना एक भारी समस्या बनी हुई है क्योंकि अभी भी 31 प्रतिशत बच्चे कक्षा 5 से पहले पढ़ाई छोड़ देते हैं। यह बात ऐसे ग्रामीण पिछड़े इलाकों में खासतौर से सच है जहां खान और खदानें होती हैं। यह कार्यक्रम ज्यादातर खनन इलाकों में मिल रही शिक्षा के स्तर और सुविधाओं में सुधार लाने में भी नाकामयाब साबित हो चुका है।

हालांकि सरकार अभी भी मजदूरों के सभी बच्चों को स्तरीय शिक्षा प्रदान करने में विफल रही है लेकिन देश के इन भागों में बच्चों को केंद्र में रखकर बहुत सारे गैर-सरकारी संगठनों द्वारा भी प्रयास किए जा रहे हैं। महाराष्ट्र में संतुलन नामक एनजीओ ने पत्थर खदानों के इर्द-गिर्द बहुत सारी पाषाण शालाएं (स्कूल) खोली हैं। ये पाषाण शालाएं महाराष्ट्र के पांच जिलों में 2001 बच्चों को शिक्षा दे रही हैं। इनमें से ज्यादातर बच्चे पत्थर खदान कामगारों के बच्चे हैं जो शिक्षा के अभाव में अपने मां-बाप के साथ काम कर रहे होते हैं। अब इन स्कूलों को राज्य सरकार से भी मान्यता मिल चुकी है। राजस्थान में एमएलपीसी संगठन ने जोधपुर जिले में चल रही खानों के इर्द-गिर्द बालवाड़ियों की सुविधा शुरू की है ताकि मांओं को अपने छोटे बच्चों को काम पर न ले जाना पड़े। इन बालवाड़ियों में फिलहाल 6 साल से कम उम्र के 650 बच्चे हैं।

पूरी दुनिया के खनन क्षेत्रों में बाल मजदूरी पर अंकुश लगाने और शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सीमित प्रयास किए गए हैं या उनके बारे में कम अध्ययन किया गया है। पेरू में बहुत सारे गैर-सरकारी संगठनों, आईएलओ और पेरू सरकार तथा अमेरिकी श्रम विभाग ने मिलकर देश की खानों में बाल मजदूरी खत्म करने के लिए एक शैक्षिक परियोजना शुरू की है। इस परियोजना का मकसद बच्चों को सोने की खानों से निकाल कर उन्हें अच्छी शिक्षा प्रदान करना है।[134]

131. महिला खान मजदूरों के साथ साक्षात्कार, जिला बेल्लारी, कर्नाटक, अगस्त 2009
132. खान मजदूरों के साथ साक्षात्कार, जिला बेल्लारी, कर्नाटक, जून 2009
133. निदेशक, डॉन बोस्को शेल्टर के साथ साक्षात्कार, जिला बेल्लारी, कर्नाटक, जून 2009
134. पामेला बाल्डविन, दि इम्पैक्ट ऑफ एजुकेशन इन पेरूज़ गोल्ड माइनिंग कम्युनिटीज़, 26 अक्तूबर 2006 http://ourworld.worldlearning.org/site/News2?page=NewsArticle&id=8467, 5 नवंबर 2009 को अपलोड किया गया।

बाल मजदूरी में इजाफा

"कोयले की धूल में अंटे, गहरी सुरंगों से भरे हुए ठेले खींच कर लाते युवाओं की तस्वीरें आईएलओ सदस्यों को बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में बाल मजदूरी के खिलाफ कन्वेंशन पारित करने को प्रेरित करने में काफी कारगर रहीं। शर्म की बात है कि सौ साल बाद भी एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका और यहां तक कि यूरोप के देशों में भी यह तस्वीर छोटे पैमाने की खानों में आज भी मौजूद है।"

- आईएलओ बाल श्रम एवं खनन उन्मूलन अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम।

दुनिया भर की खानों और खदानों में पांच-पांच साल की छोटी उम्र के बच्चे भी खौफनाक हालात में मजदूरी कर रहे हैं। खनन क्षेत्र में बाल मजदूरी अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका और एशिया के बहुत सारे भागों में जारी है। ज्यादातर बाल मजदूर छोटी खानों में काम कर रहे हैं जहां अकसर कोई कायदे-कानून नहीं होते और वे दुर्गम, पहुंच से बाहर इलाकों में स्थित होती हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) ने खानों में बाल मजदूरी को "बाल मजदूरी का सबसे भयानक रूप" बताया और कहा है कि "यद्यपि किसी भी तरह की बाल मजदूरी बच्चों के लिए हानिकारक है लेकिन जो बच्चे खनन उद्योग में काम कर रहे हैं वे खासतौर से ज्यादा खतरे में हैं। वे ऐसी परिस्थितियों में मजदूरी कर रहे हैं जो उनके स्वास्थ्य और खुशहाली के लिए भारी खतरा है और जो उन्हें हर रोज गंभीर चोटों या यहां तक कि मौत की आशंका में बनाए रखती हैं।"[135]

वैश्विक मंदी से छोटे पैमाने की खनन गतिविधियों में इजाफा हुआ है जिसके कारण बहुत सारे देशों में बाल मजदूरी बढ़ी है। 2008-09 में ज़ांबिया के तांबा खनन उद्योग को अपने व्यवसाय में कटौती करनी पड़ी। जब बेरोजगार खनिकों के लिए कहीं जाने का रास्ता नहीं बचा तो उन्हें नियमन फ्रेमवर्क के बाहर अमानवीय कार्य परिस्थितियों में चल रही अनौपचारिक, छोटी खानों (जो पहले बड़ी खानों का मुकाबला नहीं कर सकती थीं क्योंकि तांबे की कीमतें ऊंची थीं) में मजदूरी करनी पड़ी। क्योंकि ऐसे परिवारों की संख्या बढ़ती जा रही है जो तांबे की मांग में आई हालिया गिरावट से परेशान हैं इसलिए बच्चों को इन छोटी खानों में काम के लिए मजबूर होना पड़ रहा है।[136]

भारत में वैश्विक मंदी के चलते खनिज पदार्थों की मांग में गिरावट आई है। देश के कुछ भागों में 2008 के बाद खनन गतिविधियों में गिरावट देखी जा सकती है। इससे पता चलता है कि इस उद्योग का स्वरूप कितना अस्थिर है क्योंकि बहुत सारे खान मजदूर इस मंदी के कारण रातों रात सड़क पर आ गए हैं। क्योंकि ये मजदूर दिहाड़ी मजदूर थे और उनके पास कोई अनुबंध या रोजगार अधिकार नहीं थे इसलिए उन्हें बेरोजगारी के मद में कोई मुआवजा या कोई नोटिस भी नहीं दिया गया था। कर्नाटक के बेल्लारी जिले के स्थानीय लोगों ने बताया कि वहां के खनन क्षेत्र में बाल मजदूरी बढ़ गई है क्योंकि 2000-2005 की तेजी के बाद लोहे और मैंगनीज़ की मांग में गिरावट आई है। बाल मजदूरी में कमी सरकार या

खनन उद्योग में बाल मजदूरी

ये ठंडी, अंधेरी और खतरनाक "अनधिकृत" व गैरकानूनी कोयला व सोना खानें बच्चों के लिए नहीं हैं। भयानक गरीबी और शिक्षा तक पहुंच के अभाव की वजह से कुछ बच्चों ने मान लिया है कि उनके पास इन खतरों का सामना करने के अलावा कोई चारा नहीं है। कुछ खानों में बच्चे जमीन से 90 मीटर नीचे तक काम करने जाते हैं और उनके पास आने-जाने के लिए सिर्फ एक रस्सी होती है। इन गहरे गड्ढों में न तो हवा निकासी का इंतजाम होता है और न ही उजाला। वे रोशनी के लिए फ्लैश लाइट या मोमबत्ती लेकर जाते हैं। लघु खनन कार्यों में बाल मजदूर बहुत सारी चट्टानों को खोद कर निकालते हैं, नदियों में गोता लगाते हैं और खनिज पदार्थों के लिए पानी से भरी सुरंगों में काम करते हैं। वे भूमिगत विस्फोटों के लिए विस्फोटक लगाते हैं और ऐसी संकरी सुरंगों से गुजरते हैं जो सिर्फ उनके शरीर जितनी चौड़ी होती है। खदानों में बच्चे मिट्टी, पत्थर और धूल निकालते हैं, उसे सिर पर या पीठ पर ढोते हैं और घंटों तक बड़ी-बड़ी चट्टानों को तोड़ कर उसकी कंकड़ बनाते हैं। सड़कों और इमारतों के लिए निर्माण सामग्री तैयार करते हुए उनके पास अपने से भी बड़े औजार होते हैं।

स्रोत : आईएलओ एशिया प्रशांत क्षेत्रीय कार्यालय, प्रेस वक्तव्य: कोल्ड, डार्क ऐण्ड डेंजेरस-एशियन चिल्ड्रेन इन माइनिंग, 9 जून 2005.

एक बाल खनिक का जीवन

रानी (बदला हुआ नाम) 10 साल की है और वह जोधपुर, राजस्थान की बलुआ पत्थर खानों में काम करती है। उसे दिन भर में 70 रुपये मिलते हैं। वह सवेरे 9 बजे से शाम 5 बजे तक खानों का कचरा साफ करती है। वह महीने में लगभग 15 दिन ही काम कर पाती है क्योंकि रोज काम करने से थक जाती है और उसे आराम की जरूरत होती है। कई बार उसे काम नहीं मिलता इसलिए भी उसे खाली हाथ बैठना पड़ता है। अपने जीवन में वह सिर्फ दो दिन स्कूल गई है (एक एनजीओ द्वारा संचालित बालवाड़ी में)। वह गुटके की आदी हो चुकी है और अपने लिए साबुन और गुटके के वास्ते मां से झगड़ा करती है।

स्रोत : जोधपुर जिले में एक साक्षात्कार, राजस्थान।

महाराष्ट्र की एक खान में मजदूरी करने वाली 12 साल की एक लड़की ने बताया, "मेरे पिता किसी बीमारी से मर गए थे इसलिए मुझे भी मां के साथ खदान में जाना पड़ा।" जब उससे पूछा गया कि वह क्या-क्या करती है तो फूट-फूट कर रोने लगी।

स्रोत : जिला पुणे, महाराष्ट्र की एक पत्थर खदान में लिया गया साक्षात्कार।

135. आईएलओ, डिगिंग फॉर सरवाइवल : दि चाइल्ड माइनर्स, 2005

136. आईएलओ, दि ग्लोबल क्राइसिस ऐण्ड राइजिंग चाइल्ड लेबर इन ज़ाम्बियाज़ माइनिंग कम्युनिटीज : आर वी फेसिंग ए डाउनवर्ड डिसेंट वर्क स्पाइरल?, 10 अगस्त 2009

टेबल 1.4 : भारत की खानों में काम करने वाले बच्चों की कुल संख्या (मुख्य और सीमांत श्रमिक)

राज्य	कुल मुख्य और सीमांत श्रमिक	
	5-14 वर्ष	5-19 वर्ष
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	11	107
आंध्र प्रदेश	11,660	37,586
अरुणाचल प्रदेश	3	30
असम	591	3,101
बिहार	689	2,906
चंडीगढ़	2	17
छत्तीसगढ़	426	2,897
दादरा और नगर हवेली	13	97
दमण और दीव	2	18
दिल्ली	939	3,208
गोवा	196	1,198
गुजरात	2,120	12,323
हरियाणा	886	4,473
हिमाचल प्रदेश	20	453
जम्मू और कश्मीर	58	268
झारखंड	2,862	13,346
कर्नाटक	4,669	18,276
केरल	239	3,487
लक्षद्वीप	0	0
मध्य प्रदेश	2,747	12,655
महाराष्ट्र	2,095	11,758
मणिपुर	5	36
मेघालय	154	881
मिजोरम	64	216
नागालैंड	3	54
उड़ीसा	2,257	11,203
पुदुचेरी	11	57
पंजाब	61	537
राजस्थान	4,296	29,498
सिक्किम	26	148
तमिलनाडु	2,708	14,879
त्रिपुरा	76	198
उत्तराखंड	2,045	4,870
उत्तर प्रदेश	1,094	6,309
पश्चिम बंगाल	2,107	9,630
भारत	**45,135**	**206,720**

स्रोत: भारत की जनगणना, 2001.

खान कंपनियों द्वारा इस समस्या को दूर करने के लिए की गई सकारात्मक चेष्टाओं का परिणाम नहीं है बल्कि इसका कारण यह है कि मंदी की वजह से खनन कार्य ही सिमट गए हैं। इनमें से बहुत सारे बच्चों को शिक्षा पाने की बजाय दूसरे कामों में रोजगार ढूंढना पड़ रहा है और जैसे ही बाजार तेजी लौटेगी तथा खनिज संसाधनों की मांग बढ़ेगी, खनन उद्योग में बाल मजदूरी फिर बढ़ने लगेगी।

खनन उद्योग में काम करने वाले बाल मजदूरों की संख्या का पता लगाना मुश्किल है क्योंकि ये खानें बहुत दुर्गम हैं, इनका स्वरूप अनौपचारिक है और वहां तक आना-जाना आसान नहीं है। आईएलओ का अनुमान है कि दुनिया भर की खानों में 10 लाख से ज्यादा बच्चे मजदूरी कर रहे हैं।[137] वास्तविक संख्या इससे काफी ज्यादा हो सकती है क्योंकि आईएलओ का कहना है कि अकेले नाइजीरिया में ही 250,000 बच्चे खान मजदूर हैं। अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका के बहुत सारे देशों के खान उद्योग में बाल मजदूरी काफी व्यापक पैमाने पर है जहां बच्चे प्रायः छोटी भूमिगत और खुली खानों में काम करते देखे जा सकते हैं। वे सोना, चांदी, लोहा, टिन, पन्ना, कोयला, क्रोम, संगमरमर और पत्थर सहित विभिन्न प्रकार के अयस्क और खनिज पदार्थों के उत्खनन व प्रसंस्करण में काम करते हैं। आईएलओ का कहना है कि "आज के बाल खनिक बड़ी खनन कंपनियों के लिए प्रत्यक्ष रूप से काम नहीं करते। हो सकता है वे किसी छोटी कोयला खनन या खुदाई कंपनी में काम करते हों या बड़ी खानों के आसपास छोटे-मोटे टुकड़े पर अपने परिवार के साथ काम कर रहे हों।"[138]

भारत के खनन उद्योग में काम करने वाले बच्चों की सटीक संख्या बताना बहुत मुश्किल है। जनगणना 2001 के मुताबिक 5-14 साल उम्र के 45,135 बच्चे खान उद्योग में काम कर रहे थे (देखें टेबल 11.4) **जिसका मतलब यह है कि खान उद्योग में भारत के लगभग 7 प्रतिशत बाल मजदूर काम करते हैं।** जनगणना में बाल मजदूरी के आंकड़े सिर्फ 14 साल की उम्र तक ही उपलब्ध हैं। लेकिन अन्य आंकड़ों से पता चलता है कि 15 से 19 साल के बच्चों की भी एक विशाल संख्या इस क्षेत्र में काम करती है। जनगणना के मुताबिक ऐसे बच्चों की संख्या 161,585 है। इसका मतलब है कि खानों में काम करने वाले 15 से 18 साल के बच्चों की संख्या बहुत बड़ी होगी। **खान क्षेत्रों में फील्ड विज़िट्स से यह बात साबित हो जाती है। देश भर की खानों और खदानों में इस आयु वर्ग के बच्चे बड़ी संख्या में दिखाई देते हैं क्योंकि वे छोटे बच्चों के मुकाबले ज्यादा कठोर शारीरिक श्रम कर सकते हैं।**

जनगणना में तैयार किए गए आंकड़ों से समस्या का पूरा पता नहीं चलता। राजस्थान के खनन उद्योग में काम कर रहे संगठनों का अनुमान है कि पूरे राज्य की खानों में काम करने वाले बच्चों की संख्या लगभग 375,000

137. आईएलओ, डिगिंग फॉर सरवाइवलः दि चाइल्ड माइनर्स, 2005
138. उपरोक्त।

"मेरा नाम सुदीप है। मैं अपने पिता के साथ 3-4 साल से पत्थर की खदानों में काम कर रहा हूं। अब मेरी उम्र 18 साल है। मैं पन्ना गांव का रहने वाला हूं। जो काम करता हूं उसके लिए मेहनताने की कोई दर तय नहीं है। पत्थर की एक प्लेट खोदने के लिए हमें 70-120 रुपये मिलते हैं। एक दिन में हम मिलकर 5-6 प्लेट पत्थर ही निकाल पाते हैं। मेरे खयाल में मैं दिन भर में 100-120 रुपये कमा लेता हूं। लेकिन महीने भर में मैं सिर्फ 12-15 दिन ही काम कर पाता हूं क्योंकि इस काम में बहुत मेहनत है। मैं कभी स्कूल नहीं गया।"

स्रोतः पूर्णा पन्ना स्टोन ऐण्ड डायमंड क्वेरीज़ में लिया गया साक्षात्कार, पन्ना, अगस्त 2009

है। कर्नाटक में भी खानों में कम से कम कुछ लाख बच्चे[139] मजदूरी कर रहे हैं। इस तरह, भारत की खानों में काम करने वाले बच्चों की संख्या 10 लाख के आसपास जरूर होगी जबकि आईएलओ ने दुनिया भर में ही बाल मजदूरों की इतनी संख्या आंकी है। **भारत की खानों में काम करने वाले बच्चों से संबंधित सटीक आंकड़े पेश करने में एक समस्या यह है कि बच्चों और महिलाओं के श्रम को अकसर स्पष्ट रूप से दर्ज नहीं किया जाता है। बहुत सारी रिपोर्टों और आंकड़ों में महिलाओं और बच्चों को अकसर एक साथ रख दिया जाता है।**[141]

कर्नाटक के बेल्लारी जिले में स्थित कल्लाली में मदिगा समुदाय (एक अनुसूचित जाति) के बहुत सारे बच्चे पत्थर तोड़ने के काम में लगे रहते हैं जो कि उनका परंपरागत व्यवसाय बताया जाता है। इस इलाके के गांवों में 8-14 साल के 20 प्रतिशत से ज्यादा बच्चे खानों में काम करते बताए जाते हैं। हमने जिन बच्चों से बात की उनका कहना था कि आसपास के इलाके में 100 से ज्यादा क्रशिंग मशीन हैं और प्रत्येक क्रशिंग स्थल पर कम से कम 20-25 बच्चे काम कर रहे हैं। इनमें से ज्यादातर मजदूर लड़कियां होती हैं और उन्हें 100-110 रुपये दिहाड़ी मिलती है।[142]

मध्य प्रदेश के पन्ना जिले में स्थानीय लोगों ने बताया कि ये लड़के-लड़कियां प्रायः 10 साल की उम्र से मजदूरी करने लगते हैं। बदोर गांव में बुजुर्गों ने बताया कि गांव में लगभग 200 बच्चे हैं जो प्राथमिक स्कूल में जाते हैं। वे पांचवीं कक्षा तक पढ़ाई छोड़ देते हैं और खान मजदूरों में शामिल हो जाते हैं। मां-बाप ने बताया कि क्योंकि इन बच्चों को भविष्य में परिवार का पेट पालना है इसलिए उन्हें जल्दी से जल्दी काम सीख लेना चाहिए।[143] पन्ना जिले में हीरे की एक खान में शोध टीम को 6 बच्चे अपने परिवार के साथ काम करते मिले। इनमें से 4 की उम्र 12 साल से कम थी और वे अपने मां-बाप के साथ धूल-मिट्टी साफ कर रहे थे। उनके मां-बाप ने बताया कि स्कूल में बच्चों का नाम लिखवाया हुआ है लेकिन वे आधे दिन खानों में काम करते हैं और दोपहर बाद स्कूल चले जाते हैं।[144]

मन्नौर गांव में लगभग 300 बच्चे हैं जिनमें से सिर्फ 20 स्कूल जाते हैं। जब ये बच्चे 10-12 साल की उम्र तक पहुंचते हैं तो पढ़ाई छोड़कर हीरे की खानों में मजदूरी करने लगते हैं। लोगों ने बताया कि इस गांव में सिर्फ दो बच्चों ने कक्षा 5 तक पढ़ाई की है।

सरकार और उद्योग जगत की लापरवाही वहां भी साफ देखी जा सकती है जहां हीरे जैसे कीमती पत्थर निकाले जाते हैं। मध्य प्रदेश में बच्चे स्थानीय ठेकेदारों के लिए हीरे ढूंढते हैं। यहां काफी पैसा दांव पर लगा रहता है लेकिन व्यापार की रूपरेखा जान-बूझकर ओझल रखी जाती है। बेल्लारी में ओबुलापुरम खानों और वहां प्रचलित बाल मजदूरी को इसका एक और उदाहरण माना जा सकता है। बाल मजदूरों से काम करवाने वाले स्थानीय ठेकेदार तथ्यों को छिपाने का दिखावा तक नहीं करते। बेल्लारी में उन्होंने बताया कि वे नियम-कानूनों से परे हैं। वे कानूनों की फिक्र नहीं करते क्योंकि "ओबुलापुरम माइन्स" वाले सब संभाल लेते हैं। इन वक्तव्यों में कानूनों की बेशर्मी भरी अवहेलना दिखाई देती है क्योंकि खान मालिकों को लगता है कि कानून के रखवालों को आसानी से खरीदा जा सकता है। हमने ज्यादातर इलाकों में पाया कि खनन उद्योग एक बहुत गंदा व्यवसाय है जहां कानूनी की बजाय गैरकानूनी तौर-तरीके ज्यादा प्रचलित हैं।

गरीबी को अकसर बाल मजदूरी का एकमात्र कारण बताया जाता है। वास्तविक तस्वीर इससे कहीं ज्यादा जटिल है। असंख्य सामाजिक-आर्थिक कारकों ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी है कि इक्कीसवीं शताब्दी में भी असंख्य बच्चे खानों में काम करते दिखाई पड़ते हैं। **व्यवस्थागत और जाना-बूझा कारण यह है कि बाल मजदूरी सस्ती है और खानों में ठेकेदारों को बाल मजदूरी से कोई गुरेज नहीं है।** दूसरी तरफ बच्चे विरोध नहीं करते, उनको आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है और वे सौदेबाजी नहीं कर सकते इसलिए भी उनको फौरन काम पर रख लिया जाता है। बच्चों को अकसर इसलिए खानों में मजदूरी करनी पड़ती है क्योंकि उनके मां-बाप को बहुत कम दिहाड़ी मिलती है। उन्हें समय से पहले ही मजदूरों की कतार में धकेल दिया जाता है ताकि वे अपने परिवार का पेट पाल सकें।

139. 1 लाख = 100,000
140. जांच दल, आवर माइनिंग चिल्ड्रेन, अप्रैल 2005, http://rimmrights.org/Documents/2005-India-Bellary%20fact%20finding%20report.pdf, 10 फरवरी 2010 को अपलोड किया गया।
141. के लाहिरी-दत्त, डिगिंग टू सरवाइव, वीमेन्स लाइवलीहुड्स इन साउथ एशियाज़ स्माल माइन्स ऐण्ड क्वेरीज़ 2008, 2008
142. बच्चों के साथ साक्षात्कार, कल्लाली, जिला बेल्लारी, कर्नाटक, जून 2009
143. खनन प्रभावित समुदायों के साथ साक्षत्कार, जिला पन्ना, मध्य प्रदेश, सितंबर 2009
144. हीरा खान में साक्षात्कार, जिला पन्ना, मध्य प्रदेश, सितंबर 2009

खनन क्षेत्र में बहुत सारे मजदूर प्रवासी मजदूर होते हैं, इसलिए महिलाएं भी प्रायः अपने परिवारों के साथ नई जगह चली जाती हैं। इस तरह, बच्चों के साथ मिलकर पूरा परिवार मजदूरी करने लगता है।[145] खनन क्षेत्रों में बच्चों की देखभाल सुविधाओं व स्कूलों का अभाव एक और पहलू है जिससे पता चलता है कि खानों में बच्चों की संख्या इतनी ज्यादा क्यों है। जब नव प्रवासियों के रूप में महिलाएं खानों में मजदूरी के लिए जाती हैं और उनके पास बच्चों की देखभाल के लिए कोई सहारा नहीं होता तो उन्हें अपने बच्चों को भी मजबूरन कार्यस्थल पर लेकर जाना पड़ता है।

खान उद्योग में बंधुआ मजदूरी का प्रचलन भी बच्चों को खानों में धकेल देता है। राजस्थान में खान मजदूरों के घायल होने और बीमार होने की दर काफी ज्यादा रही है जबकि वहां स्वास्थ्य की देखभाल या बीमे का इंतजाम नहीं है। इसका परिणाम ये होता है कि वयस्क मजदूर अकसर कर्ज के जाल में फंस जाते हैं क्योंकि बुरे वक्त में उन्हें ठेकेदारों से ही कर्जा लेना पड़ता है। इसके बाद उन्हें यह कर्जा चुकाने के नाम पर मुफ्त मजदूरी करनी पड़ती है। इस तरह की बंधुआ मजदूरी अकसर पीढ़ी-दर-पीढ़ी जारी रहती है और आगे चलकर बच्चों को भी अपने मां-बाप का कर्जा उतारने के लिए बंधुआ मजदूरी करनी पड़ती है।

बाल मजदूरी परिवार में गरीबी के चक्र को कायम रखती है। बच्चों को छोटी खान में जो अस्थिर किस्म का काम करना पड़ता है और जितनी मामूली मजदूरी मिलती है उससे इस बात की संभावना बहुत कम रह जाती है कि ये बच्चे कभी भी खुद को उस गरीबी से आजाद कर पाएंगे जिसमें वे पैदा हुए थे। लड़कियों के लिए ये जोखिम और भी भारी होता है क्योंकि इस अमानवीय कमाई की वजह से बहुत सारी लड़कियों को वेश्यावृत्ति जैसे गंभीर शोषण में धकेल दिया जाता है।[146]

> सृष्टि (बदला हुआ नाम) 16 साल की है। वह एक खान में काम करती है। उसके पिता भी खान श्रमिक थे जिनकी तकरीबन पांच साल पहले बीमारी से मौत हो चुकी है। उसकी एक विवाहित बड़ी बहन है और एक छोटी बहन घर पर रहती है। तीन भाई स्कूल में पढ़ते हैं और एक बड़ा भाई है जो एक खान में काम करता है। उसकी मां भी मजदूरी करती है। सृष्टि को सुबह 9 बजे से शाम 5 बजे तक लगभग 100 रुपये की दिहाड़ी मिलती है। उसने कहा कि वह लगभग 4 साल से मजदूरी कर रही है। वह महीने में 2-3 दिन वह काम पर नहीं जा पाती और आराम करती है। उसकी टांगों और पीठ में दर्द रहता है। सृष्टि कभी स्कूल नहीं गई।
>
> स्रोतः जिला जोधपुर, राजस्थान, में लिया गया साक्षात्कार, अक्टूबर 2009

शोधों में बार-बार ये बात साबित हुई है कि अगर बच्चों को व्यावहारिक विकल्प दिए जाएं तो वे स्कूल जाना चाहते हैं। मां-बाप भी बेहतर भविष्य की उम्मीद में उन्हें पढ़ने-लिखने का मौका देना चाहते हैं।[147] बाल मजदूर और उनके मां-बाप, कोई भी खनन कार्यों को आजीविका का "वांछित" विकल्प नहीं मानते। इसका मतलब है कि अगर बच्चे खानों में मजदूरी कर रहे हैं तो यह उनके लिए जिंदा रहने का आखिरी साधन होता है।

खानों में काम करने के अलावा खान स्थलों के आसपास बाल मजदूरी के दूसरे रूप भी दिखाई देते हैं। राजस्थान के जोधपुर जिले में फील्ड विजिट से इस बात की पुष्टि हुई कि यद्यपि कुछ बच्चे खानों, खेती या ढाबों में सवेतन मजदूरी कर रहे हैं - लेकिन इससे बहुत ज्यादा बच्चे ऐसे काम कर रहे हैं जिससे उनके मां-बाप मजदूरी पर जा सकें।[148] बकरियों को चराने ले जाना, पानी और जलावन लाना, छोटे भाई-बहनों की देखभाल करना और दूसरे घरेलू काम संभालना इसी श्रेणी में आता है।

खनन इलाकों में बाल मजदूरी का विश्लेषण करते हुए ऐसी गतिविधियों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि ये बच्चे भी शिक्षा के अधिकार से वंचित हैं और उनके लिए स्कूल जाना एक सपना है।

कार्य परिस्थितियां

आईएलओ ने खान मजदूरी को "सबसे निकृष्ट श्रम" के रूप में वर्गीकृत किया है क्योंकि इसमें खतरे बहुत गंभीर होते हैं और मजदूरों के सामने मौत, चोट और बीमारियों की आशंका लगातार बनी रहती है।[149] बच्चे लंबे समय तक सुरक्षात्मक उपकरणों, पोशाक या प्रशिक्षण के बिना लंबी-लंबी पालियों में काम करते हैं। काम के समय वे बहुत भारी तापमान झेलते हैं और उन्हें धूप से बचने का कोई इंतजाम नहीं मिलता। ये बाल मजदूर न केवल धूल और गैसों के बीच रहने के कारण फेफड़ों की बीमारियों से परेशान रहते हैं बल्कि वे भारी काम की वजह से थकान और पेशियों में खिंचाव भी झेलते हैं। उनकी देह अभी भी बढ़ रही है इसलिए वयस्कों के मुकाबले उनके सामने चोट पहुंचने का खतरा ज्यादा रहता है। बहुत सारी चोटें और स्वास्थ्य समस्याएं उन्हें स्थायी रूप से विकलांग भी बना सकती हैं और ऐसी कई समस्याएं तब तक उजागर नहीं होतीं जब तक ये बच्चे वयस्क मजदूर नहीं बन जाते।[150]

145. के लाहिरी-दत्त, डिगिंग टू सरवाइव, वीमेन्स लाइवलीहुड्स इन साउथ एशियाज़ स्माल माइन्स ऐण्ड क्वेरीज़, 2008
146. ग्रेविस, टेल्स ऑफ वो : ए रिपोर्ट ऑन दि चाइल्ड लेबर इन दि माइन्स ऑफ जोधपुर ऐण्ड मकराना, मार्च 2004, पृष्ठ 16
147. उपरोक्त; तथा देश भर के खनन प्रभावित समुदायों के साथ साक्षात्कार, 2009
148. एमएलपीसी, ब्रोकन हार्ड, http://www.indianet.nl/steengroeven/factsheet/Brokenhard.pdf, 11 फरवरी 2010 को अपलोड किया गया।
149. आईएलओ, ऐलिमिनेटिंग चाइल्ड लेबर इन माइनिंग ऐण्ड क्वेरिंग, 2005
150. उपरोक्त।

दुनिया भर के अनौपचारिक खनन क्षेत्र में कार्य परिस्थितियां बहुत खराब हैं और भारत में भी स्थिति अलग नहीं हैं। श्रम परिस्थितियों के मामले में असंगठित क्षेत्र कानूनी सुरक्षा के दायरे से बाहर रहता है इसलिए ज्यादातर मजदूर खतरनाक, अनियंत्रित परिस्थितियों में काम करते हैं। उनकी मजदूरी व्यवसाय और इलाके के हिसाब से अलग-अलग रहती है लेकिन हमेशा ही संबंधित राज्य में लागू न्यूनतम मजदूरी से प्रायः कम होती है। इसके अलावा मजदूरी के अस्थायी स्वरूप की वजह से उन्हें बीमारी के समय वेतन सहित छुट्टी या स्वास्थ्य बीमा जैसे रोजगार लाभ भी नहीं मिलते। इसलिए बीमारी जैसी कठिन परिस्थितियों में मजदूर अकसर कर्जे में फंस जाते हैं।

छोटी खानों के हालात लगभग हमेशा बहुत आदिम होते हैं। खान ठेकेदार मजदूरों को एक जीने लायक जिंदगी देने के लिए कुछ भी नहीं करते। **अध्ययन के दौरान हम जिन खान स्थलों पर गए वहां एक भी जगह शौचालय या पीने के पानी की व्यवस्था नहीं थी। औरतों और लड़कियों के लिए शौच आदि की व्यवस्था का अभाव बहुत ज्यादा मायने रखता है। कार्यस्थलों पर कोई छायादार जगह या कमरा नहीं होता जिसके चलते बच्चों को भी सुरक्षित जगह नहीं मिलती और वे पूरे दिन खुले में काम करते हैं।** अकसर होने वाली दुर्घटनाओं के बावजूद हमें अभी एक भी ऐसी खान नहीं मिली जहां ठेकेदारों ने मजदूरों को सुरक्षा के लिए हेलमेट या मुखौटे जैसी कोई चीजें दी हों या कार्यस्थल पर फर्स्ट एड की सुविधाएं मुहैया कराई हों। दुर्घटना होने या बीमार पड़ने पर मजदूरों को अकसर दूर स्थित स्वास्थ्य केंद्र की शरण में ही जाना पड़ता है।

बाल मजदूरी के लिए कानूनी फ्रेमवर्क

भारत में बाल मजदूरी के खिलाफ कोई समावेशी पाबंदी नहीं है। बाल श्रम (निषेध एवं नियमन) अधिनियम, 1986 में कुछ खास व्यवसायों में बच्चों को नौकरी पर रखना निषिद्ध घोषित किया गया है जबकि कुछ अन्य व्यवसायों में बच्चों को काम पर रखने के बारे में नियम तय किए गए हैं। 1986 में इस कानून के पारित होने के बाद से बच्चों के लिए खतरनाक माने जाने वाले व्यवसायों की सूची कई बार बढ़ाई जा चुकी है लेकिन खनन और कोलियरीज़ में मजदूरी को शुरू से ही इस सूची में रखा गया था और इस दौरान खनन क्षेत्र से संबंधित अन्य किसी भी काम को इस सूची में नहीं जोड़ा गया है। संविधान के अनुच्छेद 24 में कहा गया है कि "14 साल से कम उम्र के किसी भी बच्चे को किसी भी फैक्ट्री या खान में या किसी भी दूसरे खतरनाक व्यवसाय में काम पर नहीं रखा जाएगा।" इसके बावजूद, संविधान के प्रभाव में आने के 60 साल बाद भी देश के लाखों बच्चे खानों और खदानों में काम कर रहे हैं।

इस स्थिति पर सरकार की ओर से यह दलील दी जाती रही है कि क्योंकि खानों में बाल मजदूरी गैरकानूनी है इसलिए यह कोई समस्या नहीं है। आज भी सरकार ये मानने को तैयार नहीं है कि खानों में बाल मजदूर नौकरी कर रहे हैं। ये बात खानों में बाल मजदूरी से संबंधित सवालों पर संसद में दिए गए उत्तरों को देखकर समझी जा सकती है। कुछ ऐसी ही प्रतिक्रिया तब आई थी जब 2003 में ये सवाल उठाया गया था।[151] बाद में भी सरकार का यही जवाब रहा है। 2005 में श्रम एवं रोजगार मंत्री से पूछा गया था कि अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) के इस निष्कर्ष पर सरकार की क्या प्रतिक्रिया है कि दुनिया भर में 5 से 17 साल की उम्र के 10 लाख बच्चे खानों और खदानों में काम कर रहे हैं। अगर यह सच है तो इस बारे में सरकार की क्या प्रतिक्रिया है; क्या सरकार ने भारत की खानों और खदानों में काम कर रहे 5 से 17 साल के बच्चों की सटीक संख्या पता लगा ली है; यदि हां तो उसका क्या विवरण है; और इस समस्या को दूर करने के लिए क्या प्रयास किए जा रहे हैं?

मंत्री श्री चंद्रशेखर राव ने इस सवाल के जवाब में कहा था कि इस रिपोर्ट में भारत का कहीं जिक्र नहीं किया गया है। उन्होंने कहा कि खनन व्यवसायों को पहले ही बाल श्रम (निषेध एवं नियमन) अधिनियम, 1986 के अंतर्गत बच्चों के लिए निषिद्ध खतरनाक व्यवसायों में सूचीबद्ध किया जा चुका है। उन्होंने अपने उत्तर में यह भी कहा कि बाल मजदूरों के बारे में हर व्यवसाय से संबंधित आंकड़े नहीं रखे जाते हैं। (ये हैरानी की बात है क्योंकि टेबल 1.4 में उद्धृत जनगणना 2001 में यह सूचना उपलब्ध है।) मंत्री महोदय ने कहा कि सरकार खतरनाक व्यवसायों और प्रक्रियाओं में लगे बाल मजदूरों की मुक्ति और पुनर्वास के लिए राष्ट्रीय बाल श्रमिक परियोजना (एनसीएलपी) लागू कर रही है। इस योजना में बाल मजदूरों को विशेष स्कूलों में दाखिल कराया जाता है और उन्हें शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, स्वास्थ्य सेवा, वजीफा आदि देकर अंत में सामान्य स्कूलों में भर्ती करा दिया जाता है।[152]

उसी साल होसपेट और बेल्लारी की लौह अयस्क खानों में की गई एक जांच (जहां से प्रस्तुत जांच का सूत्रपात हुआ) के आधार पर श्रम मंत्री से एक बार फिर पूछा गया कि क्या अभी भी देश की खानों में कई लाख बच्चे मजदूरी कर रहे हैं और उनमें से बहुत सारे बच्चे 5 साल की उम्र में भी बेहद खतरनाक परिस्थितियों में काम करते हैं (दि हिंदू, 16 मई 2005 में उधृत); तथा क्या खनन क्षेत्रों में स्कूल ड्रॉपआउट दर ज्यादा है; और क्या देश की सभी खानों में जांच की मांग की जा रही है और बाल मजदूरी के बारे में एक समग्र रिपोर्ट की मांग की जा रही है? माननीय मंत्रीय महोदय ने अपने उत्तर में कहा था कि 16 मई

151. जांच दल, आवर माइनिंग चिल्ड्रेन, अप्रैल 2005, http://rimmrights.org/Documents/2005-India-Bellary%20fact%20finding%20report.pdf, 10 फरवरी 2010 को अपलोड किया गया।
152. लोकसभा तारांकित प्रश्न संख्या 19, 25.7.2005 को उत्तर दिया गया।

2005 के दि हिंदू अखबार में जा दावा किया गया था कि कर्नाटक में लाखों बच्चे खानों में काम कर रहे हैं, वह सच नहीं है।

उन्होंने यह बात भी दोहराई कि खानों में बाल मजदूरों का इस्तेमाल बाल श्रम (निषेध एवं नियमन) अधिनियम, 1986 में निषिद्ध है क्योंकि खानों में मजदूरी को खतरनाक व्यवसाय माना जाता है और अगर कोई भी नियोक्ता 14 साल से कम उम्र के बच्चों को खानों में काम पर रखता है तो वह सजा का हकदार होता है जिसमें उसे जेल की सजा भी दी जा सकती है।

उन्होंने कहा कि कर्नाटक सरकार सहित सभी राज्य सरकारों को ये निर्देश दिया जा चुका है कि वे पूरे देश में खानों सहित सभी खतरनाक व्यवसायों में बाल मजदूरी को रोकने के लिए बाल श्रम (निषेध एवं नियमन) अधिनियम को सख्ती से लागू करें तथा सरकार इस कानून और राष्ट्रीय बाल श्रमिक परियोजना को असरदार ढंग से लागू करने के बारे में संजीदा है। उन्होंने कहा था, "हमारे देश में खनन एक बहुत व्यापक गतिविधि है। यह काम संगठित और असंगठित, दोनों क्षेत्र में चल रहा है। ऐसा दर्शाने वाले कोई साक्ष्य नहीं है कि खानों में काम करने वाले बच्चों में स्कूल ड्रॉपआउट दर देश के अन्य भागों की ड्रॉपआउट दर से ज्यादा है।"[153]

राष्ट्रीय बाल श्रमिक परियोजना (एनसीएलपी) बाल मजदूरी को खत्म करने के लिए चलाई गई सरकार की सबसे पुरानी योजना है। 1988 में शुरू की गई इस योजना में भारी बाल मजदूरी वाले जिलों में खतरनाक व्यवसायों में काम करने वाले बाल मजदूरों की मुक्ति व पुनर्वास का लक्ष्य तय किया गया था। इस योजना में रिहा कराए गए बच्चों के लिए विशेष स्कूलों की स्थापना और बच्चों को 100 रुपये प्रति माह वजीफे के साथ पोषण एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण और नियमित स्वास्थ्य जांच का अधिकार भी दिया गया था। एनसीएलपी योजना का दायरा दसवीं योजना में 250 जिलों तक फैला दिया गया था और अब ऐसे बहुत सारे जिले इस योजना के अंतर्गत आ चुके हैं जहां बड़े पैमाने पर खनन कार्य चल रहे हैं। इनमें छत्तीसगढ़, उड़ीसा और राजस्थान के भी कई जिले शामिल हैं। एनसीएलपी योजना की भारी आलोचना होती रही है क्योंकि यह योजना बहुत अधिक बच्चों तक नहीं पहुंच पाई है। दसवीं योजना के तहत स्वीकृत 150 जिलों में से यह परियोजना अभी सिर्फ 86 जिलों में लागू हुई है। अब इस योजना को अधिकृत रूप से 250 जिलों में फैला दिया गया है लेकिन अभी भी यह योजना सिर्फ आधे देश में ही लागू है।[154] हालांकि हमें मालूम है कि देश भर में खतरनाक व्यवसायों में अभी भी असंख्य बच्चे काम कर रहे हैं लेकिन मई 2007 तक एनसीएलपी योजना के तहत केवल 392,413 बच्चों को ही बाल मजदूरी से मुक्त कराया गया था।[155]

> अजीत (बदला हुआ नाम) टिकीरी के डोम कोरल गांव का रहने वाला है। उसकी उम्र 17 साल है। उसके पिता की पांच साल पहले मृत्यु हो गई थी इसलिए उसे परिवार का पेट पालने का जिम्मा खुद उठाना पड़ा। वह खानों में विभिन्न ठेकेदारों के तहत दिहाड़ी मजदूर है। उसे एक दिन में 60 रुपये के आसपास मिलते हैं। उसने बताया कि खनन कार्य सामुदायिक विरोध और हड़तालों की वजह से अस्थिर रहते हैं इसलिए उसकी आय भी स्थिर नहीं रहती। "मैं खान स्थल पर तरह-तरह के काम करता हूं क्योंकि वहां निर्माण कार्य चलता रहता है। काम बहुत मुश्किल है इसलिए मैं धीरे-धीरे शराब और गुटक का आदी हो गया हूं। मैं इससे नहीं बच सकता।"
>
> स्रोत: डोम कोरल, काशीपुर, उड़ीसा में लिया गया साक्षात्कार, 13 जून 2009.

फील्ड विजिट्स के दौरान एक चौंकाने वाली बात यह सामने आई कि जहां खनन प्रभावित बच्चे रह रहे हैं ऐसे इलाकों में शायद ही कोई एनसीएलपी स्कूल चालू था। ज्यादातर स्थानों पर स्थानीय एनजीओ ही बच्चों को यह सुविधा उपलब्ध करा रहे हैं। वे महाराष्ट्र के पुणे जिले की तरह पाषाण शालाओं के माध्यम से या कर्नाटक के बेल्लारी एवं संदुर जिलों में टेंट स्कूलों के जरिए बाल मजदूरों को शिक्षा दे रहे हैं।

खनन व्यवसाय में बाल मजदूरी के बारे में मौजूद राष्ट्रीय कानूनों के अलावा कई अंतर्राष्ट्रीय कन्वेंशन भी पारित की गई हैं। बाल अधिकार संधि में दी गई बाल अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय रूपरेखा, जिस पर 1992 में भारत ने दस्तखत कर दिये थे, के अनुच्छेद 32 में कहा गया है कि :

"सदस्य देश इस बात को मान्यता देते हैं कि प्रत्येक बच्चे को आर्थिक शोषण से सुरक्षा का अधिकार है और उसे ऐसा कोई भी कार्य नहीं करने देना चाहिए जो उसके लिए खतरनाक हो सकता है या उसकी शिक्षा में व्यवधान डाल सकता है या उसके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है या उसके शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, नैतिक अथवा सामाजिक विकास के लिए हानिकारक हो सकता है।"[156]

इस समझौते के बावजूद असंख्य बच्चे खानों में खतरनाक किस्म की मजदूरी कर रहे हैं। भारत ने आईएलओ की कन्वेंशन सी123 न्यूनतम आयु (असंगठित श्रम) कन्वेंशन, 1965 पर भी 1975 में दस्तख्त कर दिए थे जिसमें भूमिगत खानों में 16 साल से कम उम्र के बच्चों की मजदूरी प्रतिबंधित है।

153. लोकसभा तारांकित प्रश्न संख्या 208, 8.8.2005 को उत्तर दिया गया।

154. हक : सेंटर फॉर चाइल्ड राइट्स, स्टिल आउट ऑफ फोकस : स्टेटस ऑफ इंडियाज़ चिल्ड्रेन, 2008

155. indiastat.com से ली गई सूचना; राज्य सभा अतारांकित प्रश्न संख्या 3759, दिनांक 9.5.2007, लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 994 दिनांक 20.8.2007 तथा लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 2415, दिनांक 3.12.2007 द्वारा जारी किए गए आंकड़ों से संकलित।

156. बाल अधिकार संधि, अनुच्छेद 32

खानों में बाल मजदूरी रोकने के प्रयास

हालांकि गैर-सरकारी संगठनों और आईएलओ द्वारा दुनिया भर के खान उद्योग में बाल मजदूरी की समस्या को खत्म करने के लिए कुछ प्रयास किए गए हैं लेकिन अभी भी यह उपेक्षित क्षेत्र है। इसका एक कारण शायद यह है कि इस समस्या के बारे में अभी भी मात्रात्मक आंकड़ों का अभाव है। आईएलओ ने अंतर्राष्ट्रीय बाल श्रम उन्मूलन कार्यक्रम (आईपैक) में खनन उद्योग को अपने वैश्विक प्रयासों का मुख्य विषय बनाया है क्योंकि यह बहुत खतरनाक रोजगार माना जाता है। आईएलओ आईपैक द्वारा मंगोलिया, तंज़ानिया, नाइजीरिया और दक्षिण अफ्रीका स्थित ऐंडीज़ के आसपास के देशों में चलाई गई प्रायोगिक परियोजनाओं से पता चलता है कि बाल खनिकों को मदद देने के लिए सबसे अच्छा रास्ता यह है कि बच्चों के समुदायों के साथ काम किया जाए।[157] आईपैक कार्यक्रम में स्पष्ट कहा गया है कि खनन समुदायों को कोऑपरेटिव गठित करने और अपनी उत्पादकता बढ़ाने के लिए मशीनरी हासिल करने की दिशा में प्रेरित किया जा सकता जिससे बाल मजदूरी खत्म करने में मदद मिल सकती है। आईएलओ ने स्वीकार किया है कि यह परियोजना जमीनी धरातल पर व्यावहारिक ढंग से बाल खनिकों को मदद दे सकती है लेकिन इस प्रथा को हमेशा के लिए खत्म करने के लिए जो अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धता चाहिए वह केवल विश्वव्यापी जागरूकता से ही सुनिश्चित की जा सकती है।[158]

भारत में आईएलओ-आईपैक कार्यक्रम की ओर से आंध्र प्रदेश में एक परियोजना शुरू की गई थी। बाल मजदूरी खत्म करने के लिए लागू की गई इस परियोजना का एक हिस्सा राज्य की स्लेट खानों एवं फैक्ट्रियों में बाल मजदूरों की संख्या कम करने पर केंद्रित था।[159]

राष्ट्रीय बाल श्रमिक कार्यक्रम (एनसीएलपी) खतरनाक व्यवसायों में बाल मजदूरी खत्म करने के लिए सरकार द्वारा चलाया गया एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम था। खनन प्रभावित बच्चों के मामले में इससे जुड़ी दो समस्याएं दिखाई देती हैं: (1) क्योंकि सभी खनन संबंधी व्यवसायों को खतरनाक व्यवसायों की सूची में नहीं रखा गया है इसलिए खानों में काम करने वाले सारे बाल मजदूर इस कार्यक्रम के तहत नहीं आ पाते, तथा (2) जहां यह कार्यक्रम लागू है वहां भी इसके संचालन में भारी ढील दिखाई देती है। जैसा कि अब प्रचलन बन गया है, ज्यादातर सरकारी कार्यक्रम गैर-सरकारी संगठनों द्वारा चलाए जा रहे हैं। इस प्रसंग में सरकारी कार्यक्रम गैर-सरकारी संगठनों के जरिए बहुत मामूली पैसे पर चलाए जा रहे हैं इसलिए उनका संचालन बहुत खस्ता है और उनके पीछे ठोस प्रेरणा का अभाव है। क्योंकि सरकारी श्रम विभागों की ओर से बाल मजदूरी वाले इलाकों को चिन्हित करने के लिए बहुत मामूली प्रेरणा दिखाई देती है इसलिए सब कुछ स्थानीय एनजीओ की इच्छाशक्ति पर निर्भर रहता है।

हिंसा और उत्पीड़न की अधिक आशंका

ज्यादातर खनन क्षेत्रों का वातावरण बच्चों के पालन-पोषण के लिए सुरक्षित नहीं होता। खनन कार्यों के साथ असंख्य सामाजिक समस्याएं जुड़ी रहती हैं। दुनिया भर की असंख्य रिपोर्टों में ये बात साबित हो चुकी है कि खनन गतिविधियों के साथ अकसर शराबखोरी, जुआखोरी और वेश्यावृत्ति को भारी बढ़ावा मिलने लगता है। शराब के कारण हिंसा और घरेलू हिंसा में भी इजाफा हो सकता है।[160] कठोर जीवन एवं कार्य परिस्थितियां और जीवन की अनिश्चितताएं खदान कामगारों में शराब के अतिउपभोग को बढ़ावा दे सकती हैं। इन इलाकों में मुख्य रूप से पुरुष खान मजदूरों में शराबखोरी बहुत ज्यादा है। कई परिवारों में शराब की वजह से घरेलू हिंसा और बच्चों के साथ दुर्व्यवहार को बढ़ावा मिलता है।[161] झारखंड में उरीमरी कोयला खनन परियोजना के कारण विस्थापित आबादी में शराबखोरी बढ़ गई है। एक महिला ने बताया कि जब से खनन कार्य शुरू हुए हैं तब से शराबखोरी बढ़ गई है और परिवार की अस्सी फीसदी आमदनी अब शराब पर ही खर्च होती है।[162]

खान स्थल रहने और काम करने के लिए बहुत कठोर स्थान हैं। यहां के माहौल में कुछ बच्चे वेश्यावृत्ति में फंस जाते हैं और उन्हें शराब व उत्पीड़न तथा हिंसा से जुड़ी समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है।[163] **आईएलओ ने इस बात पर जोर दिया है कि कई बार खानों का माहौल एक पतनशील सामाजिक वातावरण पैदा कर देता है जहां वेश्यावृत्ति और अपराध बढ़ने लगते हैं और पारिवारिक व सामाजिक संरचनाओं का क्षरण होने लगता है।**[164] पुरुष कामगारों में शराबखोरी को राजस्थान में एक बड़ी समस्या माना गया है। बूंदी जिले के बुधपुरा गांव में अवैध शराब सस्ती दर पर मजदूरों को बेची जाती है जिससे वे शराब के आदी हो जाते हैं।[165]

राजस्थान के जोधपुर जिले की **महिला खान कामगारों ने बताया कि पुरुषों और कुछ महिलाओं में शराबखोरी बेहिसाब बढ़ गई है। मर्द, औरतें**

157. आईएलओ, डिगिंग फॉर सरवाइवल, दि चाइल्ड माइनर्स, 2005
158. उपरोक्त।
159. आईएलओ, http://www.ilo.org/public/english/region/asro/newdelhi/ipec/responses/india/p2.htm, 24 अगस्त 2009 को अपलोड किया गया।
160. माइनिंग, मिनरल्स ऐण्ड सस्टेनेबल डेवलेपमेंट प्रॉजेक्ट, ब्रेकिंग न्यू ग्राउंड : माइनिंग, मिनरल्स ऐण्ड सस्टेनेबल डेवलेपमेंट, 2002
161. के लाहिरी-दत्त, डिगिंग टू सरवाइव, वीमेन्स लाइवलीहुड्स इन साउथ एशियाज़ स्मॉल माइन्स ऐण्ड क्वेरीज़, साउथ एशियन सर्वे 15:2, पृष्ठ 217-244
162. उरी मरी कोयला खनन क्षेत्र में खनन प्रभावित समुदायों के साथ साक्षत्कार, झारखंड, सितंबर 2009
163. आईएलओ, ऐलिमिनेटिंग चाइल्ड लेबर न माइनिंग ऐण्ड क्वेरींग, 12 जून 2005, पृष्ठ 11
164. उपरोक्त, पृष्ठ 16
165. पी. माधवन और डा. संजय राज, बुधपुरा 'ग्राउंड जीरो' सेंडस्टोन क्वेरींग इन इंडिया, दिसंबर 2005
166. महिला खान मजदूरों के साथ साक्षात्कार, जिला जोधपुर, राजस्थान, अक्तूबर 2009

और बच्चे, सभी गुटखे के आदी हो गए हैं। उनके मुताबिक दिन भर की थकान और दर्द के कारण ये समस्या बढ़ रही है।[166] बाल खान मजदूरों द्वारा शराब, तंबाकू और नशीली दवाओं का सेवन भी एक बड़ी समस्या है। जोधपुर और मकराना (राजस्थान) में किए गए एक अध्ययन में पता चला कि जिन बाल मजदूरों से बात की गई उनमें से 60 प्रतिशत गुटखा, तंबाकू और शराब पर निर्भर हो चुके थे।[167]

उड़ीसा के क्योंझर जिले में स्थित टिकरीपाड़ा गांव की आबादी 1200 है। इनमें से ज्यादातर लोग अनुसूचित जनजाति के हैं। गांव के सभी परिवारों की खेतिहर जमीन खानों में जा चुकी है इसलिए अब ये लोग खान ठेकेदारों के लिए दिहाड़ी मजदूर बनकर रह गए हैं। इससे गांव में नई सामाजिक समस्याएं पैदा हो रही हैं। ट्रक ड्राइवर आदि बाहरी लोगों के आने से गांवों के युवा शराब और गुटखे की चपेट में आने लगे हैं और चोरी जैसे अपराध बढ़ रहे हैं। इस इलाके में खनन कार्य शुरू होने के बाद से शराब की दुकानों में भारी इजाफे का परिणाम यह हुआ है कि पुरुष, महिलाएं और छोट-छोटे बच्चे भी शराब पर निर्भर हो गए हैं। उनका कहना है कि खानों में कठोर परिश्रम की वजह से ये चीजें जरूरी हैं।[168]

खनन गतिविधियां अकसर ऐसे इलाकों में चल रही हैं जहां बाल व्यापार की समस्या भी बहुत गंभीर है। उड़ीसा का सुंदरगढ़ जिला इसका एक अच्छा उदाहरण है जहां मानव व्यापार, खासतौर से लड़कियों की खरीद-फरोख्त एक गंभीर समस्या बन गई है। राउरकेला सोशल सर्विस सोसायटी द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण में अनुमान व्यक्त किया गया है कि वहां हर रोज कम से कम 20 लड़कियां दिल्ली और मुंबई जैसे शहरों में भेजने के लिए बेच दी जाती हैं। इस सर्वेक्षण के मुताबिक सुंदरगढ़ से हर साल कम से कम 7,000 लड़कियां बेची जाती हैं। इस विशाल मानव व्यापार के पीछे भीषण गरीबी, खान एवं अन्य उद्योगों की वजह से कर्ज में फंसे लोग और विकास योजनाओं के लागू न होने को जिम्मेदार माना जाता है। जैसे-जैसे इस इलाके में औद्योगिकीकरण, खास तौर से खनन गतिविधियां फैली हैं, आदिवासी प्रवासन और मानव व्यापार की चपेट में फंसते चले गए हैं। इस जिले में बिन ब्याही मांओं और वेश्यावृत्ति की समस्या भी चिंताजनक हद तक पहुंच गई है।

इन सामाजिक समस्याओं और उत्पीड़नों के अलावा बाल खान मजदूरों के विश्राम और मनोरंजन के अधिकारों का भी हनन हो रहा है। संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार संधि में इस बात को स्पष्ट मान्यता दी गई है कि प्रत्येक बच्चे को आराम करने और आमोद-प्रमोद का अधिकार है, और प्रत्येक बच्चे को खेल-कूद व मनोरंजन गतिविधियों का अवसर मिलना चाहिए।[169] लेकिन खानों में काम करने वाले बच्चों के दैनिक जीवन से खाली समय और मनोरंजन की अवधारणा सिरे से गायब है।[170]

निष्कर्ष

इस अध्ययन के निष्कर्षों से देश भर के खनन क्षेत्रों में बाल अधिकारों की एक खौफनाक तस्वीर सामने आती है। क्योंकि खनन प्रभावित बच्चों के बारे में समाज को बहुत कम जानकारियां मिल पाती हैं इसलिए ये बच्चे ऐसे माहौल में रहते हैं जहां उनके पास इस बात को साबित करने का कोई साधन भी नहीं होता कि वे कितने पत्थर तोड़ते हैं, कितने कर्जे चुकाते हैं, वे कब भूखे रह जाते हैं और कितने बच्चे अपने मां-बाप गंवा चुके हैं या उन्हें टीबी अथवा सिलिकोसिस के कारण दम तोड़ते देख रहे हैं। ऐसे अनिश्चित माहौल में ये पता लगाना बहुत मुश्किल है कि कितने बच्चे अपने शरीर के साथ बलात्कार और जोर-जबर्दस्ती के शिकार हैं और जिंदगी भर अपनी आत्माओं को कराहते हुए देखते रहेंगे।

भारत के "खनन प्रभावित बच्चे" कुपोषित हैं, शिक्षा से वंचित हैं और वे खतरनाक परिस्थितियों में जीते और काम करते हैं। ये बच्चे भयावह जीवन जी रहे हैं। अब तक इस बात की पड़ताल नहीं की गई थी इसलिए यह बात अपरिहार्य रूप से उपेक्षित थी कि बच्चों और खनन गतिविधियों के बीच गहरा संबंध होता है। अभी भी नीति निर्माता या कार्यकर्ता इस बात को संजीदगी से नहीं ले रहे हैं। हमें उम्मीद है कि यह रिपोर्ट इन मसलों पर आगे कार्रवाई और एडवोकेसी का आधार प्रदान करेगी जिससे

मुख्य निष्कर्ष

इस राष्ट्रीय अध्ययन के निष्कर्ष खान उद्योग में भारत के बच्चों के अधिकारों की रक्षा के लिए आठ सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों की ओर संकेत करते हैं। ये विषय इस प्रकार हैं :

1. रुग्णता एवं बीमारियों में इजाफा
2. खाद्य असुरक्षा एवं कुपोषण में इजाफा
3. शोषण व उत्पीड़न की आशंका में इजाफा
4. शिक्षा अधिकार का हनन
5. बाल मजदूरी में इजाफा
6. आदिवासी और दलित बच्चों का और अधिक हाशियाकरण
7. प्रवासी बच्चे बेठिकाना हो जाते हैं
8. खनन प्रभावित बच्चे विभिन्न विभागों के बीच बनी दरारों में फंस जाते हैं इसलिए हमें कानूनों, नीतियों और कार्यक्रमों में फौरन संशोधन करना चाहिए ताकि उनके अधिकारों और सुविधाओं की व्यवस्था की जा सके।

167. ग्रेविस, टेल्स ऑफ वो : ए रिपोर्ट ऑन चाइल्ड लेबर इन दि माइन्स ऑफ जोधपुर ऐण्ड मकराना, मार्च 2004, पृष्ठ 20
168. टिकरीपाडा गांव में लिए गए साक्षात्कार, जिला क्योंझर, उड़ीसा, फरवरी 2010
169. संयुक्त राष्ट्र, बाल अधिकार संधि, अनुच्छेद 31
170. आईएलओ, ऐलिमिनेटिंग चाइल्ड लेबर इन माइनिंग ऐण्ड क्वेरींग, 12 जून 2005, पृष्ठ 17

ये सुनिश्चित किया जा सकेगा कि खान उद्योग में बच्चों के अधिकारों का हनन न हो। इस रिपोर्ट में एक बार फिर इस बात का साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है कि खनन व्यवसाय से मिलने वाले मुनाफे महज 'छन-छन कर' स्थानीय समुदाय तक पहुंचने वाले नहीं हैं बल्कि देश के सबसे समृद्ध संसाधनों वाले इलाकों के बच्चे ही सबसे सोचनीय दशा में रह रहे हैं। केंद्र सरकार, राज्य सरकारों, खान कंपनियों और गैर-सरकारी संगठनों को मिलकर यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इन बच्चों के अधिकारों का हनन बंद हो और सरकार व खान कंपनियों ने विकास के जो सपने दिखाए हैं वे सच हों।

भारत में उत्तरदायित्वपूर्ण खनन और स्थानीय समुदायों के प्रति जवाबदेही का रवैया दिखाई नहीं देता। लिहाजा, समुदायों और जनता के दिलों में डर इस बात का बैठा हुआ है कि जब सार्वजनिक क्षेत्र भी श्रेष्ठ आचरण का उदाहरण प्रस्तुत नहीं कर पाया है तो भला निजी कंपनियों को कौन जवाबदेह ठहरा सकेगा। जब हमारा देश खान परियोजनाओं के निजीकरण को ही भविष्य का मार्ग मानकर बैठ गया है तो इस बात की उम्मीद करना बेमानी है कि सार्वजनिक क्षेत्र में श्रेष्ठ व्यवहार की मिसालों के अभाव और कानून व नियमन व्यवस्था में मौजूद खामियों के बावजूद टिकाऊ खनन पद्धतियों को संजीदगी से लिया जाए।

इन इलाकों, खासतौर से उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और झारखंड में उद्योगों के कारण पैदा हो रहे टकराव और दहशत का माहौल पूरे अध्ययन के दौरान हमें दिखाई दिया। हड़ताल, बंद, पुलिस भय तथा उद्योगों की ओर से दमन की आशंका के चलते स्थानीय समुदायों द्वारा अध्ययन में असहयोग और बेफिक्र होकर यात्रा की असंभव चाह इस बात को साबित करने के लिए काफी है।

राजनीतिक इच्छाशक्ति, सार्वजनिक उत्तरदायित्व और नौकरशाही पारदर्शिता पर बहुत कुछ निर्भर करता है। राष्ट्र की चेतना पर भी बहुत कुछ आश्रित है। जब तक नीति निर्माताओं, खान कंपनियों और आम जनता की सामूहिक अंतरात्मा को खनन प्रभावित बच्चों के जीवन की वास्तविकता और खनन कार्यों से आने वाली चमक, विकास और तरक्की के लिए बच्चों द्वारा चुकाई जा रही कीमत के प्रति जागृत नहीं किया जाएगा तब तक ठोस बदलाव आने वाला नहीं है।

भाग 2

राज्यवार रिपोर्ट्स

1. कर्नाटक
2. महाराष्ट्र
3. राजस्थान
4. मध्य प्रदेश
5. छत्तीसगढ़
6. झारखंड
7. उड़ीसा
8. आंध्र प्रदेश

कर्नाटक

व्यापक स्थिति

2001 में कर्नाटक की आबादी 52,850,562 थी। इसमें से दो तिहाई आबादी ग्रामीण इलाकों में थी।[1] 2007-08 में कर्नाटक का अनुमानित जीएसबीपी (सकल राज्य घरेलू उत्पाद) 2,152.82 अरब रुपये था।[2] सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) और प्रति व्यक्ति जीडीपी के लिहाज से कर्नाटक पिछले दशक के दौरान सबसे तेजी से बढ़ने वाला राज्य रहा है। यहां की जीडीपी वृद्धि दर 56.2 प्रतिशत और प्रति व्यक्ति जीडीपी वृद्धि दर 43.9 प्रतिशत रही है। इस तरह प्रति व्यक्ति जीडीपी वृद्धि दर के लिहाज से राज्यों की सूची में कर्नाटक छठे स्थान पर है।[3]

अस्सी के दशक से ही कर्नाटक भारत के सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) केंद्रों में अपनी जगह बनाने लगा था। यहां 2000 से ज्यादा सूचना प्रौद्योगिकी कंपनियां काम कर रही हैं। कर्नाटक भारत की कुछ विशालतम सार्वजनिक क्षेत्र कंपनियों के लिए मेन्युफैक्चरिंग का भी सबसे बड़ा केंद्र है। हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (एचएएल) और भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड (भेल) जैसी कई बड़ी कंपनियां यहां पर हैं। बहुत सारे बड़े विज्ञान एवं प्रौद्योगिक शोध केंद्रों के मुख्यालय कर्नाटक में ही हैं। चीनी, कपड़ा, रेशम और सीमेंट यहां के मुख्य मेन्युफैक्चरिंग उद्योग हैं।

इस सारी तरक्की के बावजूद यहां की आधे से ज्यादा (56 प्रतिशत) कामकाजी आबादी खेती और संबंधित गतिविधियों पर आश्रित है।[4] राज्य का लगभग 64.6 प्रतिशत क्षेत्रफल खेती के अंतर्गत है और 19 प्रतिशत क्षेत्रफल में जंगल हैं। कर्नाटक में चावल, मक्का, दलहन, मिर्च, गन्ना और तंबाकू मुख्य फसलें हैं। मोटे अनाज, कॉफी और कच्चे रेशम के मामले में कर्नाटक भारत का सबसे उत्पादक राज्य है। हाल के सालों में कृषि क्षेत्र धीमा हुआ है लेकिन इसके लिए लगातार पड़े सूखे और खेती की उपेक्षा को मुख्य कारण माना जा सकता है।

कर्नाटक के जिलों में आय और जीवन स्तर के लिहाज से भारी फर्क है। राज्य की लगभग 25 प्रतिशत आबादी गरीबी की रेखा से नीचे है। शहरी इलाकों में यह आंकड़ा 32.6 प्रतिशत पहुंच जाता है। शहरी इलाकों में 50.6 प्रतिशत यानी आधे से अधिक अनुसूचित जाति परिवार गरीबी की रेखा से नीचे हैं। राज्य का साक्षरता स्तर 67 प्रतिशत है जो कि अखिल भारतीय औसत से अधिक है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों में साक्षरता दर काफी कम है। ग्रामीण अनुसूचित जनजाति महिलाओं की साक्षरता दर केवल 33.32 प्रतिशत और ग्रामीण अनुसूचित जाति महिलाओं की साक्षरता दर केवल 35.56 प्रतिशत है।[5] क्षेत्र के उत्तर-पूर्वी इलाके (जिसे हैदराबाद कर्नाटक भी कहा जाता है) में बेल्लारी, बीदर, कोपल, गुलबर्गा और रायचूर, ये पांच जिले आते हैं। यहां राज्य के ज्यादातर खनिज संसाधन स्थित हैं और यह पूरा इलाका काफी पिछड़ा हुआ है।

रोजगार रुझानों के लिहाज से हाल के सालों में संगठित क्षेत्र में रोजगार दर में गिरावट आई है। इस तरह, असंगठित क्षेत्र पर मजदूरों की निर्भरता बढ़ गई है। खेती, खनन और युटिलिटी जैसे कई क्षेत्रों में रोजगार की दर में गिरावट आई है। 1991 से 2001 के बीच सीमांत श्रमिकों की संख्या में 161.5 प्रतिशत की दर से इजाफा हुआ जो इस बात का संकेत है कि ज्यादा से ज्यादा लोग असंगठित और सीमांत श्रमिक बनते जा रहे हैं।

आधारभूत स्वास्थ्य के मामले में भी राज्य गंभीर चुनौतियों से जूझ रहा है। हालांकि अब कर्नाटक बेंगलूरू (जिसे पहले बंगलौर के नाम से जाना जाता था) में आधुनिकतम स्पेशिएलिटी अस्पतालों के दम पर 'स्वास्थ्य पर्यटन' की मंजिल बनता जा रहा है लेकिन राज्य की आबादी के लिए आधारभूत

1 भारत की जनगणना, 2001

2 वित्त विभाग, कर्नाटक सरकार, हाइलाइट्स ऑफ कर्नाटका बजट 2008-09

3 दि हिंदू, इन टर्म्स ऑफ पर केपिटा जीडीपी - कर्नाटक, बंगाल फास्टेस्ट ग्रोइंग स्टेट्स, 9 जून 2005

4 योजना आयोग, भारत सरकार, कर्नाटक मानव विकास रिपोर्ट 2005

5 भारत की जनगणना, 2001

स्वास्थ्य सुविधाएं अभी भी एक सपना हैं। 2005 की कर्नाटक मानव विकास रिपोर्ट में इस बात को स्वीकार किया गया है कि स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुंच के अभाव और इलाज पर खर्च न कर पाने की वजह से गरीबों, महिलाओं, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आबादियों की स्थिति और कमजोर हो गई है जो शेष आबादी के मुकाबले ज्यादा बीमारियों की आशंका में रहते हैं।[6] गर्भवती महिलाओं और शिशुओं में कुपोषण बहुत गंभीर है। राज्य में बढ़ता एचआईवी संक्रमण भी चिंता का विषय है। कर्नाटक में एचआईवी के मामले तेजी से बढ़ते जा रहे हैं। 2002-03 के दौरान संक्रमण की दर में 106 प्रतिशत इजाफा हुआ।[7] सबसे ताजा राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस 3) के मुताबिक कर्नाटक एचआईवी संक्रमण के मामले में देश के पांच सबसे प्रभावित राज्यों में आता है। यहां की 1.25 प्रतिशत आबादी एचआईवी से संक्रमित है।[8]

बच्चों की दशा

राज्य में 14 साल से कम उम्र के 16,845,601 बच्चे हैं। 19 साल से कम उम्र के बच्चों की संख्या 22,227,273 है। इस तरह राज्य की आबादी में बच्चों की संख्या लगभग 40 प्रतिशत है। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक 2008 में 6 से 14 साल की उम्र के 72,967 बच्चे स्कूल से बाहर थे।[9] लेकिन प्रथम की शिक्षा सर्वेक्षण रिपोर्ट (एएसईआर 2008) में अनुमान लगाया गया है कि राज्य में स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या इससे कहीं अधिक है और यह संख्या बच्चों की आबादी का 3.6 प्रतिशत बैठती है। स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या की दृष्टि से राज्य के विभिन्न इलाकों में भारी फर्क है। बंगलूरू ग्रामीण में 0.2 प्रतिशत बच्चे स्कूल से बाहर हैं जबकि बेल्लारी जिले में 14.1 प्रतिशत और गुलबर्गा जिले में 13.6 प्रतिशत बच्चे स्कूली शिक्षा से वंचित हैं जो इस बात का संकेत है कि कर्नाटक को हैदराबाद कर्नाटक क्षेत्र में शिक्षा तक पहुंच के मुद्दे को फौरन संबोधित करना जरूरी है।[10]

जनगणना 2001 के मुताबिक राज्य भर में 14 साल से कम उम्र के 822,615 बाल मजदूर थे जबकि 19 साल से कम उम्र के मजदूरों की संख्या 29,52,545 थी।[11] खतरनाक व्यवसायों में कार्यरत बाल मजदूरों का सरकारी आंकड़ा 1634 है जो कि सिरे से गलत दिखाई देता है।[12] जनगणना के अनुसार यहां अकेले खनन क्षेत्र में ही 14 साल से कम उम्र के 4,669 और 19 साल से कम उम्र के 18,276 बच्चे मजदूरी कर रहे हैं।[13] राज्य के असंगठित खनन क्षेत्र में कार्यरत बाल मजदूरों की वास्तविक संख्या इन आंकड़ों से काफी ज्यादा है क्योंकि एक जांच दल ने पाया था कि बेल्लारी की लौह अयस्क खानों में ही 'कम से कम कुछ लाख' बच्चे काम कर रहे हैं।[14] राज्य के कुल 17 जिले राष्ट्रीय बाल श्रमिक परियोजना (एनसीएलपी) के तहत रखे गए हैं और मई 2007 तक इस योजना के तहत 11,579 बच्चों को पुनर्वास दिया जा चुका था।[15]

राज्य भर में बच्चों के स्वास्थ्य की स्थिति में भारी फर्क है। 2005 की कर्नाटक मानव विकास रिपोर्ट में पाया गया था कि यहां ग्रामीण-शहरी असमानताओं में इजाफा हुआ है। राज्य में शिशु मृत्यु दर (आईएमआर) प्रत्येक 1000 जीवित प्रसवों पर ग्रामीण इलाकों में 64 है जबकि शहरी इलाकों में यह घटकर 24 रह गई है।[16] हैदराबाद कर्नाटक में आईएमआर भी काफी ज्यादा है। कर्नाटक में 12 से 23 माह के केवल 15 प्रतिशत बच्चों को सारे आधारभूत टीके लगाए गए हैं जबकि बगल में स्थित केरल में 75.3 प्रतिशत बच्चों को और तमिलनाडु में 80.9 प्रतिशत बच्चों को सारे टीके लग चुके हैं।[17] इससे पता चलता है कि भारी आर्थिक वृद्धि के बावजूद राज्य में स्वास्थ्य की स्थिति काफी खराब है।

कर्नाटक का खनन उद्योग

2007-08 के दौरान कर्नाटक के खनिज उत्पादन का मूल्य 44.95 अरब रुपये था।[18] ये पिछले साल के मुकाबले 23 प्रतिशत ज्यादा था। लेकिन राज्य में रिपोर्टिंग मान्इस की संख्या इसी दौरान 231 से घटकर 218 रह गई थी। कर्नाटक भारत का मुख्य सोना उत्पादक राज्य है। पूरे देश में फेल्साइट भी सिर्फ यहीं पैदा होता है। लौह अयस्क, क्रोमाइट और ड्यूनाइट उत्पादन में भी कर्नाटक काफी आगे है। भारत के कुल वेनेडियम अयस्क भंडारों का 78 प्रतिशत, लौह अयस्क का 74 प्रतिशत, टंगस्टन अयस्क

6 योजना आयोग, भारत सरकार, कर्नाटक मानव विकास रिपोर्ट 2005

7 उपरोक्त

8 एनएचएफएस-3, चेप्टर 12 - एचआईवी प्रीवैलेंस, 2007

9 लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 576, दिनांक 21.10.2008, भारत में स्कूल न जाने वाले बच्चों की राज्यवार संख्या, 31 मार्च 2008 तक

10 प्रथम, एएसईआर, 2008 सर्वेक्षण से लिए गए आंकड़े, पृष्ठ 112

11 भारत की जनगणना, 2001

12 लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 2691 दिनांक 9.8.2000

13 भारत की जनगणना, 2001

14 आवर माइनिंग चिल्ड्रेन, 2005

15 indiastat.com से ली गई सूचना; राज्य सभा अतारांकित प्रश्न संख्या 3759, दिनांक 9.5.2007, लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 994 दिनांक 20.8.2007 तथा लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 2415, दिनांक 3.12.2007 द्वारा जारी किए गए आंकड़ों से संकलित। मई 2007 तक भारत में राष्ट्रीय बाल श्रमिक परियोजना (एनसीएलपी) के अंतर्गत राज्यवार शिक्षा से जोड़े गए बच्चों की संख्या।

16 योजना आयोग, भारत सरकार, कर्नाटक मानव विकास रिपोर्ट, 2005

17 एनएफएचएस-3, अध्याय 9 - चाइल्ड हेल्प, 2007

होसपेट में लौह अयस्क खनन (फोटो - जून 2009)

का 42 प्रतिशत, ऐसबेस्टॉस का 38 प्रतिशत, टाइटेनीफेरस मैग्नेटाइट का 33 प्रतिशत और चूना पत्थर का 30 प्रतिशत अंश यहीं है। कई अन्य खनिज पदार्थों की भी कुछ मात्रा कर्नाटक में है।[19]

अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी निदेशालय, कर्नाटक सरकार द्वारा उपलब्ध कराए गए आंकड़ों के अनुसार राज्य के जीडीपी में खनन क्षेत्र के योगदान में आंशिक इजाफा हुआ है। 1999 में इस क्षेत्र का हिस्सा जीडीपी में 0.5 प्रतिशत था जो 2007 में 0.8 प्रतिशत हो गया था।[20] इससे पता चलता है कि भले ही खनन क्षेत्र को पहले से बहुत ज्यादा जमीन दे दी गई हो (जो 1980 से 2008 के बीच 11,046 हेक्टेयर से अधिक थी)[21] और इस उद्योग से प्रभावित होने वाले लोगों की संख्या में भले ही इजाफा हुआ है, राज्य के जीडीपी में इसका हिस्सा अभी भी मामूली ही है। अगर रोजगारों की दृष्टि से देखें तो 2005 में 1999 रिपोर्टिंग मान्इस में लगभग 14,200 लोग अधिकृत रूप से नौकरी कर रहे थे। यह संख्या 2002 की 13,200 से कुछ ही अधिक है।[22]

खनन उद्योग से कर्नाटक की ज्यादातर ग्रामीण आबादी की जिंदगी में कोई खास खुशहाली नहीं आई है। ज्यादातर ग्रामीण आबादी अभी भी दरिद्र है। बेल्लारी और गुलबर्गा जिले खासतौर से गरीब हैं। हालांकि इन जिलों में काफी समय से खनन कार्य चल रहे हैं। बेल्लारी की लगभग 45 प्रतिशत आबादी चरम विपन्नता की स्थिति में जी रही है जबकि यहां मैंगनीज़ और लौह अयस्क की बड़े पैमाने पर खुदाई जारी है। मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) के मामले में यह जिला राज्य में 17वें स्थान पर आता है जो इस बात का संकेत है कि इस जिले में खनन उद्योग से पैदा हो रही आमदनी अधिकांश आबादी की जीवन परिस्थितियों में सुधार नहीं ला पाई है। लौह अयस्क खनन ने पर्यावरण के लिए भारी खतरा पैदा कर दिया है क्योंकि खानों के कचरे और धूल ने इस इलाके में फसलों को नष्ट कर डाला है। गुलबर्गा में चूना पत्थर की खुदाई जिले की खेतिहर जमीनों को भी अपनी चपेट में लेती जा रही है।[23]

कर्नाटक के खनन उद्योग में बाल मजदूरी को एक गंभीर समस्या माना जाता है। बेल्लारी का लौह अयस्क खनन व्यवसाय भारी बाल मजदूरी के लिए देश भर में बदनाम है। इस जिले की लौह अयस्क खानों में कम से कम 2,00,000 लड़के-लड़कियां काम कर रहे हैं।[24] खान स्थलों पर अपने मजदूर मां-बाप के साथ तीन साल तक की उम्र के बच्चे देखे जा सकते हैं। 7-8 साल की उम्र तक आते-आते वे इन स्थानों पर कई तरह के काम करने लगते हैं। वे सिर पर भारी बोझ उठाने लगते हैं। खुदाई, पत्थर तोड़ने, छनाई, लोडिंग, डम्पिंग, आवाजाही और लौह अयस्क प्रसंस्करण के लिए खान मालिक और ठेकेदार उन्हें सहज ही काम पर रख लेते हैं लेकिन उन्हें कोई सुरक्षात्मक उपकरण नहीं दिए जाते हैं।[25] इन खानों में दुर्घटनाएं और चोटें आम हैं।

गैरकानूनी खनन भी कर्नाटक की एक गंभीर समस्या है। 2008 में केंद्रीय सशक्तिकरण समिति एवं राज्य के लोकायुक्त संतोष हेगड़े ने एक रिपोर्ट तैयार की थी जिसमें राज्य सरकार का आह्वान किया गया था कि वह देश के हितों को ध्यान में रखते हुए राज्य में गैरकानूनी खनन पर फौरन अंकुश लगाए। यहां के राजनीतिक रूप से असरदार खान मालिकों और राजनेताओं के खिलाफ बहुत सारी शिकायतें आ चुकी हैं। ये लोग नौकरशाही की मदद से गैरकानूनी खनन जारी रखे हुए हैं।[26] राज्य की बहुत सारी छोटी खानें बिना परमिट चल रही हैं और वे किसी तरह का कर अदा नहीं करतीं।

कोलार जिले में स्थित कोलार गोल्डफील्ड्स (केजीए) को 2003 में बंद कर दिया गया था जिसे एक जमाने में भारत की 'स्वर्ण भूमि' कहा जाता

18 खान मंत्रालय, भारत सरकार, वार्षिक रिपोर्ट, 2008-09

19 उपरोक्त

20 अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी निदेशालय, कर्नाटक सरकार, टेबल 1 - ग्रॉस स्टेट डोमेस्टिक प्रोडक्ट, http://des.kar.nic.in/mainpage.asp?option=5, 30 नवंबर 2009 को अपलोड किया गया।

21 indiastat.com पर देखा, राज्यसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 234, दिनांक 20.10.2008, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा खनन के लिए जारी की गई चुनिंदा राज्यवार वन भूमि (25.10.1980 से 30.09.2008)।

22 indiastat.com पर देखा, श्रम एवं रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी आंकड़ों से संकलित, चुनिंदा राज्यवार औसत दैनिक रोजगार एवं स्वीकृत खानों की संख्या (2002 से 2005)।

23 सीएसई, स्टेट ऑफ इंडियाज एनवायर्नमेंट - रिच लैंड, पुअर पीपुल, 2008, पृष्ठ 200

24 आवर माइनिंग चिल्ड्रेन, 2005; एवं सीएसई, दि स्टेट ऑफ इंडियाज एनवायर्नमेंट - रिच लैंड्स, पुअर पीपुल, 2008, पृठ 194

25 आवर माइनिंग चिल्ड्रेन, 2005

26 दि हिंदू, स्टेट शुड ऐक्ट अगेंस्ट इलिगल माइनिंग : जेठमलानी, 24 नवंबर 2009

जिला कोलारः मुख्य तथ्य	
कुल आबादी :	2,536,069 (जनगणना 2001)
बच्चों की आबादी (0-14 वर्ष) :	803,954 (जनगणना 2001)
साक्षरता दर :	62.84 प्रतिशत पुरुष 73.17 प्रतिशत महिला 52.23 प्रतिशत (जनगणना 2001)
स्कूल न जाने वाले बच्चे (6-14 वर्ष) :	0.7 प्रतिशत (एएससीआर 2008)
आंगनवाड़ी केंद्र या स्कूल पूर्व संस्थाओं में दर्ज बच्चे (3-4 वर्ष):	94.8 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
बाल मजदूरों की संख्या (5-14 वर्ष):	44,098 (जनगणना 2001)
पांच साल से कम मृत्यु दर (रैंकिंग):	593 जिलों में 117वां स्थान (जनसंख्या स्थिरता कोष)

जिला बेल्लारीः मुख्य तथ्य	
कुल आबादी :	2,027,140 (जनगणना 2001)
बच्चों की आबादी (0-14 वर्ष) :	749,227 (जनगणना 2001)
साक्षरता दर :	कुल 57.4 प्रतिशत पुरुष 69.2 प्रतिशत महिला 45.28 प्रतिशत (जनगणना 2001)
स्कूल न जाने वाले बच्चे (6-14 वर्ष) :	14.1 प्रतिशत (एएससीआर 2008)
आंगनवाड़ी केंद्र या स्कूल पूर्व संस्थाओं में दर्ज बच्चे (3-4 वर्ष):	89.1 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
बाल मजदूरों की संख्या (5-14 वर्ष):	66,767 (जनगणना 2001)
पांच साल से कम उम्र में मृत्यु दर (रैंकिंग):	593 जिलों में 380वां स्थान (जनसंख्या स्थिरता कोष)

था। अब यह कंपनी पूरी तरह बंद हो चुकी है और स्थानीय आबादी में बेरोजगारी बहुत ज्यादा है।

बेल्लारी और कोलार जिले में खनन प्रभावित समुदायों की स्थिति

कर्नाटक शब्द का मतलब होता है 'ऐसी जगह जहां कान भटकना चाहें।' लेकिन कर्नाटक की कहानी ऐसी नहीं है कि इस देश के कान या आंखें यहां भटकने को लालायित हों। बेल्लारी की लौह अयस्क खानों में जीवनयापन कर रहे बच्चों की दयनीय दशा लाल धूल से अंटी हुई है। और कोलार के युवाओं के चेहरे पर सोना भी चमक नहीं ला पाता। यहां हमने 'लाल हिंदुस्तानी बच्चों' वाले बेल्लारी और लुप्त यौवन, एक 'स्वर्णिम' अतीत के शरणार्थियों वाले कोलार जिले की आपबीती प्रस्तुत की है। इनमें से बेल्लारी के बच्चे अपने नाजुक हाथों से खानों में लोहा तोड़ते दिखाई देते हैं जबकि कोलार के उदास युवा मुंह अंधेरे ही गायब हो जाते हैं और रात ढले लौटते हैं। एक जगह बच्चे घर के वयस्कों के साथ मजदूरी करते हैं और दुसरी जगह के युवा अपने बेरोजगार मां-बाप का एकमात्र सहारा हैं। बेल्लारी के बच्चों ने अपना बचपन और कोलार के युवाओं ने अपना यौवन खो दिया है। इन केस स्टडीज में खनन चक्र के तीनों चरणों - प्रस्तावित खनन क्षेत्र, मौजूदा खान और बंद हो चुकी खान - को दिखाया गया है और ये बताया गया है कि इन तीनों चरणों में बच्चे किस तरह खनन उद्योग की बेहिसाब लागतों की भरपाई कर रहे हैं। बाल विकास के क्षेत्र में कर्नाटक की स्थिति प्रस्तुत की गई है जिसके संदर्भ में खनन प्रभावित बच्चों की स्थित को चिन्हित किया जा सकता है।

कोलार गोल्डफील्ड्स : स्वर्णिम विदाई के बाद स्वर्णिम कब्र

"हमारा गुस्सा इस बात पर है कि सरकार ने कभी हमें वैकल्पिक रोजगार देने की फिक्र नहीं की। जब यहां इतनी जमीन और बुनियादी सुविधाएं पहले ही मौजूद हैं और हम इतने सारे नौजवान रोजगार चाहते हैं तो सरकार यहां हमें रोजगार देने के लिए कारखाने या विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) क्यों नहीं लगाती? सरकार किसानों को खेती छोड़ कर उद्योगों में जाने के लिए क्यों मजबूर कर रही है?"

स्रोत : कोलार टाउनशिप में युवाओं के साथ सामूहिक चर्चा, कोलार, जून 2009

भारत गोल्ड माइन्स लिमिटेड (बीजीएमएल) जिसे केजीएफ के नाम से जाना जाता है वह भारत की सबसे बड़ी स्वर्ण खान और पहली सार्व. जनिक क्षेत्र खान कंपनी थी जिसको बंदी का सामना करना पड़ा। इस कंपनी की कहानी लाचार छोड़ दिए जाने की कहानी है। यह बात खान कंपनी और सरकार के द्वारा गैरजिम्मेदारी और जवाबदेही के अभाव का सबूत है कि कंपनी को अचानक बंद कर दिया गया और मजदूर रातों रात नौकरी से निकाल दिए गए। यह इस बात की गवाह है कि खनन गतिविधियों को इस तरह छोड़ देने से खान मजदूरों के बच्चे किस तरह यतीम हो जाते हैं। केजीएफ की इन कारगुजारियों की वजह से यहां के बच्चों और युवाओं की एक पूरी पीढ़ी को सड़कों पर फेंक दिया गया ताकि वे एक जमाने में देश के लिए चमचमाता सोना पैदा करने वाले कोलार नामक भूतहा कस्बे की स्वर्ण कब्रों में दबे अपने परिवारों को बाहर निकाल सकें।

भारत गोल्ड माइन्स लिमिटेड का इतिहास

बीजीएमएल कर्नाटक के कोलार जिले में स्थित थी। यह भारत सरकार का सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम थी। यह कंपनी 13,000 एकड़ में फैली हुई थी। अंग्रेजों ने 1905 में यह कंपनी स्थापित की थी जिसे भारत सरकार ने 1972 में बीजीएमएल का नाम दिया। 2002 तक यहां मुख्य रूप से सोने की खुदाई होती थी लेकिन आर्थिक घाटों के नाम पर इसे अचानक बंद कर दिया गया। 1997 में इस कंपनी ने 514.17 किलो सोना पैदा किया था और 1998 में 550 किलो का संशोधित लक्ष्य रखा गया था लेकिन कंपनी केवल 404.1 किलो सोना ही पैदा कर पाई। जनवरी से मार्च 1999 के बीच कंपनी ने 145 किलो सोने का उत्पादन किया था। जिस समय कंपनी को बंद किया गया उस समय उसमें 4345 कर्मचारी थे जिनमें से 2336 तकनीकी और 2009 गैर-तकनीकी कर्मचारी थे।[27]

बंद पड़ी बीजीएमएल कंपनी (फोटो - जून 2009)

कंपनी ने अपने सभी कर्मचारियों को टाउनशिप में आवासीय सुविधा उपलब्ध कराई थी। इन मकानों में पीने का पानी, बिजली, सफाई, सड़कों, स्कूलों और चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था थी। बीजीएमएल अस्पताल भी टाउनशिप में स्थित था जहां मजदूरों को मुफ्त चिकित्सा सेवा मिलती थी। यहां 17 स्कूल, एक डिग्री कॉलेज, एक डेंटल कॉलेज और एक नर्सिंग कॉलेज था।

सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि

अंग्रेजों की विरासत के कारण केजीएफ में अंग्रेज और ईसाई प्रभावों की संस्कृति दिखाई देती है। कर्मचारियों की एक बहुत बड़ी संख्या मूल रूप से तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और केरल (पलक्कड़ जिला) से यहां आई है। दिलचस्प बात यह है कि भले ही यह कंपनी कर्नाटक में स्थित हो लेकिन कर्नाटक के इसमें बहुत कम कामगार थे। अध्ययन के समय इस टाउनशिप में केजीएफ में रह रहे खान मजदूरों के परिवारों की तीसरी पीढ़ी जवान हो रही थी। इस टाउनशिप में बहुत सारे गिरजे और मंदिर हैं। यहां के मजदूरों को अपनी बहुसांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर नाज़ है। एक खनन समुदाय के रूप में उन्हें सामाजिक सहिष्णुता की यह विरासत बहुत प्रिय है और वे अपनी पहचान का गहरा बोध लिए हुए हैं। मजदूरों ने बताया कि यह विशिष्ट संस्कृति लगातार साथ रहने और भूमिगत श्रम के खतरों को साथ मिलकर झेलने के इतिहास से पैदा हुई है। यह संस्कृति एक साथ खान दुर्घटनाओं और मौतों का सामना करने और इसके बावजूद टाउनशिप व उसके कर्मचारियों की सुरक्षा के आश्वासन से पैदा हुई है। पिछली तीन पीढ़ियों के दौरान तकरीबन सारे मजदूर परिवारों का जीवन खनन कार्यों के इर्द-गिर्द केंद्रित रहा है क्योंकि उन्हें कभी टाउनशिप से बाहर झांक कर देखने की जरूरत नहीं पड़ी।

इस कस्बे के बच्चों को कंपनी, ईसाई मिशनरी संस्थानों और कुछ स्थानीय कन्नड़ भाषी स्कूलों के जरिए शिक्षा मिल रही थी। इस तरह, ज्यादातर बच्चों ने अंग्रेजी माध्यमिक स्कूलों में शिक्षा प्राप्त की थी और वे सहज

27 http://mines.nic.in/arbgml.html

ही उच्च शिक्षा से जुड़ते चले गए। टाउनशिप में पेशेवर कॉलेजों की उपस्थिति इस बात का सुबूत है कि यहां के लोग शिक्षा को कितना भारी महत्व देते हैं।

जब 2002 में कंपनी अचानक बंद कर दी गई तो केजीएफ गहरे संकट में फंस गया। यहां के लोगों के पास आमदनी या रोजगार का कोई वैकल्पिक साधन नहीं था। यहां के कामगारों का कहना है कि उनकी तनख्वाह बहुत ज्यादा नहीं थी लेकिन कंपनी की तरफ से उन्हें जो निःशुल्क सेवाएं और बुनियादी ढांचा मिला हुआ था उनसे उनकी स्वास्थ्य, शिक्षा और लोक सेवाओं की जरूरत पूरी हो जाती थी। जब कंपनी बंद कर दी गई तब न केवल तनख्वाह मिलनी बंद हो गई बल्कि उनकी बुनियादी सेवाएं भी बंद हो गईं। तभी से 4345 परिवार जिंदा रहने के लिए एक त्रासद संघर्ष में जूझ रहे हैं। लगभग 17 मजदूर यूनियनों ने कंपनी के फैसले को चुनौती दी। कंपनी को इस बात का फायदा था कि यूनियनों के बीच मतभेद थे और आज तक भी औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड (बीआईएफआर), सर्वोच्च न्यायालय या केंद्र सरकार की शरण में जाने के बाद भी समस्या का कोई ठोस हल नहीं निकल पाया है।

छह साल तक मजदूरों के परिवार अपने संघर्ष को आगे बढ़ाते रहे और केजीएफ टाउनशिप इज्जत की जिंदगी से हताशा, विपन्नता और मोहभंग तक एक समुदाय के कोलाहल भरे संघर्ष का गवाह बना रहा। आजीविका का कोई साधन न होने और कठोर परिश्रम के आदी मजदूरों के खाली बैठ जाने से उनमें उद्विग्नता संबंधी बीमारियां, शराबखोरी और अपराध की प्रवृत्तियां सिर उठाने लगीं। इससे घरेलू हिंसा और व्यवहार में विकृतियां शुरू हुईं। अभी तक वहां 149 लोग आत्महत्याओं तथा तनाव संबंधी मौतों का शिकार हो चुके हैं। जब अध्ययन टीम ने केजीएफ स्थित सरकारी प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र (पीएचसी) के मेडिकल ऑफिसर से बात की तो उन्होंने भी इस बात की पुष्टि की, हालांकि वह अधिकृत केस रिकॉर्ड्स दिखाने को तैयार नहीं थे।

कंपनी बंद हो जाने के बाद मजदूरों को मिल रही सारी सुविधाएं वापस ले ली गईं और सरकारी संस्थानों ने भी मजदूरों की फिक्र नहीं की क्योंकि वे इन सेवाओं की कीमत चुकाने की स्थिति में नहीं थे। इस तरह कई साल तक केजीएफ में पीने का पानी, बिजली, स्वच्छता और दूसरी सुविधाएं गायब रहीं। जब मजदूर अपने परिवारों का पेट पालने से लाचार हो गए तो उनके पास सरकार द्वारा दिए जा रहे नकद मुआवजे को ले लेने के अलावा कोई चारा नहीं बचा था। यह मुआवजा मजदूरों के लिए लगभग 1.5 लाख रुपये और अधिकारियों के लिए लगभग 7 लाख रुपये था। मजदूरों को सिर्फ इतनी छूट दी गई कि वे नाममात्र की कीमत पर अपने क्वार्टर को कंपनी से खरीद सकते हैं। इस तरह केजीएफ आज ऐसे खान मजदूरों का कस्बा बन गया है जो न तो कोई खनन गतिविधि करते हैं और न ही उनके पास कोई आर्थिक साधन हैं। मजदूरों के मकान, उनका न्यूनतम फर्नीचर और इक्का-दुक्का त्यौहारों के अलावा सुनसान दिखने वाली उनकी रसोई खान बंदी के कारण समुदाय पर पसरी गरीबी का सुबूत हैं। कंपनी और सरकार, किसी ने भी मजदूरों के सामाजिक और आर्थिक जीवन पर पड़ने वाले दीर्घकालिक प्रभावों पर ध्यान नहीं दिया और नकद मुआवजा चुका कर अपनी जिम्मेदारियों से हाथ झाड़ लिया। यहां की जमीन, बुनियादी ढांचा, मजदूर, सभी बेकार हैं।

कोलार गोल्डफील्ड्स ने युवाओं के साथ विश्वासघात कैसे किया

कंपनी के इस फैसले का सबसे बुरा असर मजदूरों के बच्चों पर पड़ा। उनकी शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा पर गहरा सवाल खड़ा हो गया था। अब शिक्षा निःशुल्क सेवा नहीं रह गई थी इसलिए बहुत सारे मजदूर हड़ताल के दौरान अपने बच्चों की फीस भी नहीं चुका पाए। बच्चों को स्कूल में शर्मिंदगी झेलनी पड़ती थी इसलिए उनमें से बहुत सारे स्कूल छोड़ बैठे। ज्यादातर किशोर-किशोरियां थीं जिन्होंने हाई स्कूल तक पहुंच कर पढ़ाई छोड़ दी थी और अब वे अपने परिवारों का पेट पालने की जिम्मेदारी से जूझ रहे हैं। बहुत सारे मजदूरों को चौकीदार, बिजली मिस्त्री, सिक्योरिटी गार्ड या फेरी वाले जैसे छोटे-मोटे अस्थायी कामों में अपमान महसूस होता था इसलिए वे घर बैठ कर भूखों मरते रहे।

इस तरह परिवार का पेट पालने की जिम्मेदारी फौरन किशोर बच्चों पर आ गई। क्योंकि केजीएफ में नौकरी के कोई साधन नहीं बचे हैं इसलिए इन बच्चों को रोजगार की तलाश में तकरीबन 120 किलोमीटर दूर बंगलूरू शहर जाना पड़ता है। जब मजदूर खान बंदी के बाद यहां शुरू की गई रेलवे लाइन और रेलगाड़ियों के बारे में बात करते हैं तो इसे बीजीएमएल कर्मचारियों पर सरकार का अहसान कहकर व्यंग्यपूर्वक हंस देते हैं। हर रोज सुबह 7,000 से 12,000 बच्चे और नौजवान इन

सुबह की रेलगाड़ी जिसमें कोलार के हजारों युवा लड़के-लड़कियां बंगलूरू में रोजगार के लिए जाते हैं (फोटो - जून 2009)

रेलगाड़ियों में भरकर काम के लिए बंगलूरू जाते हैं और देर रात गए ही लौटते हैं। हमारी अध्ययन टीम ने सवेरे 6 बजे ऐसे युवाओं की भीड़ को जाते हुए और रात 9 बजे आखिरी रेलगाड़ी से केजीएफ लौटते हुए देखा। इन दैनिक मुसाफिरों में ज्यादातर किशोरियां थीं। जब हमने लड़कियों से बात की तो उन्होंने माना कि वे रोज शारीरिक एवं यौन उत्पीड़न व हमलों की आशंका में रहती हैं क्योंकि रेलगाड़ी में बहुत भीड़ होती है। लेकिन ये लड़कियां इसे लाजिमी मानकर नजरअंदाज करना सीख चुकी हैं क्योंकि उनके पास अपने परिवारों का पेट पालने का और कोई चारा नहीं है। कुछ लड़कियों ने बताया कि इन समस्याओं से निपटने के लिए अब वे टोलियों में चलने लगी हैं। लेकिन उन्होंने कहा कि उनकी मुख्य समस्या घर लौटने के समय पैदा होती है क्योंकि कभी-कभी उनके मालिक उन्हें काम के लिए देर तक रोक लेते हैं जिसके कारण वे अपनी रोज वाली गाड़ी नहीं ले पातीं। इससे लड़कियों में तनाव पैदा होता है क्योंकि उन्हें ट्रेन से अकेले लौटना पड़ता है और केजीएफ रेलवे लाइन के आसपास इस तरह के हमले काफी आम हैं।

केजीएफ के युवाओं की एकमात्र खुशकिस्मती यह है कि उनके पास अंग्रेजी शिक्षा है। लिहाजा, उनमें से कुछ को कंपनियों के दफ्तरों, बीपीओ, बैंक एवं अन्य ऐसी कंपनियों में छोटी-मोटी नौकरियां मिल जाती हैं जहां अंग्रेजी बोलने की जरूरत होती है। ज्यादातर लड़कियां बंगलूरू के सीमावर्ती इलाकों में परिधान कारखानों में काम करती हैं जबकि ज्यादातर लड़के बिजली मिस्त्री, राजगीर, सिक्योरिटी गार्ड, प्लम्बर आदि नौकरियां करते हैं। अध्ययन टीम को सप्ताह के दौरान टाउनशिप में प्रायः कोई युवा नहीं दिखे और सप्ताहांत में लड़कियां आमतौर पर घर के कामों में वयस्त दिखाई दीं।

केजीएफ अब राजनीतिक और अपराधी गिरोहों द्वारा युवाओं की भर्ती के लिए भी बदनाम होने लगा है। बंगलूरू में सक्रिय ये गिरोह हिंसा और अपराधों के लिए इन युवाओं को अपने साथ मिला लेते हैं। ये भी सुनने में आया कि मजदूरों के परिवारों की कुछ महिलाएं और युवतियां परिवारों को भूखों मरने से बचाने के लिए वेश्यावृत्ति में फंस गई हैं। केजीएफ के लोग ऐसी किसी खबर को उभरने नहीं देना चाहते क्योंकि इससे केजीएफ की असली समस्या हल नहीं होती और सिर्फ एक सनसनी बनकर रह जाती है।

यहां के लोगों ने चोरी को एक बड़ी समस्या बताया। यहां के लड़के छोटे-मोटे अपराधों में भी सक्रिय हैं। वे कंपनी से धातु की चादरें, मशीनरी और अन्य सामान उड़ा ले जाते हैं। हमारी टीम को बीजीएमएल के कई परिसरों में खिड़कियां और दरवाजे टूटे हुए मिले, कई जगह अलमारियां गायब थीं, बाड़ टूटी हुई थी। इस तरह के दृश्य पूरे टाउनशिप में देखे जा सकते थे। जिस समय अध्ययन टीम ने केजीएफ का दौरा किया उसी समय गंभीर रूप से जख्मी एक खान मजदूर को प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में भर्ती कराया गया था। लोगों ने बताया कि कुछ युवाओं ने रेलवे ट्रेक पर उस आदमी पर जानलेवा हमला करके उसे लूट लिया था। लोग इस बात पर बहुत गुस्से में थे कि ये सारे अपराध स्थानीय पुलिस की देखरेख में हो रहे हैं जो युवाओं की इन हिंसक गतिविधियों पर रोक लगाने के लिए कोई कदम नहीं उठाती।

केजीएफ के युवाओं में सरकार के प्रति बहुत गहरा गुस्सा और असंतोष दिखायी देता है। उन्होंने कहा कि कंपनी ने उनके परिवारों को धोखा दिया है और उन्हें बिना कोई विकल्प दिए अपमान भरी गरीबी में धकेल दिया है। ज्यादातर युवाओं का कहना था कि वे खुद जमीन के भीतर जाकर खानों में काम करने को तैयार हैं। अगर सरकार खानों को दोबारा चालू नहीं करना चाहती तो उसे केजीएफ में नए उद्योग लगाने चाहिए। उन्होंने इस बात पर भी सवाल उठाया कि जब सरकार दूसरे इलाकों में जबर्दस्ती किसानों की उपजाऊ जमीनें छीन कर वहां एसईजेड/सेज़ खोल रही है तो केजीएफ में 13,000 एकड़ जमीन, पूरा बुनियादी ढांचा और काम करने के लिए लोगों के होते हुए भी यहां ऐसी कोई योजना क्यों नहीं बना रही है। जिन लड़कियों से बात की गई उनमें से कई ने इस बात पर बहुत अफसोस जाहिर किया कि वे जिंदगी में क्या कुछ बन सकती थीं। उन्होंने बताया कि वे पढ़ने-लिखने में कितनी तेज थीं। कई लड़कियां इंजीनियरिंग आदि पेशेवर पाठ्यक्रमों में दाखिला भी ले चुकी थीं लेकिन उन्हें परिवार के आर्थिक संकटों की वजह से अपनी पढ़ाई बीच में छोड़नी पड़ी। फील्ड विज़िट के दौरान अध्ययन टीम लगातार को ये महसूस हो रहा था कि यहां के मजदूर, अधिकारी और युवा, सभी इस उम्मीद में जी रहे हैं कि एक बार फिर खान चालू हो जाएगी और ये लोग बीजीएमएल के सुनहरे युग में लौट जाएंगे।

इसी उम्मीद में ज्यादातर परिवार अभी तक केजीएफ में डटे हुए हैं। उन्हें उम्मीद है कि या तो खानों में काम शुरू हो जाएगा या सरकार उनकी मदद के लिए नए कारखाने लगा देगी। मजदूर यूनियनों का दावा है कि अब वे एक फेडरेशन के तहत इकट्ठा हो गए हैं और उन्हें उम्मीद है कि खानों को पुनर्जीवित करने के लिए सरकार उनकी बात मान लेगी। वे अपने युवाओं को अगली पीढ़ी के खान मजदूर बनने का सबक पढ़ा रहे हैं। लेकिन इन दावों के बावजूद मतभेद अभी भी खत्म नहीं हुए हैं। यूनियनों का राजनीतिक वातावरण और सरकार के रवैये को देखकर ऐसा नहीं लगता है कि निकट भविष्य में युवाओं के लिए कोई रचनात्मक विकल्प सामने आ जाएगा। युवाओं ने केजीएफ खान बंदी के कारण पैदा हुए राजनीतिक संकट की एक भारी कीमत चुकाई है।

स्वास्थ्य पर प्रभाव

स्वर्ण खनन से संबंधित व्यावसायिक रोग और खान बंदी से पैदा हुई सामाजिक विकृतियां यहां की सबसे बड़ी समस्या हैं। जिन मजदूरों से बात की गई उन्होंने माना कि भूमिगत खानों में काम कर चुके लगभग सभी मजदूर सिलिकोसिस और टीबी से ग्रस्त हैं। पहले कंपनी के अस्पताल में उनका ईलाज होता था लेकिन अब ऐसा नहीं है। उन्होंने बताया कि सिलिकोसिस के कारण कई मजदूरों की मौत हो चुकी है। कंपनी बंद होने के बाद अस्पताल भी बंद हो गया था इसलिए भूतपूर्व मजदूरों के पास अब कोई चिकित्सा सुविधा नहीं

कोलार टाउनशिप में स्थित बंद पड़ा बीजीएमएल अस्पताल जो मजदूरों और उनके परिवारों को निशुल्क चिकित्सा सेवाएं उपलब्ध कराता था (फोटो - जून 2009)

बची है। केजीएफ स्थित सरकारी पीएचसी भी टाउनशिप और तालुके की आम जनता की चिकित्सा आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम नहीं है क्योंकि पीएचसी में कर्मचारियों का भारी अभाव है। मेडिकल ऑफिसर ने बताया कि श्वास रोग, गंभीर ब्रोंकाइटिस, दमा, टीबी और सिलिकोसिस यहां के मजदूरों की मुख्य बीमारियां हैं। लेकिन सिलिकोसिस निदान की अधिकृत रूप से पुष्टि नहीं की जाती है क्योंकि सरकार और कंपनी की सुविधा के लिए सिलिकोसिस को प्रायः टीबी कह कर नजरअंदाज कर दिया जाता है। मेडिकल ऑफिसर ने बताया कि बच्चों में श्वास रोग, त्वचा रोग, ब्रोंकाइटिस और मलेरिया जैसी बीमारियां ज्यादा पाई गई हैं। उन्होंने ये भी कहा कि वहां एचआईवी/एड्स और यौन संक्रामक बीमारियों के भी मामले आए हैं लेकिन ये कहना मुश्किल है कि ये मरीज टाउनश्पि के थे या बाहर से आए थे क्योंकि अब मजदूरों के लिए अलग अस्पताल की व्यवस्था नहीं है। मजदूरों के परिवार अपने इलाज का खर्चा नहीं उठा पाते इसलिए कुछ मजदूर संगठन अपनी ओर से इन परिवारों के इलाज के खर्चे में मदद देती हैं। इस तरह परिवारों का पेट पालने की जिम्मेदारी फिर युवाओं पर आ जाती है।

टाउनशिप के बीचोंबीच खान के कचरा का एक विशाल ढेर पड़ा हुआ है जिसे यहां के लोग साइनाइड पहाड़ कहते हैं। विडंबना ये है कि यह ढेर

कोलार टाउनशिप के बीचोंबीच स्थित साइनाइड पहाड़ - माना जाता है कि यह विवादास्पद ढेर ही विकिरण पैदा कर रहा है (फोटो - जून 2009)

सैलानियों और फिल्म वालों के लिए तो एक अजीबोगरीब सजावटी चीज बन गया है लेकिन हमने जिन मजदूरों और मेडिकल ऑफिसर से बात की उनका कहना था कि कुछ बीमारियां इस कचरे या साइनाइड पहाड़ी से निकलने वाले धूल प्रदूषण या विकिरण का परिणाम भी हो सकती हैं। कई मीडिया रिपोर्टों में भी इस बात का जिक्र आ चुका है लेकिन अभी तक ऐसा कोई वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया गया है जो पर्यावरण व जल संसाधनों की सुरक्षा के बारे में कोई सुझाव दे सके।

पानी तक पहुंच

यहां के लोगों ने पानी के अभाव को सबसे गंभीर समस्या बताया। लोगों का कहना है कि वे खनन गतिविधियों के कारण अस्त-व्यस्त हो गई भूमिगत जल धाराओं के कारण अपने नीचे जमा हुए पानी पर तो बैठे हैं लेकिन उन्हें पीने का साफ पानी नहीं मिलता। पानी की कमी पूरे साल बनी रहती है। उन्हें बाहर से मंगाया गया पानी पीना पड़ता है इसलिए टाउनशिप में साफ-सफाई भी एक गंभीर समस्या बन गई है।

निष्कर्ष

केजीएफ सार्वजनिक क्षेत्र की खान कंपनी थी लेकिन उसने खान बंदी के मामले में कोई अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया है। सरकार भी यूनियनों के आपसी मतभेदों का हवाला देकर चुपचाप कंपनी बंद करके चली गई। खनन उद्योग में भारी पैसा लगा होता है इसलिए यहां लोकतंत्र हमेशा एक नाजुक सवाल बना रहता है। इसके फैसले बहुमत के हित से नहीं बल्कि संबंधित पक्षों के बाहुबल से तय होते हैं। केजीएफ इसका सबसे ज्वलंत उदाहरण है। हालांकि यहां मजदूरों के अलावा और कोई समुदाय नहीं रहता लेकिन अभी तक कोई निश्चित योजना सामने नहीं आई है जिसको सरकार निजी कंपनियों के लिए उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर सके। अब हमारा देश खनन क्षेत्र में सार्वजनिक-निजी सहभागिता और निजीकरण की ओर बढ़ रहा है इसलिए किसी खनन परियोजना के दौरान और पश्चात खान कंपनियों की जवाबदेही, बच्चों और युवाओं पर उसके खास प्रभावों के बारे में कोई नियमन या निगरानी व्यवस्था नहीं है जो खान बंदी के बाद सामाजिक-आर्थिक रूप से व्यावहारिक माहौल पैदा कर सके।

(***आभार :*** यह केस स्टडी सखी, होसपेट और कोलार के स्वतंत्र पत्रकार श्री कुमार के साथ मिलकर संपन्न की गई। सखी और श्री कुमार ने केजीएफ की हमारी फील्ड विजिट्स का आयोजन किया। हम उन्हें धन्यवाद देते हैं कि वे केजीएफ टाउनशिप में हमारे साथ गए और फील्ड साक्षात्कारों में उन्होंने हमारा साथ दिया।)

बेल्लारी : लौह पर्दे के पीछे अदृश्य बच्चे

"लाल लोग, लाल धूल, लाल पानी, लाल दरख्त, लाल जानवर। खुद गांव भी एक लाल गांव में तब्दील हो गया है। सुबह हम धूल के साथ आंख खोलते हैं, हम धूल खाते हैं, धूल पीते हैं और धूल के साथ सो जाते हैं। हमारी जिंदगी सिर्फ लाल धूल का कैनवस बनकर रह गई है।"

स्रोत : कल्लाली गांव, होसपेट में लोगों की शिकायत, जून 2009.

होसपेट बेल्लारी जिले का एक छोटा कस्बा है। यह जिला लौह अयस्क और मैंगनीज़ के विशाल भंडारों के लिए विख्यात है। ये इलाका गैरकानूनी खनन के लिए स्वर्ग है और इस बात का जीता-जागता उदाहरण है कि खनन माफिया की ताकत मीडिया के रहस्योद्घाटनों, राजनीतिक घोटालों और मानवाधिकार अभियानों के बावजूद किस बेलगाम हद तक पहुंच चुकी है। ये इलाका खान मालिकों की खुल्लेआम अय्याशी और उनके निजी हैलीकॉप्टरों की संख्या के लिए पूरे देश में बदनाम हो चुका है। यहां एक तरफ ऐसा बाहुल्य है तो दूसरी तरफ इसी इलाके में भीषण गरीबी, भुखमरी, तबाह जमीनें, नष्ट खेती और तहस-नहस सामाजिक ताना-बाना है। मीलों दूर तक फैली गैरकानूनी खानों में लौह अयस्क की चट्टानें तोड़ रहे बच्चों की दहशत भरी आंखों में इस हकीकत को साफ पढ़ा जा सकता है। ये बच्चे खान उद्योग और राजनेताओं के उस अभेद्य गठजोड़ की नजरों से दूर हैं जिन्होंने सिर्फ बेल्लारी ही नहीं बल्कि कर्नाटक के बाहर भी शासन और सत्ता पर अपना शिकंजा मजबूती से कस दिया है।

बेल्लारी, संदुर और होसपेट तालुकों में पिछले कुछ दशकों के दौरान स्थापित की गई लौह अयस्क खनन एवं रिफाइनिंग परियोजनाओं ने इस इलाके की अर्थव्यवस्था और पारिस्थितिकी, दोनों को बदल डाला है। इन परियोजनाओं में ज्यादातर कर्नाटक के चित्रदुर्ग, रायचूर और कोपल जिलों से आए आदिवासी मजदूर काम करते हैं। कर्नाटक के अलावा पड़ोस में स्थित आंध्र प्रदेश के लोग भी यहां मजदूरी करने आते हैं। फील्ड सर्वेक्षण के लिए शोध टीम ने कल्लाली, दानापुर, संकलापुरम, करीगनुरू, जम्बूनाथगुडा, मरियम्मानहल्ली, पी.के. हल्ली, राजपुरा, सुल्तानपुरा, तोरंगल्लू और बेल्लारी का दौरा किया। हमने देखा कि इन खान स्थलों, बस्तियों और गांवों में रहने व काम करने वाले बच्चों के अधिकारों की हर मोड़ पर अवहेलना हो रही है।

यहां सक्रिय कंपनियां मुख्य रूप से निजी ऑपरेटर हैं। यहां नैशनल मिनरल डेवलेपमेंट कॉरपोरेशन (एनएमडीसी) जैसी सरकारी कंपनियां कम हैं। यहां वैध खानों के मुकाबले अवैध खानें ज्यादा हैं। इस खनन उछाह ने यहां एक ऐसी होड़ को जन्म दिया है जिसमें छोटे ठेकेदार और यहां तक कि किसान भी विशाल खेतिहर जमीनों को बेहद अजीबोगरीब, अनियंत्रित और बेतहाशा ढंग से खानों में तब्दील करते जा रहे हैं।

प्रवासी मजदूर प्लास्टिक के छोटे-छोटे तंबुओं में रहते हैं जिनका आकार 3-5 वर्ग फुट से ज्यादा नहीं होता, संदुर स्थित खान स्थल (फोटो - जून 2009)

मिसाल के तौर पर, होसपेट के पास स्थित छोटे से गांव जम्बूनाथगुडा में हमने 100 एकड़ जमीन देखी जहां छोटे पैमाने पर अवैध खनन चल रहा था। हमने यहां तीन स्थानों का दौरा किया जहां मुख्य रूप से कर्नाटक के कोपल, चित्रदुर्ग और गुलबर्गा के प्रवासी मजदूर काम कर रहे थे। लोगों ने बताया कि यहां कम से कम 40 अवैध खानें थीं लेकिन आर्थिक मंदी के कारण उनकी तादाद में गिरावट आ गई है। यहां के सभी 20-25 प्रवासी परिवार प्लास्टिक की चादरों से बने अस्थायी तंबुओं में रह रहे हैं। ये चादरें ठेकेदार ने ही मुहैया कराई हैं। इन लोगों के पास न बिजली है, न पानी और न ही दूसरी बुनियादी सुविधाएं हैं। उनके राशन कार्ड उनके मूल गांव के हैं इसलिए उन्हें सब कुछ निजी दुकानों से ही खरीदना पड़ता है। यहां का एक भी बच्चा स्कूल नहीं जाता बल्कि वे खानों में अपने मां-बाप की मदद करते हैं। पूरा परिवार हफ्ते में 1500 रुपये के आसपास कमा पाता है।

बाल मजदूरी

यहां बाल मजदूरों की सही-सही संख्या पता लगाना मुश्किल है लेकिन अगर आप किसी दिन होसपैट की इन खानों में घूमें तो स्पष्ट हो जाएगा

क्रशिंग स्थल पर प्रवासी परिवारों के बच्चे काम कर रहे हैं। यह क्रशिंग इकाई होसपेट में स्थित है (फोटो - जून 2009)

कि यहां खनन एवं अन्य संबंधित गतिविधियों में बाल मजदूरों की बहुत बड़ी संख्या है। बहुत सारे बच्चे प्रवासी परिवारों के हैं। कुछ प्रवासी परिवार होसपेट की झुग्गी-बस्तियों में बस गए हैं जबकि बहुत सारे परिवार केवल सीजन में ही आते हैं। बच्चे यहां पत्थर तोड़ते हैं, खुदाई करते हैं, डंपिंग करते हैं और ट्रकों की सफाई करते हैं। बहुत सारे बच्चे खान स्थल पर अपने मां-बाप के साथ ही रहते हैं इसलिए वे 5-6 साल की उम्र में ही काम करने लगते हैं और 10 साल की उम्र तक अच्छा-खासा काम सीख जाते हैं। 12 साल की उम्र के बच्चे बड़ी-बड़ी चट्टानों को तोड़ने का कठिन काम संभालने लगते हैं जबकि लड़कियां उनको छोटे टुकड़ों में तोड़ती रहती हैं और लोडिंग करने लगती है। खनन गतिविधियों में काम करने वाले बच्चों की औसत आमदनी प्रतिदिन 80 से 100 रुपये के बीच बैठती है।

संदुर की तकरीबन एक-एक इंच जमीन लौह अयस्क खनन के लिए छोटे ठेकेदारों ने पट्टे पर ली हुई है। हमने खान स्थल पर जिन स्थानीय लोगों से मुलाकात की उनका कहना था कि वहां 20-30 एकड़ क्षेत्रफल में ही लगभग 100 अवैध खानें हैं। प्रत्येक खान स्थल पर 7-8 मजदूर थे जिनमें ज्यादातर महिलाएं और लड़कियां थीं। एक खान मालिक ने बताया कि हजारों छोटे ठेकेदार अपना लौह अयस्क ओबुलापुरम खान कंपनी को बेच देते हैं जो यहां से सिर्फ पांच किलोमीटर दूर है। खान कंपनी प्रति ट्रक 4,000 रुपये देती है। हमने इन खानों में पांच साल की छोटी-छोटी लड़कियों को भी काम करते हुए पाया। जब हमने इस बारे में पूछा तो खान मालिकों का बहुत सपाट जवाब मिला - 'हम लोग ओबुलापुरम को अयस्क सप्लाई करते हैं इसलिए हमें कानून या पुलिस की परवाह करने की जरूरत नहीं है। ये समस्याएं कंपनी खुद 'संभाल' लेती है।'

छोटी-छोटी लड़कियां लौह अयस्क तोड़ने और उसकी छंटाई में लगी हैं। वे रोज आठ घंटे काम करती हैं, करीगानूरू, होसपेट (फोटो - दिसंबर 2009)

संदुर में एक अवैध खान में काम करती प्रवासी महिलाएं और उनके छोटे-छोटे बच्चे (फोटो - जनवरी 2010)

संकलापुरम में खानों के आसपास हमने 8 से 18 साल की लड़कियों से बात की। उनका कहना था कि वहां लगभग 100 क्रशर हैं और हरेक पर 20 से 25 लड़कियां काम कर रही हैं। वे सुबह 5 बजे से 12 बजे तक काम करती हैं और उन्हें रोज 100 से 110 रुपये मिलते हैं जिसकी वजह से मां-बाप इन लड़कियों को जबरन खानों में भेज देते हैं।

करीगानुरू गांव राष्ट्रीय राजमार्ग के पास पड़ता है। यहां अवैध खनन बहुत बड़े पैमाने पर है। हमने जिन लोगों से बात की उनका कहना था कि वहां 1500 से ज्यादा परिवार खान मजदूर हैं। हमारे दौरे के समय वहां 10 से 15 साल की कई लड़कियां खानों में काम कर रही थीं। लड़कियां पत्थरों की छंटाई करती हैं और उनके अलग ढेर बनाती हैं जबकि वयस्क महिलाएं पत्थरों को तोड़ती जाती हैं। गांव वालों ने कहा कि वहां की खानों में कम से कम 500 लडकियां काम कर रही हैं और हर परिवार के कम से कम दो लड़के खानों से संबंधित गतिविधियों में मजदूरी करते हैं।

बाल मजदूरी के मामले में खान मालिकों और ठेकेदारों के लिए सबसे फायदे की बात यह होती है कि बच्चों के परिवार खुद ही खान मालिकों पर किसी तरह की आंच नहीं आने देना चाहते क्योंकि वे भी अपने बच्चों की तनख्वाह के बिना गुजारा नहीं कर सकते। झुग्गी बस्तियों में बहुत सारे बच्चे अकेली मां या बाप के साथ रहते थे। किसी की मां विधवा हो चुकी है या मां-बाप बीमार पड़े रहते हैं इसलिए ऐसे बच्चों के पास स्कूल छोड़कर खानों में या और कहीं और काम करने के अलावा कोई विकल्प नहीं होता। हमने जितने भी ठेकेदारों या बिचौलियों से बात की उनके हाव-भाव से ऐसा लगता था जैसे वे बच्चों को काम पर रखकर इन गरीब परिवारों पर अहसान कर रहे हैं।

दुनिया भर के लौह अयस्क उद्योग में आई आर्थिक मंदी ने बेल्लारी पर भी असर डाला है। 2005 के हमारे अध्ययन के बाद से इन खानों में काम करने वाले बच्चों की संख्या में गिरावट दिखाई देती है। लेकिन, फील्ड विजिट्स के दौरान हमने पाया कि धीरे-धीरे अब रौनक लौटने लगी है। ट्रकों की घरघराती आवाज पहले से ज्यादा सुनाई दे रही है। ठेकेदार रात में भी औरतों और बच्चों को काम के लिए बुलाने लगे हैं।

होसपेट की झुग्गी बस्तियों में बच्चों के हालात

होसपेट कस्बे में 70 से ज्यादा झुग्गी बस्तियां हैं। ये बस्तियां मुख्य रूप से खनन कार्यों के कारण अस्तित्व में आई हैं। खान मजदूरों और समुदायों के बीच सक्रिय सखी नामक स्थानीय संगठन ने 14 बस्तियों और आसपास के गांवों का एक सर्वेक्षण करके ये पता लगाया है कि यहां के कितने बच्चे स्कूल नहीं जाते। टेबल 2.01 में होसपेट में स्कूल न जाने वाले बच्चों का ब्यौरा दिया गया है।

टेबल 2.01 : होसपेट में स्कूल न जाने वाले बच्चों का ब्यौरा

क्र.सं.	गांव	लड़के	लड़कियां	कुल	काम का स्वरूप
1.	88 मुड़ापुरा	13	23	36	खान मजदूर, छोटे होटलों, निर्माण स्थलों पर मजदूरी, घर में रहना
2.	दानापुर	26	4	30	अयस्क की लोडिंग, घरेलू मजदूरी, खेतिहर मजदूरी
3.	जोगा	12	16	28	अयस्कों की लोडिंग, घरेलू मजदूरी, खेतिहर मजदूरी
4.	हनुमानहल्ली	19	14	33	खेतिहर मजदूरी, बाल विवाह, खान मजदूरी
5.	संकलापुरा	12	14	33	खान मजदूरी, खेतिहर मजदूरी
6.	दनायकनकेरे	7	19	26	काम नहीं करते
7.	करीगानुरू	17	20	37	लोडिंग, ड्राइवरी, क्लीनर, घर रहना, घरेलू नौकरी
8.	पी.के. हल्ली	13	7	20	घर रहना, खान मजदूरी, घरेलू नौकरी
9.	एम.एम. हल्ली	23	24	47	खेत मजदूरी, खान मजदूरी, निर्माण मजदूरी, घर रहना, गड़रिया, मानसिक रूप से विक्षिप्त
10.	एस.आर. नगर	9	13	22	बर्तन बेचना, ढाबों में काम, बाल विवाह
11.	ए.एस. गुडी	6	7	13	घर रहना, खेत मजदूरी, खान मजदूरी
12.	रियाज नगर	18	9	27	फैक्टरी लेबर, घरेलू नौकर, ऑटो ड्राइवर
13.	बीटीआर नगर	12	6	18	निर्माण मजदूरी, मानसिक रूप से विक्षिप्त, घर रहना, ऑटो ड्राइवर
14.	चित्तवड़गी	9	8	17	ढाबों में हेल्पर, घरेलू नौकर
	कुल	**196**	**184**	**367**	

स्रोत : स्थानीय संगठन सखी, होसपेट द्वारा किया गया सर्वेक्षण, अक्तूबर 2009

इस सर्वेक्षण से होसपेट की बस्तियों में रहने वाले बच्चों के हालात की सिर्फ एक छोटी सी झलक मिलती है। इस सर्वेक्षण के जरिए इन बस्तियों और आसपास के गांवों में यह समझने का प्रयास किया गया था कि जो बच्चे पढाई छोड़ चुके हैं उनके हालात कैसे रहे हैं और उन्होंने क्यों स्कूल छोड़ा है। सर्वेक्षण में लगभग सभी बच्चे खान मजदूरों के परिवारों से थे। इन बच्चों के माता-पिता या तो खानों में काम कर रहे हैं या पहले काम कर चुके थे। बच्चों ने बताया कि वे परिवार की गरीबी के कारण स्कूल नहीं जा पाते। कुछ बच्चे मां या पिता या दोनों की मृत्यु, मौसमी विस्थापन अथवा दिहाड़ी मजदूरी की जरूरत के कारण भी स्कूल नहीं जा पाते। इन बच्चों में से ज्यादातर के मां-बाप या तो खान मजदूर हैं या रेलवे स्टेशन पर कुली हैं जहां लौह अयस्कों की ज्यादातर लोडिंग होती है। जिन बच्चों से बात की गई उनमें से ज्यादातर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति परिवारों से थे। खान मजदूरों के परिवारों के ज्यादातर मजदूर रेलवे स्टेशन में कुली, खानों में पत्थर बीनने वाले हैं या घरों में नौकरी करते हैं। होसपेट में हमने जिन चार झुग्गी बस्तियों का दौरा किया उन सभी बस्तियों के हालात एक जैसे थे। कई बच्चे या तो घर पर ही रहते हैं या घरेलू नौकर हैं या वे फेरी लगाते हैं या दुकानों, होटलों पर काम करते हैं। एक स्लम में हमने 25 बच्चों से बात की जिनमें से 8 ने कहा कि वे अपने परिवार के साथ किराये के मकान में रहते हैं, दो बच्चों ने बताया कि वे कच्चे घर में रहते हैं और बाकी बच्चे अपने मकान में परिवार के साथ रह रहे थे। इन बच्चों में बुखार, जुकाम, बदन दर्द, मलेरिया, पेचिश और श्वास संबंधी समस्याएं सबसे आम बीमारियां थीं। खतरनाक कार्यों के कारण लगातार बीमारी और दवाइयों व निजी अस्पतालों के खर्चे को लोगों ने कर्जदारी का मुख्य कारण बताया।

होसपेट झुग्गी बस्ती में खान मजदूरों के बच्चे। बहुत सारे बच्चे गैराजों, चाय की दुकानों, खानों में या ट्रक क्लीनर, कुली, लोडर, घरेलू नौकरों के रूप में काम करते हैं (फोटो - जनवरी 2010)

खनन क्षेत्र में स्कूलों और शिक्षा के हालात

बेल्लारी जिले के आंकड़ों के मुताबिक यहां 9,233 बच्चे 2006 में, 5,198 बच्चे 2007 में और 4,581 बच्चे 2008 में स्कूल से बाहर थे।[28] लेकिन हमारा मानना है कि ये जिला स्तरीय आंकड़े वास्तविकता से बहुत कम हैं क्योंकि छोटे से सर्वेक्षण के आधार पर ही हमने पाया कि अकेले होसपेट में ही कम से कम 367 बच्चे थे जो स्कूल नहीं जा रहे थे।

वाल्मीकि नगर, करीगानुरू के प्राथमिक स्कूल में 105 बच्चों के नाम दर्ज हैं। यहां कक्षा एक से पांच तक केवल तीन शिक्षक हैं और चार कमरे हैं। इनमें से एक कमरा बगल की खानों में होने वाले विस्फोटों की वजह से क्षतिग्रस्त हो गया है। हैडमास्टर ने बताया कि नियमित रूप से केवल 80-85 बच्चे ही स्कूल आते हैं लेकिन लगभग हर बच्चा हफ्ते में कम से कम दो दिन छुट्टी जरूर करता है। उन्होंने बताया कि ज्यादातर बच्चे अपने मां-बाप के साथ खानों में मजदूरी करते हैं और 50 रुपये तक दिहाड़ी कमा लेते हैं। यहां पढ़ने वाले ज्यादातर बच्चे आंध्र प्रदेश के कुडप्पा और कुरनूल जिलों के प्रवासी मजदूर हैं इसलिए इन बच्चों को कन्नड़ माध्यम में पढ़ने में मुश्किल पेश आती है। यह भी उनके पढ़ाई छोड़ देने का एक अहम कारण है। क्योंकि अलग-अलग कक्षाओं के बच्चों को एक साथ बैठना पड़ता है और शिक्षकों की संख्या भी कम है इसलिए भी कुछ बच्चे स्कूल नहीं आना चाहते।

वाल्मीकि नगर प्राइमरी स्कूल की कक्षा बगल में चल रहे खान विस्फोटों के कारण क्षतिग्रस्त हो गई है, करीगानूरू, होसपेट, कर्नाटक (फोटो - जनवरी 2010)

लोडिंग गतिविधियां स्कूल के ठीक पीछे चलती रहती हैं। ट्रकों की लोडिंग में बच्चों को 15 रुपये मिल जाते हैं इसलिए वे स्कूल के दौरान या आधी छुट्टी के समय अचानक स्कूल से गायब हो जाते हैं। स्थानीय शिक्षक ने बताया कि कक्षा दो और तीन के बच्चे भी खानों में काम करने चले जाते हैं और अकसर स्कूल से गायब रहते हैं। खनन गतिविधियों के अलावा इस स्कूल के बच्चे हाइवे पर गैरेज और होटलों में भी काम करते दिखाई देते हैं। इसके अलावा, स्कूल के एकदम निकट लगातार विस्फोटों से भारी ध्वनि प्रदूषण पैदा होता है जिससे पढ़ाई में व्यवधान पड़ता है। इन विस्फोटों के कारण बच्चों के बदन, उनके भोजन और किताबों, सब चीजों पर लाल धूल की परत छा जाती है। विस्फोटों और हाइवे से नजदीकी के कारण यह स्कूल बच्चों के लिए एक खतरनाक स्थान बन गया है। स्कूल की कोई चारदीवारी भी नहीं है। स्कूल अधिकारियों का कहना है कि उन्होंने स्कूल को किसी सुरक्षित स्थान पर स्थांनातरित करने के लिए शिक्षा विभाग को आवेदन भेजा हुआ है लेकिन अभी तक उस पर कोई जवाब नहीं आया है।

होसपेट की एक झुग्गी बस्ती में जिन 25 बच्चों से बात की गई उनमें से 15 अनुसूचित जाति परिवारों से थे। उनमें से 9 बच्चे कभी स्कूल नहीं गए थे। खनन कार्य, खराब सेहत और गरीबी उनके स्कूल न जा पाने का मुख्य कारण थी। सुल्तानपुरा गांव में जिंदल ग्रुप और केएमएमआई समूह की तीन बिजली परियोजनाएं हैं। इनमें से एक संयंत्र प्राइमरी स्कूल से मात्र 200 मीटर दूर स्थित है। यहां 6-14 साल की उम्र के 103 बच्चे हैं लेकिन केवल 61 बच्चे ही प्राइमरी स्कूल में आते हैं। इनमें से सिर्फ 13 बच्चे अनुसूचित जाति समुदाय के हैं। स्थानीय संगठन रूरल एजुकेशन ऐक्शन डेवलेपमेंट सोसायटी (रीड्स) के प्रतिनिधियों ने बताया कि समुदाय के ज्यादातर बच्चे इसलिए नहीं आते क्योंकि वे खानों में बाल मजदूरी करते हैं। हैडमास्टर का कहना था कि बच्चों को धूल की वजह से गले में खराश और संक्रमण की शिकायत बनी रहती है। स्कूल में सिर्फ दो स्थायी शिक्षक हैं लेकिन जब हम वहां गए तो केवल हैडमास्टर ही उपस्थित थे। बाकी दोनों अध्यापक छुट्टी पर थे। बुनियादी ढांचे की स्थिति भी खराब थी। स्कूल में पीने के पानी, शौचालय या कक्षाओं का अभाव था (एक शिक्षक दो-दो कक्षाओं को संभाले हुए थे)। इमारत की जर्जर हालत के बावजूद अधिकारियों को बच्चों की हिफाजत की परवाह नहीं थी।

28 बेल्लारी डिस्ट्रिक्ट स्टेटेस्टिक्स, 2006 सर्व शिक्षा अभियान

कल्लाली गांव में लगभग 200 परिवार हैं। यहां की समस्याएं भी करीगानुरू जैसी ही हैं। लोग लौह अयस्क की धूल के दमघोंटू माहौल में रह रहे हैं। यहां भी स्कूल सड़क से बेहद नजदीक है जहां धूल, विस्फोट और भारी वाहनों की आवाजाही हमेशा बच्चों की सुरक्षा व स्वास्थ्य के लिए एक खतरा बनी रहती है। दुख की बात है कि यहां चारदीवारी भी स्कूल को कोई हिफाजत नहीं दे सकती। होसपेट से कल्लारी गांव तक पूरे हाइवे पर हमें चाय की दुकानों, साइकिल की दुकानों, होटलों और यहां तक कि निजी डिस्पेंसरियों में भी बच्चे काम करते दिखाई दिए जबकि उन्हें स्कूल में होना चाहिए था। जैसा कि होसपेट में सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र (सीएचसी) में तैनात डॉ. शंकर सी. नायर ने कहा:

"बच्चे तो हर जगह काम कर रहे हैं। उनकी सही तादाद बताना भी मुश्किल है। असल में सबसे पहली जरूरत ये है कि हम इस बात को स्वीकार करें कि यहां रहने और काम करने वाले बच्चों की हालत कितनी चिंताजनक है।"

विडंबना ये है कि स्वयं डॉ. शंकर के क्लीनिक में भी एक बच्चा काम कर रहा था।

करीगानुरू के लोगों ने बताया कि हालांकि वहां एक प्राइमरी स्कूल है लेकिन उसमें आर्थिक रूप से संपन्न परिवारों के बच्चे ही जा पाते हैं। तकरीबन केवल 25 लड़के पास में स्थित होसपेट कस्बे के कॉलेज में जाते हैं।

टेंट स्कूलों में बच्चे

इलाके में स्थित रीड्स और सीड्स (सोशल इकोनॉमिकल एजुकेशनल डेवलेपमेंट सोसायटी) जैसे संगठन खान मजदूरों के बच्चों के लिए टेंट स्कूल चलाते हैं। ये स्कूल खासतौर से प्रवासी परिवारों के लिए चलाए जा रहे हैं जिनके पास नियमित स्कूलों की सुविधा नहीं होती। मई 2009 में रीड्स द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण में पता चला था कि संदुर तालुक के 27 गांवों में 1,307 बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं और उनमें से ज्यादातर खानों में काम करते हैं।

नीराहल्ली गांव में ठेकेदारों ने अवैध खानों में 40-42 परिवारों को मजदूरी पर रखा हुआ है। टेंट स्कूल में बहुत छोटे बच्चे हैं जो रीड्स का स्कूल शुरू होने से पहले खानों में काम करते थे। शिवगंगा 8 साल की है जो पहले अपनी मां के साथ खानों में मजदूरी करती थी और छोटे भाई-बहनों को भी संभालती थी। भारती भी प्रवासी लड़की है जो कभी स्कूल नहीं गई थी। अब वह रोज कुछ घंटे टेंट स्कूल में पढ़ने जाती है और बाकी समय खानों में मजदूरी करती है। उसे लौह अयस्क तोड़ने के बदले रोज 30-40 रुपये मिल जाते हैं। यह पैसा परिवार को पालने के लिए उसकी मां का बहुत बड़ा सहारा है। 12 साल के एक लड़के को मवेशियों को चराना होता है इसलिए उसने अपना ही एक हल ढूंढ लिया है। वह टेंट स्कूल के पास स्थित चरागाह में जानवरों को छोड़

नीराहल्ली, संदुर में एक टेंट स्कूल में खान मजदूरों के बच्चे। यह स्कूल टीडीएच जर्मनी की सहायता से रीड्स द्वारा चलाया जा रहा है (फोटो - जनवरी 2010)

देता है और स्कूल में पढ़ने के साथ-साथ उन पर भी नजर रखता रहता है। उसके मां-बाप खानों में दिहाड़ी मजदूरी करते रहते हैं।

ये टेंट स्कूलों में आने वाले बच्चों की पृष्ठभूमि के विविध उदाहरण हैं। लेकिन भले ही ये स्कूल इन बच्चों को खानों से थोड़ी देर के लिए आजादी दे देते हों, वे औपचारिक शिक्षा का विकल्प नहीं हैं। ये प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार है कि उसे सामान्य औपचारिक शिक्षा मिले। वैसे भी ये स्कूल इन बच्चों को खनन कार्यों से दूर नहीं रख पा रहे हैं। हमने जिस तरह के बच्चों की बात कर रहे हैं, ऐसे बच्चे बाल मजदूरी के आंकड़ों में नहीं आते क्योंकि वे स्कूल में दाखिल हैं लेकिन उनके पार्ट टाइम काम को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

रीड्स द्वारा किए गए खान मजदूरों के बच्चों के सर्वेक्षण और स्कूल न जाने वाले बच्चों के सर्वेक्षण में 3,665 परिवारों वाले 27 गांवों की पांच ग्राम पंचायतों को कवर किया गया था।

सीड्स द्वारा संदुर में खान मजदूरों के बच्चों के लिए चलाया जा रहा टेंट स्कूल। यह स्कूल टीडीएच जर्मनी की सहायता से चल रहा है। ये बच्चे स्कूल भी जाते हैं और खानों में काम भी करते हैं। सीड्स द्वारा लिया गया फोटो।

टेबल 2.02 में उन बच्चों की स्थिति दर्शाई गई है जो यहां के टेंट स्कूल में आने के साथ-साथ खानों में या घर पर या संदुर के बाहर काम भी करने जाते हैं।

टेबल 2.02 : संदुर में स्कूल न जाने वाले बच्चों का सर्वेक्षण

क्र.सं.	ब्यौरा	लड़के	लड़कियां	कुल
1	कुल बच्चे	3,876	3,659	7,535
2	नियमित रूप से स्कूल जाने वाले बच्चे	3,187	3,045	6,232
3	आयु अनुसार विवरण			
	* 3-5 वर्ष	980	885	1,865
	* 6-14 वर्ष	2,113	2,149	4,262
	* 15-18 वर्ष	783	625	1,408
4	स्कूल ड्रॉप-आउट बच्चे	689	614	1,303
5	काम का स्वरूप			
	* खान	250	186	436
	* पशुओं को चराना	110	30	140
	* भाई-बहन को संभालना	133	278	411
	* बंधुआ मजदूरी	2	0	2
	* कृषि कार्य	194	120	314
	* दस्तकारी	49	18	67

स्रोत : स्थानीय संगठन रीड्स द्वारा संकलित डेटा, बेल्लारी, मई 2009.

संदुर तालुक में थिम्मलपुरा 20 अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति परिवारों वाला एक छोटा गांव है। यहां सभी प्रवासी परिवार हैं जो पिछले चार साल से रह रहे हैं। थिम्मलपुरा कैंप स्कूल में 40 बच्चे हैं। शिक्षकों ने बताया कि उनमें से 13 बच्चे कुपोषित थे। लेकिन हमें बाकी बच्चे भी उतने ही कुपोषित और खून की कमी से ग्रस्त दिखाई दे रहे थे। रीड्स द्वारा किए गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि 39 बच्चे प्राथमिक स्कूल से पढ़ाई छोड़ चुके हैं जो कि यहां से चार किलोमीटर दूर मेत्रिकी गांव में स्थित है। टेंट स्कूल के अध्यापक ने बताया कि ये बच्चे मलेरिया, पीलिया, खांसी और बुखार से लगातार परेशान रहते हैं। उनको त्वचा संक्रमण और खारिश हमेशा बनी रहती है। लोगों ने बताया कि एएनएम भी महीने में सिर्फ एक ही बार उनकी स्वास्थ्य जांच के लिए आती है। यहां के बड़े लड़के ट्रक ड्राइवर और क्लीनर की नौकरियां करते हैं क्योंकि एनएमडीसी और ओबुलापुरम खानें इस इलाके से काफी नजदीक हैं।

आंगनवाड़ियां

आंगनवाड़ियों की सुविधा बहुत थोड़ी खान मजदूर बस्तियों में ही उपलब्ध है। जहां आंगनवाड़ियां हैं वहां भी उनका बुनियादी ढांचा और सुविधाएं 6 साल से कम उम्र के सारे बच्चों की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। उदाहरण के लिए, राजपुरा में 1-6 साल के आयु समूह में 118 बच्चे हैं। रिकॉर्ड्स के अनुसार, आंगनवाड़ी में आने वाले 40-42 बच्चों में से 15 बच्चे श्रेणी 1 कुपोषण और 25 बच्चे श्रेणी 2 कुपोषण से ग्रस्त हैं। किचन सहित आंगनवाड़ी में स्वच्छता की स्थिति बहुत खराब थी और ऐसा लगता था कि यहां पका हुआ खाना कभी भी फूड प्वाइजनिंग या बच्चों की बीमारी का कारण बन सकता है। आंगनवाड़ी में एक शौचालय है जिसका इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। स्कूल के सामने गंदे पानी की नाली मच्छरों के पनपने का मैदान बन गई है। कुछ युवा अभी-अभी कमाए पैसों से जुआ खेलते दिखाई दिए। ये बच्चे आंगनवाड़ी के ठीक बाहर जुआ खेल रहे थे और आंगनवाड़ी के बच्चे उत्सुकता से उन्हें घूर रहे थे। बच्चों ने बताया कि आंगनवाड़ी में सिर्फ एक सांप ही नियमित रूप से आता है जो दीवारों में बनी दरारों में रहता है। पूरा माहौल इस बात की कहानी कह रहा था कि खनन क्षेत्र में बच्चों का जीवन शारीरिक और सामाजिक, दोनों दृष्टियों से कितना असुरक्षित और अस्वस्थ था।

बच्चों के सामने आंगनवाड़ी के दरवाजे पर जुआ खेलते युवा, राजपुरा, संदुर
(फोटो - दिसंबर 2009)

ज़ंग लगी वजन तोलने की मशीन पर लटक कर वजन तुलवाते बच्चे, सुलतानपुरा आंगनवाड़ी। यहां बच्चों के विकास का कोई रिकार्ड नहीं रखा गया है (फोटो - दिसंबर 2009)

सुल्तानपुरा आंगनवाड़ी में 66 बच्चों के नाम दर्ज थे। हालांकि गांव में 6 साल से कम उम्र के 85 बच्चे हैं। जिस दिन हम आंगनवाड़ी पहुंचे उस दिन वहां केवल 17 बच्चे मौजूद थे। अध्यापिका भी यह जानकर फटाफट आंगनवाड़ी पहुंच गई कि कोई टीम आंगनवाड़ी देखने आई है। अध्यापिका ने बच्चों के कोई रिकॉर्ड्स नहीं रखे थे इसलिए वह हमें सिर्फ कोरी फाइलें दिखा कर रह गई। आंगनवाड़ी में कोई शैक्षिक सामग्री नहीं थी। बुनियादी किट्स भी गायब थे। हमारे जोर देने पर आंगनवाड़ी हेल्पर ने वजन तोलने वाला कांटा निकाल कर छत में लटका दिया। जब हमने कहा कि वे बच्चों का वजन करके दिखाएं तो अध्यापिका ने बच्चों से कहा कि वे कांटे का हुक पकड़ कर एक-एक करके लटक जाएं। यहां शौचालय नाम की भी एक जगह थी लेकिन उसका इस्तेमाल जलावन की लकड़ी रखने के लिए किया जा रहा था। नलकों में पानी नहीं था और आंगनवाड़ी में स्वच्छता की स्थिति बहुत खराब थी। ज्यादातर बच्चे खून की कमी से ग्रस्त दिखाई दिए लेकिन क्योंकि आंगनवाड़ी अध्यापिका के पास कोई रिकॉर्ड्स नहीं थे इसलिए हमें सटीक आंकड़े नहीं मिल पाए।

स्वास्थ्य समस्याएं

होसपेट स्थित सीएचसी अस्पताल में तैनात डाक्टर शंकर नायर का कहना था कि अस्पताल में आने वाले ज्यादातर मरीज प्रवासी मजदूर होते हैं जिनकी आर्थिक स्थिति इतनी खराब है कि वे न्यूनतम स्तर पर भी स्वस्थ नहीं रह सकते। उन्होंने बताया कि ये मजदूर टीवी, मलेरिया, न्यूमोनोकोसिस, फेफड़ों और त्वचा रोगों तथा दमे के शिकार पाए गए हैं। जैसे-जैसे खनन कार्यों में तेजी आई है, यहां एचआईवी/एड्स संक्रमण भी बढ़ा है।

तोरानागल्लू, संदुर स्थित सीएचसी में तैनात डाक्टरों ने इस तालुक में स्वास्थ्य समस्याओं पर अपनी राय दी। उनका कहना था कि संदुर में स्थापित बहुत सारे स्टील संयंत्रों ने वायु प्रदूषण बढ़ा दिया है। संयंत्रों की चिमनियों से निकलता विषैला धुंआ आसपास के इलाकों में लोगों के लिए एलर्जी और संक्रमण का स्रोत बन रहा है। बच्चे शुरू से ही इस माहौल में रहते हैं इसलिए वे श्वास रोगों से घिरे रहते हैं। यहां के सीएचसी रिकॉर्ड्स में टीबी के 59 और एचआईवी/एड्स के 51 मामले दर्ज थे और उनमें से ज्यादातर खान

संदुर स्थित सुलतानपुरा आंगनवाड़ी में शौचालय का इस्तेमाल जलावन की लकड़ी रखने के लिए किया जा रहा है (फोटो - दिसंबर 2009)

मजदूर थे। खान स्थलों के आसपास से गुर्दे में पत्थरी के मामले भी अकसर आते रहते हैं। सीएचसी डाक्टरों के निदान से पता चलता है कि खान मज. दूरों और उनके बच्चों में कुपोषण का स्तर बहुत ऊंचा है। जिंदल जैसी बड़ी कंपनियां अस्पताल तो चला रही हैं लेकिन वे समुदायों या मजदूरों का इलाज नहीं करते। इन अस्पतालों में इलाज की लागत काफी ऊंची है इसलिए इन अस्पतालों में इलाके के खाते-पीते लोगों का ही इलाज हो पाता है।

आंगनवाड़ी कामगार ने बताया कि राजपुरा गांव में 25 लोगों को टीबी है। वे सभी खान मजदूर हैं। इस काम के खतरनाक स्वरूप और शारीरिक तनाव की वजह से लगभग सारे मजदूर किसी न किसी तरह की नशीली दवाइयों, तंबाकू या शराब के आदी हैं। यहां तक कि छोटे बच्चे, जिनमें ज्यादातर लड़के हैं, भी कठोर परिश्रम और बदन दर्द को झेलने के लिए नशीली दवाओं के आदी हो गए हैं। यहां नशीली दवाओं के व्यापारी खान मालिकों, ठेकेदारों और पुलिस की मेहरबानी से अपना पूरा कारोबार फैला चुके हैं। इन लोगों ने एक ऐसा माहौल पैदा कर दिया है जो बेल्लारी के बच्चों की सुरक्षा के लिए भारी खतरा बन गया है।

करीगानुरू गांव में 7-8 प्राइवेट क्लीनिक हैं जो इस बात का संकेत हैं कि यहां बीमारियां कितनी ज्यादा हैं। यहां एक सरकारी टीबी अस्पताल भी था

एक खनन प्रभावित बस्ती में कुपोषित बच्चा (फोटो - दिसंबर 2009)

लेकिन अब वह बंद पड़ा है। खांसी, आंखों में संक्रमण, बुखार और एलर्जी इस गांव में आम बीमारियां थीं। कुछ मरीज स्थायी श्वास रोगों, मलेरिया, टीबी से भी पीड़ित बताए गए। लोगों ने यह भी बताया कि हाइवे पर ट्रकों की लगातार आवाजाही के कारण गांव के पास बहुत सारी दुर्घटनाएं हो चुकी हैं।

नीराहल्ली गांव में बिजली, पीने के पानी, सार्वजनिक वितरण व्यवस्था (पीडीएस), सड़क और आवास जैसी सुविधाएं नहीं हैं। इन लोगों के नाम ग्राम पंचायत की सूची में भी दर्ज नहीं हैं। आसपास कोई सरकारी स्कूल या आंगनवाड़ी भी नहीं है। पीएचसी 10 किलोमीटर दूर है। सड़कों की हालत ऐसी नहीं है कि बीमार लोग, खासतौर से गर्भवती महिलाएं इस पर सफर कर सकें। इसी तरह की हालत थिम्मलपुरा गांव की है। यहां बुनियादी सुविधाओं के अभाव के साथ-साथ फ्लोरोसिस की समस्या भी गंभीर है। यहां के बच्चों और वयस्कों में जोड़ों का दर्द एक आम शिकायत थी। इस गांव में चार लोगों को टीबी हो चुकी है। यहां दिहाड़ी मजदूरी 80 रुपये है जो दाल और सब्जीयुक्त बुनियादी खुराक के लिए भी काफी नहीं होती। इसलिए यहां चावल और ज्वार की रोटियां ही लोगों का नियमित भोजन बन गई हैं।

धूल प्रदूषण तथा भूमिगत जल स्तर में गिरावट के कारण बहुत सारे छोटे किसान अपनी जमीन खान ठेकेदारों को बेचने पर मजबूर हो गए हैं क्योंकि अब उनके लिए खेती करना संभव नहीं बचा है। इससे उनकी खाद्य सुरक्षा और आजीविका बुरी तरह प्रभावित हुई है जिसके चलते बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण पर सीधा असर पड़ रहा है। बहुत सारे किसान खुद भी पूरे परिवारों के साथ खानों में मजदूरी करने लगे हैं। इन बदलावों ने बच्चों की शिक्षा को प्रभावित किया है और खनन गतिविधियों से घिरे स्थानीय गांवों के बच्चों में स्कूल ड्रॉप-आउट बच्चों की संख्या बढ़ती जा रही है। अगर वे खनन गतिविधियों में काम नहीं करते हैं तो भी भारी धूल प्रदूषण और प्रदूषित पानी के कारण उनकी सेहत पर गहरा असर पड़ा है। होसपेट में हमने जिन डाक्टरों और कैमिस्टों से बात की उनका कहना था कि न केवल खान मजदूरों के बच्चों बल्कि आम आबादी में भी स्थायी श्वास रोग, ऐलर्जी, फेफड़ों की बीमारियां, दस्त और दमा जैसे रोग काफी बढ़ गए हैं।

यहां लौह अयस्क कचरे से दूषित पानी ही नहाने, कपड़े धोने और पीने का एकमात्र स्रोत है (फोटो - दिसंबर 2009)

निष्कर्ष

बेल्लारी जिला बेलगाम और अवैध खनन की जीती-जागती मिसाल बन गया है। ये इलाका इस बात का सुबूत है कि समस्याओं को दूर करने के लिए समूचा शासन तंत्र किस कदर बेजान हो चुका है। इतने सारे बच्चों को बाल मजदूरी करते देख कर ये भी समझा जा सकता है कि हमारा समाज, राज्य और नागर समाज किस कदर लाचार हो चुके हैं। ये इलाका एक जमाने में उपजाऊ खेती वाला इलाका था लेकिन अब दूर-दूर तक खानों की तबाही फैली हुई है। बहरहाल, हाल ही में खनन गतिविधियों पर जो राजनीतिक और शासकीय दबाव पड़ रहा है उसमें उम्मीद की एक किरण दिखाई देती है। बेल्लारी में छोटी और निजी खानों से संबंधित कानूनों में मौजूद खामियों को दूर करने की जरूरत साफ दिखाई देती है। यहां आकर पता चलता है कि प्रवासी मजदूरों और असंगठित क्षेत्र के बारे में दिशा-निर्देश तय करना और खनन पट्टे जारी करने से पहले समझौताविहीन शर्तों की रूपरेखा तय करना कितना जरूरी है। यहां खान मजदूरों के बच्चों तथा स्थानीय समुदायों की स्थिति और बच्चों के लिए मौजूद संस्थागत संरचना की स्थिति का फौरन समग्र आकलन किया जाना चाहिए। इस इलाके में बाल मजदूरी विरोधी अभियान को तेजी से आगे बढ़ाना सबसे पहली जरूरत है।

(***आभारः*** उपरोक्त केस स्टडीज मुख्य रूप से सखी के साथ साझेदारी में संपन्न गईं। सखी होसपेट, बेल्लारी में महिलाओं और बच्चों के अधि. कारों पर सक्रिय संगठन है। हम डॉ. भाग्यलक्ष्मी और उनकी टीम के आभारी हैं जिन्होंने इन पूरी केस स्टडीज़ के दौरान हमें सहयोग दिया और हमारी तरफ से फील्ड साक्षात्कार लिए। हम रीड्स, सीड्स और डॉन बॉस्को संगठनों के भी आभारी हैं जिन्होंने महत्वपूर्ण सूचनाएं संकलित करने में हमें मदद दी।)

रंगम्मा की कहानी : भारत में पत्थर की खदानें
3 फरवरी 2010

नीचे रंगम्मा की कहानी पढ़ें और देखें कि बिकॉज़ आई एम ए गर्ल अभियान में आप किस तरह मदद दे सकते हैं :

रंगम्मा बताती है, "मेरे माता-पिता दो साल तक हमारे गांव के पास मजदूरी करने के बाद यहां बंगलौर आये थे। मैं स्कूल नहीं जा पायी क्योंकि मेरी मां को काम पर जाना पड़ता था और मुझे बच्चे संभालने का जिम्मा मिला था। अब मेरी मां घर पर रहती है और मैं अप्पा (पिता) के साथ काम पर जाती हूँ। हम लोग सवेरे 6 बजे उठते हैं। सबसे पहले मैं बर्तन मांजती हूँ।... मैं पत्थर तोड़ने में अप्पा की मदद करती हूं। उन्हें टोकरियों में भरवाती हूँ और ट्रक में लोड़ करवाती हूं। हमें एक लॉरी के लिए 600 रुपये मिलते हैं। लेकिन चट्टानों को तोड़ने के लिए विस्फोटकों का खर्चा हमें ही करना पड़ता है। इस तरह अप्पा हफ्ते भर में 1000-1200 रुपये (लगभग 20 डॉलर) ही कमा पाते हैं।"

रंगम्मा जैसी लड़कियां रोज 14 घंटे तक कमरतोड़ मेहनत करती हैं। वे पत्थर निकाल कर लाती हैं, उन्हें तोड़ती हैं और ट्रकों में भरती हैं। वे बिना सुरक्षा उपकरणों के खतरनाक और विषैले वातावरण में अयस्क के प्रसंस्करण में भी मदद देती हैं।

रंगम्मा बताती है, "शुरू में बड़ी जल्दी छाले पड़ जाते हैं। धीरे-धीरे वे सूखने लगते हैं और हमारी हथेलियों की खाल सख्त होती जाती है। धूल बार-बार हमारी आंखों में घुस जाती है जिससे वे संक्रमित रहती हैं। हम दवाई डाल लेते हैं और आंखें ठीक हो जाती हैं।"

http://www.essentialbaby.com.au/parenting/my-life/rangammas-story-stone-quarrying-in-india-20100203-nbvq.html

कोयला प्रदूषण और भारत के अपाहिज बच्चे
बुधवार, 2 सितंबर 2009

कोयले से चलने वाले बिजली घरों से निकलने वाले भारी यूरेनियम प्रदूषण के कारण गंभीर जन्मजात विकृतियों के साथ पैदा हो रहे बच्चों की संख्या में नाटकीय इजाफा हुआ है। कुछ बच्चों के सिर बहुत बड़े या बहुत छोटे होते हैं। कुछ बच्चों का मस्तिष्क सही ढंग से विकसित नहीं हुआ होता है। ऐसे ज्यादातर बच्चे अमानवीय जीवन जीते हुए प्रायः समय से पहले ही मर जाते हैं। भारत प्रदूषण के शिकार इन अपाहिज बच्चों को दुनिया की आंखों से छिपाता रहा है लेकिन अब दुनिया प्रदूषण के इस खौफ का पूरा मंजर देख सकती है।

भठिंडा और फरीदकोट नामक पंजाबी शहरों के स्वास्थ्यकर्मियों को मालूम था कि अगर बच्चों में जन्मजात विकृतियां, शारीरिक और मानसिक असमान्यताएं और कैंसर बढ़ रहा है तो कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ जरूर है। उनको लग रहा था कि ये बच्चे धीरे-धीरे जहर की खुराक ले रहे हैं। जब दक्षिण अफ्रीका से आए एक वैज्ञानिक ने जांच की तो पता चला कि इन बच्चों के शरीर में यूरेनियम का स्तर बहुत ज्यादा था। एक बच्चे के शरीर में तो सुरक्षित सीमा से 60 गुना ज्यादा यूरेनियम पाया गया।

अगर एक विशाल इलाके में कुछ सौ बच्चे प्रदूषण के शिकार हैं तो पूरे भारत में कितने हजार बच्चे इस तरह से प्रभावित होंगे, यह अंदाजा लगाना मुश्किल नहीं है।

http://www.ourfutureplanet.org/news/288-coal-pollutionand-indias-crippled-children

पंजाब के बच्चों में यूरेनियम के अंश
30 अप्रैल 2009, डाउन टू अर्थ, सैवी सौम्या मिश्रा

उनकी संख्या 159 है। उनमें ज्यादातर 13 साल से कम उम्र के बच्चे हैं और कुछ वयस्क हैं। उनका ऑटिज़्म, सेरेब्रल पाल्सी और मानसिक विकलांगता के लिए फरीदकोट, पंजाब स्थित बाबा फरीद सेंटर फॉर स्पेशल चिल्ड्रेन में इलाज चल रहा है। इनमें से ज्यादातर पंजाब के हैं लेकिन कुछ तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और यहां तक कि विदेशों से भी आए हैं। ये लोग इसलिए सुर्खियों में आ गए हैं क्योंकि उनमें से ज्यादातर के बालों के नमूनों में यूरेनियम की भारी मात्रा पाई गई है।

सात वर्षीय युवराज का सेरेब्रल पाल्सी के लिए इलाज चल रहा है। उसके पिता देवेंद्र सिंह ने बताया, "मैं ये जानकर बड़ा परेशान हूं कि नमूनों में यूरेनियम पाया गया है। पता नहीं अब मेरे बच्चे का क्या होगा।"

इस केंद्र में नेचुरोपैथी, न्यूरोथैरेपी और योग के माध्यम से इलाज किया जाता है। यहां के नेचुरोपैथ हरीश बाबू ने कहा, "जांच करने पर ही पता चलेगा कि ऑटिज़्म यूरेनियम के कारण हुआ है या इसकी कोई और वजह है।"

http://www.downtoearth.org.in/full6.asp?foldername=20090430&filename=news&sec_id=4&sid=5

महाराष्ट्र

व्यापक स्थिति

क्षेत्रफल के लिहाज से महाराष्ट्र भारत का तीसरा सबसे बड़ा राज्य है और इसकी आबादी 96,878,627[29] है (जो कि भारत की जनसंख्या का 9.4 प्रतिशत बैठती है)। इस तरह, उत्तर प्रदेश के बाद महाराष्ट्र की आबादी सबसे ज्यादा है। यहां बहुत बड़ी प्रवासी आबादी रहती है। महाराष्ट्र काफी शहरीकृत राज्य है। यहां की 42 प्रतिशत आबादी शहरी इलाकों में रहती है (जबकि राष्ट्रीय औसत लगभग 28 प्रतिशत है)।[30] महाराष्ट्र भारत के तुलनात्मक रूप से संपन्न राज्यों में है। 2007-08 में महाराष्ट्र का जीएसडीपी 5910 अरब रुपये था। राष्ट्रीय आय में महाराष्ट्र लगभग 13 प्रतिशत योगदान देता है।[31]

महाराष्ट्र में खेती रोजगार का सबसे बड़ा स्रोत है। राज्य की लगभग 55 प्रतिशत आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खेती एवं संबंधित गतिविधियों पर आश्रित है।[32] इसके बाद उद्योग जगत का स्थान आता है। लेकिन खेती पर इस निर्भरता के बावजूद महाराष्ट्र अनाज उत्पादन में आत्मनिर्भर नहीं हो पाया है। व्यावसायिक फसलों पर जोर देने की वजह से यहां कृषि प्रसंस्करण उद्योग को ज्यादा बढ़ावा मिला है जो मुख्य रूप से गन्ने के इर्द-गिर्द केंद्रित है। कुछ हद तक कपास और हाल के सालों में फलों व सब्जियों का कृषि प्रसंस्करण उद्योग भी विकसित हुआ है।[33] गन्ने पर भारी जोर की वजह से सिंचाई के लिए आवश्यक एक बहुमूल्य संसाधन - पानी - का समान उपयोग मुश्किल हो गया है। महाराष्ट्र में कुल फसली क्षेत्रफल का केवल 14.5 प्रतिशत हिस्सा ही सिंचित क्षेत्र है। इसके कारण राज्य की ज्यादातर खेती पर सूखे की आशंका बनी रहती है। यह बात राज्य की कृषि उपज में आने वाले उतार-चढ़ावों से समझी जा सकती है जो किसी भी सामान्य वर्ष में राज्य की कुल अनाज आवश्यकता का 90 प्रतिशत पैदा कर सकता है।[34] फलस्वरूप, ग्रामीण आबादी की आय में भारी अस्थिरता बनी रहती है और लोगों को सीमांत श्रमिक के रूप में काम करना पड़ता है या फिर वे मुंबई जैसे शहरों की तरफ पलायन कर जाते हैं।

जनगणना 2001 के मुताबिक महाराष्ट्र की 10.2 प्रतिशत आबादी अनुसूचित जाति और 8.9 प्रतिशत आबादी अनुसूचित जनजाति है (राष्ट्रीय औसत क्रमश 16.2 प्रतिशत और 8.2 प्रतिशत है)। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आबादी का एक विशाल हिस्सा महाराष्ट्र के ग्रामीण इलाकों में रहता है और वे मुख्य रूप से खेती पर आश्रित हैं।

योजना आयोग, भारत सरकार द्वारा जारी किए गए गरीबी के अनुमानों से पता चलता है कि राज्य में गरीबी का अनुपात 30.7 प्रतिशत है जो कि अखिल भारतीय औसत 27.5 प्रतिशत से अधिक है। संख्या की दृष्टि से महाराष्ट्र में गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाली आबादी उत्तर प्रदेश और बिहार के बाद तीसरे स्थान पर आती है।[35]

महाराष्ट्र में स्वास्थ्य व्यवस्था राज्य की आबादी के अनुरूप नहीं फैल पाई है। हालांकि यहां की आबादी तेजी से बढ़ी है मगर अस्पतालों की संख्या में आंशिक ही सही लेकिन गिरावट आई है। 2001 में यहां 1102 अस्पताल थे जबकि 2007 में 1099 अस्पताल रह गए थे। राज्य में औसत आयु राष्ट्रीय औसत से कुछ अधिक है। पुरुषों की राष्ट्रीय औसत आयु 65.8 वर्ष और महिलाओं की औसत आयु 68.1 वर्ष है जबकि महाराष्ट्र

29. भारत की जनगणना, 2001
30. इकॉनॉमिक सर्वे ऑफ महाराष्ट्र, 2008-08, पृष्ठ 1, http://mahades.maharashtra.gov.in/files/noticeboard/eco_srurvy_2008-09_English.pdf.
31. उपरोक्त।
32. उपरोक्त।
33. इकॉनॉमिक सर्वे ऑफ महाराष्ट्र 2008-09
34. मानव विकास रिपोर्ट महाराष्ट्र (2002), महाराष्ट्र सरकार के लिए तैयार की गई, पृष्ठ 4
35. इकॉनॉमिक सर्वे ऑफ महाराष्ट्र 2008-09, पृष्ठ 178 http://mahades.maharashtra.gov.in/files/noticeboard/eco_srurvy_2008-09_English.pdf
36. उपरोक्त, पृष्ठ 209

में पुरुषों की औसत आयु 67.9 और महिलाओं की औसत आयु 71.3 वर्ष है।[36] मलेरिया के कारण होने वाली मौतों की संख्या बढ़ रही है जो 2004 में 61 थी जबकि 2007 में मलेरिया से 174 लोग मरे थे।[37] 2007 में महाराष्ट्र में फेफड़ों की टीबी से अधिकृत तौर पर 206 लोगों की मौत हुई थी।[38] लेकिन वास्तविक संख्या इससे ज्यादा हो सकती है।

महाराष्ट्र का साक्षरता स्तर भी राष्ट्रीय औसत (66 प्रतिशत) से काफी अधिक (76.88 प्रतिशत) है।[39] साक्षरता के मामले में यहां लैंगिक विभाजन बहुत गहरा दिखाई देता है। पुरुषों की साक्षरता दर 85.97 प्रतिशत जबकि महिलाओं की साक्षरता दर केवल 67.03 प्रतिशत पाई गई है। सामाजिक समूहों में भी भारी फर्क हैं। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदायों की साक्षरता दर बाकी समुदायों से काफी कम है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संस्थान (एनएसएसओ) द्वारा 2007-08 में कराए गए 'शिक्षा में सहभागिता और व्यय' सर्वेक्षण में ग्रामीण इलाकों में अनुसूचित जनजाति महिलाओं की साक्षरता दर मात्र 47 प्रतिशत पाई गई थी।

बच्चों की दशा

जनगणना 2001 के मुताबिक राज्य की आबादी में बच्चों (0 से 14 वर्ष) की संख्या 32 प्रतिशत है। 0-6 वर्ष आयु वर्ग में लिंग अनुपात 1000 लड़कों पर 917 लड़कियों का है जो कि राष्ट्रीय औसत 927 से भी कम है। महाराष्ट्र में राष्ट्रीय औसत से भी कम लिंग अनुपात यहां बेटों की गहरी चाह, बालिका भ्रूण हत्या और जन्म के बाद लड़कियों की उपेक्षा और फलस्वरूप शिशु एवं बाल मृत्यु दर में इजाफे का परिणाम हो सकता है।[40]

महाराष्ट्र में विभिन्न कारणों से स्कूल न जाने वाले बच्चों की समस्या काफी गंभीर है। स्कूल की अनुपयुक्त अवधि, मां-बाप के साथ बच्चों का प्रवासन, ड्रॉप-आउट बच्चों को नियमित स्कूल में दाखिला दिलाने में मुश्किल आदि इसके मुख्य कारण हैं।[41] सरकारी आंकड़ों के अनुसार 2008 मार्च में 6 से 14 साल के 70,087 बच्चे स्कूल से बाहर थे।[42] लेकिन प्रथम के एएसईआर 2008 सर्वेक्षण के अनुसार इस आयु वर्ग के 1.5 प्रतिशत बच्चे स्कूल से बाहर हैं। इसका मतलब है कि ऐसे बच्चों की संख्या अधिकृत आंकड़ों से काफी ज्यादा हो सकती है। महाराष्ट्र में सेक्स वर्कर्स की संख्या भी तेजी से बढ़ती जा रही है जिसके पीछे आर्थिक हाशियाकरण मुख्य कारण है। 2004 में मुखर्जी द्वारा किए गए एक अध्ययन के अनुसार, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की सहायता से किए गए एक अध्ययन में 25 प्रतिशत वेश्याएं 18 साल से कम उम्र की पाई गई थीं।[43] जनगणना 2001 के अनुसार राज्य भर के मुख्य श्रमिकों में 5-14 साल की उम्र के बच्चों की संख्या 392,186 और सीमांत श्रमिकों में 331,889 थी। राज्य की बहुत सारी युवतियां और बच्चे बेहद पिछड़े इलाकों से खरीद कर भारत की व्यापारिक राजधानी मुंबई में पहुंचा दिए जाते हैं। ये बच्चे और युवतियां प्रायः देश के सबसे विख्यात खनन इलाकों से आते हैं।

महाराष्ट्र में बाल स्वास्थ्य की स्थिति में हाल के सालों में सुधार आया है। एनएचएफएस-3 के अनुसार 1998-99 में आईएमआर 44 था जो 2005-06 में 38 रह गया था। तीन साल से कम उम्र के अल्पभार बच्चों का प्रतिशत भी 1998-99 में 50 पतिशत था जो 2005-06 में 40 प्रतिशत रह गया था। लेकिन 12 से 23 माह के बच्चों के टीकाकरण में भारी गिरावट आई है। 1998-99 में इस आयु वर्ग के ऐसे बच्चों की संख्या 78 प्रतिशत थी जिनको सारे टीके लग चुके थे जबकि 2005-06 में उनकी संख्या 59 प्रतिशत रह गई थी।[44]

महाराष्ट्र में खनन उद्योग

महाराष्ट्र का लगभग 19 प्रतिशत इलाका खनिज संसाधनों वाला इलाका है।[45] पूर्व में विदर्भ और पश्चिम में कोंकण यहां की मुख्य खनिज पट्टियां हैं। पूरे देश में खनन उद्योग के लिए उपलब्ध कराई गई वन भूमि का 4 प्रतिशत महाराष्ट्र में रहा है।[46] इस बारे में कोई आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं कि अवैध खनन के लिए कितनी जमीन का इस्तेमाल किया जा रहा है। खान मंत्रालय के अनुसार 2007-08 में महाराष्ट्र में खनिज उत्पादन का मूल्य 51.1 अरब रुपये था जोकि पिछले साल के मुकाबले 16 प्रतिशत अधिक है। उस साल भारत के खनिज उत्पादन में राज्य का हिस्सा 4.7 प्रतिशत था।[47] श्रम एवं रोजगार मंत्रालय द्वारा जारी किए गए आंकड़ों के अनुसार 2005 में महाराष्ट्र के खान उद्योग में हर रोज औसतन 34,800 मजदूर काम कर रहे थे (2004

37. लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 100, 22.11.2006 द्वारा जारी किए गए आंकड़ों से संकलित।
38. उपरोक्त।
39. भारत की जनगणना।
40. एक्सेसिंग वलनरेबिलिटीज फॉर ट्रैफिकिंग ऐण्ड एचआईवी/एड्स, महाराष्ट्र - ड्राफ्ट रिपोर्ट 2005, शक्तिवाहिनी, यूएनडीपी ताहा परियोजना, पृष्ठ 7
41. इकॉनॉमिक सर्वे ऑफ महाराष्ट्र, 2008-09, पृष्ठ 159 http://mahades.maharashtra.gov.in/files/noticeboard/eco_srurvy_2008-09_English.pdf.
42. लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 576, दिनांक 21.10.2008, राज्यवार स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या (6-14 वर्ष) (31.03.2008 को)
43. एक्सेसिंग वलनरेबिल्टीज फॉर ट्रेफिकिंग ऐण्ड एचआईवी/एड्स, महाराष्ट्र - ड्राफ्ट रिपोर्ट 2005, शक्ति वाहिनी, यूएनडीपी ताहा परियोजना, पृष्ठ 23
44. एनएफएचएस-3 2005-06
45. सीएसई द्वारा विश्लेषण, रिच लैंड्स, पुअर पीपुल, 2008, पृष्ठ 201
46. एमएलपीसी, ऑर्गेनाइज़िंग दि अनॉर्गेनाइज़्ड, बहार दत्त, 2005; सीएसई, रिच लैंड्स, पुअर पीपुल, 2008, पृष्ठ 201
47. खान मंत्रालय, 2008-09, पृष्ठ 21

पत्थर खदानों में असुरक्षित कार्य परिस्थितियां (फोटो - सितंबर 2009)

में 35,900)।[48] 2001 की जनगणना के अनुसार राज्य के खनन क्षेत्र में मुख्य और सीमांत श्रमिकों की संख्या कुल 168,112 थी।[49]

महाराष्ट्र 2007-08 में कुरंड (corundum) का सबसे बड़ा उत्पादक था। उड़ीसा के बाद मैंगनीज़ उत्पादन में महाराष्ट्र दूसरे स्थान पर आता है।[50] चूना पत्थर, बॉक्साइट, मैंगनीज़ अयस्क और सिलिका मिट्टी व लैटेराइट यहां के अन्य प्रमुख खनिज हैं। मुंबई तट के पास समुद्र के भीतर तेल के भंडार भी पाए गए हैं। भारतीय खान उद्योग में छोटी खानों की हमेशा बहुत बड़ी संख्या रही है। देश भर की कुल 2,954 रिपोर्टिंग मान्इस में से 154 महाराष्ट्र में हैं जिसके आधार पर यह देश का 9वां सबसे बड़ा खनन राज्य बन जाता है।[51] हालांकि महाराष्ट्र देश के कुल खनिज मूल्य में सबसे ज्यादा योगदान देने वाले ऊपरी 10 राज्यों में आता है लेकिन रॉयल्टी के मद में इस उद्योग से महाराष्ट्र में जो राजस्व इकट्ठा होता है वह राज्य की कुल राजस्व आय का केवल 1 प्रतिशत ही बैठता है।[52]

महाराष्ट्र के बेहद असंगठित खनन उद्योग में मिट्टी और पत्थरों की खुदाई मुख्य बिंदु रहे हैं। इन खानों ने पर्यावरण को तहस-नहस कर दिया है, प्रदूषण को बढ़ावा दिया है, पानी का संकट पैदा किया है और फसलें चौपट हो गई हैं। अकेले पत्थर खुदाई उद्योग में ही राज्य के 40-50 लाख मजदूर काम करते हैं।[53] असंगठित और अधिकांशत अवैध होने की वजह से यह उद्योग मजदूरों के हितों की रक्षा के लिए उन्हें कोई विशेष प्रावधान नहीं देता। फलस्वरूप ये मजदूर भीषण परिस्थितियों में रहते हैं और उनके पास पीने का पानी, बिजली या स्वास्थ्य सुविधाएं भी नहीं होतीं।

पुणे के वाघोली गांव में गैर-सरकारी संगठन संतुलन की मदद से खान मजदूरों को पीने के पानी की व्यवस्था के लिए भी महाराष्ट्र खनन विकास निधि प्रस्ताव 2002 के तहत सरकार के खिलाफ बाकायदा कानूनी लड़ाई लड़नी पड़ी थी।[54]

इस बात का अनुमान लगाना मुश्किल है कि महाराष्ट्र की खानों में कुल

जिला पुणे : मुख्य तथ्य	
कुल आबादी :	7,232,555 (जनगणना 2001)
बच्चों की आबादी (0-14 वर्ष) :	2,176,374 (जनगणना 2001)
साक्षरता दर :	कुल 80.45 प्रतिशत पुरुष साक्षरता 88.34 प्रतिशत महिला साक्षरता 71.89 प्रतिशत (जनगणना 2001)
स्कूल न जाने वाले बच्चे (6-14 वर्ष) :	0.9 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
आंगनवाड़ी केंद्र या स्कूल पूर्व संस्थाओं में दर्ज बच्चे (3-4 वर्ष):	89.3 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
बाल मजदूरों की संख्या (5-14 वर्ष):	35,352 (जनगणना 2001)
पांच साल से कम उम्र में मृत्यु दर (रैंकिंग):	593 जिलों में से चौथा स्थान *(जनसंख्या स्थिरता कोष)*

48. indiastat.com पर देखा; श्रम एवं रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी किए गए आंकड़ों से संकलित, भारत में चुनिंदा राज्यवार औसत दैनिक रोजगार तथा वैध खानों की संख्या (2002–05)।
49. भारत की जनगणना, 2001
50. खान मंत्रालय वार्षिक रिपोर्ट, 2008-09. पृष्ठ 21.
51. उपरोक्त, पृष्ठ 10.
52. एमएलपीसी, ऑर्गेनाइज़िंग दि अनॉर्गेनाइज़्ड, बहार दत्त, 2005, सेंटर फॉर साइंस ऐण्ड एनवायर्नमेंट रिच लैंड्स, पुअर पीपुल, 2008. पृष्ठ 202.
53. उपरोक्त।
54. कुलकर्णी, मधुरा, स्टोन क्वेरी वर्कर्स विन दि बैटल फॉर दि राइट टू ड्रिंकिंग वॉटर, ऑक्सफेम, ऑस्ट्रेलिया, http://www.solutionexchange-un.net.in/environment/cr/res03070701.pdf.

जिला नासिकः मुख्य तथ्य	
कुल आबादी :	4,993,796 (जनगणना 2001)
बच्चों की आबादी (0-14 वर्ष) :	1,737,036 (जनगणना 2001)
साक्षरता दर :	कुल 74.36 प्रतिशत पुरुष साक्षरता 83.65 प्रतिशत महिला साक्षरता 64.35 प्रतिशत (जनगणना 2001)
स्कूल न जाने वाले बच्चे (6-14 वर्ष) :	1.9 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
आंगनवाड़ी केंद्र या स्कूल पूर्व संस्थाओं में दर्ज बच्चे (3-4 वर्ष):	93.9 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
बाल मजदूरों की संख्या (5-14 वर्ष):	55,371 (जनगणना 2001)
पांच साल से कम उम्र में मृत्यु दर (रैंकिंग):	593 जिलों में से 87वां स्थान *(जनसंख्या स्थिरता कोष)*

कितने बच्चे मजदूरी करते हैं। जनगणना 2001 के मुताबिक महाराष्ट्र की खानों में 5-14 साल की उम्र के 2,095 और 5-19 साल की उम्र के 11,758 बच्चे काम कर रहे थे। क्योंकि महाराष्ट्र में ज्यादातर खनन व्यवसाय असंगठित क्षेत्र में है इसलिए यह संख्या वास्तविकता से बहुत कम भी हो सकती है।

पाषाण बच्चे : बचपन को चूर-चूरा करती पत्थरदिल सरकार

13 साल का संतोष (बदला हुआ नाम) पुणे जिले के मोशी गांव की एक पत्थर खदान में काम करता है। वह नासिक से अपने परिवार के साथ यहां आया है और अब साल भर से भी ज्यादा समय से यहां मजदूरी कर रहा है। वह मुंह अंधेरे उठता है और पत्थर तोड़ते व उन्हें ट्रकों में भरते हुए उसे शाम हो जाती है। उसके चार भाई-बहन हैं जिनमें से एक विकलांग है। उसे 70-90 रुपये दिहाड़ी मिलती है जो परिवार को भुखमरी से बचाने के लिए बहुत जरूरी है। जब हमने उससे बात की तो

पुणे की एक पत्थर खदान में बाल मजदूर (फोटो - सितंबर 2009)

उसने बताया, "मैं सदा पढ़ना चाहता था लेकिन हमारे घर के हालात ऐसे नहीं हैं कि मैं स्कूल जा सकूं। अब तो बहुत देर हो चुकी है। मैं इसका सपना भी नहीं देख सकता। अब तो बस मुझे मेहनत करनी है ताकि अपनी तनख्वाह से छोटे भाइयों को स्कूल भेज सकूं।"

स्रोत : मोशी खदान, पुणे में साक्षात्कार, सितंबर 2009.

अब हमारा देश विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआई) और निजी बाजारों को लुभाने के लिए अवरचनागत सुविधाओं के विकास में जुनून के साथ जुट गया है इसलिए उद्योगों और तेजी से फैलते शहरों के लिए सड़कों, राष्ट्रीय राजमार्गों, हवाई अड्डों, रेलवे, बंदरगाहों और शहरी बुनियादी ढांचे का विस्तार तेज होता जा रहा है। मिसाल के तौर पर, भारत सरकार की राष्ट्रीय राजमार्ग विस्तार योजना एक महत्वाकांक्षी योजना है जिसके लिए 2,35,430 करोड़ रुपये का महाकाय निवेश किया गया है। राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना के तहत 12,109 किलोमीटर राजमार्ग को चार लेन वाला, 20,000 किलोमीटर को दो लेन वाला, 6,500 किलोमीटर को छह लेन वाला और 1,000 किलोमीटर को एक्सप्रेस-वे बनाया जाएगा। 11वीं पंचवर्षीय योजना में फ्लाई ओवरों, रिंग रोड्स आदि के लिए भी 16,600 करोड़ रुपये से ज्यादा राशि तय की गई है। अगले दशक में ऊर्जा की अदम्य आवश्यकता को पूरा करने के लिए विशाल विद्युत परियोजनाओं और बांधों पर भी बेहिसाब निवेश किया जा रहा है।

भारत के विकास की इन तमाम भव्य योजनाओं की कीमत देश भर में फैलती खानों के जरिए चुकाई जा रही है। इन खानों में प्रवासी और असंगठित मजदूरों की विशाल आबादी काम कर रही है जिनमें से बहुत सारे बच्चे और महिलाएं हैं। विडंबना यह है कि सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों (एमडीजी) को हासिल करने के लिए भारत ने समावेशी विकास के जो लक्ष्य तय किए हैं वे भी 26 निगरानी योग्य लक्ष्य हैं, जैसे (1) आय और गरीबी, (2) शिक्षा, (3) स्वास्थ्य, (4) महिलाएं और बच्चे, (5) बुनियादी ढांचा, तथा (6) पर्यावरण।

इन विकास लक्ष्यों और आर्थिक प्राथमिकताओं के बीच एक असंगति दिखाई देती है। महाराष्ट्र की केस स्टडी इस विरोधाभास का जीता-जागता उदाहरण है।

यह अध्ययन पुणे और नासिक जिलों में किया गया है। पुणे में वाघोली और शिरूर, इन दो बड़े पत्थर खनन क्षेत्रों का दौरा किया गया। पुणे और नासिक जिलों में दूर-दूर तक पत्थरों की खानें और क्रशर फैले हुए हैं जो आधुनिक अर्थव्यवस्था को गौरव प्रदान करने वाले राजमार्गों और शहरी बुनियादी ढांचे के निर्माण को समर्पित आपूर्ति शृंखला की कड़वी सच्चाइयों को अपने भीतर छुपाए हुए हैं।

हमने जिन खानों का दौरा किया वे लगभग सभी बड़ी खानें थीं और कम से कम 10 सालों से चल रही हैं। आमतौर पर प्रत्येक खदान स्थल पर कई खानें आसपास फैली हुई हैं और हर जगह मजदूरों की अलग-अलग टोलियां खुदाई कर रही हैं। कई बार खानों की खुदाई आवंटित पट्टे के क्षेत्रफल से भी बाहर फैल जाती है। ये सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि खान मालिक के पास कितने गुंडे और कितनी पहुंच है। पुणे और नासिक बहुत महत्वपूर्ण शहरी केंद्र हैं क्योंकि वे मुंबई से सटे हुए हैं और लगातार फैल रहे हैं। संतुलन संगठन के श्री बास्तु रेगे ने बताया कि हर जिले में लगभग 500-1000 खदानें हैं। उनका संगठन पत्थर खदान मजदूरों के अधिकारों के लिए काम करता है। पुणे के जिला खनन अधिकारी के मुताबिक पुणे जिले में पत्थर की 412 खदानें हैं लेकिन जमीनी हकीकत कुछ और है। मौके पर जाने पर पता चलता है कि वहां इससे दोगुना ज्यादा खानें अवैध रूप से चल रही हैं। जिला खनन अधिकारी ने भी अनधिकृत रूप से माना कि लगभग 25-40 प्रतिशत खानें अवैध चल रही हैं।

1999-2001 में पूरे राज्य में पत्थर की 1,777 खदानें थीं और उनसे 1954. 09 लाख रुपये का राजस्व प्राप्त हुए था (16 जिले)। 2008-09 में 2990.32 लाख रुपये (राजस्व) प्राप्त हुआ (केवल तीन जिले)। ये बढ़ोतरी इस बात का संकेत है कि पत्थर की खदानों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। यह इस बात का भी संकेत है कि यहां असंगठित क्षेत्र कामगारों की संख्या में कितना भारी इजाफा हो रहा है।

दोनों जिलों में पत्थर की खदानों में मुख्य रूप से वडार समुदाय के लोग काम करते हैं। पत्थर तोड़ना इस जाति का परंपरागत व्यवसाय माना जाता रहा है। बढ़ती गरीबी और खेती चौपट हो जाने से भी पिछड़ी जातियों, खासतौर से अनुसूचित जातियों को खनन उद्योग में दिहाड़ी मजदूरी करनी पड़ रही है। श्री बास्तु रेगे के अनुसार संतुलन के समर्थन वाली यूनियनों के सदस्यों में से 54 प्रतिशत वडार समुदाय के हैं और बाकी लोग अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़ी जातियों (ओबीसी) के हैं। इनमें से 80 प्रतिशत निरक्षर हैं। ज्यादातर मजदूर महाराष्ट्र के ही प्रवासी हैं। कुछ मजदूर आंध्र प्रदेश और कर्नाटक से भी आकर काम करते हैं। श्री रेगे ने बताया कि प्रत्येक खदान में औसतन 75 मजदूर काम कर रहे हैं।

खान मजदूरों के बच्चों की जीवन परिस्थितियांः प्लास्टिक की चादर का घर और छः फुट की जगह

प्रवासी पत्थर खान मजदूरों के चौतरफा धूल से अंटे 'घर'
(फोटो - सितंबर 2009)

हमने जिन 9 पत्थर खदानों का दौरा किया वहां संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन के अधिकार तथा अंतर्राष्ट्रीय समझौतों के प्रति भारी उपेक्षा का माहौल दिखाई दिया। यहां आकर पता चलता है कि मजदूरों की जीवन परिस्थितियां कितनी दयनीय और अस्थिर हैं। अगर यहां मजदूरों को कोई सुविधाएं मिल रही हैं तो वे संतुलन की कोशिशों का नतीजा हैं जिसने मजदूरों को गोलबंद करने के प्रयास किए हैं। ज्यादातर खान मजदूर बस्तियां मुख्य गांवों से दूर थीं। वे ग्राम समुदाय का हिस्सा नहीं थीं। खान मालिकों ने खानों के आसपास मनमाने ढंग से मजदूरों को बसा दिया है। कई जगह मजदूरों को खान मालिकों और पंचायत मुखियाओं के बीच हुए समझौतों के आधार पर स्थानीय पंचायत ने मजदूरों को खाली पड़ी जमीन वक्ती तौर पर दे दी है। इस तरह ये मजदूर गांव के मुखियाओं की दया पर भी आश्रित हैं।

मजदूरों के घर प्लास्टिक की चादरों और पत्थरों से बनाए गए हैं। 8X10 फुट के या 4X6 फुट के इन घरों में 7-10 लोग तक एक साथ रह रहे थे। ज्यादातर परिवार इन झुग्गियों के बाहर ही खाना पकाते और सोते हैं। महिलाओं ने बताया कि उनके पके हुए खाने और पीने के पानी में इसी कारण हमेशा धूल मिली रहती है।

पीने और घरेलू कामों के लिए पानी का इंतजाम करना मजदूरों की एक गंभीर समस्या है। मजदूरों ने बताया कि वे खानों के गड्ढों से पानी लाते हैं और उसी से अपनी बुनियादी जरूरतें पूरी करते हैं। क्योंकि मजदूर गांव वालों की दया पर निर्भर हैं इसलिए उन्हें पीने के लिए भी पर्याप्त पानी नहीं मिल पाता। अगर किसी गांव में पानी की किल्लत हो तो उनका

पत्थर खदान मजदूरों की बस्तियों में न्यूनतम आवास और स्वच्छता की भी व्यवस्था नहीं है - प्रदूषित पानी पीते बच्चे (फोटो - सितंबर 2009)

मां खान में दिन भर की कठोर मेहनत से लौटते बच्चे का इंतजार कर रही है - बच्चे के दोनों हाथों में 10-10 किलो से भी वजनी हथौड़े हैं (फोटो - सितंबर 2009)

हिस्सा और कम हो जाता है। ज्यादातर बस्तियों की महिलाओं का कहना था कि वे अकसर पानी पीने से बीमार पड़ जाती हैं।

खान मजदूरों के बच्चे खानों, बस्तियों में सब जगह दिखाई दिए। सभी के शरीर पर धूल जमी हुई थी। खान ही उनका घर, खेलने का मैदान, बिस्तरा है और यहीं उनकी पाषाण शालाएं चलती हैं। ये पाषाण शालाएं संतुलन द्वारा खान मजदूरों के बच्चों के लिए चलाए जा रहे स्कूल हैं। हमने जिन 9 स्थानों का दौरा किया उन सभी स्थानों पर बच्चे अस्वस्थ दिखाई दे रहे थे। वे खांसी, जुकाम, बहती नाक, बुखार और त्वचा रोगों से परेशान थे। औरतों ने बताया कि उनके बच्चों में दस्त, पीलिया और मलेरिया सबसे व्यापक बीमारियां हैं क्योंकि पानी दूषित है और खानों में जमा पानी मच्छरों का घर बन गया है। यहां साफ-सफाई का कोई इंतजाम नहीं है इसलिए ज्यादातर शिशु और बच्चे अपने घरों के आसपास ही टट्टी-पेशाब करते दिखाई दिए। औरतों के लिए ये ज्यादा बड़ी समस्या है क्योंकि वहां शौचालय या नहाने की कोई व्यवस्था नहीं है।

खदानों में बाल मजदूर : जी हाँ

जिन 9 स्थानों का दौरा किया गया वहां बच्चों के पास शिक्षा के नाम पर सिर्फ संतुलन द्वारा चलाई जा रही पाषाण शालाएं ही हैं। पाषाण शालाओं की शुरुआत खानों में मजदूरी करने वाले बच्चों को बाल मजदूरी से निकालने के लिए की गई थी और फिलहाल इन स्कूलों में महाराष्ट्र के पांच जिलों में 2001 बच्चों के नाम दर्ज हैं। अगर ये पाषाण शालाएं न होतीं तो ये सभी 2001 बच्चे शायद खदानों में मजदूरी कर रहे होते या खानों में ही अपने मां-बाप की मदद करते। गोरे वस्ती पाषाण शाला में बच्चों ने खानों में काम करने वाले अपने किशोर भाई बहनों के बारे में बताया। उन्होंने कहा कि उनके भाई-बहन बचपन से ही मजदूरी करने लगे थे। संतुलन के लिए भी कुछ साल से मजदूरी कर रहे बच्चों और किशोर-किशोरियों को पाषाण शालाओं में आने के लिए प्रेरित करना बड़ा कठिन साबित होता है क्योंकि इन बच्चों, खासतौर से लड़कों के लिए फटाफट मिलने वाले पैसों के लालच से छुटकारा पाना बड़ा मुश्किल रहता है। हालात से मजबूर कुछ लड़के गुटखे, जुआ, मोबाइल फोनों, सिनेमा और चोरी/अपराधों के शिकंजे में फंस चुके हैं। उन्हें स्कूल और भी उबाऊ लगता है। उन्होंने बताया कि वे ट्रैक्टरों में, गैराजों में, क्रशिंग इकाइयों में और ढुलाई के कामों में मजदूरी करते हैं। बहुत सारे बच्चों ने कहा कि उन्होंने मां-बाप की बीमारियों और कर्जों के कारण बचपन से ही काम शुरू कर दिया था।

साई स्टोन क्वेरी (मगाँव, नासिक) में 150 में से 60-70 लड़कियां पत्थर के क्रशर्स में मजदूरी करती हैं। वे पत्थर तोड़ती हैं और उनकी ढुलाई करती हैं। महालक्ष्मी स्टोन क्वेरी में लगभग 13 साल की उम्र के पांच बच्चे मजदूरी कर रहे थे और पास की ही एक और खान में लगभग 10 साल की उम्र के 8 बच्चे काम कर रहे थे। इन बच्चों ने बताया कि वे बिहार से आए हैं और दो पालियों में काम करते हैं। चार बच्चे सुबह की पाली में और चार बच्चे शाम की पाली में मजदूरी करते हैं। म्हात्रे स्टोन क्वेरी में 14 से 16 साल के 7 बच्चे काम कर रहे थे। महिलाओं ने इस बात पर अफसोस जताया कि अपनी गरीबी के कारण वे अपने बच्चों को

अगर संतुलन द्वारा संचालित पाषाण शालाएं न होतीं तो शायद ये बच्चे भी खानों में पत्थर तोड़ रहे होते (फोटो - सितंबर 2009)

संतुलन की पाषाण शाला में भी नहीं भेज पातीं। मोशी स्टोन क्वेरी लगभग 10 किलोमीटर में फैला बहुत बड़ा इलाका है। यहां 26 मजदूर बस्तियां हैं। खान मालिकों की मौजूदगी के कारण यहां काम कर रहे कुल बच्चों की संख्या जानना मुश्किल था। समर्थ स्टोन क्वेरी में हमें बताया गया कि 30 बच्चे पाषाण शाला की बजाय दिहाड़ी मजदूरी करते हैं। एमटी पाटिल स्टोन क्वेरी, नासिक में 20 बच्चे पाषाण शाला में नहीं जाते। हमने पाया कि इन नौ खदानों में 352 बच्चे संतुलन की वजह से बाल मजदूरी से बच गए हैं।

स्कूल जाने में समस्याएं

गरीबी के अलावा बच्चे इसलिए भी स्कूलों में नहीं जा पाते क्योंकि खान मजदूरों की बस्तियां स्थानीय गांवों से बहुत दूर हैं। लिहाजा इन बच्चों के लिए स्कूल घर से बहुत दूर पड़ता है। मां-बाप भी भारी बोझ लेकर गुजरने वाले ट्रैक्टरों के भारी ट्रैफिक की वजह से अपने बच्चों को स्कूल भेजने से कतराते हैं। उन्होंने कहा कि इन सड़कों पर चलना बच्चों के लिए सुरक्षित नहीं है। मां-बाप मुंह अंधेरे ही काम पर निकल जाते हैं और देर शाम गए ही घर लौटते हैं इसलिए बड़े बच्चों को घर में या खानों में छोटे भाई-बहनों को संभालना पड़ता है। आसपास चल रही खतरनाक गतिविधियों और विस्फोटों से बच्चों को बचाने का जिम्मा उन्हीं के ऊपर रहता है। 10-13 साल की उम्र के बच्चों को ज्यादातर घरेलू काम भी संभालने पड़ते हैं। इसलिए वे हमेशा स्कूल देर से पहुंचते हैं या उन्हें भाई-बहन को भी साथ लेकर जाना पड़ता है। दोपहर को बहुत सारे बच्चे अपने मां-बाप के लिए खानों में खाना पहुंचाते हैं।

बिना सुरक्षा चारदीवारी वाली खुली पत्थर खदानें
(फोटो - सितंबर 2009)

हमने जिन बच्चों से बात की उनमें से ज्यादातर बच्चों के पास खानों में मजदूरी के बहुत खौफनाक अनुभव थे। इनमें मां-बाप की मृत्यु या बीमारी के किस्से भी थे जिनकी वजह से ऐसे बच्चों को दूसरे वयस्कों के साथ काम पर जाना पड़ता है। ऐसे में उनके पास पाषाण शाला ही एकमात्र राहत की जगह होती है। मिसाल के तौर पर, गोरे वस्ती की 12 साल की एक लड़की ने बताया कि "मेरे पिता की बीमारी से मौत हो गई थी इसलिए मुझे मां के साथ मजदूरी पर जाना पड़ा।" जब हमने पूछा कि वो क्या-क्या काम करती है तो अपना रोना नहीं राक पायी।

अध्ययन क्षेत्र में द्वितीयक रिपोर्टों के आधार पर शिक्षा की स्थिति का पता लगाना संभव नहीं था क्योंकि खान मजदूरों की एक भी बस्ती जनगणना रिपोर्ट या मानव संसाधन विकास विभाग के स्कूल शिक्षा रिकॉर्ड्स में दर्ज नहीं है। क्योंकि ये बच्चे गांव या पंचायतों के स्कूलों में नहीं जाते इसलिए हमने इन सरकारी स्कूलों के आंकड़ों का भी विश्लेषण नहीं किया है। लिहाजा, हमारे पास सारी जानकारियों की पुष्टि के लिए मजदूरों के परिवारों के बयानों और बच्चों के साथ बातचीत के अलावा और कोई साधन नहीं था। लेकिन भय के माहौल में बच्चों से बात करना बहुत मुश्किल था। इस सिलसिले में हमने संतुलन द्वारा चलायी जा रही पाषाण शालाओं के रिकॉर्ड्स भी देखे। इन रिकॉर्ड्स में ऐसे खान मजदूर बच्चों की स्थिति का पता चलता है जो पाषाण शाला न होने पर स्कूल जाने की बजाय शायद बाल मजदूरी कर रहे होते। टेबल 2.03 में पाषाण शालाओं में दाखिले के कुछ आयामों का ब्यौरा दिया गया है।

काम की तलाश में खदान क्षेत्रों में प्रवास भी एक गंभीर समस्या है। इससे इन बच्चों की शिक्षा पर गहरा असर पड़ता है। टेबल 2.04 में प्रवासी बच्चों से संबंधित कुछ जानकारियां दी गई हैं।

टेबल 2.04 में महाराष्ट्र के प्रत्येक जिले में प्रवासी मजदूरों की एक सीमित तस्वीर देखी जा सकती है। जैसा कि पाषाण शाला के रिकॉर्ड्स से पता चलता है, संतुलन के अनुभव इस बात का स्पष्ट संकेत हैं कि वास्तविक स्थिति अधिकृत आंकड़ों से कहीं ज्यादा खराब है। जिला पुणे के सहायक श्रम आयुक्त ने माना कि संतुलन की वजह से ही बहुत सारे खान मजदूरों के बच्चे स्कूल जा पा रहे हैं। पुणे में अभी तक एक भी एनसीएलपी स्कूल नहीं है। उनका कहना था कि वे तभी एनसीएलपी स्कूल खोल सकते हैं जब किसी एक स्थान पर कम से कम 50 बच्चे हों। किसी एक जगह इतने बच्चे मुश्किल से ही मिलते हैं; ज्यादातर बच्चे ढाबों, मैकेनिक की दुकानों और अन्य दुकानों में काम कर रहे हैं इसलिए सरकार वहां एनसीएलपी स्कूल नहीं चला सकती। उन्होंने जानकारी दी कि सरकार बाल मजदूरों को बचाने के लिए गैर-सरकारी संगठनों और बाल कल्याण समितियों की मदद से एक कार्य बल का गठन करने जा रही है। जहां कोई एनजीओ काम नहीं कर रहा है ऐसे एक भी खान स्थल पर हमें यह कोशिश दिखाई नहीं दी।

तनख्वाह

खान मजदूरी प्रायः अस्थिर और आर्थिक रूप से बेभरोसा रहती है। प्रत्येक मजदूर को एक ट्रैक्टर पत्थर भरने के लिए 25-30 रुपये मिलते हैं। एक ट्रैक्टर भरने में 7-8 मजदूरों को काम करना पड़ता है। पूरा परिवार एक

टेबल 2.03 : संतुलन पाषाण शालाओं में दाखिलों का रिकॉर्ड

क्र.सं.	पाषाण शाला स्कूल	स्कूल का स्तर	स्कूल जाने वाले बच्चे (6-18 साल)	स्कूल न जाने वाले बच्चे (6-18 साल)	काम पर जाने वाले बच्चे (6-18 साल)	मिड-डे मील सुविधा
1.	वाघेश्वर पाषाण शाला	नर्सरी-कक्षा 4	110	नहीं	नहीं	हां
2.	गोरे वस्ती पाषाण शाला	कक्षा 5-7	80	नहीं	नहीं	हां
3.	सुयोग नगर पाषाण शाला	नर्सरी	50	नहीं	नहीं	हां
4.	दत्ता स्टोर क्वेरी एरिया पाषाण शाला	नर्सरी-कक्षा 4	45	नहीं	नहीं	हां
5.	महालक्ष्मी स्टोन क्वेरी पाषाण शाला	नर्सरी	11	नहीं	5	हां
6.	महात्रे स्टोन क्वेरी पाषाण शाला	नर्सरी-कक्षा 7	30	नहीं	7	हां
7.	समर्थ स्टोन क्वेरी पाषाण शाला	स्कूल नहीं	0	30	16	नहीं
8.	एमटी पाटिल स्टोन क्वेरी पाषाण शाला (नासिक)	हाल ही में चालू	26	लगभग 20	8	नहीं
9.	साईं स्टोन क्वेरी एवं अन्य पाषाण शालाएं (नासिक)	नई खदान	0	-	150	नहीं
	कुल		**352**		**186**	

स्रोत : पाषाण शाला रिकॉर्ड्स, संतुलन, पुणे।

टेबल 2.04 प्रवासी बच्चों के जिला स्तरीय आंकड़े

वर्ष	कुल बच्चे	जिलेवार प्रवासी बच्चे					कुल प्रवासन	प्रतिशत
		पुणे	अहमदनगर	कोल्हापुर	सतारा	सांगली		
1997-98	84	21	-	-	-	-	21	25
1998-99	148	26	-	-	-	-	26	18
1999-2000	186	63	-	-	-	-	63	34
2000-01	400	75	-	-	-	-	75	19
2001-02	534	150	-	-	-	-	150	28
2002-03	667	125	16	-	-	-	141	21
2003-04	1,388	352	8	-	-	-	360	26
2004-05	1,882	722	5	138	34	-	949	46
2005-06	2,028	591	13	165	3	20	792	39
2006-07	2,001	670	20	175	20	15	900	45
कुल	**9,318**	**2,795**	**62**	**478**	**57**	**35**	**3,477**	**37.31**

स्रोत : दगड़ फूल, संतुलन, 2007-08

इकाई के रूप में मिलकर काम करता है और वे दिन भर में लगभग चार ट्रैक्टर ही भर पाते हैं। इस तरह प्रति मजदूर साप्ताहिक 700-800 रुपये की ही कमाई हो पाती है। अलग-अलग स्थानों पर मजदूरी में फर्क था। एमटी पाटिल स्टोन क्वेरी में पुरुष मजदूरों को 130 रुपये और महिला मजदूरों को 70 रुपये रोजाना मजदूरी मिल रही थी जबकि साईं स्टोन क्वेरी में पुरुषों को 90 रुपये, महिलाओं को 50 रुपये और बच्चों को 30 रुपये प्रतिदिन मजदूरी मिल रही थी।

खान दुर्घटनाएं

संतुलन के रिकॉर्ड्स में पिछले 4 साल के दौरान 31 खान दुर्घटनाओं का ब्यौरा दर्ज है। इन घटनाओं में से तीन मामलों में 18 साल से कम उम्र के बच्चों को नुकसान पहुंचा है। ये आंकड़े भी अधूरे हैं इसलिए उन्हें खान दुर्घटनाओं के हालात का सही प्रतिबिंब नहीं माना जा सकता क्योंकि खान मजदूर, खान मालिक या स्थानीय संगठन, कोई भी नियमित रूप से दुर्घटनाओं का रिकॉर्ड नहीं रखते। ज्यादातर खान मालिक दुर्घटना होने पर मजदूरों को सिर्फ प्राथमिक उपचार देकर जिम्मेदारी से हाथ झाड़ लेते हैं। चाहे मजदूर को कितनी भी चोट लगी हो, वे उसके पूरे इलाज या मुआवजे का जिम्मा नहीं लेते। कई दुर्घटनाओं में मजदूर स्थायी रूप से अपंग हो चुके हैं और काम जारी नहीं रख पाए जिससे परिवारों का खर्चा चलाने की जिम्मेदारी बच्चों पर आ गई है। एक दुर्घटना में 15 साल का लड़का भी मारा गया था। खान मालिक ने उसके परिवार को मामूली मुआवजा देकर वापस उसके गांव भेज दिया था। ये महाराष्ट्र भर की पत्थर खदानों के हालात की सिर्फ एक छोटी सी झलक है।

खान मजदूरों और बच्चों की स्वास्थ्य स्थिति

डॉ. शित्रे स्वैच्छिक रूप से संतुलन के लिए काम करते हैं। उन्होंने बताया कि वह हर हफ्ते लगभग 200 खान मजदूरों का इलाज करते हैं। उनका कहना था कि मजदूरों की ज्यादातर समस्याएं फेफड़ों और श्वास रोगों से संबंधित हैं क्योंकि मजदूर भारी धूल में रहते हैं। उन्होंने बताया कि इन मजदूरों में ब्रोंकाइटिस, अस्थमेटिक ब्रोंकाइटिस और गंभीर अस्थमा, तीनों स्तर के श्वास रोग पाए गए हैं। क्योंकि मजदूर बीमार पड़ने पर भी लगातार धूल में सांस लेते रहते हैं इसलिए वे शराब और धूम्रपान से राहत पाने की कोशिश करते हैं लेकिन इससे समस्या और बिगड़ जाती है। डीवाई पाटिल मेडिकल कॉलेज की पुणे स्थित बाल चिकित्सा इकाई के मुताबिक खान मजदूरों के 50 प्रतिशत बच्चों के फेफड़े भी दमा, छाती में संकुचन, छींक, खासी और सांस लेने में कठिनाई के कारण पूरी तरह काम नहीं कर रहे हैं। जो बच्चे पांच साल से अधिक समय से धूल भरे माहौल में रह रहे हैं उनकी हालत सबसे ज्यादा खराब है। उनमें से बहुत सारे बच्चे जन्म से ही धूल के संपर्क में रहते हैं।[55]

सुयोग नगर आंगनवाड़ी के रिकॉर्ड्स में 211 बच्चों के नाम दर्ज हैं। इनमें से 123 बच्चे कुपोषित हैं और ज्यादातर श्रेणी 1 कुपोषण के शिकार हैं। ज्यादातर खनन बस्तियों में कोई आंगनवाड़ी नहीं है और न ही खान स्थलों पर कोई क्रेच है। ऐसे में शिशु भी मां-बाप के साथ कार्यस्थल पर जाते हैं और लगातार धूल, प्रदूषण व दुर्घटनाओं के साये में रहते हैं। मां-बाप भी लगातार बच्चों पर नजर नहीं रख सकते। टेबल 2.05 में संतुलन द्वारा 1997 से 2007 के बीच मजदूर बस्तियों में आंगनवाड़ियों की अनुपस्थिति में चलाए गए बाल शिक्षण केंद्रों का ब्यौरा दिया गया है। ये 6 साल से कम उम्र के ऐसे बच्चों का बहुत छोटा नमूना है जो बच्चों के पोषण व सुरक्षा के लिए चलाए जा रहे एकीकृत बाल विकास सेवा (आईसीडीएस) कार्यक्रम से वंचित हैं। राज्य स्तर पर ऐसे बच्चों की संख्या निश्चय ही बहुत बड़ी होगी। राज्य भर में आंगनवाड़ियों की सुविधा से वंचित बच्चे बहुत ज्यादा हैं इसलिए मां-बाप मजबूरन अपने बच्चों को कार्यस्थल पर लेकर जाते हैं।

नासिक की पत्थर खदानों में विस्फोट... आसपास के गांवों और खान मजदूर बस्तियों के लिए स्थायी खतरा (फोटो - सितंबर 2009)

बाल शिक्षण केंद्र के बच्चे - आंगनवाड़ियों के अभाव में एनजीओ की तरफ से बच्चों को मिड-डे मील दिया जा रहा है।

55. टाइम्स ऑफ इंडिया (पुणे), उमेश इसालकर, 18 नवंबर 2009

टेबल 2.05 : बच्चों के लिए बाल शिक्षण केंद्र (1997-2007)

वर्ष	पुणे		अहमद नगर		कोल्हापुर		सतारा		सांगली		कुल	
	केंद्र	बच्चे	केंद्र	बच्चे	केंद्र	बच्चे	केंद्र	बच्चे	केंद्र	बच्चे	केंद्र	बच्चे
1997-98	1	35	-	-	-	-	-	-	-	-	1	35
1998-99	2	51	-	-	-	-	-	-	-	-	2	51
1999-2000	5	123	-	-	-	-	-	-	-	-	5	123
2000-01	9	320	-	-	-	-	-	-	-	-	9	320
2001-02	12	362	-	-	-	-	-	-	-	-	12	362
2002-03	15	375	1	30	-	-	-	-	-	-	16	405
2003-04	28	516	1	24	-	-	-	-	-	-	29	540
2004-05	17	464	1	18	1	26	-	-	-	-	19	508
2005-06	17	475	1	20	2	20	-	-	-	-	20	515
2006-07	18	469	-	-	3	88	1	31	3	42	25	630
कुल		**3,190**		**92**		**134**		**31**		**42**		**3,489**

स्रोत : दगड़ फूल, संतुलन, 2007-08

एक पाषाण शाला शिक्षक का कहना था कि बहुत सारे बच्चों का विकास अवरुद्ध है और गर्मियों में धूल बढ़ जाने से उनको और ज्यादा एलर्जी होने लगती है। वघौली में 60 से ज्यादा निजी डाक्टर बैठते हैं। इससे पता चलता है कि यहां की खानों में मजदूरों की बीमारियां कितनी ज्यादा हैं। ये डाक्टर मजदूरों की अज्ञानता और उनकी लाचारी का खूब फायदा उठाते हैं। खान मजदूरों का एक बड़ा खर्चा निजी डाक्टरों से इलाज कराने पर होता है। यह उनके कर्जों का एक मुख्य कारण है। डॉ. शित्रे ने भी बताया कि 40 प्रतिशत से ज्यादा बच्चे खून की कमी से ग्रस्त हैं जबकि महिलाएं गर्भाशय के खिसक जाने (prolapsis) और खून की कमी से पीड़ित हैं। महिलाएं लगातार कमर दर्द, जोड़ों में दर्द और जी मितलाने की शिकायत करती हैं। उन्होंने बताया कि टीबी की बिमारी मुख्य रूप से वयस्कों में पाई गई है लेकिन इसके कारण बच्चों को खानों में मजदूरी के लिए जाना पड़ता है। टीबी के बहुत सारे मामले संभवतः सिलिकोसिस के मामले हो सकते हैं क्योंकि यहां निदान की कोई सुविधा नहीं है इसलिए ही स्थिति का पता लगाना बहुत मुश्किल है। खान कंपनियां भी रिकॉर्ड्स में हेरा-फेरी के लिए तमाम हथकंडे अपनाती हैं जिससे सिलिकोसिस को साबित करना मुश्किल रहता है। डॉ. शित्रे का ये भी कहना था कि कठोर परिस्थितियों और खराब सेहत के कारण मजदूर और उनके बच्चे अपनी उम्र से ज्यादा बड़े लगने लगे हैं।

पीएचसी खानों से बहुत दूर है। पीएचसी में इलाज करवाने पर मजदूरों को उस दिन की पूरी दिहाड़ी गंवानी पड़ती है। ऊपर से उन्हें आने-जाने और अस्पताल का भी खर्चा उठाना पड़ता है। फील्ड विजिट्स के दौरान शोधकर्ताओं ने पाया कि वहां कम से कम तीन महिलाएं अपनी गर्भावस्था के आखिरी चरण में थीं लेकिन वे अभी भी खानों में काम कर रही थीं। उन सभी का कहना था कि अभी तक उनको कोई टीका नहीं लगा है क्योंकि पीएचसी बहुत दूर है जहां वे पैदल चलकर नहीं जा सकती। बोसरी अस्पताल के मेडिकल ऑफिसर डाक्टर शिंदे का कहना था कि यहां एचआईवी/एड्स और खान मजदूरों की दूसरी बीमारियों के सटीक आंकड़े मुहैया कराना मुश्किल है क्योंकि ज्यादातर खान मजदूर प्रवासी मजदूर हैं।

प्रवासन : पहचान का अभाव

प्रवासी मजदूर और खान उद्योग, दोनों का एक दूसरे से गहरा रिश्ता दिखाई देता है। खान उद्योग ने एक बेनाम, बेपहचान समुदाय पैदा कर दिया है जिसके पास जीवन की कोई निश्चितता नहीं होती। खान मजदूरों की सबसे बड़ी समस्या ये है कि उनके पास पहचान, स्थिरता और सुरक्षा नहीं होती। स्थायित्व का यह अभाव उन्हें ऐसी बहुत सारी बुनियादी सुविधाओं से महरूम कर देता है जो किसी भी नागरिक का अधिकार होती हैं। सबसे पहली समस्या राशन कार्ड और बीपीएल कार्ड बनवाने में सामने आती है। प्रवासी मजदूरों में बहुत कम के पास ही राशन कार्ड मिल पाते हैं क्योंकि वे न तो किसी ग्राम समुदाय का हिस्सा होते हैं और न ही उनके पास आवास का सुबूत होता है। कुछ स्थानों पर मजदूरों ने बताया कि खान मालिक उनके राशन कार्ड अपने पास जमा कर लेते हैं (शायद इसलिए ताकि वे कहीं और न जा सकें) और खान मजदूरों को खुले बाजार से राशन खरीदना पड़ता है। साठ साल की एक औरत ने हमें बताया कि चार महीने पहले आखिरकार उसका

टेबल 2.06 पाषाण शाला के बच्चों का कक्षावार विवरण (1997-2007)

वर्ष/कक्षा	1	2	3	4	5	6	7	8	कुल
1997-98	84	-	-	-	-	-	-	-	84
1998-99	144	4	-	-	-	-	-	-	148
1999-2000	107	79	-	-	-	-	-	-	186
2000-01	332	52	16	-	-	-	-	-	400
2001-02	494	25	15	-	-	-	-	-	534
2002-03	502	146	19	-	-	-	-	-	667
2003-04	1,157	148	47	36	-	-	-	-	1,388
2004-05	1,316	268	134	118	46	-	-	-	1,882
2005-06	1,265	349	202	95	76	21	20	-	2,028
2006-07	1,102	297	189	162	140	79	16	16	2,001
कुल	**6,503**	**1,368**	**622**	**411**	**262**	**100**	**36**	**16**	**9,318**

स्रोत : दगड़ फूल, संतुलन, 2007-08

राशन कार्ड मिल गया है लेकिन पीडीएस विक्रेता ने उसे 6 महीने बाद आने को कहा है क्योंकि अभी उसका नाम विक्रेता के रिकॉर्ड्स में दर्ज नहीं हुआ है। यानी खान मजदूरों का बहुत सारा पैसा राजस्व अधिकारियों की जेब गर्म करने में चला जाता है लेकिन इसके बाद भी उन्हें अपने राशन के लिए लगातार इंतजार करना पड़ता है। इस वजह से भी इन गरीब परिवारों को अपने भोजन पर ज्यादा खर्चा करना पड़ता है और उनका आहार नियमित जरूरत से काफी कम रह जाता है। उनमें से बहुत सारों का कहना था कि उन्होंने चाय पीना बंद कर दिया है क्योंकि चीनी की कीमत बहुत ऊपर चली गई है। खान मजदूरों के बच्चों के भोजन में दो वक्त की रोटी, मिर्च और प्याज के साथ होती है। खाने में दाल या सब्जियां उन्हें शायद ही कभी नसीब हो पाती हैं। लिहाजा, ज्यादातर बच्चे कुपोषित और खून की कमी से पीड़ित दिखाई दिए।

शिक्षा की दशा बहुत खराब है। यह बात खान मजदूरों के बच्चों द्वारा पढ़ाई जारी न रख पाने की बात से साबित होती है। टेबल 2.06 में खान मजदूरों के बच्चों द्वारा पढ़ाई जारी न रख पाने का कक्षावार विवरण देखा जा सकता है। इससे इन बच्चों के अत्यंत अस्थिर प्रवासी जीवन का अंदाजा मिलता है क्योंकि उन्हें अपने मां-बाप के प्रवासन के साथ ही स्कूल छोड़ने पड़ते हैं। खान मजदूरों के बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा का अधिकार हासिल करना एक बड़ी चुनौती है क्योंकि उनके कहीं टिक कर रहने की संभावना बहुत कम रहती है। जैसा कि संतुलन के साथियों ने बताया, दूसरे क्षेत्रों में लोग हर मौसम में वापस अपने गांव में लौट जाते हैं लेकिन खनन उद्योग में खान मजदूर एक जगह काम बंद होने पर दूसरी खान में काम करने चले जाते हैं और अकसर वापस नहीं लौटते। ऐसे में बच्चों के लिए अपने मूल गांव और इस अस्थिर जीवन के बीच कोई संबंध नहीं रहता जिससे उनके सामने मौजूद असुरक्षा और पहचान का अभाव बढ़ जाता है।

टेबल 2.07 में पाषाण शालाओं में पढ़ने वाले बच्चों का जातिवार विवरण दिया गया है। खान बस्तियों के इस ब्यौरे से पता चलता है कि खान मजदूरों में वडार समुदाय की आबादी सबसे ज्यादा है लेकिन अब अनुसूचित जाति मजदूरों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। पुराने सालों में मुख्य रूप से वडार समुदाय के लोग ही पत्थर तोड़ने का काम करते थे लेकिन महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश व कर्नाटक में पैदा हुए कृषि संकट ने अनुसूचित जाति समुदाय के खेतिहर मजदूरों को भी खान मजदूरी के लिए विवश कर दिया है।

निष्कर्ष

महाराष्ट्र की केस स्टडी से साफ पता चलता है कि खनन उद्योग में प्रवासी और असंगठित क्षेत्र मजदूरों के अधिकारों की अवहेलना पर रोक लगाना सबसे पहली जरूरत है। खनन कार्यों और बाल अधिकारों का उल्लंघन, ये दोनों चीजें एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं क्योंकि खुदाई और लघु खनन कार्यों की अर्थव्यवस्था मजदूरों के लिए बहुत अस्थिर साबित होती है। उनका जीवन मामूली वेतन, खतरनाक काम, अनिश्चित आजीविका, गरीबी, कर्जों, मूलभूत सुविधाओं के अभाव, मृत्यु और फलस्वरूप बाल श्रम व बाल उत्पीड़न के चक्र से बंधा हुआ है। खान मजदूरों के जीवन में भूमिहीनता, प्रवासन और अस्थिरता आपस में गहरे तौर पर जुड़े हुए हैं। इसका नतीजा ये होता है कि खान मजदूरों के बच्चों को सुरक्षा और

टेबल 2.07 पाषाण शालाओं में बच्चों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति

जिला	तालुक	पत्थर खदान बस्तियों की संख्या	केंद्रों की संख्या	बच्चों की संख्या	अजा	अजजा	वीजे	एनटी	ओबीसी	अन्य
पुणे	हवेली	6	40	1,268	246	50	710	67	92	103
	खेड़	1	6	186	38	--	116	11	15	6
	शिरूर	3	4	120	12	--	83	8	14	3
	दौंड	1	1	23	7	--	13	2	--	1
अहमदनगर	अहमदनगर	3	3	41	17	--	21	--	1	2
	श्रिगोंडा	1	1	10	2	--	7	--	--	1
कोल्हापुर	कविर	1	8	134	21	1	81	8	1	22
	शिरोल	1	4	117	52	11	27	2	8	17
सतारा	करड़	1	2	37	1	--	34	--	1	1
सांगली	तसगांव	2	3	19	3	--	8	--	2	6
	कुल	**20**	**72**	**1,955**	**399**	**62**	**1,100**	**98**	**134**	**162**

वीजे - विमुक्त जाति, एनटी - घुमंतू कबीले

स्रोत : दगड़ फूल, संतुलन, 2007-08

आधारभूत सुविधाएं नहीं मिल पातीं। उनकी खौफनाक आवास स्थिति, पीने के पानी और आंगनवाड़ी, प्राथमिक स्कूल या एनसीएलपी स्कूल जैसी संस्थागत व्यवस्था का अभाव उन्हें पोषण प्रदान करने और बाल मजदूरी से बचाने के रास्ते बंद कर देता है। एनसीएलपी स्कूल इन बच्चों की शिक्षा के लिए शुरू किए गए थे लेकिन हमने जिन इलाकों का दौरा किया वहां एक भी एनसीएलपी स्कूल नहीं था। स्वास्थ्य की परिस्थितियां इस बात का संकेत कर रही हैं कि कुपोषण और खान प्रदूषण पर फौरन ध्यान दिया जाना चाहिए। ये बात डॉक्टर भी साबित कर चुके हैं कि इन बच्चों के जीवन में ये सबसे बड़ी समस्याएं हैं। जहां एक तरफ महाराष्ट्र राज्य विकास के लिए विशाल अवरचनागत मॉडल की तरफ बढ़ रहा है वहीं दूसरी तरफ उसे 11वीं योजना और सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों में बच्चों से किए गए अपने वायदों को पूरा करने के लिए भी संजीदगी से प्रयास करने चाहिए।

इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए जरूरी है कि खनन उद्योग एवं खानों से संबंधित कायदे-कानूनों की समीक्षा की जाए और उनमें खान मजदूरों के लिए मानवोचित जीवन एवं कार्य परिस्थितियों की व्यवस्था शामिल की जाए। जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक खनन उद्योग की अर्थव्यवस्था सवालों के घेरे में घिरी रहेगी। मजदूरों और पर्यावरण के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण खनन की दृष्टि से हमें सख्त पूर्वशर्तों की व्यवस्था करनी चाहिए क्योंकि खनन पट्टे जारी करने की मौजूदा व्यवस्था में खान मालिकों पर कानूनन बाध्यकारी जवाबदेही का कोई प्रावधान नहीं है। क्योंकि खानें छोटी हैं और जगह-जगह फैली हुई हैं जिससे बेतहाशा अवैध खनन और प्रसंस्करण चल रहा है इसलिए इस व्यवसाय में अंकुश और संतुलन की सख्त व्यवस्था और ज्यादा जरूरी हो गई है। इस रिपोर्ट के आखिर में हमने लघु खनन एवं प्रवासी मजदूरों के संदर्भ में जो सिफारिशें दी हैं वे महाराष्ट्र तथा अन्य राज्यों के अनुभवों पर आधारित हैं। इन सभी राज्यों में छोटी खानों और खदानों से प्रभावित बच्चों की स्थिति हर जगह एक जैसी है।

(***आभार :*** उपरोक्त केस स्टडी महाराष्ट्र में खान मजदूरों के अधिकारों पर कार्यरत संगठन संतुलन के साथ साझेदारी में संपन्न की गई है। हम श्री बास्तु रेगे, श्रीमती पल्लवी रेगे और संतुलन की टीम के प्रति आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने हमें महत्वपूर्ण सूचनाएं उपलब्ध कराईं और फील्ड विजिट्स का आयोजन किया।)

पत्थर की खानों में फेफड़ों की बीमारियों से पीड़ित बच्चे

अनुराधा मैस्क्रेनहास | 5 जनवरी 2008, 0000 आईएसटी

पुणे, जनवरी 4 : पुणे की पत्थर खदानों में रहने वाले बच्चों के लिए पत्थर, कीचड़ और धूल ही उनके खिलौने हैं। वे पर्यावरण प्रदूषण और फेफड़ों की स्थायी बीमारियों की आशंका में जी रहे हैं। पुणे शहर से लगभग 20 किलोमीटर दूर स्थित मोशी एवं मोई स्थित पत्थर खदानों में रहने वाले बच्चों की स्वास्थ्य जांच करने पर डॉक्टर उनके फेफड़ों की क्षमता को देखकर हैरान रह गए हैं।

मोशी और मोई स्थित खदानों में रहने वाले 150 बच्चों के पीक एक्सपाइरेटरी फलो रेट (पीएफआर) की जांच की गई और उसकी तुलना भोसारी के निकट शहरी झुग्गी बस्तियों में रहने वाले बच्चों से की गई। बीवाई पाटिल मेडिकल कॉलेज, पिम्परी के डाक्टरों की एक टीम ने इस अध्ययन के निष्कर्ष एथेंस में एक अंतर्राष्ट्रीय बाल चिकित्सा सम्मेलन में प्रस्तुत किए। ये डॉक्टर पत्थर की खानों और शहरी बस्तियों में रहने वाले बच्चों के पीईएफआर दरों में भारी फासले को देखकर अचंभित हैं।

कॉलेज के बाल चिकित्सा विभाग के अध्यक्ष डॉ. शरद अघरखेड़कर का कहना है कि पत्थर की खानों में रहने वाले बच्चों का औसत पीईएफआर 92.98 लीटर प्रति मिनट था जबकि शहरी बस्तियों में रहने वाले बच्चों का पीईएफआर लगभग 135.2 लीटर प्रति मिनट पाया गया है। इस अध्ययन की संयोजक डाक्टर संपदा तंबोलकर के अनुसार, "पीक फलो रेट मीटर इस बात की जांच करता है कि रोगी फेफड़ों से अधिकतम कितनी हवा बाहर फेंक पाता है। इसी को पीईएफआर कहा जाता है। जब व्यक्ति स्वस्थ होता है तो पीईएफआर ज्यादा होता है और जब उसकी श्वास नली संकुचित रहती है तो यह रेट कम हो जाता है।" डाक्टरों के इस दल ने तीन महीने तक बच्चों के स्वास्थ्य का अध्ययन किया था। इन आंकड़ों में आए बदलावों के आधार पर रोगी और डाक्टर फेफड़ों की क्रियाशीलता, दमे के लक्षणों की गंभीरता और इलाज के विकल्पों पर फैसला लेते हैं।

लगातार धूल के बीच पत्थर खानों में रहने वाले बच्चों के पीईएफआर में भारी उतार-चढ़ाव पाया गया है। अध्ययन के दौरान 3-18 साल के बच्चों का तीन महीने तक अध्ययन किया गया। इसी दौरान भोसारी स्थित झुग्गी बस्ती में 150 बच्चों के दूसरे समूह का अध्ययन किया गया। डाक्टर अघरखेड़कर के अनुसार, "हमने पाया कि ये बच्चे बार-बार जुकाम व खांसी, नाक बहने और सांस लेने में कठिनाई जैसे लक्षणों से जूझ रहे थे।"

http://www.expressindia.com/latest-news/children-in-stonequarries-hit-by-lung-disease/257713/

अंबुवालिन विद्यार्थियों के सामने कक्षा में धूल का संकट!

शनिवार, 12 दिसंबर 2009

अम्बाउलिम चिंचावड़ा क्वेपेम सरकारी प्राथमिक स्कूल के विद्यार्थी भरे हुए खनिज ट्रकों से पैदा हो रहे धूल प्रदूषण से परेशान हैं।

क्वेपेम अम्बाउलिम मुख्य सड़क से सटे इस सरकारी प्राथमिक स्कूल में 19 बच्चे पढ़ते हैं। तेज भागते खनिज ट्रकों की रफ्तार पर अंकुश लगाने के लिए स्कूल के ठीक सामने पीडब्ल्यूडी ने एक स्पीड ब्रेकर बना दिया है। इस सड़क पर चलने वाले सभी खनिज ट्रक बेहद भरे हुए होते हैं इसलिए स्पीड ब्रेकर पर धीमा होने के कारण यह अयस्क सड़क पर बिखर जाता है और धीरे-धीरे धूल का रूप ले लेता है। स्कूल की अध्यापिका ने अपना नाम न छापने की शर्त पर बताया कि "धूल की समस्या इतनी गंभीर है कि ज्यादातर बच्चों में साइनस की समस्या पैदा हो गई है। बच्चे अकसर बीमार रहने लगे हैं। इससे उनकी हाजिरी भी गिरती जा रही है।"

http://mandgoa.blogspot.com/2009/12/seen-in-photo-dustcreated-at-speed.html

राजस्थान

व्यापक स्थिति

क्षेत्रफल के लिहाज से राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य है। 2001 में इसकी जनसंख्या 56,507,188[56] थी और यहां का कुल राज्य घरेलू उत्पाद (एसडीपी) 1451 अरब रुपये (2007-08)[57] था। मानव विकास रिपोर्ट राजस्थान, 2008 के मुताबिक अस्सी और नब्बे के दशकों में यहां काफी तेज विकास दर थी जो पिछले कुछ सालों से धीमी होती जा रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि प्राथमिक क्षेत्र, मुख्यतः कृषि क्षेत्र मंदी का शिकार हो रहा है।[58] अभी भी राजस्थान में खेती में सबसे ज्यादा रोजगार हैं और ग्रामीण इलाकों की लगभग 80 प्रतिशत आबादी खेती पर निर्भर है।

राजस्थान की अर्थव्यवस्था में सबसे बड़ा हिस्सा खेती का है और 2006-07 में यह हिस्सा 289 अरब रुपये से ज्यादा था।[59] विनिर्माण, निर्माण, पर्यटन और कपड़ा, ऊनी वस्तुएं, वनस्पति तेल एवं रंगाई जैसे उद्योग यहां के दूसरे महत्वपूर्ण व्यवसाय हैं। नब्बे के दशक में यहां के खनन उद्योग, गैर-पंजीकृत विनिर्माण, संचार और रीयल ऐस्टेट व्यवसाय में तेज इजाफा देखा गया। इसी दौरान कृषि, वानिकी और पंजीकृत विनिर्माण गतिविधियों में गिरावट आई।[60] पंजीकृत विनिर्माण में गिरावट और गैर-पंजीकृत विनिर्माण में इजाफे तथा खनन व खुदाई कार्यों में इजाफे को स्तरीय रोजगारों की उपलब्धता के लिहाज से गंभीर चिंता का विषय माना जा रहा है।[61]

बार-बार पड़ने वाले सूखों और ज्यादा से ज्यादा जमीन को खनन व उद्योगों को सौंप देने के कारण अब खेती पर निर्भर रहना मुश्किल होता जा रहा है और बहुत सारे लोगों को आजीविका के लिए वैकल्पिक रास्ते ढूंढने पड़ रहे हैं। अस्सी के दशक में तेज जनसंख्या वृद्धि का परिणाम यह हुआ कि यहां श्रम शक्ति में दो प्रतिशत का इजाफा हो गया है जिससे राजस्थान के बहुत सारे लोग नौकरियों की तलाश में भटक रहे हैं। हालांकि अस्सी और नब्बे के दशकों में ग्रामीण गरीबी पर अंकुश लगाने के लिए राजस्थान में महत्वपूर्ण कदम उठाए गए लेकिन नई सदी में ग्रामीण गरीबी आंशिक रूप से फिर बढ़ रही है। अस्सी और नब्बे के दशकों में इन्हीं कोशिशों के चलते ग्रामीण गरीबी 1983 के 33 प्रतिशत से घटकर 1999 में 13 प्रतिशत रह गई थी।[62]

जनगणना 2001 के अनुसार राजस्थान में अनुसूचित जाति समुदाय की आबादी 17.16 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति समुदाय की आबादी 12.56 प्रतिशत थी। यह संख्या राष्ट्रीय औसत क्रमशः 16.2 प्रतिशत और 8.2 प्रतिशत से कुछ अधिक है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा राजस्थान के ग्रामीण इलाकों में रहता है और वे आजीविका के लिए परंपरागत रूप से खेती पर आश्रित हैं।

ग्रामीण इलाकों में शिक्षा व स्वास्थ्य सुविधाओं की व्यवस्था राज्य की बढ़ती आबादी के अनुरूप नहीं फैल पाई है। हालांकि 1994 से 2006 के बीच आबादी में 24 प्रतिशत इजाफा हुआ है लेकिन पीएचसी और उपकेंद्रों की संख्या में केवल 10 प्रतिशत वृद्धि हुई है। 1997 में पीएचसी की संख्या 1616 थी जो बढ़कर 2006 में 1712 हो गई थी। इसी दौरान उपकेंद्रों की संख्या 9400 से बढ़कर 10,515 तक पहुंच गई। इससे यह बात कुछ हद तक समझी जा सकती है कि अभी भी राजस्थान स्वास्थ्य के मामले में इतना खराब प्रदर्शन क्यों कर रहा है।[63] 2006 में राजस्थान में औसत आयु 61.7 थी जो कि उसी साल राष्ट्रीय औसत 63.2 से कम थी।[64]

56. भारत की जनगणना, 2001
57. http://statistics.rajasthan.gov.in/GSDP_NSDP_PCI.pdf.
58. मानव विकास रिपोर्ट राजस्थान 2008, राजस्थान सरकार के लिए इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलेपमेंट स्टडीज़ द्वारा तैयार किया गया, जयपुर।
59. Indiastat.com, नेट स्टेट डोमेस्टिक प्रोडक्ट एट फैक्टर कॉस्ट बाई इंडस्ट्री ऑफ ओरिजिन इन राजस्थान.
60. मानव विकास रिपोर्ट राजस्थान 2008, राजस्थान सरकार के लिए इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलेपमेंट स्टडीज़ द्वारा तैयार किया गया, जयपुर।
61. उपरोक्त।
62. उपरोक्त।
63. उपरोक्त।
64. वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, इकॉनॉमिक सर्वे, 2007-08, अध्याय 23, पृष्ठ 29.

राज्य में साक्षरता का स्तर भी खराब है। 2001 की जनगणना के अनुसार यहां 61.03 प्रतिशत आबादी साक्षर है जो कि राष्ट्रीय औसत 66 प्रतिशत से काफी कम है। साक्षरता के क्षेत्र में औरत मर्द का फासला भी बहुत गहरा है। पुरुषों में 74.46 प्रतिशत और महिलाओं में केवल 44.34 प्रतिशत साक्षरता है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदायों में साक्षरता और भी कम है। राजस्थान में ग्रामीण अनुसूचित जाति समुदाय की महिलाओं में से 31.8 प्रतिशत और ग्रामीण अनुसूचित जनजाति समुदाय की महिलाओं में से केवल 25.22 प्रतिशत ही साक्षर हैं।[65]

बच्चों की दशा

राजस्थान में 2001 में 19 साल से कम उम्र के बच्चों की संख्या 28,033,445 थी और 0-14 साल की उम्र के बच्चों की संख्या 22,545,231 थी।[66] इसका मतलब है कि राज्य की कुल आबादी में बच्चों की संख्या 40 प्रतिशत से ज्यादा है।

हालांकि स्कूल न जाने वाले बच्चों की अधिकृत संख्या 155,338[67] है ले. किन वास्तविक संख्या इससे काफी ज्यादा होगी। 2001 की जनगणना के मुताबिक राजस्थान में 4 से 14 साल के बाल मजदूरों की संख्या 1,262,570 है। यानी भारत के बाल मजदूरों में 10 प्रतिशत अकेले राजस्थान के हैं। उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश के बाद बाल मजदूरों की संख्या के मामले में राजस्थान तीसरे नंबर पर आता है। 2005 के एनएसएसओ आंकड़ों में और भी खौफनाक तस्वीर दिखाई गई है। इस सर्वेक्षण के मुताबिक 2004-05 में वहां 5 से 14 साल की उम्र के 3,488,000 बच्चे बाल मजदूर थे (यानी राज्य के हर पांच बच्चों में से एक)। इसके विपरीत राजस्थान भर में 29 एनसीएलपी स्कूलों के बावजूद इस कार्यक्रम के तहत पूरे राज्य में सिर्फ 14,234 बाल मजदूरों का पुनर्वास किया गया है।[68]

एमएलपीसी डे केयर सेंटर में बच्चे (फोटो - जुलाई 2009)

खतरनाक व्यवसायों में काम करने वाले बच्चों की अधिकृत संख्या बहुत कम बताई गई है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 1999 में राजस्थान में केवल 3026 बच्चे खतरनाक व्यवसायों में काम कर रहे थे।[69] यह बात जनगणना के आंकड़ों के हिसाब से भी गलत है क्योंकि 2001 की जनगण ाना में अकेले खनन कार्यों में ही 4296 बच्चे मजदूर थे।[70]

भारत में स्कूली शिक्षा के एकमात्र निजी सर्वेक्षण, प्रथम द्वारा किए गए एएसईआर 2008 सर्वेक्षण के अनुसार राजस्थान और उत्तर प्रदेश ही दो ऐसे राज्य हैं जहां 2007 से 2008 के बीच स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या में कोई गिरावट नहीं आई है।[71] एएसईआर के आंकड़ों से पता चलता है कि राजस्थान में 5 से 14 साल की उम्र के 7.1 प्रतिशत बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं जबकि 0 से 5 साल की उम्र के 37.6 प्रतिशत बच्चे किसी आंगनवाड़ी केंद्र या स्कूल पूर्व संस्था में दर्ज नहीं हैं।[72] राजस्थान में भी अलग-अलग जिलों के बीच इन मामलों में भारी फर्क हैं। गौर करने की बात है कि इस अध्ययन के तहत जिन जिलों - जैसलमेर, जोधपुर और बाड़मेर - का दौरा किया गया वहां सभी जगह 5 से 14 साल की उम्र के बच्चों की विशाल संख्या स्कूल से बाहर थी। जैसलमेर में 15 प्रतिशत, जोधपुर में 12.1 प्रतिशत और बाड़मेर में 11.4 प्रतिशत बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं। इस तरह इन जिलों में बच्चों की एक विशाल संख्या मजदूरी के लिए उपलब्ध है।

राजस्थान में ड्रॉप-आउट दर भी बहुत ज्यादा है। कक्षा एक में दाखिला लेने वाले सिर्फ 60 प्रतिशत बच्चे कक्षा 8 तक पहुंच पाते हैं। रेगिस्तानी इलाकों और अनुसूचित जनजाति आबादी वाले इलाके (दक्षिण) में ड्रॉप-आउट दर सबसे ज्यादा पाई गई है। बहुत सारे इलाकों में आपूर्ति पक्षीय अवरोध बहुत सारे बच्चों के लिए औपचारिक शिक्षा के रास्ते में बाधा बने हुए हैं। इन इलाकों में सुविधाएं कम हैं, अध्यापक अकसर गायब रहते हैं। 32 में से 11 जिलों में 30 प्रतिशत से ज्यादा स्कूलों में सिर्फ एक अध्यापक है।[73]

राजस्थान में बाल स्वास्थ्य की स्थिति भी खराब है। 6 से 35 माह के लगभग 80 प्रतिशत बच्चे खून की कमी से ग्रस्त हैं और 3 साल से कम उम्र के 44 प्रतिशत बच्चों का वजन सामान्य से कम है।

65. भारत की जनगणना, 2001
66. उपरोक्त।
67. लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 576, दिनांक 21.10.08, भारत में स्कूल न जाने वाले बच्चों (6-14 वर्ष) की राज्यवार संख्या (31.3.2008 को)।
68. श्रम मंत्रालय, राजस्थान, www.rajlabour.nic.in/childlabour.doc.
69. लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 2691, दिनांक 9.8.2000.
70. भारत की जनगणना, 2001
71. प्रथम, एएसईआर 2008 सर्वे, पृष्ठ 50.
72. उपरोक्त, पृष्ठ 64.
73. मानव विकास रिपोर्ट राजस्थान 2008, राजस्थान सरकार के लिए इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलेपमेंट स्टडीज़ द्वारा तैयार किया गया, जयपुर।

सबसे चिंता की बात यह है कि 1992 से 2005 के बीच आर्थिक विकास के बावजूद इन आंकड़ों में कोई सुधार नहीं आया है।[74] फिलहाल राजस्थान आईएमआर पर अंकुश लगाने के मामले में कतई सफल होता दिखाई नहीं देता। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के अनुसार 2007 में राजस्थान की आईएमआर प्रति 1000 जीवित प्रसवों पर 65 थी जो कि राष्ट्रीय औसत 55 से काफी अधिक है।[75] उत्तर पूर्वी राजस्थान के घनी आबादी वाले इलाकों और दक्षिण के आदिवासी जिलों में हाल के सालों में आईएमआर और बढ़ी है।[76] आईसीडीएस जैसी योजनाओं में किए गए निवेश के बावजूद एनएचएफसी-3 में पाया गया कि राजस्थान में बाल कुपोषण में 1992-93 के पहले सर्वेक्षण से 2005-06 के आखिरी सर्वेक्षण तक कोई गिरावट नहीं आई है।[77]

राजस्थान में लिंग अनुपात भी चिंता का सबब बना हुआ है। यहां लड़कियों के साथ भेदभाव काफी ज्यादा है। जनगणना 2001 के मुताबिक राजस्थान में 1000 लड़कों पर लड़कियों की संख्या केवल 921 है जो कि राष्ट्रीय अनुपात 933 से भी कम है। जैसलमेर और बाड़मेर जैसे कुछ पश्चिमी जिलों में लिंग अनुपात बहुत ही खराब है।[78] राजस्थान में बाल विवाह भी एक गंभीर समस्या है। बाल विवाह निषेध अधिनियम, 1929 का उल्लंघन करते हुए राज्य में जबरन बाल विवाह की घटनाएं अकसर मीडिया में आती रहती हैं।

राजस्थान का खनन उद्योग

राजस्थान में भारत में मिलने वाले लगभग सभी खनिज पदार्थ मिलते हैं। यहां 79 खनिज पदार्थ हैं जिनमें तांबा, जस्ता, सीसे और चांदी जैसे धा. त्विक खनिज और चूना पत्थर, बलुआ पत्थर और लिग्नाइट जैसे गैर-धातु खनिज भी शामिल हैं। 2006-07 में राजस्थान में 58 खनिज पदार्थों का उत्पादन किया गया था।[79] भारत के किसी भी दूसरे राज्य की तुलना में राजस्थान में सबसे ज्यादा खनन पट्टे जारी किए गए हैं। यहां मुख्य खनिज पदार्थों के लिए 1,324, लघु खनिज पदार्थों के लिए 10,851 और पत्थरों की खुदाई के लिए 19,251 लाइसेंस जारी किए जा चुके हैं।[80] राजस्थान में 207 रिपोर्टिंग माइन हैं। 2007-08 में खान मंत्रालय के अनुसार राजस्थान के खनिज उत्पादन का मूल्य 49.31 अरब रुपये था और यह पिछले साल से 6 प्रतिशत अधिक था।[81] उस साल देश के कुल खनिज उत्पादन में राजस्थान का हिस्सा लगभग 4.6 प्रतिशत था।

राज्य के कुल राजस्व में खनिज उत्पादन का हिस्सा लगभग 3 प्रतिशत बैठता है।[82] हालांकि खनिज उत्पादन मूल्य के स्तर पर लघु खनिज पदार्थों का हिस्सा 50 प्रतिशत से ज्यादा है लेकिन खनन क्षेत्र से सरकार को मिलने वाली कुल रॉयल्टी में उनका हिस्सा मात्र 5 प्रतिशत रह जाता है।[83]

राजस्थान में 95 प्रतिशत से ज्यादा खनन गतिविधियां असंगठित क्षेत्र में चल रही हैं। यहां हजारों असंगठित खानें और पत्थर की खदानें हैं। कुछ खानें तो एक हैक्टेयर के 20वें हिस्से जितनी छोटी हैं। ये लघु खनन पट्टे 50,000 हेक्टेयर से ज्यादा क्षेत्रफल में फैले हुए हैं।[85] पूरे राज्य में खनिज पदार्थ पाए गए हैं लेकिन ज्यादातर खानें और पत्थर की खदानें दक्षिण एवं दक्षिण पूर्वी जिलों में हैं जो कि देश भर में सबसे घनी अनुसूचित जनजाति आबादी वाले इलाकों में से एक है।

दुनिया का 10 प्रतिशत और भारत का 70 प्रतिशत बलुआ पत्थर राजस्थान में निकलता है।[86] राजस्थान में ज्यादातर खनन और खुदाई कार्य छोटी, अनौपचारिक स्थलों पर चल रहे हैं और अवैध खनन बहुत बड़े पैमाने पर हो रहा है इसलिए ये पता लगाना बहुत मुश्किल है कि राज्य में मजदूरों की संख्या कुल कितनी है। जनगणना के मुताबिक राजस्थान की खानों में मुख्य

बाड़मेर जिले में लिग्नाइट खनन (फोटो - जुलाई 2009)

74. उपरोक्त।
75. http://www.mohfw.nic.in/NRHM/State%20Files/raj.htm, 28 जुलाई 2009 को अपलोड किया गया
76. मानव विकास रिपोर्ट राजस्थान 2008, राजस्थान सरकार के लिए इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलेपमेंट स्टडीज़ द्वारा तैयार किया गया, जयपुर।
77. एनएफएचएस-3, 2007.
78. मानव विकास रिपोर्ट राजस्थान 2008, राजस्थान सरकार के लिए इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलेपमेंट स्टडीज़ द्वारा तैयार किया गया, जयपुर।
79. खान एवं भूगर्भशास्त्र विभाग, राजस्थान, http://www.dmg-raj.org/mineral_reserves.aspx, 29 जुलाई 2009 को अपलोड किया गया।
80. एमएलपीसी, आर्गेनाइजिंग दि अनओर्गनाइज्ड, बहार दत्त, 2005; सेंटर फॉर साइंस ऐण्ड एनवायर्नमेंट रिच लैंड्स, पुअर पीपुल, 2008, पृष्ठ 263.
81. खान मंत्रालय वार्षिक रिपोर्ट 2008-09.
82. सेंटर फॉर साइंस ऐण्ड एनवायर्नमेंट द्वारा विश्लेषण, रिच लैंड्स, पुअर पीपुल, 2008, पृष्ठ 264
83. उपरोक्त, पृष्ठ 263.
84. राणा सेनगुप्ता एवं संजय चित्तौरा, एमएलपीसी, दि सैड स्टोरी ऑफ चाइल्ड लेबर इन दि माइन्स आफ राजस्थान.
85. सेंटर फॉर साइंस ऐण्ड एनवायर्नमेंट द्वारा विश्लेषण रिच लैंड्स, पुअर पीपुल, 2008, 266.
86. पी. माधवन एवं डाक्टर संजय राज, बुद्धपुरा 'ग्राउंड जीरो' सेंड स्टोन क्वेरींग इन इंडिया, दिसंबर 2005, पृष्ठ 7.

और सीमांत श्रमिकों की संख्या 233,130 है। इनमें से 4,296 मजदूर 5-14 साल की उम्र के और 29,498 मजदूर 19 साल तक के बच्चे थे।[87]

अनुमानों से पता चलता है कि राजस्थान के खनन उद्योग में लगभग 25 लाख लोग काम करते हैं। इनमें से बहुत सारे लोग बार-बार पड़े सूखे और फसलों के चौपट हो जाने के कारण मजदूर बन गए हैं। इनमें से लगभग 95 प्रतिशत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, 37 प्रतिशत महिलाएं और 15 प्रतिशत बच्चे हैं।[88] इन अनुमानों के आधार पर राज्य में बाल मजदूरों की संख्या लगभग 375,000 के आसपास पहुंच जाती है।

खान श्रमिक सुरक्षा अभियान (एमएलपीसी) द्वारा बूंदी जिले में किए गए शोध से पता चला है कि यहां की बलुआ पत्थर खानों में लगभग 55,000 लोग काम कर रहे हैं। इनमें से 85 प्रतिशत प्रवासी मजदूर, 94 प्रतिशत अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति, लगभग 20 प्रतिशत बच्चे और 43 प्रतिशत विधवा औरतें हैं। कुल मिलाकर 90 प्रतिशत अपने मालिकों ('ठेकेदारों') के कर्जदार हैं इसलिए उन्हें 'बंधुआ मजदूर' माना जा सकता है।[89]

कार्य परिस्थितियां और मजदूरी बहुत कम है। अनौपचारिक क्षेत्र के खान एवं पत्थर खनन मजदूरों को किसी तरह के सुरक्षात्मक उपकरण नहीं दिए जाते हैं और यहां दुर्घटनाएं अकसर होती रहती हैं। ज्यादातर दुर्घटनाओं को दर्ज नहीं किया जाता है लेकिन एक रिपोर्ट के अनुसार यहां की खानों में हर साल लगभग 460 लोगों की मौत हो जाती है[90] और बहुत सारे लोग घायल होते हैं। मजदूरों को दिन भर के उत्पादन के हिसाब से मजदूरी मिलती है। तकरीबन सभी को 100 रुपये से कम ही पैसा मिल पाता है जोकि राजस्थान में न्यूनतम मजदूरी है। महिलाओं और बच्चों को पुरुषों से भी कम मजदूरी मिलती है क्योंकि वे पत्थर तोड़ने जैसे भारी काम नहीं करते बल्कि खानों का मलबा हटाने जैसे दूसरे कामों में व्यस्त रहते हैं।[91]

जिला बाडमेर : मुख्य तथ्य	
कुल आबादी :	1,964,835 (जनगणना 2001)
बच्चों की आबादी (0-14 वर्ष) :	847,335 (जनगणना 2001)
साक्षरता दर :	कुल 58.99 प्रतिशत पुरुष साक्षरता 72.76 प्रतिशत महिला साक्षरता 43.45 प्रतिशत (जनगणना 2001)
स्कूल न जाने वाले बच्चों (6-14 वर्ष) की संख्या :	11.4 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
एडब्ल्यूसी या स्कूल-पूर्व संस्थाओं में दर्ज बच्चों की संख्या (3-4 वर्ष) :	38.8 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
बाल मजदूरों की संख्या (5-14 वर्ष) :	58,320 (जनगणना 2001)
पांच वर्ष से कम आयु वर्ग में मृत्यु दर (रैंकिंग) :	593 जिलों में 407वां स्थान (जनसंख्या स्थिरता कोष)

जिला जोधपुर : मुख्य तथ्य	
कुल आबादी :	2,886,505 (जनगणना 2001)
बच्चों की आबादी (0-14 वर्ष) :	1,170,568 (जनगणना 2001)
साक्षरता दर :	कुल 56.67 प्रतिशत पुरुष साक्षरता 72.96 प्रतिशत महिला साक्षरता 38.64 प्रतिशत (जनगणना 2001)
स्कूल न जाने वाले बच्चों (6-14 वर्ष) की संख्या :	12.1 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
एडब्ल्यूसी या स्कूल-पूर्व संस्थाओं में दर्ज बच्चों की संख्या (3-4 वर्ष) :	48.6 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
बाल मजदूरों की संख्या (5-14 वर्ष) :	51,206 (जनगणना 2001)
पांच वर्ष से कम आयु वर्ग में मृत्यु दर (रैंकिंग) :	593 जिलों में 249वां स्थान (जनसंख्या स्थिरता कोष)

87. भारत की जनगणना, 2001
88. एमएलपीसी, ऑर्गेनाइज़िंग दि अनॉर्गेनाइज़्ड, बहार दत्त, 2005.
89. एमएलपीसी।
90. एमएलपीसी, ऑर्गेनाइज़िंग दि अनॉर्गेनाइज़्ड, बहार दत्त, 2005.
91. खनन समुदायों के साथ साक्षात्कार, राजस्थान, जुलाई 2009.

जिला जैसलमेर : मुख्य तथ्य	
कुल आबादी :	508,247 (जनगणना 2001)
बच्चों की आबादी (0-14 वर्ष) :	216,264 (जनगणना 2001)
साक्षरता दर :	कुल 50.97 प्रतिशत पुरुष साक्षरता 66.26 प्रतिशत महिला साक्षरता 32.05 प्रतिशत (जनगणना 2001)
स्कूल न जाने वाले बच्चों (6-14 वर्ष) की संख्या :	15 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
एडब्ल्यूसी या स्कूल-पूर्व संस्थाओं में दर्ज बच्चों की संख्या (3-4 वर्ष) :	60.5 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
बाल मजदूरों की संख्या (5-14 वर्ष) :	12,869 (जनगणना 2001)
पांच वर्ष से कम आयु वर्ग में मृत्यु दर (रैंकिंग) :	593 जिलों में 332वां स्थान (जनसंख्या स्थिरता कोष)

सामाजिक सुरक्षा का भारी अभाव है जिसके चलते ठेकेदार खान संबंधी दुर्घटनाओं और बीमारियों की चिकित्सा लागतों के मद में कोई पैसा नहीं लगाते। बीमार पड़ने पर मजदूरों को काम से छुट्टी लेनी पड़ती है जिसकी उन्हें कोई तनख्वाह नहीं मिलती। मजदूर ठेकेदारों के कर्जदार बने रहते हैं क्योंकि उन्हें ईलाज के लिए कर्जा लेना पड़ता है और कर्जे का यह चक्र अकसर अगली पीढ़ियों तक चला जाता है। राजस्थान की खानें बहुत आदिम हालात में हैं। वहां मजदूरों के लिए पीने के पानी या शौचालय जैसी न्यूनतम सुविधाएं नहीं हैं और चिकित्सा सुविधाओं से उनका फासला बहुत ज्यादा है।

जोधपुर, जैसलमेर और बाड़मेर जिलों में खनन प्रभावित समुदायों के बच्चों की स्थिति

रानी (बदला हुआ नाम) 10 साल की है। वह जोधपुर की बलुआ पत्थर खानों में मजदूरी करती है। उसे दिन भर की मेहनत के 70 रुपये मिलते हैं। वह सवेरे नौ बजे से शाम पांच बजे तक खानों में मलबा साफ करती है। वह महीने में लगभग 15 दिन ही काम कर पाती है क्योंकि इस मेहनत से वह बहुत थक जाती है और उसे आराम की जरूरत होती है। कभी-कभी खान में उसे काम भी नहीं मिल पाता। वह जिंदगी में सिर्फ दो दिन स्कूल (एमएलपीसी संचालित क्रेच) गई है। वह गुटखे की आदी हो चुकी है और अपने लिए साबुन व गुटखे के वास्ते मां से झगड़ा करती है।

सृष्टि (बदला हुआ नाम) 16 साल की है। वह एक खान में मजदूरी करती है। उसके पिता भी खान मजदूर थे जिनकी पांच साल पहले बीमारी से मौत हो गई थी। उसकी एक बड़ी बहन (विवाहित) है और एक छोटी बहन है जो घर पर रहती है। तीन भाई स्कूल में पढ़ते हैं और एक बड़ा भाई खान मजदूर है। सृष्टि की मां भी खानों में मजदूरी करती है। सृष्टि को सवेरे 9 बजे से 5 बजे तक काम करने के बाद लगभग 100 रुपये मिलते हैं। उसने कहा कि वह अब लगभग 4 साल से काम कर रही है क्योंकि उसे घर चलाने के लिए पैसे की जरूरत है। महीने में लगभग 2-3 दिन वह काम पर नहीं जाती और घर पर आराम करती है। उसकी टांगों और पीठ में दर्द रहता है। सृष्टि कभी स्कूल नहीं गई।

स्रोत : भाट बस्ती और गंडेरो की धानी में लिए गए साक्षात्कार, जिला जोधपुर, अक्तूबर 2009.

शोध की पृष्ठभूमि

राज्य में बच्चों के स्वास्थ्य और साक्षरता की व्यापक स्थिति को देखते हुए राजस्थान के खनन क्षेत्रों में की गई केस स्टडीज खतरनाक काम, अमानवीय जीवन परिस्थितियों, सामाजिक असुरक्षा और हिंसा व अपराध से सुरक्षा के अभाव के परिवेश में बच्चों के मूलभूत अधिकारों के निषेध और दयनीय स्वास्थ्य व साक्षरता संकेतकों की ओर इशारा करती हैं।

शोध दल ने जुलाई 2009 में राजस्थान के तीन जिलों - जोधपुर, जैसलमेर और बाड़मेर - का दौरा किया। हमने खानों और खुदाई स्थलों, खनन कार्यों में लगे गांवों, खान स्थलों के निकट स्थित गांवों, आंगनवाड़ी केंद्रों और पीएचसी केंद्रों के दौरे किए। अक्तूबर 2009 में जोधपुर जिले में

औरतें और लड़कियां खान मजदूरी व पानी के लिए दूर-दूर तक भटकती हैं
(फोटो - जुलाई 2009)

फॉलोअप साक्षात्कार के लिए दौरा किया गया। हालांकि राजस्थान में बहुत सारे खनिज पदार्थ निकाले जा चुके हैं लेकिन इस शोध परियोजना की समय सीमा को देखते हुए हमने केवल बलुआ पत्थर, चूना पत्थर और लिग्नाइट खनन इलाकों का ही दौरा किया।

जनसांख्यिकीय विवरण

जोधपुर और जैसलमेर, दोनों जिलों में खनन कार्यों में सक्रिय समुदाय मुख्य रूप से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदायों से हैं। इन जिलों में लिए गए सारे साक्षात्कारों से इस बात की पुष्टि होती है कि खान मजदूरों में से बहुत बड़ा हिस्सा इन्हीं समुदायों का है और इनमें से लगभग सभी भूमिहीन हैं।[92] जोधपुर जिले में हमने जिन खान मजदूरों से बात की उनमें से कुछ लोग राज्य के दूसरे इलाकों से आए थे। ये प्रवासी मजदूर पत्थर की खानों के आसपास ही कामचलाऊ घरों में रह रहे थे जिनकी हालत दड़बों जैसी थी। जिन समुदायों के लोगों से बात की गई उनमें से ज्यादातर इन्हीं इलाकों में रहने लगे हैं लेकिन पहले वे खेती किया करते थे। जोधपुर का गंडेरो की धानी गांव मुख्य रूप से अनुसूचित जाति गांव है। यहां के निवासियों ने बताया कि यहां खनन कार्य करते हुए उनकी दूसरी पीढ़ी बीत रही है और इससे पहले वे गांवों में खेती और पशुपालन किया करते थे।[93]

जोधपुर के अनुसूचित जनजाति गांव भाट बस्ती के लोगों ने बताया कि पहले वे घुमंतू समुदाय थे लेकिन राजस्थान में बढ़ती आबादी और जमीन की अनुपलब्धता के कारण मवेशियों को चराने के लिए उन्हें जमीन नहीं मिल पाती थी। यह गांव काली बेरी खनन क्षेत्र के पास है। इन बदलावों के चलते बीस साल पहले इन लोगों को अपने सारे जानवर बेच कर इस जगह आकर बसना पड़ा। वे काम की उम्मीद में इन खानों के पास आकर बसे थे।[94] इस समुदाय में लगभग 40 परिवार थे और हर परिवार में लगभग 8-10 बच्चे थे। सारे वयस्क और 12 साल से ज्यादा उम्र के अधिकांश बच्चे लगभग डेढ किलोमीटर दूर स्थित खान में काम करने जाते हैं।

जोधपुर में पत्थर खदान कामगारों के घर (फोटो - जुलाई 2009)

जेठवाई गांव जैसलमेर से 12 किलोमीटर दूर पड़ता है। इस गांव में लगभग 300 परिवार हैं। गांव वालों ने बताया कि यहां की चूना पत्थर खानों में काम करने वाले 70 प्रतिशत लोग दूसरे इलाकों (जैसे जोधपुर जिला) से आए हैं। बाकी 30 प्रतिशत यहीं के हैं। जेठवाई के लगभग 90 प्रतिशत निवासी खानों में काम करते हैं। बाकी 10 प्रतिशत लोगों के पास थोड़े-बहुत मवेशी हैं या वे जैसलमेर शहर में मजदूरी करते हैं।

आर्थिक हालात

पहले जिस जमीन का खेती के लिए इस्तेमाल किया जाता था उसका अधि. काधिक हिस्सा अब खनन एवं पत्थर खुदाई गतिविधियों की चपेट में आ रहा है। ये एक चिंताजनक स्थिति है क्योंकि राज्य की आबादी का लगभग 80 प्रतिशत हिस्सा अभी भी ग्रामीण इलाकों में है और ये लोग आजीविका के लिए खेती पर ही आश्रित हैं। इन जिलों में जिन समुदायों से बात की गई उनमें से ज्यादातर पहले या तो खेती करते थे या पशुपालन करते थे। अब जमीन उपलब्ध न होने के कारण वे खानों में दिहाड़ी मजदूरी करने लगे हैं।

"पहले हम अमीर थे पर अब हमारे पास कुछ नहीं बचा।"

- अनुसूचित जनजाति समुदाय का मुखिया, भाट बस्ती, जिला जोधपुर।

जिला जोधपुर स्थित भाट बस्ती के लोगों ने बताया कि पहले जमीन सरकार की थी इसलिए वे उस पर अपने पशु चरा सकते थे लेकिन अब तो सारी जमीन निजी मालिकाने में है या खान मालिकों ने उस पर अवैध कब्जा जमा लिया है इसलिए वे वहां जानवरों को नहीं चरा सकते। उन्होंने बताया कि अब कोई ऐसी जमीन नहीं बची है जो किसी के मालिकाने में न हो क्योंकि लोग सरकारी जमीन पर भी खनन कार्य करने लगे हैं।[95]

जैसलमेर जिले के ही एक और गांव जोगा में लगभग 2500 लोग रहते हैं। इनमें से 90 प्रतिशत खेती और पशुपालन पर आश्रित थे। 15 साल पहले जब उनकी दहलीज पर ही चूना पत्थर की खुदाई होने लगी तो गांव में समस्याएं पैदा हुईं। खानों से निकलने वाली धूल ने उनकी फसलें नष्ट कर दीं और धूल भरी पत्तियां/चारा खाकर उनके पशु मरने लगे।[96] निजी कंपनियों ने

92. खनन समुदायों के साथ साक्षात्कार, जैसलमेर व जोधपुर, जुलाई 2009.
93. गंडेरू की धानी गांव में लिए गए साक्षात्कार, जिला जोधपुर जुलाई 2009.
94. भाट बस्ती में लिए गए साक्षात्कार, जिला जोधपुर, जुलाई 2009.
95. भाट बस्ती में लिए गए साक्षात्कार, जिला जोधपुर, जुलाई 2009.
96. जोगा गांव में लिए गए साक्षात्कार, जिला जैसलमेर, जुलाई 2009.

वादा किया था कि धूल को रोकने के लिए वे वॉटर स्प्रिंक्लर्स यानी पानी का छिड़काव करने वाली मशीनों का इस्तेमाल करेंगे। लेकिन गांव वालों का दावा है कि उन्होंने कभी ये जिम्मा नहीं लिया जिससे धूल पूरे इलाके पर छाती चली गई। पहले खेती के लिए जो पानी इस्तेमाल होता था उसको भी आसपास के विशाल संयंत्रों ने अपनी तरफ मोड़ लिया है। पहले ये लोग साल में दो-दो फसलें निकाल लेते थे लेकिन अब वे खेती ही नहीं कर सकते।[97]

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) का अभियान राजस्थान से ही शुरू हुआ था और बहुत सारे लोग मानते हैं कि बाकी किसी भी राज्य के मुकाबले यहां यह योजना सबसे असरदार ढंग से चली है। विशेषज्ञों का कहना है कि जिन ग्रामीण गरीबों के पास वैकल्पिक रोजगार नहीं हैं उनको इस योजना के तहत वाकई काम मिला है। इस अधिनियम में कहा गया है कि प्रत्येक परिवार से एक व्यक्ति को हर साल न्यूनतम मजदूरी दर पर 100 दिन का काम दिया जाएगा। हमने जिन गांवों का दौरा किया उनमें से कई गांवों के लोगों ने हमें बताया कि खनन कार्यों के अलावा बहुत सारे निवासी नरेगा कार्यक्रम में भी मजदूरी करते हैं। उनका कहना था कि इस इलाके में नरेगा कार्यक्रम ठीक से नहीं चल रहा है क्योंकि लोगों को पूरी मजदूरी नहीं दी जाती है (राजस्थान में न्यूनतम मजदूरी 100 रुपये प्रतिदिन तय है)। इस योजना के तहत सड़कों और नहरों के निर्माण जैसे कार्य किए जा रहे हैं लेकिन इन कामों में मजदूरों को सिर्फ 40-60 रुपये दिहाड़ी ही मिल रही है। बाकी पैसा ये कहकर काट लिया जाता है कि उन्होंने ठीक ढंग से काम नहीं किया है या उन्होंने पूरी मेहनत नहीं की है इसलिए वे 100 रुपये पाने के हकदार नहीं हैं।[98] जैसलमेर जिले में ही पड़ने वाले जोगा गांव में नरेगा के तहत 100 से ज्यादा लोगों को काम मिल रहा था लेकिन उन्हें भी न्यूनतम मजदूरी से कम और रोजाना सिर्फ 80-90 रुपये ही मिल रहा था।[99]

थुंबली गांव में ताप विद्युत परियोजना (फोटो - जुलाई 2009)

नरेगा कार्यक्रम के तहत किए गए कामों के लिए भुगतान में देरी की भी समस्या रही है। जोधपुर से 16 किलोमीटर दूर स्थित अनुसूचित जाति समुदाय की मेघवाल बस्ती में 13 परिवारों के पास जॉब कार्ड है। यहां ज्यादातर महिलाओं के पास जॉब कार्ड है। इसका कारण यह बताया गया कि नरेगा के तहत पैसा कई बार 15 दिन से भी ज्यादा समय बाद मिलता है (आखिरी भुगतान दो महीने देर से किया गया था)। क्योंकि ये परिवार जीवित रहने के लिए दिहाड़ी मजदूरी पर ही जीवित हैं इसलिए अगर पुरुष ही नरेगा के तहत मजदूरी करने लगेंगे तो अकसर परिवार के हाथ में कोई पैसा नहीं होगा। इसलिए पुरुष खानों में दिहाड़ी मजदूरी करते हैं और महिलाओं ने नरेगा के तहत मजदूरी का विकल्प चुना है।[100]

विस्थापन

तमिलनाडु के बाद राजस्थान में लिग्नाइट के सबसे बड़े भंडार पाए गए हैं। लिग्नाइट को अकसर 'भूरा कोयला' भी कहा जाता है। इसका इस्तेमाल भाप विद्युत उत्पादन के लिए होता है। पश्चिमी राजस्थान के बाड़मेर जिले में सरकारी स्वामित्व वाली राजस्थान स्टेट माइन्स ऐण्ड मिनरल्स लिमिटेड ने हाल के सालों में लिग्नाइट खनन कार्यों को और फैला दिया है। अब यह कंपनी गिराल गांव के पास एक विशाल खुली खान चला रही है। स्थानीय लोगों ने बताया कि इस जमीन से बहुत सारे लोगों को विस्थापित किया गया है। सार्वजनिक क्षेत्र कंपनियों के लिए तय विस्थापन नीति को ध्यान में रखते हुए विस्थापितों को सिर्फ 2000 रुपये प्रति बीघा मुआवजा दिया गया[101] जबकि स्थानीय लोग अपनी जमीन का 17,000 रुपये प्रति बीघा मुआवजा चाहते थे। इस सिलसिले में तीन गांव - थुंबली, अकली और जलेला - अदालती मुकदमों में उलझ गए हैं।[102] जमीन न रहने पर कुछ भूतपूर्व किसान अब खान स्थलों पर ठेका मजदूर बन गए हैं। वे चौकीदार व मजदूर जैसी भूमिकाएं निभा रहे हैं। जून 2009 में भूमि विवाद पर हुई एक सार्वजनिक सभा में स्थानीय लोगों को अधिकारियों ने सलाह दी कि उन्हें 2000 रुपये का मुआवजा चुपचाप मान लेना चाहिए क्योंकि "सरकार वैसे भी जबर्दस्ती तुम्हारी जमीन छीन ही लेगी इसलिए जो भी मुआवजा मिल रहा है उसे ले लेना ही अक्लमंदी है।"[103]

"सरकार हमें कह रही है कि यह खनन देश के लिए फायदेमंद है और इससे भारत का विकास होगा। अगर यही भारत का विकास है तो क्या हम भारत का हिस्सा नहीं हैं? सरकार हमारी परवाह क्यों नहीं करती?"

- एक निवासी, थुंबली गांव, जिला बाडमेर।

97. उपरोक्त।
98. गांव जेठवाई में लिए गए साक्षात्कार, जिला जैसलमेर, जुलाई 2009.
99. जोगा गांव में लिए गए साक्षात्कार, जिला जैसलमेर, जुलाई 2009.
100. जिला जोधपुर में लिए गए साक्षात्कार, अक्तूबर 2009.
101. राजस्थान में एक बीघा 2500 वर्ग मीटर के बराबर होता है।
102. गिराल खान स्थल के निकट एक स्थानीय किसान के साथ साक्षात्कार, जिला बाड़मेर जुलाई 2009.
103. उपरोक्त।

थुंबली गांव के लोगों ने बताया कि इलाके के दूसरे 15-20 गांवों के साथ-साथ उन पर भी लिग्नाइट खनन कंपनी द्वारा विस्थापन का खतरा मंडरा रहा है।[104] प्रत्येक गांव में औसतन 50 परिवार रहते हैं। इस प्रकार, प्रभावित बच्चों की संख्या 3000 के आसपास पहुंच जाती है। यहां लिग्नाइट खनन 1994 में शुरू हुआ था। इससे पहले सभी परिवार खेती पर आश्रित थे। थुंबली में 15 परिवार हैं जिनकी सारी जमीन खानों में चली गई थी। यहां के निवासियों ने बताया कि अगले एक साल के भीतर गांव के एक भी व्यक्ति के पास कोई जमीन नहीं बचेगी क्योंकि सारी जमीन खान कंपनी के लिए अधिग्रहित कर ली जाएगी। कंपनी की तरफ से लोगों को बताया जा रहा है कि जहां भी जमीन के नीचे कोयला होता है उस जमीन पर सरकार का हक होता है।

न केवल लोगों को बहुत मामूली मुआवजा दिया जा रहा है बल्कि स्थानीय लोगों को खानों और फैक्टरियों में नौकरियां भी नहीं मिल रही हैं। उनको यह कहकर वापस लौटाया जा रहा है कि उनके पास खेती के अलावा और कोई काबीलियत नहीं है इसलिए उन्हें कोई नौकरी नहीं मिल सकती। लोगों को काम की तलाश में उनके घरों से निकलने पर विवश किया जा रहा है। प्रत्येक परिवार का कोई न कोई व्यक्ति गुजरात और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में निर्माण स्थलों पर काम के लिए जा चुका है जिससे परिवार और समुदायों की संरचना टूट रही है। इस विस्थापन से बच्चों पर गंभीर असर पड़ा है। बच्चों को स्कूल से निकाल कर मजदूरी पर भेजा जा रहा है क्योंकि परिवार की स्थिति बिगड़ती जा रही है।[105]

खान मजदूरी के विकल्पों का अभाव

"खनन ही हमारे लिए खेती है। हमारे पास और कुछ नहीं है।"

- स्वयं सहायता समूह (एचएचजी) की सदस्या, भूरी बेरी गांव, जिला जोधपुर।

"पहले काम अच्छा था - खेती और पशुपालन।"

- एक निवासी, गांव जोगा, जिला जैसलमेर।

हमने जिन गांवों और खानों का दौरा किया उन सभी में बार-बार एक ही बात सुनाई दे रही थी - लोगों के पास खान मजदूरी के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा है। अगर उनके पास वैकल्पिक आजीविका अवसर उपलब्ध हैं तो वे अब जमीन बंजर हो जाने और खनन गतिविधियों के कारण जल संसाधनों के नष्ट हो जाने की वजह से खत्म हो चुके हैं। अगर उनके पास विकल्प होते तो लोग फौरन खानों और खदानों को छोड़ जाते क्योंकि उन्हें ये 'अच्छा काम' नहीं लगता। कुछ लोगों ने इस बात पर भी चिंता जताई कि जब पत्थर खत्म हो जाएंगे तो क्या होगा। जैसलमेर जिले में स्थित जेठवाई गांव के लोगों ने कहा कि उनके इलाके में लगभग 50 साल से खानें चल रही हैं और अब पत्थर खत्म होने लगे हैं। उनके गांव से सटी खान अगले पांच साल में बंद हो जाने की संभावना है। तब उनके पास कोई रोजगार नहीं बचेगा और वे अपने परिवारों का पेट नहीं भर पाएंगे। लोगों ने बताया कि कुछ खानें पहले ही बंद हो चुकी हैं। 38 किलोमीटर दूर सिपला में एक खान बंद हो चुकी है जिससे वहां भारी बेरोजगारी फैली है।[106] जेठवाई गांव के लोग गांव में ही रहना चाहते हैं लेकिन उन्हें डर है कि अगर खानें बंद हो गईं और उन्हें कोई दूसरा काम नहीं दिया गया तो उन्हें इस इलाके से कहीं और जाना पड़ेगा। जैसा कि आगे बताया गया है, इससे स्थानीय स्कूलों पर गहरा असर पड़ा है। इन स्कूलों के बच्चे परिवारों की गरीबी के चलते खानों में मजदूरी पर जाने लगे हैं।

शिक्षा की स्थिति

"यहां मुख्य समस्या शिक्षा के अभाव की है। हम जमीन और इमारत का इंतजाम खुद कर लेंगे, हम तो सरकार से बस एक स्कूल चाहते हैं। खानें तो किसी भी दिन बंद हो जाएंगी लेकिन अगर हमारे बच्चे पढ़-लिख गए तो वे कहीं और नौकरी ढूंढ सकते हैं।"

- एक खान मजदूर, जेठवाई गांव, जिला जैसलमेर।

तीनों जिलों में ज्यादातर मां-बाप अपने बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा के महत्व को समझते हैं। उनकी राय में खनन क्षेत्रों में ये सबसे बड़ी समस्या है। लेकिन सारे समुदायों में शिक्षा के सवाल पर एक जैसी समस्याएं सामने आयीं - स्कूलों में मूलभूत सुविधाएं नहीं हैं, अध्यापक गायब रहते हैं, इलाके

भाट बस्ती, जोधपुर में पत्थर खदान मजदूरों के बच्चे
(फोटो - जुलाई 2009)

104. थुंबली निवासियों के अनुसार सबसे प्रभावित गांव इस प्रकार हैं : थुंबली, गिराल, जलेला, खेजड़ली, सोनाड़ी, विशालाघाट, बदरेस, गोतिया, कपूरदी, भुनानीयो की धानी, अकाली और जलीपा।
105. थुंबली गांव के लोगों से साक्षात्कार, जिला बाड़मेर जुलाई 2009.
106. गांव जेठवाई के लोगों से साक्षात्कार, जिला जैसलमेर, जुलाई 2009.

में माध्यमिक स्कूल नहीं हैं। ज्यादातर मां-बाप ने इस बात पर दुख व्यक्त किया कि उनके बच्चे सालों से सरकारी स्कूल में पढ़ रहे हैं लेकिन अभी तक कुछ भी नहीं सीख पाए हैं। एक खान मजदूर ने बताया कि उसके तीन बच्चे सरकारी स्कूल में जा रहे थे लेकिन वहां कोई पढ़ाई नहीं होती थी। फलस्वरूप, बहुत मामूली तनख्वाह के बावजूद अब वह अपने बच्चों को एक नजदीकी प्राइवेट स्कूल में दाखिल कराने जा रहा था। उसे उम्मीद थी कि वहां शिक्षा की स्थिति निश्चित रूप से बेहतर होगी।[107]

जैसलमेर के जेठवाई गांव में भी इसी तरह की स्थिति दिखाई दी। यहां के लोगों ने बताया कि उनके पास कक्षा 7 तक सरकारी स्कूल है लेकिन उसमें अध्यापक नहीं आते। इसके कारण ड्रॉप-आउट दर बहुत ज्यादा है। पहले इस स्कूल में 120-30 बच्चों के नाम थे लेकिन अब सिर्फ 70-80 बच्चे रह गए हैं। जिन्होंने पढ़ाई छोड़ दी है उनमें से कुछ बच्चे पास की खानों में काम करते देखे जा सकते हैं। गांव वालों ने अध्यापकों के बारे में सरकार के पास कई बार शिकायतें भेजी हैं लेकिन उनका कहना है कि शासन ने कोई कार्रवाई नहीं की। अब कुछ लोगों ने गांव में ही अपने पैसे से एक प्राइवेट स्कूल शुरू किया है जिसमें फिलहाल 40 बच्चों का दाखिला है। गांव के सारे लोग 100 रुपये माहवार फीस नहीं दे सकते इसलिए कई बच्चे इस स्कूल में नहीं पढ़ रहे हैं।[108]

जिला बाड़मेर में भी ऐसे ही हालात थे। अकाली गांव के एक आदमी ने बताया कि वहां अध्यापक तो स्कूल में आता है लेकिन बच्चों को पढ़ाने में वह कोई दिलचस्पी नहीं लेता। हां, अपनी तनख्वाह लेने वह हमेशा वक्त पर पहुंच जाता है।[109] थुंबली गांव में 1965 से एक स्कूल चल रहा है लेकिन यह सिर्फ कक्षा 8 तक का है। गांव वालों का कहना है कि उनके पास इतना पैसा नहीं है कि कक्षा 8 के बाद वे अपने बच्चों को बाहर पढ़ने के लिए भेज सकें।[110] जैसलमेर के जोगा गांव में भी कक्षा 8 तक स्कूल है और 15 विद्यार्थियों में से सिर्फ दो या तीन ही किसी कस्बे में आगे की पढ़ाई जारी रख पाते हैं। इस तरह, ज्यादातर बच्चों के पास कॅरियर के दूसरे विकल्प नहीं होते और वे खान मजदूरी करने लगते हैं।[111]

जोधपुर के एक अनुसूचित जनजाति समुदाय के मां-बाप ने बताया कि अब उनके छोटे बच्चे एमएलपीसी संचालित क्रेच में जाने लगे हैं लेकिन बड़ी उम्र का कोई बच्चा स्कूल नहीं जाता क्योंकि आसपास तीन किलोमीटर तक कोई स्कूल नहीं है। कुछ बच्चे पूरे दिन गांव में ही रहते हैं। 12 साल से अधिक उम्र के ज्यादातर बच्चे मां-बाप के साथ खानों में मजदूरी पर जाते हैं। समुदाय के तकरीबन 350 बच्चों में से कोई भी बच्चा पढ़ना-लिखना नहीं जानता था।[112]

राजस्थान में खनन समुदायों के बच्चे या तो अनपढ़ रह जाते हैं या बस नाममात्र की शिक्षा हासिल कर पाते हैं। फलस्वरूप, उनके पास भी अपने मां-बाप की तरह खानों में मजदूरी करने के अलावा कोई चारा नहीं रहता। इस तरह इन परिवारों में गरीबी का चक्र यथावत कायम रहता है। हमने जिन मां-बाप से बातचीत की उन सभी ने अपने बच्चों के लिए शिक्षा के महत्व को माना और बहुत सारे लोग अपने बच्चों को मजदूरी से बचाकर स्कूल में पढ़ने के लिए रोज जद्दोजहद कर रहे हैं। दुख की बात यह है कि सरकारी स्कूलों में उन्हें जैसी शिक्षा मिल रही है उसके चलते उनमें से ज्यादातर बच्चे पढ़-लिख कर कहीं नहीं पहुंच पाएंगे और वे भी अपने मां-बाप की तरह खानों में दिहाड़ी मजदूर बनकर रह जाएंगे।

बाल मजदूरी

राज्य के हजारों बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं और खानों में काम करते हैं। इस व्यवसाय के अनौपचारिक स्वरूप और राज्य भर में खानों की विशाल संख्या को देखते हुए इस बात का सटीक अंदाजा लगाना मुश्किल है कि राज्य भर में कुल कितने बच्चे खान मजदूरी कर रहे हैं। जोधपुर जिले में कई मजदूरों ने बताया कि अकेले काली बेरी खान में ही 100 से ज्यादा बच्चे मजदूरी कर रहे हैं। उनमें आधी से ज्यादा लड़कियां हैं। यहां ज्यादातर बच्चे 12 साल की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते मजदूरी करने लगते हैं।[113] बच्चों को ट्रैक्टरों में पत्थर भरने का काम सौंपा जाता है। हर ट्रैक्टर भरने पर उन्हें लगभग 80 रुपये मिलते हैं। 12 साल से कम

काली बेरी में पत्थर खदान में काम करता बच्चा (फोटो - जुलाई 2009)

107. भूरी बेरी गांव में खान मजदूरों से साक्षात्कार, जिला जोधपुर जुलाई 2009.
108. गांव जेठवाई में खान मजदूरों से साक्षात्कार, जिला जैसलमेर, जुलाई 2009.
109. गिराल खान स्थल के पास एक स्थानीय किसान से साक्षात्कार, जिला बाड़मेर जुलाई 2009.
110. गांव थुंबली के लोगों से साक्षात्कार, जिला बाड़मेर जुलाई 2009.
111. गांव जोगा में लिए गए साक्षात्कार, जिला जैसलमेर, जुलाई 2009.
112. भाट बस्ती में लिए गए साक्षात्कार, जिला जोधपुर, जुलाई 2009.
113. काली बेरी खनन क्षेत्र में बाल एवं वयस्क खान मजदूरों से लिए गए साक्षात्कार, जिला जोधपुर जुलाई 2009.

उम्र के बच्चे आमतौर पर इतने मजबूत नहीं होते कि वे इस काम को अच्छी तरह कर सकें। लेकिन भाट बस्ती के निवासियों ने बताया कि कई बार 9-10 साल के छोटे-छोटे बच्चे भी दिन भर में 10-20 रुपये कमाने के लालच में खानों में काम करने चले जाते हैं।[114]

जोधपुर के भूरी बेरी गांव के खान मजदूरों ने बताया कि उनके साथ 15 साल की उम्र के बच्चे भी मजदूरी कर रहे हैं। कुछ खान मजदूरों ने कहा कि उनके बच्चे चाय की दुकानों और ढाबों आदि में भी काम करते हैं। जब मां या बाप की मृत्यु हो जाती है तो बच्चों को आमतौर पर स्कूल से निकाल कर शहर में काम करने भेज दिया जाता है।[115] बीमारी और मां या बाप की मौत से अकसर बच्चों को खानों में मजदूरी के लिए मजबूर होना पड़ता है। भूरी बेरी गांव में रहने वाली आरती (बदला हुआ नाम) के बेटों की उम्र 15 और 12 साल है। वे बलुआ पत्थर की खानों में काम करते हैं। 12 साल का एक लड़का बकरियां चराता है। दूसरी ओर, बिमला देवी और उनके पति को कुछ साल पहले टीबी हो गई थी। टीबी से उनके पति तो नहीं बच पाए लेकिन बिमला देवी किसी तरह बच गईं। गंडेरो की धानी में एक और विधवा (बदलाव हुआ नाम) को भी टीबी से संक्रमित पाया गया है। उसका 12 साल का बेटा खानों में मजदूरी कर रहा है।

जोधपुर जिले के आसपास खानों में 12 और 15 साल के कई बच्चों से बात की गई। ज्यादातर का कहना था कि वे कुछ महीनों से मजदूरी कर रहे हैं। उन्होंने पढ़ाई छोड़ दी है। ये बच्चे ट्रकों में पत्थर लादने जैसे भारी काम करते हैं जिसके बदले उन्हें 30 से 50 रुपये तक रोज मिल जाते हैं।[116] ज्यादातर वयस्क खान मजदूरों ने बताया कि खानों में मजदूरी करने वाले बच्चों को रोज तकरीबन 50-60 रुपये मिल जाते हैं। कई गांवों के लोगों ने बताया कि बेहद गरीब परिवारों के बच्चे ही काम करते हैं; बाकी मां-बाप अपने बच्चों को स्कूल भेज रहे हैं। मिसाल के तौर पर, एक गांव में, लोगों का अनुमान था कि गांव के तकरीबन 90% बच्चे स्कूल जाते हैं। इस स्कूल के बाकी 10 प्रतिशत यानी 250 बच्चे स्कूल से बाहर थे। जोधपुर जिले के इस इलाके में कई बच्चे पत्थरों से भरे ट्रक भी चलाते दिखाई दिए। इनमें से कोई भी बच्चा 14 साल से ज्यादा उम्र का नहीं लग रहा था। किसी भी बच्चे के पास सुरक्षा उपकरण नहीं थे जो दुर्घटना होने या चोट लगने पर उनकी हिफाजत कर सकें। बच्चों के लिए इन मुश्किलों से बचने का कोई रास्ता नहीं है जबकि उनके सामने जोखिम बहुत ज्यादा रहता है। शुरुआती सालों में उनकी स्थिति काफी नाजुक रहती है क्योंकि उनके पास खनन कार्यों को संभालने की वैसी महारत नहीं होती जो सालों के तजुर्बे से आती है। मजदूरों ने बताया कि उनके सामने आंखों में चोट, खान के धंस जाने, हाथ पैर टूटने या गिरकर पीठ में चोट लगने या सिर पर पत्थर गिरने का खतरा हमेशा बना रहता है।

काली बेरी में बाल मजदूरों सहित पत्थर खान मजदूरों से मुलाकात
(फोटो - जुलाई 2009)

स्वास्थ्य संबंधी प्रभाव

"खानों में बच्चों को तो कोई समस्या नहीं होती लेकिन जब उम्र बढ़ने लगती है तो सांस लेने में दिक्कत होती है।"

- एक खान मजदूर, काली बेरी, जिला जोधपुर

राज्य भर में खान मजदूरों ने स्वास्थ्य की बहुत सारी समस्याएं गिनवाईं। धूल में रहने के कारण सांस में होने वाली समस्या सबसे आम परेशानी थी। प्रत्येक गांव और खान स्थल पर टीबी के बहुत सारे मामले पाए गए। ज्यादातर खान मजदूरों को चालीस की उम्र से पहले ही टीबी अपनी चपेट में ले लेती है। कई स्थानों पर लोगों ने फेफड़ों में परेशानी का भी जिक्र किया लेकिन उनको पता नहीं था कि वे टीबी से पीड़ित हैं या सिलिकोसिस से। कई का दावा था कि जब लोग सिलिकोसिस से ग्रस्त होते हैं तो भी सरकार यही कहती है कि उन्हें टीबी है और उन्हें टीबी का ही इलाज दिया जाता है।[170] खान मजदूरों ओर उनके बच्चों को खांसी, जुकाम, बुखार और आंखों में संक्रमण की समस्या हमेशा बनी रहती है। जिला जोधपुर के एक खनन क्षेत्र में स्थित पीएचसी में तैनात नर्स ने बताया कि वहां बहुत सारे श्वास रोगों का इलाज चलता है। जब हम गए उस समय वहां टीबी के 27 मरीजों का इलाज चल रहा था और नर्स का कहना था कि इलाके के उपकेंद्रों में इससे भी ज्यादा लोगों का इलाज चल रहा है।[118] उसने बताया कि यहां सिलिकोसिस के भी मरीज आते हैं लेकिन इस बीमारी का निदान बहुत मुश्किल होता है इसलिए अभी तक इस पीएचसी में सिर्फ चार या पांच लोगों को ही सिलिकोसिस पाया गया है।

औरतों ने बताया कि वे गर्भवती होने पर आठवें महीने तक मजदूरी पर जाती रहती हैं। वे खानों का कचरा ढोती हैं और ट्रकों में पत्थर लादती हैं।

114. भाट बस्ती में लिए गए साक्षात्कार, जिला जोधपुर, जुलाई 2009.
115. भूरी बेरी गांव में एक महिला खान मजदूर से लिया गया साक्षात्कार, जिला जोधपुर जुलाई 2009.
116. काली बेरी खनन क्षेत्र में बाल मजदूरों के साथ साक्षात्कार, जिला जोधपुर जुलाई 2009.
117. जोधपुर और जिला जैसलमेर में खान मजदूरों के साथ साक्षात्कार, जुलाई 2009.
118. पीएचसी फिदूसर चौपड़ में नर्स के साथ साक्षात्कार, जिला जोधपुर जुलाई 2009.

खानों के गड्ढों में जमा पानी मच्छरों का घर बन गया है, काली बेरी
(फोटो - जुलाई 2009)

किसी तरह के प्रसूति लाभ न मिलने और भीषण गरीबी के कारण उन्हें प्रसव के 15-20 दिन के भीतर ही फिर काम पर लौटना पड़ता है। हमने जिन गर्भवती महिलाओं से बात की उनमें से एक ने बताया कि उसकी छाती में तीखा दर्द रहता है। पीएचसी भी काफी दूर है इसलिए महिलाएं इलाज के लिए पीएचसी जाने के लिए समय और पैसा नहीं जुटा पातीं।

सभी खान क्षेत्रों में लोगों ने बताया कि खानों में जमे हुए पानी के कारण मलेरिया तेजी से फैल रहा है। इस बात को जोधपुर जिले के पीएचसी में तैनात कर्मियों ने भी माना। यहां तैनात नर्स ने बताया कि बरसात के दिनों में खानों में पानी बढ़ जाता है जिससे मच्छर पनपने लगते हैं और मलेरिया के मामले बढ़ते जाते हैं। उसका कहना था कि इस इलाके को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 'रेड डॉट' (लाल धब्बा) के रूप में चिन्हित किया है जो इस बात का संकेत है कि यहां मलेरिया बहुत ज्यादा है। लेकिन बढ़ती स्वास्थ्य समस्याओं से सिर्फ खान मजदूर ही परेशान नहीं हैं। जिला बाड़मेर के थुंबली गांव में लोगों ने लिग्नाइट की खानों के आसपास रहने वाले समुदायों में स्वास्थ्य समस्याओं में इजाफे की बात कही। यहां का संयंत्र दिन-रात चलता है जिससे पूरा इलाका धूल में अंट गया है। लोगों का कहना था कि अब खांसी के साथ उनको काला बलगम आने लगा है। इस गांव में मलेरिया भी बढ़ता जा रहा है जो उनकी राय में खनन संयंत्र से निकलने वाले गंदे पानी का परिणाम है। फिदूसर चौपड़ पीएचसी में भी नर्स ने शराबखोरी के कारण बड़े पैमाने पर लीवर/यकृत रोगों का उल्लेख किया। उसका कहना था कि 90 प्रतिशत से ज्यादा पुरुष खान मजदूर रोज शराब पीते हैं। उसने बताया कि यहां हर रोज खानों के 200 से ज्यादा ट्रक गुजरते हैं और बहुत सारे ट्रक ड्राइवरों के स्थानीय महिलाओं के साथ यौन संबंध हैं। इस पीएचसी में एचआईवी जांच की सुविधा अभी शुरू हुई है इसलिए उनके पास इस बारे में कोई आंकड़े नहीं थे।[119] मलेरिया की तरह निमोनिया, खांसी, जुकाम और दस्त भी इन सारे जिलों में बहुत आम हैं क्योंकि यहां पीने के साफ पानी और सफाई की सुविधाएं नहीं हैं। शोध दल ने जिन समुदायों का दौरा किया उन सभी में लोगों ने बताया कि उनके बच्चों को पोलियो की खुराक मिल चुकी है लेकिन ज्यादातर को ऐसा कुछ याद नहीं था कि उनके बच्चों को और कोई टीका कभी लगा है। जन्म के बाद होने वाले नियमित चैकअप से सभी बच्चे वंचित थे।

खनन क्षेत्र के बहुत सारे बच्चे कुपोषण के शिकार दिखाई दिए। जोधपुर के भूरी बेरी गांव में रहने वाली एक खान मजदूर ने बताया कि "हमें नहीं पता कल हमें खाने को मिलेगा या नहीं।" एक महिला गोद में छोटा सा बच्चा लिए हुए थी जिसकी उम्र नौ महीने से ज्यादा नहीं दिख रही थी लेकिन उसकी मां का कहना था कि वह दो साल का है। कई गांवों की औरतों ने बताया कि उनके बच्चों का वजन या लंबाई कभी नहीं मापी गई है। जिला बाड़मेर के थुंबली गांव के लोगों ने दावा किया कि पिछले 15 साल के दौरान बच्चों की बीमारियों में काफी इजाफा हुआ है। उन्होंने कहा कि 15 साल पहले जब यहां लिग्नाइट खनन संयंत्र चालू हुआ था तब से बच्चों में कुपोषण, मलेरिया और बुखार आम बात हो गई है।[120]

एमएलपीसी द्वारा उदयपुर जिले के मोरिल्ला गांव में स्थित सालुम्बर पीएचसी के कर्मचारियों से बातचीत करने पर पता चला कि इस खनन क्षेत्र में भी बाल कुपोषण की समस्या बहुत गंभीर है। पीएचसी कर्मचारियों ने बताया कि इलाके के ज्यादातर बच्चे कुपोषित हैं। खनन कार्यों में लगे परिवारों के सभी बच्चे कुपोषित थे।[121]

ये हैरानी की बात नहीं है कि इन इलाकों में बाल कुपोषण का स्तर बढ़ता जा रहा है। बहुत सारे लोगों ने बताया कि खेती के ठप्प हो जाने से अब उनके भोजन में सब्जियां तकरीबन खत्म हो चुकी हैं। वे दिन में सिर्फ दो वक्त खाना खाते हैं। उनके खाने में रोटी के साथ कभी-कभार दाल होती है वर्ना हमेशा वे मिर्च के साथ ही रोटी खाते हैं। पहले लोग खुद अपने लिए सब्जियां उगाते थे लेकिन अब उन्हें शहर से सब्जियां खरीदनी पड़ती हैं जो बहुत महंगी हैं। बहुत सारे परिवार अब सब्जियां खरीदने की हालत में नहीं रह गए हैं। कुपोषण और खतरनाक श्रम के चलते बहुत सारे बच्चे स्थायी और बार-बार पैदा हो जाने वाली बीमारियों के शिकार हो गए हैं। बदन दर्द, श्वास संक्रमण और चक्कर आने जैसी समस्याएं खानों में काम करने वाले बाल मजदूरों में काफी आम थीं। इन समस्याओं का मुकाबला करने के लिए बहुत सारे बच्चे गुटखे और शराब के आदी हो चुके हैं। हमने कुछ बाल मजदूरों को इस बात के लिए अपनी मांओं से झगड़ते हुए देखा कि उन्हें नशीली दवाइयां खरीदने के लिए उनकी कमाई में से कुछ हिस्सा दिया जाए।

119. पीएचसी फिदूसर चौपड़ में नर्स के साथ साक्षात्कार, जिला जोधपुर जुलाई 2009.

120. थुंबली गांव के लोगों से लिए गए साक्षात्कार, जिला बाड़मेर जुलाई 2009.

121. एमएलपीसी द्वारा सालुंबर पीएचसी के साथ साक्षात्कार, मोरिल्ला गांव, जिला उदयपुर, अक्तूबर 2009.

अपर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएं

कई गांवों के लोगों का कहना था कि पास में सरकारी पीएचसी तो है लेकिन वहां न तो अकसर डाक्टर मिलते हैं और न ही वहां मलेरिया जैसी बीमारियों के इलाज के लिए आवश्यक दवाइयां रहती हैं। ऐसे में गंभीर रूप से बीमार पड़ने या घायल हो जाने पर लोगों को ईलाज के लिए निजी क्लीनिकों की शरण में जाना पड़ता है। जैसलमेर के जेठवाई गांव के लोगों ने बताया कि पहले पीएचसी बहुत दूर था। तब लोगों ने सरकार पर दबाव डाला और जगह का इंतजाम किया और अपने गांव में पीएचसी खुलवा लिया। लेकिन इस पीएचसी में डाक्टर का पद नहीं है और नर्स की अनुपस्थिति भी एक स्थायी समस्या बन गई है। अगर ये लोग बीमार पड़ते हैं तो गांव में पीएचसी होते हुए भी उन्हें बस से जैसलमेर के सरकारी अस्पताल में ही जाना पड़ता है।[122] जोगा गांव में भी एक पीएचसी है लेकिन यहां डाक्टर महीने में सिर्फ एक बार आता है। गांव वालों का कहना था कि यहां नर्स भी केवल चौथी पास है। यहां सबसे नजदीकी हस्पताल 60 किलोमीटर दूर जैसलमेर में है। यहां से जैसलमेर की बस सेवा अध्ययन दल के दौरे से महज एक महीने पहले शुरू की गई थी।[123]

पानी का इंतजाम

पिछले 20 साल से लगातार पड़ रहे सूखे ने राजस्थान में पानी की भारी समस्या पैदा कर दी है। हाल के सालों में राजस्थान की खेती चौपट हो जाने के पीछे कम बारिश को मुख्य कारण माना जा रहा है। खासतौर से पश्चिमी राजस्थान में बारिश काफी कम रही है। लेकिन बढ़ती खनन गतिविधियों ने भी पानी की किल्लत बढ़ा दी है। कई गांवों के लोगों ने बताया कि खान कंपनियों ने अपने काम के लिए उनका सारा पानी सोख लिया है। जोगा गांव के ठीक बाहर खान कंपनी ने गांव की पुरानी खेतिहर जमीन के बगल में एक दीवार खड़ी कर दी है। ये दीवार इसलिए खड़ी की गई है ताकि अब पानी बहकर खेतों में न चला जाए।[124]

"हमारा सारा पैसा पानी पर खर्च हो जाता है।"

- एक महिला खान मजदूर, भाट बस्ती, जिला जोधपुर।

दूसरे गांवों के लोगों ने बताया कि उन्हें अपनी मामूली आय का एक बड़ा हिस्सा अपनी रोजमर्रा जरूरतों के लिए पानी खरीदने पर खर्च करना पड़ता है। भाट बस्ती गांव में पानी की आपूर्ति नहीं है इसलिए उन्हें टैंकरों को पैसा देकर पानी खरीदना पड़ता है। एक टैंकर में 3000 लीटर पानी आता है और इसकी कीमत 400 रुपये पड़ती है। भाट बस्ती की एक महिला ने हमें बताया कि उनके गांव में पानी इतना दुर्लभ हो गया है कि वह अपने बच्चों को नहलाने का भी सपना नहीं देख सकती। उसकी 6 बेटियां हैं। सभी धूल और कालिख में डूबी हुई थीं। जब हमने उनके स्वास्थ्य और साफ-सफाई के बारे में पूछा तो इस महिला ने बताया कि वह बच्चों को नहलाने पर पानी खर्च नहीं कर सकती।[125]

जल संकट से जूझते जैसलमेर में दयनीय जल प्रबंधन और रिसाव
(फोटो - जुलाई 2009)

जोधपुर जिले के भूरी बेरी गांव में महिला खान मजदूरों ने बताया कि वे इतना धूल भरा, गंदा काम करने के बाद भी रोज नहीं नहा पातीं क्योंकि वहां पानी नहीं है। उन्हें हैंड पंप से पानी मिलता है लेकिन हैंड पंप भी अकसर टूटा रहता है और हफ्तों उसकी मरम्मत नहीं होती। उन्हें अपने कपड़े धाने के लिए खारा पानी मिलता है जिसके लिए वे हर महीने 50 रुपये देती हैं।[126]

निष्कर्ष

जोधपुर, जैसलमेर और बाड़मेर में किए गए साक्षात्कारों और राजस्थान के खनन कार्यों से संबंधित मीडिया रिपोर्टों व गैर-सरकारी संगठनों के अनुभवों से पता चलता है कि राज्य के पत्थर खनन उद्योग में बाल मजदूरी एक बहुत बड़ी समस्या है। पूरे राजस्थान की पत्थर की खानों में बाल मजदूरी साफ दिखाई देती है फिर भी सरकार या खनन कंपनियों ने इस समस्या को दूर करने के लिए कोई सुनियोजित प्रयास शुरू नहीं किया है।

बाल मजदूरी के अलावा यहां खनन क्षेत्र के बच्चों को प्रभावित करने वाले कई दूसरे मुद्दे भी हैं जिन पर लोगों का कम ध्यान जाता है। हमने जिन खनन क्षेत्रों का दौरा किया उन सभी में बच्चे गंभीर कुपोषण के शिकार

122. गांव जेठवाई के लोगों के साथ साक्षात्कार, जिला जैसलमेर, जुलाई 2009.
123. गांव जोगा के लोगों से साक्षात्कार, जिला जैसलमेर, जुलाई 2009.
124. गांव जोगा का दौरा, जिला जैसलमेर, जुलाई 2009.
125. भाट बस्ती में लिया गया साक्षात्कार, जिला जोधपुर, राजस्थान, अक्तूबर 2009.
126. भूरी बेरी गांव में महिला खान मजदूरों के साथ साक्षात्कार, जिला जोधपुर जुलाई 2009.

थे। खेतिहर जमीन के सिमटते जाने से समस्या और गंभीर होती जा रही है। खनन क्षेत्रों में स्वास्थ्य और शिक्षा सुविधाओं की स्थिति बहुत खस्ता दिखाई दी। स्वास्थ्य केंद्रों में डाक्टर और स्कूलों में अध्यापक अकसर गायब बताए गए।

दूसरे केस स्टडी क्षेत्रों की तरह यहां भी खान मजदूरों के बच्चों और स्थानीय समुदायों की स्थिति का समग्र आकलन किया जाना बहुत जरूरी है। बच्चों के लिए उपलब्ध संस्थागत व्यवस्था का भी जायजा लेना जरूरी है। राजस्थान में खनन उद्योग के स्वरूप और स्तर की फौरन समीक्षा की जानी चाहिए ताकि राजस्थान की तरक्की के संकेतक सिर्फ पत्थरों के व्यापार पर आधारित न हों बल्कि मानव विकास, खासतौर से बाल विकास संकेतकों पर भी आधारित होने चाहिए जिनकी दशा बहुत खराब है।

(**आभार :** यह केस स्टडी एमएलपीसी, जोधपुर के साथ मिलकर संपन्न की गई है। एमएलपीसी उन गांवों में खान मजदूरों के अधिकारों पर काम कर रहा है जहां से यह आंकड़े इकट्ठा किए गए हैं।)

भारत में बाल खान मजदूरों की हालत
न्यूज ऐण्ड कम्युनिकेशंस, ड्यूक युनिवर्सिटी
8 नवंबर 2005

डरहम, एन.सी. - उस दिन जब हम सुबह भाट बस्ती पहुंचे तो मेरे खिड़की खोलने से भी पहले बच्चों के झुंड ने हमारी जीप को चारों तरफ से घेर लिया था। उनमें से एक 12 साल की प्यारी सी बच्ची थी जिसका नाम राजू है। वह दिन भर भारत की गहरी खदानों में काम करती है।

तपती जमीन पर बसा भाट बस्ती खान मजदूरों का एक छोटा सा गांव है। यह गांव जोधपुर के पास है। यहां रेगिस्तान शहर को छूता है। उस दिन मैं ग्रेविस के अपने सहकर्मियों के साथ वहां गई थी। ग्रेविस यहां का स्थानीय गैर-सरकारी संगठन है जहां मैं पिछले 4 महीने से शोध के लिए काम कर रही हूं।

बार-बार सूखा पड़ने से राजू के परिवार को काम के लिए शहर आना पड़ा। खानों में काम करने के बाद सिलिकोसिस से उसके पिता की मृत्यु हो चुकी है। सिलिकोसिस फेफड़ों का एक व्यावसायिक रोग है। इस साल की शुरुआत में उसकी मां भी बीमार पड़ गई तो परिवार का गुजारा चलाने का पूरा भार राजू के कंधों पर आ गया।

अब वह रोज 12 घंटे खान की तली में जाकर कंकड़-पत्थर साफ करती है जिसके लिए उसे 50 रुपये (1.25 डॉलर) मजदूरी मिलती है। वह निम्न जाति की है इसलिए उसके सामने अवसर भी कम हैं और दबदबे वाले खान मालिकों की वजह से उसकी स्वतंत्रता और सीमित हो गई है। राजू के हालात को देखकर नहीं लगता कि वह कभी भी गरीबी के इस चक्र से बाहर निकल पाएगी।

राजू की कहानी अनोखी नहीं है। राजस्थान के 20 लाख खान मजदूरों में से तकरीबन 20 प्रतिशत राजू जैसे बच्चे ही हैं।

http://news.duke.edu/2005/11/child%20labor.html

रामभरोसे रानीगंज
तहलका मैगजीन, खंड 5, अंक 50, 20 दिसंबर 2008

तुषा मित्तल के मुताबिक यहां जिंदगी तबाही से सिर्फ एक कदम दूर है। लेकिन लाचारी ऐसी है कि बहुत सारे लोग इन गतिविधियों को अपनाने के लिए मजबूर हैं जो उनके भविष्य को भी खतरे में डाल सकती हैं।

आठ साल की मुस्कान ताजा, गर्म कोयले के पास झुकी हुई है। वह काठकोयले बीन रही है जिन्हें वह बांस की टोकरी में भर लेगी। फिर इस टोकरी को उसके पिता ले जाकर रानी गंज कस्बे में बेच देंगे। हर रोज मर्दों, औरतों और बच्चों के कई झुंड इस घाट पर जमा होते हैं। यहां ये लोग कोयला जलाते हैं। यह घाट शहर के मुख्य बाजार से सिर्फ कुछ किलोमीटर दूर है। इन लोगों के पास जो कोयला आता है वह अवैध तरीके से निकाल कर उन्हें बेचा गया है। विडंबना यह है कि रानीगंज हिंदुस्तान की कोयला पट्टी के बीचोंबीच स्थित है लेकिन यहां के लोगों को अपना रोज का खाना पकाने के लिए भी गैरकानूनी कोयला खरीदना पड़ता है। अगर पकड़ी जाए तो मुस्कान बिना मुकदमे के महीनों जेल में पड़ी रह सकती है। लेकिन घाट के छोर पर बैठे केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल (सीआईएसएफ) के एक खाकी वर्दीधारी कांस्टेबल की उपस्थिति उनको तसल्ली देती है।

जब मुस्कान झुकती है तो उसको पता नहीं है कि उसके पैरों तले की जमीन खोखली भी हो सकती है। हो सकता है वह एक ऐसे खोखल के ऊपर खड़ी हो जो उन्हीं गैरकानूनी खनन गतिविधियों से पैदा हुआ है जिनमें आज मुस्कान शामिल है। अवैज्ञानिक तरीके से सालों चले कोयला खनन के बाद अब रानीगंज मिट्टी की एक पतली सी परत पर टिका हुआ है। नीचे खोखले गलियारे बने हुए हैं। स्थानीय लोगों को डर है कि 35,000 से ज्यादा आबादी वाला यह शहर किसी भी दिन जमीन में धंस सकता है। जब वे शहर की घनी गलियों से गुजरते हैं तो किसी को अंदाज नहीं होता कि कहां, कब ये नाजुक परत टूट कर जमीन में धंस जाएगी।

http://www.tehelka.com/story_main41.asp?filename=Bu201208reckless_in.asp

मध्य प्रदेश

व्यापक स्थिति

मध्य प्रदेश की कुल आबादी 2001 में 60,348,023 थी।[127] 2006 में राज्य का जीडीपी 962.5 अरब रुपये था। हालांकि जीडीपी का लगभग आधा हिस्सा सेवा क्षेत्र से था (जिसमें रेलवे, व्यापार, होटल और रेस्टोरेंट उद्योग भी शामिल हैं) लेकिन सबसे बड़ा हिस्सा अकेले कृषि क्षेत्र का था। राज्य के जीडीपी में कृषि क्षेत्र का हिस्सा 230 अरब रुपये था।[128] राज्य की 80 प्रतिशत से ज्यादा आबादी आजीविका के लिए खेती पर आश्रित है। मध्य प्रदेश में जंगल बहुत ज्यादा हैं। राज्य के कुल जंगलों का क्षेत्रफल लगभग 17 लाख हेक्टेयर बैठता है। 2006-07 में राज्य के कुल राजस्व में 13.9 अरब रुपये का योगदान वन उत्पादों का था। लेकिन 1980 से 2008 के बीच राज्य की 11,970 हेक्टैयर वन भूमि खनन पट्टों को दी जा चुकी है।[129] 2006-07 में राज्य के जीडीपी का 3.66 प्रतिशत यानी 35 अरब रुपये खनन क्षेत्र से आया था।

मध्य प्रदेश की मानव विकास रिपोर्ट, 2007 में मानव विकास की सामान्य स्थिति 'प्रगतिशील मगर पिछड़ी' बतायी गयी थी।[130] राज्य के ग्रामीण इलाके तथा दक्षिण-पश्चिम, दक्षिण-पूर्व, उत्तर-पश्चिम और मध्य पट्टी को शेष राज्य से ज्यादा पिछड़ा बताया गया था। राज्य के कई वन क्षेत्रों में विशाल अनुसूचित जनजाति आबादी रहती है। यहां अनुसूचित जनजाति आबादी काफी ज्यादा है और कुल आबादी में उसका हिस्सा 1.223 करोड़ यानी 20.4 प्रतिशत बैठता है। मध्य प्रदेश में अनुसूचित जाति आबादी भी बहुत ज्यादा है - कुल आबादी में 15.2 प्रतिशत यानी 91.5 लाख।[131] राज्य के लगभग 38.3 प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा से नीचे हैं जोकि अखिल भारतीय औसत 27.5 प्रतिशत से बहुत अधिक है। अनुसूचित जाति आबादी में गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन करने वालों की संख्या और भी ज्यादा है। शहरी इलाकों में 67.3 प्रतिशत और ग्रामीण इलाकों में 42.8 प्रतिशत अनुसूचित जाति समुदाय के लोग गरीबी की रेखा से नीचे हैं।[132]

साक्षरता दर के मामले में भी मध्य प्रदेश में व्यापक भेदभाव और हाशियाकरण की स्थिति बनी हुई है। हालांकि राज्य की 63.74 प्रतिशत आबादी साक्षर है लेकिन ग्रामीण इलाकों में अनुसूचित जाति समुदाय के केवल 55.39 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति समुदाय के केवल 41.6 प्रतिशत लोग ही साक्षर हैं। महिलाओं की साक्षरता और भी कम है। मध्य प्रदेश में अनुसूचित जनजाति महिलाओं में केवल 28.44 प्रतिशत ही साक्षर हैं।[133] मध्य प्रदेश में औसत आयु 57.4 वर्ष है जोकि राष्ट्रीय औसत 63 वर्ष से कम है।

बच्चों की दशा

2001 में मध्य प्रदेश में 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की संख्या 23,252,416 थी। उसी समय 19 साल से कम उम्र के बच्चों की संख्या 28,943,033 थी।[134] इसका मतलब है कि राज्य की आबादी में बच्चों की संख्या 40 प्रतिशत है। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक राज्य में 6 से 14 साल की उम्र के 181,424 बच्चे स्कूल नहीं जाते।[135] लेकिन राज्य सरकार का दावा है कि

127. भारत की जनगणना, 2001
128. indiastat.com से लिया गया; केंद्रीय सांख्यिकी संस्थान से प्राप्त आंकड़े, 9 फरवरी 2009 को।
129. राज्य सभा अतारांकित प्रश्न संख्या 234, दिनांक 20.10.2008, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा खनन कार्यों के लिए जारी की गई वन भूमि का चुनिंदा राज्यवार विवरण (25.10.1980 से 30.09.2008)।
130. मध्य प्रदेश सरकार, मानव विकास रिपोर्ट, 2007, http://www.mp.gov.in/difmp/mphdr2007.htm.
131. भारत की जनगणना, 2001
132. indiastat.com से लिया गया; लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 4530, दिनांक on 24.04.2008 से लिए गए आंकड़े।
133. भारत की जनगणना, 2001
134. भारत की जनगणना, 2001
135. लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 576, दिनांक 21.10.2008.

2006-07 में 5 से 14 साल की उम्र के 296,979 बच्चे स्कूल से बाहर थे।[136] प्रथम के एएसईआर 2008 के सर्वेक्षण में अनुमान किया गया था कि 5 से 14 साल की उम्र के 1.9 प्रतिशत बच्चे स्कूल नहीं जाते और 3-4 साल की उम्र के लगभग 8.8 प्रतिशत बच्चे किसी आंगनवाड़ी या स्कूल पूर्व संस्था में दर्ज नहीं हैं।[137]

जनगणना आंकड़ों के मुताबिक मध्य प्रदेश में 2001 में 5 से 14 साल की उम्र के 1,065,259 बच्चे बाल मजदूर थे।[138] राज्य भर में खतरनाक व्यवसायों में काम कर रहे बच्चों की संख्या के बारे में खास आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। 1999 में केंद्र सरकार ने बताया था कि मध्य प्रदेश में खतरनाक व्यवसायों में मजदूरी कर रहे बच्चों की संख्या 11,259 है[139] लेकिन तब से अब तक यह संख्या बढ़ चुकी होगी क्योंकि अब खतरनाक व्यवसायों की सूची पहले से ज्यादा लंबी हो चुकी है। एनसीएलपी कार्यक्रम मध्य प्रदेश के 50 में से केवल 17 जिलों में ही चालू है। 2006-07 में इस योजना के तहत 2,824 बच्चों को मुक्त और पुनर्वासित कराया गया था जिससे मई 2007 तक राज्य भर में 3,519 बाल मजदूरों को पुनर्वास दिया जा चुका था।[140] हमारा मानना है कि राज्य भर में खतरनाक व्यवसायों में लगे बच्चों की वास्तविक संख्या इससे काफी ज्यादा होगी। जनगणना के आंकड़ों से पता चलता है कि 2001 में राज्य की खानों में 5 से 14 साल के 2,747 बच्चे मजदूरी कर रहे थे और इस उद्योग में 19 साल कम उम्र के बाल मजदूरों की संख्या कुल 12,655 थी।[141]

मध्य प्रदेश में बाल स्वास्थ्य की स्थिति भी काफी चिंताजनक है। मध्य प्रदेश में 5 साल के कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर राष्ट्रीय औसत से बहुत ज्यादा पायी गयी है। मध्य प्रदेश में 1000 जीवित प्रसवों पर आईएमआर 69.5 और 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्यु दर 94.2 है जबकि राष्ट्रीय औसत क्रमशः 57 और 74.3 है।[142] 2008 में मध्य प्रदेश पूरे देश में सबसे ज्यादा बाल कुपोषण की वजह से भी सुर्खियों में था। एनएफएचएस-3 के मुताबिक मध्य प्रदेश के लगभग 60 प्रतिशत बच्चे कुपोषित हैं। इसका मतलब यह है कि पिछले एक दशक के दौरान मध्य प्रदेश में बाल कुपोषण की दर में 5 प्रतिशत वृद्धि हुई है। कम बारिश और वैश्विक खाद्य संकट से स्थिति और गंभीर हो गई है।[143] मध्य प्रदेश में लिंग अनुपात भी बहुत कम है। यहां 1000 लड़कों पर लड़कियों की संख्या केवल 920 दर्ज की गयी है जो इस बात का संकेत है कि मध्य प्रदेश में बालिका भ्रूण हत्या और बेटों की चाह काफी ज्यादा है।[144]

मध्य प्रदेश में खनन उद्योग

भारत में हीरे और स्लेट का उत्पादन सिर्फ मध्य प्रदेश में होता है। कॉपर कॉन्संट्रेट, पाइरोफाइलाइट और डयस्पोर के उत्पादन में भी मध्य प्रदेश सबसे आगे है। 2007-08 में राज्य के खनिज उत्पादन का मूल्य 80.62 अरब रुपये था जोकि पिछले साल से 17 प्रतिशत अधिक था।[145] देश के कुल खनिज उत्पादन में मध्य प्रदेश का हिस्सा 7.4 प्रतिशत बैठता है। इस तरह मध्य प्रदेश भारत का छठा प्रमुख खनिज उत्पादक राज्य है। 2007-08 में राज्य भर में 319 रिपोर्टिंग खानें थीं। सामान्य रुझानों के लिहाज से मध्य प्रदेश में कोयले और मैंगनीज़ के उत्पादन में लगातार इजाफा हुआ है हालांकि बॉक्साइड व तांबा अयस्क के उत्पादन में गिरावट आयी है।

पन्ना में पत्थर की खदान और हीरे की खानें साथ-साथ चल रही हैं
(फोटो - अगस्त 2009)

श्रम एवं रोजगार मंत्रालय के आंकड़ों के मुताबिक 2005 में राज्य की 160 रिपोर्टिंग खानों में काम करने वाले लोगों की संख्या 54,000 थी। यह संख्या 2002 से कुछ कम है। 2002 में खानों में काम करने वालों की संख्या 57,300 थी। मंत्रालय द्वारा उपलब्ध कराये गये दूसरे आंकड़ों से लगता है कि वर्तमान में यह संख्या इससे ज्यादा भी हो सकती है। इन आंकड़ों के मुताबिक राज्य भर की भूमिगत खानों में 30,000, खुली खानों में 10,000 और सतह से ऊपर स्थित खानों में 16,000 लोग काम कर रहे हैं।[146] यहां की खानों में काम करने वालों की वास्तविक संख्या इससे काफी ज्यादा होगी क्योंकि यहां छोटी और कारीगर स्तरीय खानों की संख्या बहुत

136. राजीव गांधी शिक्षा मिशन, मध्य प्रदेश सरकार, मध्य प्रदेश मानव विकास रिपोर्ट, 2007 में उद्धृत, http://www.mp.gov.in/difmp/mphdr2007.htm.
137. प्रथम, एएसईआर 2008 सर्वे.
138. भारत की जनगणना, 2001
139. लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 2691, दिनांक 9.8.2000.
140. indiastat.com पर देखा गया; राज्य सभा अतारांकित प्रश्न संख्या 3759, 09.05.2007, लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 994, 20.08.2007 एवं लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 2415, 03.12.2007 द्वारा जारी की गई सूचना से संकलित।
141. भारत की जनगणना, 2001
142. एनएफएचएस-3, 2007.
143. बीबीसी न्यूज, मैलन्यूट्रिशन गैटिंग वर्स इन इंडिया, 10 जून 2008.
144. indiastat.com से ली गई सूचना; राष्ट्रीय महिला आयोग से लिया गया, 2001.
145. खान मंत्रालय वार्षिक रिपोर्ट, 2008-09.

जिला पन्नाः मुख्य तथ्य	
कुल आबादीः	856,558 (जनगणना 2001)
बच्चों की आबादी (0-14 वर्ष):	359,322 (जनगणना 2001)
साक्षरता दरः	कुल 61.36 प्रतिशत पुरुष 73.33 प्रतिशत महिला 47.97 प्रतिशत (जनगणना 2001)
स्कूल न जाने वाले बच्चों (6-14 साल) की संख्याः	1.5 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
आंगनवाड़ी या स्कूल-पूर्व संस्थाओं में दाखिल बच्चों का प्रतिशत (3-4 वर्ष):	89.7 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
बाल मजदूरों की संख्या (5-14 वर्ष):	13,303 (जनगणना 2001)
5 वर्ष से कम आयु में मृत्यु दर (रैंकिंग):	593 जिलों में 587वां स्थान (जनसंख्या स्थिरता कोष)

ज्यादा है। जनगणना के मुताबिक 2001 में मध्य प्रदेश के खान उद्योग में 177,249 कामगार (मुख्य और सीमांत श्रमिक) काम कर रहे थे। इनमें से 2,747 बच्चे थे जिनकी उम्र 5 से 14 साल के बीच थी। उसी समय 5 से 19 साल के बाल खान मजदूरों की संख्या 12,655 थी।[147]

देश के लगभग 31.7 प्रतिशत हीरा भंडार मध्य प्रदेश के पन्ना जिले में पड़ते हैं।[148] इस हीरा पट्टी का क्षेत्रफल लगभग 1000 वर्ग किलोमीटर है। सरकारी स्वामित्व वाली कंपनी एनएमडीसी देश में हीरों की एकमात्र संगठित उत्पादक है। यह कंपनी पन्ना शहर से 20 किलोमीटर दूर मझगांवा खान से हीरे निकालती है। मझगांवा पूरे एशिया में एकमात्र यांत्रिक हीरा खान है और इसकी खोज 1827 में की गयी थी। जनवरी 2001 में इस खान और संयंत्र की उत्पादन क्षमता बढ़ाकर 84,000 कैरेट प्रतिवर्ष कर दी गयी थी जो कि 1984 में तय 15,000 कैरेट सालाना क्षमता से बहुत ज्यादा है। हर साल यहां सरकारी एजेंसी द्वारा यह जमीन ऐसे खनिकों को पट्टे पर दी जाती है जो हीरे ढूंढते हैं। इसके बाद पन्ना के जिला मजिस्ट्रेट द्वारा हीरों को इकट्ठा करके साल में एक बार उनकी बोली लगायी जाती है। यहां बहुत सारे हीरों का खनन अवैध स्तर पर किया जाता है। ऐसे हीरों को तस्करी के रास्ते गुजरात में सूरत और महाराष्ट्र में मुंबई की पॉलिशिंग कंपनियों में बेच दिया जाता है। इस जिले में 3,000 से ज्यादा गैर कानूनी खानें हैं और अनुमान लगाया जाता है कि लगभग 90 प्रतिशत हीरों को गैर-कानूनी ढंग से बेच दिया जाता है।[149]

इस जिले में रहने वाले बहुत सारे लोगों के लिए हीरा उत्खनन ही आजीविका का एकमात्र स्रोत है। लेकिन दुनिया भर के ज्यादातर दस्तकारी हीरा खनन क्षेत्रों की तरह यहां भी मजदूरों को उनके उत्पादन का बहुत मामूली हिस्सा ही मिल पाता है।

लड़कियों को हमेशा हीरे नहीं भातेः 'उन्हें खोदने, काटने और चमकाने वाली लड़कियों के लिए तो हीरे एक अभिशाप ही हैं।'

"मेरा नाम सुदीप है। मैं अपने पिता के साथ 3-4 साल से पत्थर की खदानों में काम कर रहा हूं। अब मेरी उम्र 18 साल है। मैं पन्ना गांव का रहने वाला हूं। जो काम करता हूं उसके लिए मेहनताने की कोई दर तय नहीं है। पत्थर की एक प्लेट खोदने के लिए हमें 70-120 रुपये मिलते हैं। एक दिन में हम मिलकर 5-6 प्लेट पत्थर ही निकाल पाते हैं। मेरे खयाल में मैं दिन भर में 100-120 रुपये कमा लेता हूं। लेकिन महीने भर में मैं सिर्फ 12-15 दिन ही काम कर पाता हूं क्योंकि इस काम में बहुत मेहनत है। मैं कभी स्कूल नहीं गया।"

स्रोतः पूर्णा पन्ना स्टोन ऐण्ड डायमंड क्वेरीज़ में लिया गया साक्षात्कार, पन्ना, अगस्त 2009

ये कार्बन के एक ऐसे टुकड़े की चौंधियाती चमक की कहानी है जिसने पन्ना के गरीब दलित और आदिवासी बच्चों के बचपन की चमक खत्म कर डाली है। उन्नीसवीं शताब्दी तक पन्ना जिला मूल रूप से एक गोंड बस्ती था। जब यहां पाए जाने वाले खनिज पदार्थों की अहमियत और मांग बढ़ने लगी तो इस जगह का भौगोलिक महत्व भी बढ़ता गया। पन्ना अपने हीरों के लिए मशहूर है जो इस जिले में 80 किलोमीटर पट्टी में पाये गये हैं। इसके अलावा यहां बहुत सारी पत्थर की खदाने भी हैं जो पूरे जिले में फैली हुई हैं। इसके बावजूद पन्ना मध्य प्रदेश के सबसे गरीब, सी-श्रेणी के जिलों में शुमार होता है।

146. सभी आंकड़े indiastat.com से लिए गए हैं; श्रम एवं रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा उपलब्ध।

147. भारत की जनगणना, 2001

148. सेंटर फॉर साइंस ऐण्ड एनवायर्नमेंट, रिच लैंड्स, पुअर पीपुल, 'स्टेट ऑफ इंडियाज एनवायर्नमेंट : 6', 2008, पृष्ठ 216.

149. उपरोक्त।

इस केस स्टडी में पत्थर की खदानों और हीरा, इन दोनों खनिज पदार्थों का अध्ययन किया गया है जोकि पन्ना में खूब पाये जाते हैं। फिलहाल हीरा खनन का काम मुख्य रूप से भारत सरकार के उपक्रम एनएमडीसी डायमंड माइन प्रॉजेक्ट के पास है। यह पट्टी उत्तर-पूर्व में पहाड़ी खेड़ा से शुरू होकर दक्षिण पश्चिम में मझगावां तक जाती है और ये लगभग 30 किलोमीटर चौड़ी है। पन्ना में बहुत सारी छोटी खुली हीरा खानें भी हैं। पन्ना जिले में हीरा निकालने वाली कम से कम 121 कंपनियों को पट्टा दिया गया है।[150] इस अध्ययन के लिए बदोर, झल्लर, जानावार, उमराबन, चैनसिंह धर्मपुर, हरदुआ रक्सेहा और गांधीग्राम गांवों को लिया गया है। ये सारे गांव पन्ना जिले के पन्ना और अजयगढ़ ब्लॉकों में पड़ते हैं।

जिले का जनसांख्यिकीय ब्यौरा

पन्ना मध्य प्रदेश का एक जिला है। पन्ना शहर जिला मुख्यालय है। यह जिला सागर डिवीजन के तहत आता है। पन्ना जिले का गठन 1950 में किया गया था। इसे ब्रिटिश भारत की कई भूतपूर्व रियासतों के हिस्सों को मिलाकर बनाया गया था। पन्ना, जासो, अजयगढ़ का ज्यादातर हिस्सा और पालदेव रियासत का कुछ अंश भी पन्ना जिले में शामिल किया गया था। पन्ना जिले में 5 ब्लॉक और 6 कस्बे हैं। जिले में अनुसूचित जनजाति आबादी 13 प्रतिशत से कुछ अधिक और अनुसूचित जाति आबादी 15 प्रतिशत है। इस जिले में गोंड प्रमुख आदिवासी समुदाय है।

यहां की समृद्ध खनिज संपदा और पूरे भारत में हीरों का एकमात्र उत्पादक होने की ख्याति के बावजूद पन्ना मध्य प्रदेश के सबसे कम विकसित जिलों में से एक है। इस जिले की एचडीआई रैंकिंग 0.479 है। इसका मतलब है कि यह जिला पूरे राज्य में नीचे से पांचवें स्थान पर आता है। इसकी स्थिति इंदौर से काफी नीचे है जो 0.710 की रैंकिंग के साथ सारे जिलों में सबसे ऊपर है।[151] पन्ना की प्रतिव्यक्ति आय भी बहुत कम है। प्रति व्यक्ति आय के मामले में पन्ना की एचडीआई रैंकिंग 0.274 बैठती है जो कि मध्य प्रदेश में नीचे से चौथे नंबर पर आती है। इस जिले में लोगों को आधारभूत सुविधाएं भी नहीं मिल पा रही हैं। केवल 34.6 प्रतिशत परिवारों के पास बिजली है और 11.1 प्रतिशत परिवारों के पास शौचालय की सुविधा है। जिले में 6.8 प्रतिशत परिवार ही ऐसे हैं जिनके पास बिजली, शौचालय और पीने का साफ पानी है।[152]

पन्ना में लिंग अनुपात भी राज्य के औसत से कम है। यहां 1000 लड़कों पर लड़कियों की संख्या केवल 907 है जबकि पूरे राज्य में यह औसत 920 पाया गया है।[153] ये इस बात का संकेत है कि इस इलाके में बालिका भ्रूण हत्या और लड़कियों के साथ भेदभाव की स्थिति कितनी भीषण है। 2002 में पाया गया था कि इस जिले में 61 प्रतिशत से ज्यादा लड़कियों की शादी 18 साल की उम्र से पहले हो जाती है।[154] हैरत की बात नहीं है कि पन्ना में आईएमआर और 5 वर्ष से कम आयु में मृत्यु दर, दोनों ही बहुत ज्यादा है - 1000 जीवित प्रसवों पर क्रमशः 93 और 132।[155]

जनगणना के मुताबिक 2001 में इस जिले के 5 से 14 साल के 13,303 बच्चे बाल मजदूर थे। क्योंकि अभी पन्ना में एनसीएलपी कार्यक्रम चालू नहीं है इसलिए यहां खतरनाक व्यवसायों में बाल मजदूरी की समस्या को संबोधित करने के लिए फिलहाल कोई सरकारी कार्यक्रम नहीं चलाया जा रहा है।

हीरों की खुदाई कैसे होती है

पहले जिस जमीन पर खेती की जाती थी उसका एक अच्छा-खासा हिस्सा अब खनन गतिविधियों के लिए दिया जा चुका है। ये बेहद चिंताजनक बात है क्योंकि राज्य की लगभग 80 प्रतिशत आबादी अभी भी ग्रामीण इलाकों में है और अपनी आजीविका के लिए कृषि पर आश्रित है। सारे जिलों में जिन समुदायों से बात की गयी उनमें से ज्यादातर का कहना था कि पहले वे अपनी आजीविका के लिए खेती या पशुपालन पर आश्रित थे लेकिन अब पर्याप्त मात्रा में जमीन उपलब्ध न होने के कारण दिहाड़ी मजदूर बन गये हैं।

ठेकेदार की निगरानी में हीरे की खानों में काम करते बच्चे
(फोटो - अगस्त 2009)

150. सचिव, पीकेएमएस।
151. मध्य प्रदेश सरकार, मानव विकास रिपोर्ट, 2007, http://www.mp.gov.in/difmp/mphdr2007.htm.
152. डिस्ट्रिकट फैक्टशीट, मध्य प्रदेश सरकार, मानव विकास रिपोर्ट, 2007, http://www.mp.gov.in/difmp/mphdr2007.htm.
153. indiastat.com से ली गई सूचना; राष्ट्रीय महिला आयोग, 2001.
154. डिस्ट्रिक्ट फैक्टशीट, मध्य प्रदेश सरकार, मानव विकास रिपोर्ट, 2007, http://www.mp.gov.in/difmp/mphdr2007.htm.
155. उपरोक्त।

खनन के संदर्भ में पन्ना के आदिवासियों पर विस्थ. ापन और पुनर्वास के प्रभाव

पन्ना के आदिवासी शेरों के पंजे से बचकर खनन माफिया के शिकंजे में जा फंसे हैं। वे भारत की उन विकास नीतियों का शिकार हैं जो संरक्षण और मानवाधिकारों को एक दूसरे के विपरीत खड़ा कर देते हैं। पन्ना टाइगर रिजर्व के नाम पर जिन गांवों कों विस्थापित किया गया उनको या तो जबरन पुनर्वास दिया गया था या उन्हें खुद दूसरी जगह जाकर जमीन की तलाश करनी पड़ी थी। पहले आदिवासी समुदायों के पास खेती के लिए विशाल क्षेत्रफल उपलब्ध था और वे खेती व वानिकी में सक्रिय थे लेकिन अब उनको छोटे-छोटे पट्टों में कैद कर दिया गया है जहां वे सिर्फ खेती करके अपना पेट नहीं पाल सकते।

पुनर्वास क्षेत्र वैसे भी खेती के लायक नहीं है जबकि पहले उनके पास उपजाऊ जमीनें थीं। भूमि विकास के लिए जो पैसा आवंटित किया गया था वह इस काम के लिए मुश्किल से ही इस्तेमाल हुआ है क्योंकि सरकार ने पैसा अपने पास रोके रखा और तय गतिविधियों को सही ढंग से लागू नहीं किया। पुनर्वास प्रक्रिया के दो चरण थे और पुनर्वास पैकेज अलग-अलग तरह से तय किये गये थे जिसके कारण कुछ लोगों को सिर्फ नकद मुआवजा ही मिल पाया। पत्थर खान मजदूर संघ (पीकेएमएस) नामक स्थानीय संगठन ने हमारे शोध दल को बताया कि पहले चरण में प्रत्येक स्थापित परिवार को 36,000 रुपये और 5 एकड़ जमीन दी गयी थी। दूसरे चरण में नकद मुआवजा बढ़ाकर 10 लाख रुपये कर दिया गया लेकिन इसमें से 9 लाख रुपये सीधे प्रभावित लोगों को दिये गये और एक लाख रुपये सरकार ने भूमि विकास के लिए रख लिए। लोगों का कहना था कि उन्हें इस पैसे में कुछ खास नहीं मिल पाया क्योंकि मुआवजे का भुगतान करने वाली शासकीय मशीनरी के अलग-अलग स्तरों पर रिश्वत में ही ज्यादातर पैसा खत्म हो गया था।

विस्थापन ने समुदायों की आजीविका पर बहुत बुरा असर डाला है। अब बहुत सारे परिवार बच्चों सहित या तो पत्थर व हीरे की खानों में मजदूरी कर रहे हैं या दिल्ली, अमृतसर, पंजाब के दूसरे शहरों या गोवा जैसे दूर-दूर के इलाकों में जाने लगे हैं।

विस्थापन के बाद आदिवासियों की स्थिति

गोंड यहां का मुख्य आदिवासी समुदाय है। अब इस समुदाय को यादव और महार जैसी मुख्यधारा की जातियों के साथ रहना पड़ रहा है जो उनसे ज्यादा प्रभुत्वशाली हैं और जिनके पास गोंडों के मुकाबले ज्यादा जमीन है क्यों कि गोंड हाल ही में यहां आकर बसे हैं और वे दूसरों से ज्यादा मतलब नहीं रखते हैं। गांव के एक बुजुर्ग ने बड़े दुख के साथ बताया कि अब गांव में कोई काम ही नहीं है इसलिए बहुत सारे नौजवान दूसरे इलाकों की ओर पलायन करते जा रहे हैं। नरेगा कार्यक्रम लागू होने के बाद यहां भ्रष्टाचार भी बढ़ गया है जिसने गांव की शांति भंग कर दी है। लोगों ने इस व्यक्ति की बात का समर्थन करते हुए कहा कि उन्हें साल भर में 10-20 दिन का भी काम नहीं मिल पाता है इसलिए नरेगा से उन्हें कोई रोजगार गारंटी नहीं मिल रही है। गांव में ठाकुरों और यादवों का दबदबा है। चाहे बीपीएल कार्ड या नरेगा जॉब कार्ड का मसला हो, जो भी योजना आती है वे उसे हथिया लेते हैं। फिलहाल नरेगा के नियमों के मुताबिक मजदूरी 85 रुपये प्रतिदिन तय है।

एक विस्थापित आदिवासी परिवार का बच्चा। उसके बगल में कुल्हाड़ी है और वह खान की तरफ रवाना होने से पहले मुट्ठी भर भोजन खत्म कर रहा है (फोटो - अगस्त 2009)

उमराबन गांव इस बात का एक डरावना उदाहरण है कि विस्थापन का लोगों के लिए क्या मतलब होता है। इस गांव की आबादी लगभग 200 है। गांव वालों के मुताबिक लगभग 15 परिवार गांव से बाहर जा चुके हैं। यहां के ज्यादातर युवा या तो निर्माण मजदूर हैं या खानों में दूसरे तरह का शारीरिक श्रम करते हैं।

जानावर क्षेत्र ग्राम पंचायत ऐसा ही एक और उदाहरण है। यह गांव पन्ना टाइगर रिजर्व के कारण विस्थापित होने वाला पहला गांव था। यहां तकरीबन 54 परिवार हैं। ग्राम सभा में लोगों ने खराब पुनर्वास के बारे में अपनी बात कही। इस ग्राम सभा में गांव के ज्यादातर वयस्क मौजूद थे। उन्होंने कहा कि 17 विस्थापित परिवारों को अभी भी पुनर्वास नहीं मिला है। नया झल्लर गांव भी टाइगर रिजर्व के कारण विस्थापित किये गये लोगों की एक पुनर्वास बस्ती है। यह गांव इस बात का उदाहरण है कि जमीन छिन जाने के बाद आदिवासी किसान किस तरह सिरे से भूमिहीन और बेसहारा छोड़ दिये गये हैं। पहले उन्हें जंगल के पास एक ऐसी जमीन पर जाना पड़ा जिसका वे 'कानूनी' मालिकाना हासिल नहीं कर सकते थे। उनके पास खानों में काम करने का हुनर भी नहीं था। इस तरह, अब उनके पास आजीविका का कोई वकल्पिक स्रोत नहीं है और अगर उन्हें सरकार ने पुनर्वास नहीं दिया या अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परंपरागत

वनवासी (अधिकारों की मान्यता) अधिनियम के तहत उन्हें वन भूमि नहीं दी तो वे भी महज खान मजदूर बनकर रह जाएंगे।

आसपास के क्षेत्रों की तरह गांधीग्राम में भी विस्थापित आदिवासी परिवार सवर्ण जातियों के हाथों भेदभाव से परेशान हैं क्योंकि उनको विस्थापन के बाद इन जातियों के साथ ही रहना पड़ रहा है। गांव की एक सभा में लोगों ने बताया कि रोजी-रोटी का जरिया न होने के कारण गांव के 40-50 लोग शहरों में जा चुके हैं।

आंगनवाड़ियों और स्कूलों की हालत

खनन गतिविधियों और पन्ना टाईगर रिजर्व के नाम पर आदिवासी गांवों के विस्थापन से संस्थागत व्यवस्था टूट गई है। जहां यह व्यवस्था अभी भी मौजूद है वहां भारी गरीबी के माहौल में ये सुविधाएं बच्चों के लिए अप्रासंगिक हो चुकी हैं। अध्ययन दल ने कई आंगनवाड़ी केंद्रों और प्राथमिक स्कूलों का दौरा किया जो कि बच्चों के पोषण विकास और शिक्षा के लिए मुख्य संस्थागत व्यवस्थाएं हैं।

उमराबन गांव की कुल 200 लोगों की आबादी में से लगभग 60-70 की उम्र 18 साल से कम है। गांव के प्राइमरी स्कूल में 39 बच्चों के नाम दर्ज हैं जिनमें से 21 लड़के और 18 लड़कियां हैं। ये सभी अनुसूचित जनजातियों से हैं। इन बच्चों में से लगभग 8 स्कूल नहीं जाते क्योंकि उन्हें हीरा खानों में मां-बाप के साथ काम पर जाना पड़ता है या घर पर छोटे भाई-बहनों को संभालना पड़ता है। इनमें से ज्यादातर लड़कियां हैं। क्योंकि यह गांव सड़क से दूर पड़ता है इसलिए अध्यापक भी नियमित रूप से स्कूल नहीं आता। फलस्वरूप बच्चे भी अकसर स्कूल नहीं जाते। पीकेएमएस द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के मुताबिक इस गांव में 6 साल से कम उम्र के 40 से ज्यादा बच्चे हैं लेकिन उमराबन में एक भी आंगनवाड़ी नहीं है।

मन्नौर गांव के प्राथमिक स्कूल में 126 बच्चों के दाखिले हैं जिनमें से 60 लड़के और 66 लड़कियां हैं। ये सारे बच्चे अनुसूचित जनजातियों से हैं। फिलहाल यहां स्कूल की कोई इमारत नहीं हैं। हमें भी ये बच्चे एक पेड़ के नीचे पढ़ते मिले। अध्ययन के समय गांव में एक स्कूल भवन निर्माणाधीन था। इस गांव में सिर्फ दो बच्चे कक्षा 5 तक पढ़ चुके हैं।

मन्नौर गांव के बिल्कुल बगल में खनन गतिविधियां चल रही हैं इसलिए आठ साल से अधिक उम्र के तकरीबन 20-25 बच्चे नियमित रूप से हीरे की खानों और पत्थर की खानों में काम करने जाते हैं। इस गांव में एक आंगनवाड़ी है जिसमें 0-6 साल की उम्र के 127 बच्चों के नाम दर्ज हैं। इनमें से केवल 25-30 बच्चे ही नियमित रूप से आंगनवाड़ी में आते हैं। बाकी बच्चों को उनके मां-बाप अपने साथ खानों में ले जाते हैं क्योंकि आंगनवाड़ी में पूरे दिन बच्चों को संभालने की व्यवस्था नहीं है।

बदौर गांव की आबादी 625 है। पीकेएमएस सर्वेक्षण के मुताबिक इनमें से 200 बच्चे हैं जिनका प्राथमिक स्कूल में दाखिला है। इनमें से 112 लड़के और 88 लड़कियां हैं। स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों में 78 अनुसूचित जनजाति लड़के और 66 अनुसूचित जनजाति लड़कियां हैं। बाकी बच्चे अनुसूचित जाति (3 लड़के, 1 लड़की), ओबीसी (49) और सामान्य जातियों (3) से हैं। जब हमने इस स्कूल का दौरा किया तो वहां सिर्फ 30-35 बच्चे पढ़ रहे थे। हैडमास्टर ने बताया कि ज्यादातर बच्चे खानों में मजदूरी के लिए जाते हैं। इस गांव की आंगनवाड़ी में 96 शिशुओं के नाम दर्ज हैं लेकिन केवल 80 ही नियमित रूप से आंगनवाड़ी में आते हैं। यहां 0-3 साल के 40 और 3-6 साल के 40 बच्चे हैं। आंगनवाड़ी को मुख्य रूप से सहायिका की देख-रेख में चलाया जाता है जो एक आदिवासी लड़की है। आंगनवाड़ी अध्यापिका यादव जाति की है जो न तो नियमित रूप से आंगनवाड़ी में आती है और न ही बच्चों की देखभाल में रुचि लेती है। महिलाओं ने बताया कि वे अपने बच्चों को स्थानीय आंगनवाड़ी में भेज कर बहुत खुश नहीं हैं। आंगनवाड़ी कामगार ने बताया कि उसने तीन गंभीर रूप से कुपोषित बच्चे चिन्हित किए हैं। इन बच्चों को उसने पन्ना स्थित जिला अस्पताल में दाखिल करवा दिया है। लेकिन, पीकेएमएस के मुताबिक, सच्चाई यह है कि ज्यादातर बच्चे कुपोषित हैं और उनके पास पर्याप्त आहार या स्वच्छता सुविधाएं नहीं हैं।

पुराना पन्ना एक ग्राम पंचायत गांव है जिसकी आबादी काफी बड़ी है। यहां एक प्राथमिक स्कूल है जिसमें 154 बच्चों का दाखिला है। इन बच्चों में 71 लड़के और 83 लड़कियां हैं। यहां भी खानें गांव से सटी हुई हैं और 15-20 बच्चे नियमित रूप से हीरे की खानों में काम करने जाते हैं। ये खानें निजी ठेकेदारों की देख-रेख में चल रही हैं और यहां काम करने वाले बच्चे स्कूल नहीं जाते। इस गांव की आंगनवाड़ी में 124 बच्चों के नाम दर्ज हैं जिनमें 56 लड़कियां और 68 लड़के हैं। 10 गर्भवती महिलाओं और हाल ही में बच्चों को जन्म दे चुकी 16 महिलाओं के नाम भी यहां दर्ज हैं। आंगनवाड़ी में जिन बच्चों के नाम दर्ज हैं उनमें से सिर्फ 25-30 बच्चे ही नियमित रूप से आंगनवाड़ी जाते हैं। बाकी बच्चे मां-बाप के साथ खानों में चले जाते हैं। फलस्वरूप, ज्यादातर शिशु खान स्थलों पर दिखाई देते हैं। ये बच्चे इन खानों की धूल के साये में रहते हैं जोकि उनकी सेहत, खासतौर से श्वास संक्रमणों के लिहाज से बहुत खतरनाक स्थिति है।

झल्लर से विस्थापित आधे आदिवासियों को जानावार में लाकर बसाया गया था। उन्हें गांव के पीछे वन भूमि में रहने की जगह दी गई थी। इस नई पुनर्वास बस्ती को न्यू/नया झल्लर कहा जाता है। यहां एक लघु आंगनवाड़ी केंद्र है जो पन्ना आंगनवाड़ी से जुड़ा हुआ है। इस केंद्र में 23 लड़कियों और 20 लड़कों के नाम दर्ज हैं। इसकी देखभाल मुख्य रूप से सहायिका के जिम्मे है जो इस बस्ती के लिए आवंटित पूरक आहार पकाती है। यहां एक प्राथमिक स्कूल भी है लेकिन उसकी कोई इमारत नहीं है (क्योंकि ये

वन भूमि है इसलिए यहां कोई इमारत बनाने की इजाजत नहीं है)। गांव में स्कूली उम्र के 15-20 बच्चे हैं। यहां कोई अध्यापक तैनात नहीं है लेकिन जानावार प्राथमिक स्कूल से रोज एक घंटे के लिए एक अध्यापक को यहां पढ़ाने के लिए भेजा जाता है। झल्लर गांव के सरपंच ने कहा कि वहां सिर्फ एक प्राथमिक स्कूल है जिसमें 5 लड़कियां और 10-12 लड़के ही नियमित रूप से स्कूल जाते हैं। पुनर्वास नीति तय करने में इस सरपंच ने एक केंद्रीय भूमिका निभाई थी। उसका कहना है कि गांव की साक्षरता दर 5 प्रतिशत से ज्यादा नहीं है। सरपंच ने ये भी माना कि 18 साल से कम उम्र के कम से कम 10-20 बच्चे या तो खानों में काम कर रहे हैं या चाय की दुकानों अथवा अन्य छोटी-मोटी दुकानों में मजदूरी करते हैं। इसके साथ ही ये बच्चे जानवरों को चराने या खेतों में मजदूरी जैसे दूसरे काम भी करते हैं।

गांधीग्राम गांव की आबादी 250 है। जनकपुर ग्राम पंचायत से जुड़े यहां के प्राइमरी स्कूल में 135 बच्चों के नाम दर्ज हैं। नियमित रूप से स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या सिर्फ 70-80 है। बाकी बच्चे हीरे और पत्थर की खानों में मजदूरी करते हैं। यह गांव चारों तरफ पत्थर और हीरे की खानों से घिरा हुआ है इसलिए यहां खानों में बाल मजदूरी काफी अधिक है। आंगनवाड़ी बंद हो चुकी है क्योंकि आंगनवाड़ी कामगार के खिलाफ एक मामला दर्ज हुआ था। लिहाजा, अब यहां के बच्चों को कोई पूरक पोषण भी नहीं मिलता।

टेबल 2.01 में उपरोक्त प्राथमिक स्कूलों वाले कुछ गांवों में बच्चों के दाखिलों से संबंधित डिस्ट्रिक्ट इन्फॉर्मेशन सिस्टम फॉर एजुकेशन (डीआईएसई रिपोर्ट कार्ड 2008) के आंकड़े दिए गए हैं। इस टेबल में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों से मिली सूचनाओं में फर्क है जिससे पता चलता है कि द्वितीयक आंकड़े पूरी तरह सही नहीं हैं। कई जगहों के बारे में ऐसा कोई आंकड़ा उपलब्ध नहीं है। बच्चों के दाखिलों की संख्या और नियमित रूप से स्कूल जाने वाले बच्चों की वास्तविक संख्या में काफी फर्क है जो इस बात का परिचायक है कि अगर बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं तो निश्चय ही वे खानों और अन्य स्थानों पर मजदूरी कर रहे होंगे।

हीरे और पत्थर की खानों में बाल मजदूरी

शोध दल ने जिन गांवों का दौरा किया वहां के लोगों ने बताया कि खान मजदूरी बहुत अस्थिर है। इसी वजह से उनके बच्चों को भी खानों में काम करना पड़ता है। बदौर गांव में गोंड समुदाय के एक व्यक्ति ने बताया कि उसके दो बेटे हैं जिनकी उम्र 18 साल से कम है। उन दोनों को पिता की बीमारी के कारण पत्थर और हीरे की खानों में नौकरी शुरू करनी पड़ी। यह आदमी पहले खानों में मजदूरी करता था लेकिन बाद में मलेरिया और टीबी की चपेट में आ गया। लिहाजा, उसके लड़कों को मजदूरी पर जाना पड़ा ताकि वे घर का खर्चा चला सकें और अपने पिता का इलाज करवा सकें।

ज्यादातर लड़के-लड़कियां 10-12 साल की उम्र तक काम शुरू कर देते हैं। प्रत्येक खान में लड़कों के मुकाबले लड़कियों की संख्या ज्यादा थी। ये बच्चे एक खान से दूसरी खान में जाते रहते हैं। जहां भी उन्हें किसी ठेकेदार के पास काम मिलता है वे उसके पास काम करने लगते हैं। इन बच्चों के मां-बाप ने बताया कि आगे चलकर इन्हीं बच्चों को परिवार का पेट पालना है इसलिए उनके पास जल्दी से जल्दी काम सीख लेने के अलावा कोई चारा नहीं है। ऐसी गरीबी में वे अपने बच्चों के लिए और किसी तरह की उम्मीद नहीं देखते।

जानावार गांव के बुजुर्गों ने बताया कि गांव का एक-एक बच्चा या तो खनन गतिविधियों में काम करता है या घरेलू काम संभालता है क्योंकि सरकार ने जो जमीन दी है वह उपजाऊ नहीं है। इस जमीन ने लोगों को पहले से भी ज्यादा लाचार कर दिया है। अधिकृत रूप से पुनर्वास परियोजना में नकद मुआवजे के रूप में भी अच्छी-खासी रकम दी गई

टेबल 2.08 पन्ना जिले के कुछ गांवों के प्राथमिक स्कूलों में दाखिलों की स्थिति

जिला	ब्लॉक	गांव	कुल दाखिले	अजा	अजजा	ओबीसी	अन्य
पन्ना	पन्ना	झल्लर	21	0	1	20	--
		जानावार	113	2	18	92	13
		उमराबन	सूचना उपलब्ध नहीं	--	--	--	--
		गांधीग्राम	232	82	23	111	107
		मन्नौर	73	3	21	38	51
		हरदुआ	173	25	47	58	75
		रक्सेहा	517	18	56	272	24

अन्य - उसी कक्षा में दोबारा पढ़ रहे बच्चे, सीडब्ल्यूएसएन एवं मुस्लिम।

नोट : कुल योग में असंगतियां हैं लेकिन ये आंकड़े डीआईएसई रिपोर्ट कार्ड में भी इसी तरह दिखाए गए हैं।

स्रोत : डीआईएसई रिपोर्ट कार्ड, सितंबर 2008.

थी लेकिन वास्तव में सभी पुनर्वास स्थलों पर विस्थापित परिवार खानों में दिहाड़ी मजदूरी करके ही अपना गुजारा चला रहे हैं। हमारे विचार में पुनर्वास और मुआवजा प्रक्रिया की फौरन समीक्षा की जानी चाहिए।

एक किशोर ने बताया कि वह 10 साल की उम्र से खानों में मजदूरी कर रहा है और उसे अब 70 रुपये दिहाड़ी मिलती है। गांधीग्राम गांव के पास स्थित पत्थर की खदानों में बाल एवं किशोर मजदूर साफ देखे जा सकते हैं। लगभग 17 साल की उम्र के लड़कों ने बताया कि वे एक ठेकेदार के लिए काम करते हैं जो एक पत्थर तोड़ने के लिए उन्हें 35-40 रुपये देता है। लड़कों को औसतन 70-100 रुपये रोजाना मजदूरी मिलती है। उनका मानना है कि वे जो चीजें निकालते हैं वे उत्तर प्रदेश, बिहार और राजस्थान तथा भोपाल जैसे शहरों को भेज दी जाती हैं। उनका कहना था कि काम के घंटे अलग-अलग ठेकेदार के तहत अलग-अलग रहते हैं। कुल मिला कर हर लड़के को औसतन 10 घंटे रोज काम करना पड़ता है। हमने जिन लड़कों से बात की वे सभी गोंड जनजाति से थे और पिछले कई साल से मजदूरी कर रहे हैं।

हीरों के लिए खुदाई करते किशोर (फोटो - अगस्त 2009)

चैनसिंह धर्मपुर इस बात का एक उदाहरण है कि पन्ना जिले में हीरे की खुदाई किस तरह होती है। यह गोंड कबीले का गांव है। इस गांव से बहुत सारे निजी ठेकेदारों की खानें सटी हुई हैं जो अवैध रूप से हीरे निकालते हैं। फील्ड विज़िट के दौरान गांव में हुई एक बैठक में गोंड समुदाय के लोगों ने कहा कि एक तरफ तो सरकार निजी ठेकेदारों को खनन के लिए छोटे-छोटे पट्टे (25X25 फुट) आवंटित कर रही है और दूसरी तरफ गैर-आदिवासी स्थानीय लोगों को ठेकेदार अनौपचारिक रूप से जमीन देने के लिए फुसलाते रहते हैं ताकि वे वहां हीरों की खुदाई कर सकें। इस बैठक में लगभग 19 गोंड परिवारों के लोग आए थे। उन्होंने बताया कि अगर वे अपनी जमीन ठेकेदारों को दे देते हैं तो ठेकेदार अपने मुनाफे का लगभग 10 प्रतिशत हिस्सा उन्हें देते हैं। इस तरह ये समस्या पूरे इलाके में छोटे-छोटे गड्ढों की शक्ल लेती जा रही हैं और कृषि एवं वन भूमि गंभीर रूप से प्रभावित हो रही है। औरतों का कहना था कि पहले वे खेत मजदूर थीं लेकिन अब खेती में कोई काम नहीं बचा है। यहां के लोगों की एक शिकायत यह थी कि ज्यादातर गैरकानूनी खनन वन भूमि पर हो रहा है और वहां वैध खानों के मुकाबले अवैध खानों की संख्या 5-10 गुना ज्यादा है।

खानों में ठेका मजदूरी करने वाले इन गोंड परिवारों के मुताबिक इस काम में मजदूरी की दर बहुत कम है। मर्दों को 50-60 रुपये दिहाड़ी मिलती है जबकि औरतों को सिर्फ 40 रुपये मिलते हैं। उन्होंने बताया कि हीरे की खानों में बहुत सारे बच्चे भी मजदूरी कर रहे हैं। ज्यादातर औरतें अपने शिशुओं को काम पर साथ लेकर जाती हैं और आमतौर पर बच्चे 10 साल की उम्र से मजदूरी शुरू कर देते हैं। महिलाओं ने बताया कि छोटे-छोटे लड़के 70-70 फुट तक गहरी खानों में काम करते हैं। कई बार वे लगातार 8-10 घंटे तक गड्ढों में ही काम करते रहते हैं। धर्मपुर के लोगों ने बताया कि धर्मपुर व आसपास के इलाकों में अवैध खनन गतिविधियों में 500 से ज्यादा बच्चे (10-16 वर्ष) काम कर रहे हैं। क्योंकि बाल मजदूरों को कम पैसे देकर भी पूरा काम करवाया जा सकता है इसलिए ठेकेदार उन्हें हाथो-हाथ काम पर रख लेते हैं। औरतों का कहना था कि ज्यादातर बाल मजदूर लड़कियां हैं जो 12-14 साल की उम्र में काम शुरू कर देती हैं।

हमने जिन हीरा खानों का दौरा किया उनमें से एक खान में 6 बच्चे अपने परिवारों के साथ काम कर रहे थे। इनमें से चार बच्चों की उम्र 12 साल से कम थी और वे मां-बाप के साथ मिट्टी हटवा रहे थे। मां-बाप ने बताया कि इन बच्चों के नाम स्कूल में भी दर्ज हैं लेकिन वे सुबह खानों में काम करते हैं और दोपहर बाद स्कूल चले जाते हैं। जब हमने बच्चों से बात की तो उन्होंने बताया कि उनके पास कॉपी खरीदने के लिए भी पैसे नहीं हैं और वे अध्यापक के गुस्से से भी डरते हैं इसलिए चुपचाप मांओं के साथ काम पर आ जाते हैं।

हरदुआ गांव में लगभग 30 गोंड परिवार रहते हैं। यहां के 12 परिवारों के साथ हमने सामूहिक चर्चा की जिसमें हीरा खनन गतिविधियों के बारे में भी बातचीत हुई। इनमें से एक भी परिवार के पास जमीन नहीं है। वे सभी या तो खनन गतिविधियों पर आश्रित हैं जो साल में सिर्फ चार-पांच महीने चलती हैं या फिर बाकी समय वे जंगलों की लकड़ी बेचते हैं या

पन्ना में बाल मजदूरों के कुपोषित और स्कूल से वंचित बच्चे
(फोटो - अगस्त 2009)

दिल्ली, कानपुर, झांसी अथवा हरियाणा में नौकरी के लिए चले जाते हैं। इन लोगों ने बताया कि खान मजदूरी में उन्हें सिर्फ 50-60 रुपये मजदूरी मिलती है। महिलाएं और बच्चे भी खानों में काम कर रहे हैं और उन्हें 30-35 रुपये दिहाड़ी मिलती है। बच्चे मुख्य रूप से पत्थरों की छंटाई करते हैं और मिट्टी खोदते हैं। उन्हें हीरे ढूंढने के लिए कई घंटे नीचे गड्ढों में भी रहना पड़ता है। बच्चे बलुआ पत्थर की भी खुदाई करते हैं। पत्थरों को तोड़ कर उन्हें ट्रकों में लादना उनका मुख्य काम होता है। इस गांव में हमें आठ साल के बच्चे भी हीरे की खानों में काम करते दिखाई दिए।

गांव वालों की शिकायत थी कि नरेगा के तहत उन्हें साल में 30-35 दिन से ज्यादा काम नहीं मिलता और उन्हें पूरी मजदूरी का भुगतान भी नहीं होता। इसकी वजह से उन्हें काम के लिए गांव से बाहर जाना पड़ता है।

पीकेएमएस जैसे स्वैच्छिक संगठन विस्थापित आदिवासी परिवारों के अधिकारों के हक में तथा खानों में बाल मजदूरी के खिलाफ आवाज उठा रहे हैं। उनका कहना है कि यहां विधि क्रियान्वयन विभागों और खनन माफिया का गठजोड़ बहुत ताकतवर है और क्योंकि समुदाय के लोग बहुत गरीब हैं इसलिए उन्हें अपने बच्चों को काम पर लेकर जाना पड़ता है। जब अध्ययन दल ने लोगों से उनके बच्चों के भविष्य के बारे में पूछा तो उनका जवाब था कि उनके पास बच्चों के भविष्य की फिक्र करने के लिए न तो वक्त है और न ही साधन। उन्हें बस एक-एक दिन गुजारना है। जैसा कि आठ साल के एक लड़के ने हमें बताया, 'स्कूल में पढ़ने को कुछ नहीं है इसलिए हम अपने परिवार का पेट पालने के लिए यहां आ जाते हैं।' उसके वही नाजुक हाथ अकसर हीरे संभाल रहे होते हैं जिन्हें कभी मुट्ठी भर खाना नसीब नहीं हुआ!

स्वास्थ्य समस्याएं

महिला कामगारों ने बताया कि वे गर्भावस्था के आखिरी महीनों तक खानों में मजदूरी करती हैं क्योंकि उन्हें और कोई काम नहीं मिलता। उनका कहना था कि उनके बच्चे बहुत कमजोर और कुपोषित पैदा होते हैं। जब हम इस इलाके में गए तो महिलाएं और बच्चे, दोनों ही कुपोषित दिखाई दिए। इस इलाके में बाल मजदूरी काफी आम है। कम उम्र में मां बनने और महिलाओं व बच्चों में कुपोषण का ये भी एक बड़ा कारण है। हमने पाया कि कम उम्र की मांओं, जिनकी उम्र 20 साल भी नहीं थी, के पास एक या दो बच्चे थे और सभी खून की भारी कमी से पीड़ित दिखाई दे रहे थे। हीरे खानों में काम करने वाले बच्चों में धूल में सांस लेने के कारण श्वास रोग तथा घंटों तक गड्ढों में खड़े रहने के कारण त्वचा रोग काफी होने लगे हैं। यहां के बच्चों में दस्त और बुखार, खासतौर से मलेरिया काफी ज्यादा पाया गया है क्योंकि खानों के गड्ढों को काम खत्म होने के बाद भरने की बजाय वैसे ही खुला छोड़ दिया जाता है जिनमें पानी भर जाता है और खूब मच्छर पनपते हैं। इस तरह के लावारिस गड्ढे बरसात में दुर्घटनाओं का भी खतरा पैदा कर देते हैं। हाल ही में हीरों के लिए खुदाई करते हुए चार मजदूर खान के मलबे में दब कर मर गए थे।

यहां के वयस्कों में टीबी एक आम व्यावसायिक रोग है। पन्ना जिला अस्पताल के चीफ मेडिकल ऑफिसर डॉ. तिवारी ने बताया कि पन्ना जिले के खान मजदूरों में कुपोषण और टीबी की समस्या बहुत व्यापक है। हरदुआ गांव के लोगों ने बताया कि 3-4 लोग टीबी से मर चुके हैं। हरदुआ रक्सेहा के पीएचसी में हमने अगस्त 2009 में दौरा किया था जहां कोई डाक्टर तैनात नहीं था। यह बात पीएचसी के नोटिस बोर्ड को देखकर भी समझ में आ रही थी। नोटिस बोर्ड पर चिकित्साकर्मियों का कोई नाम नहीं था। यह पीएचसी मुख्य रूप से एक कंपाउंडर के सहारे चल रहा था जो सभी मरीजों को एक ही दवाई बांटता दिखाई दिया। लोगों का कहना था कि हालांकि ये सरकारी अस्पताल है और वहां कोई डाक्टर नहीं है लेकिन फिर भी उन्हें दवाइयों और इलाज के लिए पैसा देना पड़ता है।

पानी और स्वच्छता

महिलाओं ने बताया कि उन्हें पानी की भारी समस्या है। एनएमडीसी की तरफ से जो पानी भेजा जाता है वह उनकी जरूरतों के लिए कतई पर्याप्त नहीं है। एक गांव में जो चार हैंडपंप लगाए गए हैं उनमें से सिर्फ एक ही चालू हालत में है। लिहाजा, बच्चे भारी गंदगी में रहते हैं और बीमार जैसे दिखाई दे रहे थे। हमने जिन बच्चों को देखा उनमें लगभग सभी खून की कमी से पीड़ित दिखाई दिए। उनके पेट फूले हुए और चेहरे पीले पड़ गए थे। उम्र के हिसाब से उनकी कद-काठी छोटी दिखाई देती थी। औरतों ने बताया कि वे पूरे दिन खान में काम करती हैं और उनके पास समय या पर्याप्त पानी नहीं होता इसलिए वे अपने बच्चों को नियमित रूप से नहला भी नहीं पातीं। कोई शौचालय न होने के कारण ज्यादातर बच्चे घर के आसपास ही टट्टी-पेशाब कर रहे थे। बच्चों की अस्वस्थ स्थिति खनन उद्योग के इस फैलाव के बावजूद इन परिवारों के लिए आर्थिक सहायता के अभाव का स्पष्ट संकेत है।

गांधीग्राम की औरतों और बच्चों को पानी के लिए चार किलोमीटर चलकर जाना पड़ता है। पानी की भारी किल्लत के कारण लड़कियों का काम बहुत बढ़ गया है। लोगों ने पानी से फैलने वाली बीमारियों के बारे में बताया और कहा कि मलेरिया, टीबी और भोजन की कमी उनकी मुख्य समस्याएं हैं। अध्ययन दल को यहां 4-5 लोग टीबी से पीड़ित मिले। बच्चों में कुपोषण बहुत ज्यादा था। गांव में सिर्फ दो परिवारों के पास बीपीएल कार्ड हैं जबकि पूरे गांव में एक जैसे हालात हैं। मन्नौर गांव में भी पीने का पानी नहीं था। युवाओं ने बताया कि उनमें से ज्यादातर को टीबी हो चुकी है लेकिन उन्हें लगता है कि यह टीबी नहीं बल्कि सिलिकोसिस है।

निष्कर्ष

पन्ना एक जमाने में समृद्ध आदिवासी पट्टी थी। हीरों के लालच ने अब इस इलाके को तहस-नहस कर डाला है। पन्ना विकास के त्रासद विरोधाभासों वाला जिला है। यह उन जिलों में से एक है जो दयनीय मानव विकास संकेतकों की राष्ट्रीय सूची में काफी ऊपर आते हैं। साक्षरता के मामले में यह जिला देश भर में बहुत पीछे है। ऐसी ही स्थिति स्वास्थ्य संकेतकों की बनी हुई है। विभिन्न रिपोर्टों के अनुसार पूरे देश में पन्ना जिले में सबसे ज्यादा कुपोषित बच्चे हैं। और यही जिला दुनिया भर को हीरे निर्यात करता है और हीरों के निर्यात से मिलने वाला राजस्व राज्य के कुल खनिज राजस्व का अच्छा-खासा हिस्सा होता है। दक्षिण अफ्रीका, सिएरा लियोन और अन्य हीरा निर्यातक देशों की तरह पन्ना भी विकास, खासतौर से बच्चों की स्थिति के मामले में बहुत दयनीय हालत में है। यहां की केस स्टडी से पता चलता है कि एक जमाने के आत्मनिर्भर आदिवासी किसान जो अपने बच्चों का पेट पालने के लिए पर्याप्त भोजन पैदा कर सकते थे, वे अब भूमिहीन हो चुके हैं और खानों में मजदूरी कर रहे हैं। इन हालात ने उनके बच्चों को भी स्कूल जाने की बजाय खान मजदूरी के लिए विवश कर दिया है। हमने जिन आंगनवाड़ियों का दौरा किया उनमें से ज्यादातर या तो ठप पड़ी हैं या वे शिशुओं के पोषण व स्वास्थ्य की रक्षा में सक्षम नहीं हैं। पन्ना इस बात का एक उदाहरण है कि हीरे जैसे कीमती पत्थरों के मामले में भी खनन उद्योग बच्चों के विकास पर गंभीर नकारात्मक असर डालता है। जब तक इस बात को अधिकृत रूप से स्वी. कार नहीं किया जाएगा और इस इलाके में खनन प्रक्रियाओं तथा विकास नीतियों की समीक्षा नहीं की जाएगी, खासतौर से वन्य जीवन संरक्षण के नाम पर आदिवासी के विस्थापन की समीक्षा नहीं की जाएगी तब तक यहां के बच्चों के सकारात्मक भविष्य की कोई उम्मीद नहीं की जा सकती।

(***आभार :*** यह केस स्टडी पीकेएमएस, पन्ना के साथ साझीदारी में संपन्न की गई। हम पीकेएमएस के सचिव श्री युसूफ बेग और उनके संगठन से फील्ड डेटा संग्रह और सामुदायिक बैठकों में मिली सहायता के लिए उनका आभार व्यक्त करते हैं। पीकेएमएस पन्ना जिले में खान मजदूरों और उनके परिवारों के अधिकारों की रक्षा के लिए काम करता है।)

छत्तीसगढ़

व्यापक स्थिति

छत्तीसगढ़ भारत का एक नवगठित राज्य है। पहले यह राज्य मध्य प्रदेश का हिस्सा था। सन् 2000 में संसद द्वारा एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसके तहत मध्य प्रदेश को विभाजित करके छत्तीसगढ़ राज्य का गठन किया गया था। क्षेत्रफल के लिहाज से यह भारत का दसवां बड़ा राज्य है और इसकी आबादी 20,833,803[156] (जो भारत की आबादी का 2 प्रतिशत बैठती है)। 2006-07 में छत्तीसगढ़ का सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) 59,321 करोड़ रुपये था और स्थिर मूल्यों पर यह 2005-06 की तुलना में 9.41 प्रतिशत अधिक था। इस तरह छत्तीसगढ़ की विकास दर अखिल भारतीय विकास दर यानी 9.6 प्रतिशत के आसपास पड़ती है।[157] खेती यहां का मुख्य व्यवसाय है जिस पर राज्य की लगभग 76 प्रतिशत श्रम शक्ति आश्रित है।[158] यहां ज्यादातर खेतों में एक ही फसल हो पाती है क्योंकि अधिकांश खेती बारिश पर आश्रित है। खरीफ में धान यहां की मुख्य फसल होती है और कुल बुआई क्षेत्रफल में लगभग 80 प्रतिशत में धान की खेती की जाती है।[159] छत्तीसगढ़ के मध्यवर्ती मैदानों को मध्य भारत का 'चावल का कटोरा' कहा जाता है।

छत्तीसगढ़ मुख्य रूप से एक ग्रामीण आबादी वाला राज्य है। यहां की शहरी आबादी केवल 20.1 प्रतिशत है (जबकि राष्ट्रीय स्तर पर यह संख्या लगभग 28 प्रतिशत बैठती है)।[160] छत्तीसगढ़ में शहरीकरण की दर 17.4 प्रतिशत रही है जबकि राष्ट्रीय दर 29 प्रतिशत है।[161]

भरपूर प्राकृतिक संसाधन छत्तीसगढ़ की सबसे बड़ी ताकत हैं। खनन, बिजली, सीमेंट, लौह अयस्क एवं स्टील के मामले में छत्तीसगढ़ दूसरे राज्यों से आगे दिखाई देता है।[162] राज्य सरकार के मुताबिक छत्तीसगढ़ खनिज संपदा के मामले में भारत के सबसे संपन्न राज्यों में से एक है। यहां अभी तक 28 मुख्य खनिज पदार्थ ढूंढ़े जा चुके हैं जिनमें हीरे के भंडार भी शामिल हैं। छत्तीसगढ़ भारत के उन कुछ राज्यों में से एक है जहां जरूरत से ज्यादा बिजली उत्पादन होता है। राज्य में कोयले के विशाल भंडार मौजूद हैं इसलिए यहां कोयला आधारित ताप विद्युत उत्पादन की भारी संभावना है। राज्य सरकार की अधिकृत वेबसाइट के मुताबिक कोरबा 'भारत की ऊर्जा राजधानी' की हैसियत का दावेदार है। यह राज्य लोहे और स्टील के मामले में भी देश का बेहद समृद्ध राज्य है। स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (सेल) का भिलाई स्टील प्लांट हर साल 40 लाख टन से ज्यादा लोहे और स्टील का उत्पादन करता है। छत्तीसगढ़ में निजी क्षेत्र भी इस उद्योग में काफी मजबूत है।[163]

एक अनुकूल श्रम वातावरण, सस्ती बिजली, पर्याप्त जल संसाधनों और कम लागत पर उपलब्ध जमीन के कारण औद्योगिक निवेश के लिए छत्तीसगढ़ एक आकर्षक जगह है। छत्तीसगढ़ में औद्योगिक निवेश के लिए विभिन्न सब्सिडियों के रूप में काफी उत्प्रेरक दिये जा रहे हैं। खाद्य प्रसंस्करण, वनस्पति एवं औषध उद्योग, कीमती पत्थर और आभूषण उद्योग में भी छत्तीसगढ़ के सामने विकास की काफी संभावनाएं हैं।[164]

छत्तीसगढ़ अनुसूचित क्षेत्र राज्य है। यहां आदिवासी आबादी बहुत बड़ी है। 2001 की जनगणना के मुताबिक छत्तीसगढ़ की आबादी में 11.6 प्रतिशत अनुसूचित जातियां और 31.8 प्रतिशत अनुसूचित जनजातियां थीं (राष्ट्रीय औसत क्रमश 16.2 प्रतिशत और 8.2 प्रतिशत) है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा छत्तीसगढ़ के ग्रामीण इलाकों में रहता है और ये लोग मुख्य रूप से खेती पर आश्रित हैं।

छत्तीसगढ़ को मिले विपुल प्राकृतिक संसाधनों के बावजूद केंद्रीय योजना आयोग द्वारा उपलब्ध कराए गए गरीबी संबंधी अनुमानों को देखकर पता

156. भारत की जनगणना, 2001

157. दि हिंदू, "छत्तीसगढ़ पोस्ट्स 9.41 परसेंट जीडीपी ग्रोथ" 23 फरवरी, 2008. http://www.thehindu.com/2008/02/23/stories/2008022354350500.htm.

158. छत्तीसगढ़ मानव विकास रिपोर्ट 2005, छत्तीसगढ़ सरकार के लिए तैयार की गई, पृष्ठ. 45-46.

159. छत्तीसगढ़ मानव विकास रिपोर्ट 2005, छत्तीसगढ़ सरकार के लिए तैयार की गई, पृष्ठ. 53.

160. छत्तीसगढ़ मानव विकास रिपोर्ट 2005, छत्तीसगढ़ सरकार के लिए तैयार की गई, पृष्ठ 45-46.

161. छत्तीसगढ़, सितंबर 2009, इंडिया ब्रांड इक्विटी फाउंडेशन द्वारा तैयार किया गया http://www.ibef.org/states/chhattisgarh.aspx, 14 दिसंबर 2009को देखा।

162. उपरोक्त।

163. उपरोक्त।

164. उपरोक्त।

चलता है कि यहां गरीबी का अनुपात 40.9 प्रतिशत है जोकि अखिल भारतीय औसत (27.5 प्रतिशत) से काफी ज्यादा है। संख्या की दृष्टि से छत्तीसगढ़ में गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाली आबादी मुख्य राज्यों में उड़ीसा (46.4 प्रतिशत) और बिहार (41.4 प्रतिशत) के बाद तीसरे स्थान पर आती है।[165] यहां केवल 18.7 प्रतिशत परिवारों के पास ही समुचित स्वच्छता सुविधाएं उपलब्ध हैं। इस लिहाज से छत्तीसगढ़ भारत के बड़े राज्यों में सबसे आखिरी स्थान पर आता है।[166]

छत्तीसगढ़ में साक्षरता दर 65.1 प्रतिशत है जोकि राष्ट्रीय औसत (66 प्रतिशत) से कुछ ही कम है।[167] साक्षरता में लैंगिक विभाजन बहुत गहरा दिखाई देता है। यहां पुरुषों की साक्षरता दर 77.9 प्रतिशत है जबकि महिलाओं की साक्षरता दर केवल 52.3 प्रतिशत है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों में महिलाओं की साक्षरता दर और भी कम है (क्रमशः 49.2 प्रतिशत तथा 39.4 प्रतिशत।)[168]

लोक स्वास्थ्य के मोर्चे पर छत्तीसगढ़ की स्थिति गंभीर दिखाई देती है। छत्तीसगढ़ मानव विकास रिपोर्ट, 2005 के अनुसार पूरे राज्य में स्वास्थ्य सुविधाओं में भारी सुधार की आवश्यकता है। स्वास्थ्य सुविधाओं का दायरा और उपलब्ध सेवाओं की गुणवत्ता, दोनों दृष्टियों से स्वास्थ्य संबंधी बुनियादी ढांचा कमजोर है। लगभग प्रत्येक जिले की रिपोर्ट में और ज्यादा पीएचसी तथा उप-स्वास्थ्य केंद्र (एसएचसी) तथा सीएचसी खोलने की जरूरत का उल्लेख किया गया है।[169] एनएफएचएस-3 आंकड़ों के मुताबिक ज्यादातर परिवारों के पास सरक. ारी सुविधाओं तक पहुंच न होने का कारण अनिवार्य रूप से यह नहीं है कि सुविधाओं की गुणवत्ता खराब है बल्कि इसका मुख्य कारण यह है कि ऐसी सुविधाएं लोगों के निकट उपलब्ध नहीं हैं।[170]

राज्य में टीबी, मलेरिया, पीलिया, कुष्ठ रोग के मामले बड़ी संख्या में आते रहे हैं। रायपुर जिले में केवल एक टीबी अस्पताल है जबकि रायपुर और दक्षिण बस्तर, दांतेवाड़ा जिले में 2 कुष्ठ रोग अस्पताल हैं। राज्य की बहुत सारी रिपोर्टों में पोषण की खराब स्थिति और ज्यादातर लोगों के लिए दो वक्त का भोजन जुटाने में भी असमर्थता का जिक्र किया गया है। ग्राम एवं जिला रिपोर्टों में लोगों ने बार-बार कहा कि खाने के लिए पर्याप्त भोजन न होना उनके लिए सबसे बड़ा मसला है। खराब स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त भोजन का अभाव सबसे बड़ा कारण रहा है।[172]

बच्चों की दशा

जनगणना 2001 के अनुसार राज्य की आबादी में 37 प्रतिशत बच्चे (आयु वर्ग 0-14 वर्ष) हैं। लेकिन छत्तीसगढ़ में जीवित प्रसवों की दर्जशुदा संख्या (384,815)[173] का अनुपात भारत के मुख्य राज्यों में सबसे कम है। 0-6 वर्ष आयु वर्ग में 1,000 लड़कों पर 975 लड़कियां हैं। यह लिंग अनुपात न केवल राष्ट्रीय औसत (927) से अधिक है बल्कि सभी राज्यों से भी अधिक है।[174] चिंता की बात यह है कि 1991 के मुकाबले यह लिंग अनुपात नीचे आया है। 1991 की जनगणना में लिंग अनुपात 985 था।

एनएफएचएस-3 अनुमानों के अनुसार छत्तीसगढ़ में प्रति 1,000 जीवित प्रसवों पर आईएमआर (शिशु मृत्यु दर) 70.8 है। 5 वर्ष से कम आयु के प्रति 1,000 बच्चों में मृत्यु दर 90.3 है (1998-99 में आईएमआर प्रति 1,000 जीवति प्रसवों पर 80.9 तथा पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों में मृत्यु दर प्रति 1,000 बच्चों पर 122.7 थी)। छत्तीसगढ़ में प्रसव के आसपास (prenatal) मृत्यु दर (64) सबसे अधिक है। यहां टीकाकरण 48.7 प्रतिशत है जोकि राष्ट्रीय औसत से जरा सा ही ऊपर पड़ता है।[175] शिशु एवं बाल मृत्यु दर पर अंकुश लगाने के लिए टीकाकरण के दायरे को फैलाना बहुत महत्वपूर्ण है। छत्तीसगढ़ में 3 साल से कम उम्र के बच्चों में कुपोषण की दर 52.2 प्रतिशत है जोकि भारत के मुख्य राज्यों में चौथे स्थान पर आती है।[176]

गंभीर श्वास रोग (एआरआई) छोटे बच्चों (5 वर्ष से नीचे) में एक बड़ी समस्या रही है। इसके बाद दस्त/पेचिश का स्थान आता है। छत्तीसगढ़ में एआरआई लक्षणों वाले ऐसे बच्चों का प्रतिशत (केवल 1 प्रतिशत) सबसे कम पाया गया जिन्हें सचमुच एंटीबायटिक दवाइयां मिली हैं।[177] एनएफएचएस-3 के मुताबिक छत्तीसगढ़ में ऐसे बच्चों का प्रतिशत (केवल 3.2 प्रतिशत)भी राज्यों की श्रृंखला में बहुत नीचे है जिनको दस्त होने पर पहले से ज्यादा तरल पदार्थों का आहार मिल पाता हो। ऐसे बच्चों का राष्ट्रीय औसत 10.5 प्रतिशत रहा है। छत्तीसगढ़ में ऐसे ज्यादातर बच्चों को वही तरल आहार मिलता रहता है जो उन्हें दस्तों से पहले मिल रहा था। इस समस्या और एआरआई तथा बुखार की वजह से यहां बच्चों की मृत्यु दर काफी ज्यादा रही है। चेचक/स्मॉल पॉक्स, पोलियो और प्लेग जैसी बीमारियां भी एक जमाने में यहां बहुत सारे लोगों की जान लेती रही हैं लेकिन हाल के सालों में इन बीमारियों के कारण होने वाली मौतों में काफी गिरावट आई है।[178]

165. इकॉनॉमिक सर्वे ऑफ इंडिया 2008-09. पृष्ठ 263.
166. उपरोक्त।
167. भारत की जनगणना, 2001
168. indiastat.com पर उपलब्ध सूचना, स्रोतः लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 4090, दिनांक 20.12.2005.
169. छत्तीसगढ़ मानव विकास रिपोर्ट 2005, छत्तीसगढ़ सरकार के लिए तैयार की गई, पृष्ठ. 131.
170. एनएफएचएस-3 3, 2005-06. पृष्ठ 438.
171. छत्तीसगढ़ मानव विकास रिपोर्ट 2005, छत्तीसगढ़ सरकार के लिए तैयार की गई, पृष्ठ. 129.
172. छत्तीसगढ़ मानव विकास रिपोर्ट 2005, छत्तीसगढ़ सरकार के लिए तैयार की गई, पृष्ठ. 126.
173. indiastat.com से ली गई सूचना। भारत में लिंग और आवास के अनुसार राज्यवार जीवित प्रसवों की संख्या 2005, स्रोत : महापंजीकार कार्यालय, भारत।
174. भारत की जनगणना, 2001
175. एनएफएचएस-3, 2005-06.
176. इकॉनॉमिक सर्वे ऑफ इंडिया 2008-09. पृष्ठ 263.
177. एनएफएचएस-3, 2005-06. पृष्ठ 236.
178. छत्तीसगढ़ मानव विकास रिपोर्ट 2005, छत्तीसगढ़ सरकार के लिए तैयार की गई, पृष्ठ. 123.

बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के मामले में राज्य के प्रदर्शन की वास्तविक तस्वीर आंकना मुश्किल है। 2001-02 में राज्य भर में प्राथमिक शिक्षा में दाखिला लेने वाले बच्चों की संख्या 723,180 थी जिनमें से 323,500 यानी 44.7 प्रतिशत लड़कियां थीं। 2002-03 में प्राथमिक शिक्षा ले रहे बच्चों की संख्या 820,234 पहुंच गई थी जिनमें से 385,315 यानी 47 प्रतिशत लड़कियां थीं।[179] लड़कों के दाखिलों में इजाफे के मुकाबले लड़कियों के दाखिलों में इजाफा ज्यादा तेज रहा है। इन उत्साहवर्धक आंकड़ों के बावजूद छत्तीसगढ़ का शैक्षिक विकास सूचकांक[180] 0.521 है जोकि देश के सारे राज्यों में काफी नीचे आता है। माओवादियों/नक्सलवादियों के साथ चल रहे टकरावों से भी विस्थापित बच्चों की शिक्षा पर बहुत बुरा असर पड़ा है। ह्यूमन राइट्स वॉच की एक रिपोर्ट के मुताबिक, एक स्थानीय एनजीओ द्वारा किए गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि शिविरों में रह रहे 6 से 16 वर्ष की उम्र के लगभग 40 प्रतिशत बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं।[181] सरकार का कहना है कि मार्च 2008 में अधिकृत आंकड़ों के अनुसार 169,753 बच्चे स्कूल से बाहर थे।[182]

जनगणना 2001 के मुताबिक छत्तीसगढ़ के विभिन्न उद्योगों/व्यवसायों में बाल मजदूरों की संख्या 364,572 थी। राज्य सरकार की अधिकृत वेबसाइट के मुताबिक राज्य के गैर-कृषि उद्यमों में कार्यरत बाल मजदूरों की संख्या 20,723 थी (13,836 लड़के और 6,987 लड़कियां)।[183] छत्तीसगढ़ के बच्चों के सामने एक और दुरुह समस्या मुंह बाये खड़ी है। ह्यूमन राइट्स वॉच के मुताबिक, टकराव ग्रस्त क्षेत्र में रहने की वजह से माओवादियों, राज्य समर्थित माओवाद विरोधी प्रहरी टोलियों (सलवा जुडूम) और सरकारी सुरक्षा बल, सभी ने विभिन्न कामों के लिए बच्चों को बड़ी संख्या में भर्ती किया है जिससे बहुत सारे बच्चे लगातार चोटों और मौत के खतरे में फंस गए हैं।[184]

खनन उद्योग

खनिज संपदा के मामले में छत्तीसगढ़ भारत के सबसे समृद्ध राज्यों में आता है। यहां 28 प्रमुख खनिजों का उत्पादन हो रहा है। खान मंत्रालय के मुताबिक छत्तीसगढ़ में खनिज उत्पादन का मूल्य 2007-08 में 105.1 अरब रुपये था जोकि पिछले साल के मुकाबले 17.5 प्रतिशत अधिक था। इस आधार पर खनिज उत्पादन के कुल मूल्य के मामले में आंध्र प्रदेश

कोयला खनन क्षेत्र, रायगढ़ (फोटो - नवंबर 2009)

के बाद यह राज्य दूसरे स्थान पर आता है।[185] 2007-08 में यहां कोयला, बॉक्साइट, लौह अयस्क, डोलोमाइट और चूना पत्थर आदि महत्वपूर्ण खनिज पदार्थों का भारी उत्पादन हुआ। राज्य के कुल खनिज उत्पादन के मूल्य में इन्हीं खनिज पदार्थों का हिस्सा लगभग 99 प्रतिशत था।[186] भारत में टिन कॉन्संट्रेट का उत्पादन केवल छत्तीसगढ़ में होता है और देश के कुल टिन अयस्क संसाधनों में इसका 38 प्रतिशत हिस्सा बैठता है। कोयले, डोलोमाइट और लौह अयस्क उत्पादन के मामले में छत्तीसगढ़ सारे राज्यों में दूसरे स्थान पर आता है। कोयला, डोलोमाइट और लौह अयस्क उत्पादन के राष्ट्रीय उत्पादन में राज्य का हिस्सा क्रमश 20 प्रतिशत, 23 प्रतिशत और 15 प्रतिशत रहा है। देश के कुल लौह अयस्क में से 5वां हिस्सा यहीं पैदा होता है। दुनिया भर में लौह अयस्क के सबसे अच्छे भंडारों में से एक भंडार राज्य के दक्षिण में स्थित बेलाडिला खानों में पाया गया है जहां से यह अयस्क जापान और दूसरे देशों को निर्यात किया जाता है।[187] भारत के कुल हीरा संसाधनों में से लगभग 28 प्रतिशत यहीं पैदा होते हैं।[188]

श्रम एवं रोजगार मंत्रालय द्वारा 2005 में जारी किए गए आंकड़ों के मुताबिक छत्तीसगढ़ के खान उद्योग में प्रतिदिन औसतन 46,200 मजदूर काम करते हैं (यह संख्या 2004 की संख्या से ज्यादा फर्क नहीं है)।[189] खानों में काम करने वाले मजदूर आसपास के निवासी होते हैं या नहीं, यह बात सर्वविदित है हालांकि इस बात के संकेत भी दिखाई देते हैं कि राज्य के बाहर से आने वाले प्रवासी मजदूरों की संख्या भी बहुत बड़ी है।[190]

179. छत्तीसगढ़ मानव विकास रिपोर्ट 2005, छत्तीसगढ़ सरकार के लिए तैयार की गई, पृष्ठ. 91.
180. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, वार्षिक रिपोर्ट 2007-08, पृष्ठ 53-54. राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन एवं प्रशासन विश्वविद्यालय द्वारा सार्वभौमिक प्रारंभिक शिक्षा की दिशा में राज्यों की प्रगति जानने के लिए तैयार किया गया। ईडीआई को पहुंच, बुनियादी ढांचा, शिक्षक संबंधी संकेतकों और परिणाम, इन चार मुख्य कसौटियों को ध्यान में रखते हुए विकसित किया गया था।
181. ह्यूमन राइट्स वॉच, "डेंजरस ड्यूटी : चिल्ड्रेन ऐण्ड दि छत्तीसगढ़ कॉन्फ्लिक्ट", सितंबर 2008. पृष्ठ 50.
182. स्कूल न जाने वाले बच्चों की राज्यवार संख्या, 31 मार्च 2008 को, स्रोत : लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 576, दिनांक 21.10.2008.
183. अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी निदेशालय, छत्तीसगढ़, छत्तीसगढ़ ऐट ए ग्लांस-2002, पृष्ठ 22, http://chhattisgarh.nic.in/statistics/details.pdf, 14 दिसंबर 2009 को देखा।
184. ह्यूमन राइट्स वॉच, "डेंजरस ड्यूटी : चिल्ड्रेन ऐण्ड दि छत्तीसगढ़ कॉन्फ्लिक्ट", सितंबर 2008. पृष्ठ 4
185. खान मंत्रालय वार्षिक रिपोर्ट 2008-09. पृष्ठ 10.
186. खान मंत्रालय वार्षिक रिपोर्ट 2008-09. पृष्ठ 16.
187. छत्तीसगढ़, सितंबर 2009, इंडिया ब्रांड इक्विटी फाउंडेशन द्वारा तैयार किया गया, पृष्ठ 33, http://www.ibef.org/states/chhattisgarh.aspx, दिसंबर 14, 2009 को देखा।
188. उपरोक्त।
189. indiastat.com से ली गई सूचना; श्रम एवं रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी किए गए आंकड़ों से संकलित, भारत में औसत दैनिक रोजगार और वैध खानों की संख्या का राज्य वार ब्यौरा (2002 से 2005)।
190. छत्तीसगढ़ मानव विकास रिपोर्ट 2005, छत्तीसगढ़ सरकार के लिए तैयार की गई, पृष्ठ. 58.

कोरबा, कोड़िया, सरगुजा, रायगढ़ और दुर्ग, ये छत्तीसगढ़ के पांच सबसे अधिक खनन वाले जिले हैं।[191] सरल खनन कानूनों और खान पट्टा आवेदनों पर जल्दी मजदूरी की नीति के चलते छत्तीसगढ़ की खनन नीति निजी एवं विदेशी निवेशकों के लिए काफी आकर्षक रही है। इस नीति से माओवादी बेहद खफा हैं। माओवादियों ने लोगों की जमीन को अधिग्रहित करके उसे बहुराष्ट्रीय कंपनियों को सौंपने की सरकारी कोशिशों का लगातार विरोध किया है।[192] गैर-कानूनी खनन की वजह से भी सरकारी खजाने को करोड़ों रुपये का नुकसान हो रहा है। 2001 में पूरे राज्य में गैर-कानूनी खनन के लगभग 1500 मामले सामने आए थे। इनमें से 587 मामले गैर-कानूनी खनन के थे और 834 मामले खनिज पदार्थों के अवैध परिवहन से संबंधित थे।[193]

छत्तीसगढ़ जैसे नवगठित राज्य के लिए खनन गतिविधियों से निश्चय ही भारी आर्थिक लाभ की गुंजाइश दिखाई देती है लेकिन खनन उद्योग के जरिए राज्य के विपुल संसाधनों के दोहन के अतिउत्साह में राज्य सरकार इस बात को नजरअंदाज कर रही है कि इस उद्योग से पर्यावरण और लोगों पर कितने विनाशकारी प्रभाव पड़ रहे हैं। छत्तीसगढ़ में वनों का विनाश तेजी से हो रहा है (राज्य की अधिकृत वेबसाइट के मुताबिक राज्य की जमीन का 44 प्रतिशत जंगलों के तहत आता है जिसमें से 90,000 हैक्टेयर क्षेत्रफल में से प्रमुख खनिज पदार्थों की खुदायी चल रही है)। नदियां प्रदूषित हो रही हैं जोकि बहुत सारे लोगों के लिए सिंचाई का मुख्य साधन हैं। जमीन की उपजाऊ क्षमता पर भी बुरा असर पड़ रहा है। कुछ रिपोर्टों में बताया गया है कि सांस और श्वासतंत्र संबंधी बीमारियां, रोग प्रतिरोधक क्षमता में गिरावट, दुर्बलता और खराब स्वास्थ्य, ये सभी प्रदूषण के परिणाम हैं। कई जगह प्रदूषण के कारण स्वास्थ्य पर पड़ रहे खतरनाक प्रभावों के कारण लोग मजबूरन अपना इलाका छोड़कर दूसरे इलाकों में भी चले गए हैं।[194]

छत्तीसगढ़ के बच्चों पर खनन उद्योगों का अभिशाप

सुनील (बदला हुआ नाम) ने हमें अपनी फोटो नहीं लेने दी। वह तमनार ब्लॉक में स्थित मुड़ागाँव का रहने वाला है। उसका शारीरिक ढांचा सामान्य नहीं है और पीने के पानी में फ्लोरोसिस की भारी मात्रा के कारण उसकी हड्डियां कमजोर हैं। उसकी उम्र लगभग 18 साल है लेकिन 9 साल की उम्र से ही उसके अंग निष्क्रिय हो चुके हैं और उसकी पूरी देह बहुत दुर्बल है। वह न तो चल सकता है और न ही सीधा बैठ सकता है। अपनी सारी जरूरतों के लिए वह अपने परिवार वालों पर आश्रित है। गाँव वालों ने बताया कि वहां सुनील जैसे कई बच्चे हैं जिनके शरीर में बहुत कम उम्र से ही ऐसे विकार और दांतों में फ्लोरोसिस के लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे। 20 वर्ष की उम्र पार करते-करते उनमें से ज्यादातर पूरी तरह विकलांग हो चुके थे। ब्लॉक संसाधन संयोजक (बीआरसी) की शिक्षा रिपोर्टों में बताया गया है कि तमनार ब्लॉक में 120 से ज्यादा बच्चे विभिन्न कारणों से शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर विकलांग हैं।

स्रोत : मुड़ागाँव, रायगढ़ में लिया गया साक्षात्कार, नवंबर 2009.

"मेरा नाम राकेश (बदला हुआ नाम) है। मेरी उम्र तकरीबन 17 साल है। 5 साल मैंने पढ़ाई छोड़ दी थी। अभी मैं खानों में पार्टटाईम नौकरी करता हूं और बचे समय में घर के मवेशियों को संभालता हूं। हमारी जमीन कोयला निकालने के लिए रायपुर एलॉयज वालों ने अधिग्रहित कर ली थी जिसके लिए कंपनी से हमें मुआवजा मिल चुका है। उन्होंने प्रति एकड़ 130,000 रुपये का भुगतान किया था। इस पैसे में से ज्यादातर खर्च हो चुका है। कंपनी ने हमें पुनर्वास का भी वायदा किया था लेकिन अभी तक हमें पुनर्वास नहीं मिला है। मैं खान में मजदूरी करता हूं जिसके लिए मुझे 80-100 रुपये की दिहाड़ी मिलती है।"

स्रोत : रायपुर एलॉयज, निकट कोसमपाली गाँव, रायगढ़ की खुली कोयला खानों के निकट लिया गया साक्षात्कार, नवंबर 2009.

जिला रायगढ़ : मुख्य तथ्य	
कुल आबादी :	1,265,529 (जनगणना 2001)
आबादी (0-14 वर्ष) :	140,095 (जनगणना 2001)
साक्षरता दर :	कुल 70.61 प्रतिशत पुरुष साक्षरता : 82.7 प्रतिशत महिला साक्षरता : 57.62 प्रतिशत (जनगणना 2001)
स्कूल न जाने वाले बच्चों (6-14 वर्ष) के संख्या:	3.2 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
एडब्ल्यूसी या स्कूल पूर्व व्यवस्था में दाखिल बच्चे (3-4 वर्ष) :	77.7 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
बाल मजदूरों की संख्या :	364,572 (जनगणना 2001)
5 वर्ष से कम आयु में मृत्यु दर (रैंकिंग) :	593 जिलों के सर्वेक्षण में 443वां स्थान (जनसंख्या स्थिरता कोष)

191. सेंटर फॉर साइंस ऐण्ड एनवायर्नमेंट रिच लैंड्स, पुअर पीपुल, 2008, पृष्ठ 122.
192. श्रीवास्तव, देवयानी, माइनिंग वॉर इन छत्तीसगढ़, इंस्टीट्यूट ऑफ पीस ऐण्ड कॉन्फ्लिक्ट स्टडीज़, 23 मई 2008, G:\Mining - PT\chattisgarh\Research\Mining War in chattisgar.htm, 4 जनवरी 2010 को देखा।
193. सेंटर फॉर साइंस ऐण्ड एनवायर्नमेंट रिच लैंड्स, पुअर पीपुल, 2008, पृष्ठ 123.
194. छत्तीसगढ़ मानव विकास रिपोर्ट 2005, छत्तीसगढ़ सरकार के लिए तैयार की गई, पृष्ठ 31.

ये केस स्टडीज़ छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले में की गई थीं जहां कोयला, डोलोमाइट, लौह अयस्क और चूना पत्थर के विशाल खनिज भंडार हैं। ये केस स्टडीज मुख्य रूप से उन इलाकों में की गईं जहां विद्युत परियोजनाएं स्थित हैं और जिनके कारण न केवल विस्थापन बल्कि प्रदूषण संबंधी समस्याएं भी पैदा हो रही हैं।

रायगढ़ जिला

छत्तीसगढ़ का रायगढ़ जिला इस्पात/स्टील का एक मुख्य उत्पादक क्षेत्र है। जिंदल स्टील ऐण्ड पावर यहां की सबसे बड़ी कंपनी है। रायगढ़ में रोज लगभग 20,000 टन कोयले की खपत होती है। देश के लगभग सारे कोयले भंडार छत्तीसगढ़ और झारखंड में ही स्थित हैं जिसके कारण ये राज्य 'बिजली उत्पादन केंद्र' बनने की रणनीति पर काम कर रहे हैं। रायगढ़ जिले का क्षेत्रफल 6,836 वर्ग किलोमीटर है जिसमें से 585.83 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र है। घरघोड़ा उप-जिला, जहां मौजूदा केस स्टडीज की गईं, उसकी आबादी 148,903 है जिसमें से 83,657 आदिवासी हैं।[195] बिरहोर, हिल-कोड़वा, कोलपा, रथिया कमार, गोढ़, कंवर, उरांव और धनुहार इस इलाके की मुख्य जनजातियां हैं। रायगढ़ की जनजातियां मुख्य रूप से खेती और वन उपज पर आश्रित हैं। महुआ यहां का मुख्य उत्पाद है। ये केस स्टडीज घरघोड़ा उपजिले के तमनार ब्लॉक में की गईं जो कि रायगढ़ का सबसे बड़ा औद्योगिक इलाका है और जिंदल, रायपुर एलॉयज़ एवं मोनेट इस्पात जैसी विशाल खनन कंपनियां यहां अपने संयंत्र चला रही हैं।

रायगढ़ में 7 उपजिले हैं और प्रस्तुत शोध तमनार ब्लॉक के मिलुपाड़ा, खमाड़िया, गारे, कोरकेड, कोसमपाली, सरसमाल और मुड़ागाँव में किया गया था। इस ब्लॉक में तीन कोयला एवं विद्युत संयंत्र हैं - जिंदल स्टील एवं पावर लिमिटेड, रायपुर एलॉयज ऐण्ड स्टील लिमिटेड तथा मोनेट इस्पात। मोनेट इस्पात के पास भूमिगत कोयला खान हैं जो 40 एकड़ से भी ज्यादा क्षेत्रफल में फैली हुई हैं। जिंदल स्टील एवं पावर लिमिटेड तथा रायपुर एलॉयज ऐण्ड स्टील लिमिटेड, दोनों के पास तमनार ब्लॉक में खुली कोयला खाने हैं।

अध्ययन की पृष्ठभूमिः रायगढ़ में खनन-विरोधी आंदोलन

इस अध्ययन के समय (16 नवंबर 2009) गारे गाँव में प्रस्तावित जिंदल पावर प्लांट के खिलाफ एक बड़ा आंदोलन चल रहा था। 5 जनवरी 2008 को जनता के भारी प्रतिरोध के बावजूद एक जनसुनवाई आयोजित की गई थी। स्थानीय परियोजना प्रभावित समुदाय इस संयंत्र की स्थापना का विरोध कर रहे थे क्योंकि उन्हें इस परियोजना के बारे में समय पर कोई सूचना नहीं दी गई थी। इसके बावजूद जिला प्रशासन ने दूसरे इलाकों से लोगों को लाकर एक फर्जी जनसुनवाई का आयोजन कर डाला। लोगों को काबू

तमनार ब्लॉक में कोयले से स्याह खेतिहर जमीन
(फोटो - नवंबर 2009)

में रखने के लिए मौके पर पुलिस भी तैनात कर दी गई थी और पुलिस द्वारा लाठीचार्ज के फलस्वरूप 7 लोग गंभीर रूप से और 200 लोग आंशिक रूप से जख्मी भी हो गए थे। आंदोलन का नेतृत्व कर रहे लोगों पर झूठे मुकदमे ठोंक दिए गए थे। छत्तीसगढ़ में जिंदल समूह के पास भारी ताकत है। समुदाय के मुखियाओं से बातचीत करने पर पता चला कि जिस तरह खनन कंपनियों के हक में लोकतंत्र का दमन किया जा रहा है उससे इलाके में कितना गुस्सा भरा हुआ है।

प्रस्तावित परियोजना के बारे में जनता को तमाम झूठी जानकारियां दी जा रही थीं। मिसाल के तौर पर, रायगढ़ विधानसभा के भूतपूर्व सदस्य श्री रामकुमार अग्रवाल के मुताबिक लमदाड़ा, सरायटोला, गारे, खमाड़िया और करवाही, ये 5 गाँव सबसे गंभीर रूप से प्रभावित होंगे। लेकिन पर्यावरण प्रभाव आकलन (ईआईए) रिपोर्ट में बताया गया है कि सिर्फ 5 परिवारों के विस्थापित होने की संभावना है। खुदायी के लिए चिन्हित स्थान (कोर जोन) और बफर जोन (जिसमें कोर जोन के इर्द-गिर्द 10 किलोमीटर तक का इलाका आता है) में 93.64 हैक्टेयर वन क्षेत्र पूरी तरह नष्ट हो जाएगा। बफर जोन में लगभग 30 प्रतिशत वन क्षेत्र अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होगा। जानकारों का कहना है कि ईआईए रिपोर्ट इस इलाके में मौजूद विभिन्न उद्योगों के कृत्यों से पड़ रहे संचयी प्रभावों के अध्ययन पर आधारित नहीं है। आंदोलनकारियों का कहना था कि वे इसलिए आंदोलन कर रहे हैं क्योंकि जिंदल के 1,000 मेगावॉट बिजली घर की तरह उनके इलाके में पहले ही कई बड़ी परियोजनाएं चल रही हैं तथा बहुत सारी कोयला खानों ने इलाके की जमीन, आजीविका के साधनों तथा पानी, जंगल, भूमिगत जल व नदियों की गुणवत्ता नष्ट कर दी है।

प्रस्तावित परियोजना की ईआईए रिपोर्ट में अनुमान व्यक्त किया गया है कि हर रोज 13,945 घन मीटर भूमिगत जल निकाला जाएगा। यह मात्रा रायगढ़ की आबादी की कुल जरूरतों का 20 प्रतिशत बैठती है। लेकिन रिपोर्ट में क्षेत्रीय जल संतुलन तथा खेती और वनों पर पड़ने वाले इस दोहन के परिणामों को बहुत मामूली दिखाया गया है।

195. raigarh.nic.in/

खनन गतिविधियों के कारण स्थानीय आजीविकाएं नष्ट हो गई हैं
(फोटो - नवंबर 2009)

रायगढ़ में सक्रिय जनचेतना पीपुल्स मूवमेंट के एक कार्यकर्ता[196] ने एक और गंभीर मुद्दे के बारे में बताया। उनका कहना था कि खनन कंपनियां बहुत सारी उपजाऊ खेतिहर जमीन का केवल अधिग्रहण करके उसे खाली छोड़ देती हैं। जिस जमीन पर अभी तक किसानों की आजीविका निर्भर थी अब वे उस पर खेती के अधिकार से वंचित हो जाते हैं भले कंपनियों के पास वहां खुदायी करने की कोई योजना न हो। जिंदल स्टील ऐण्ड पावर प्लांट ने भी ऐसा ही किया है। इस कंपनी को जून 2006 में जमीन का पट्टा मिल गया था लेकिन अभी तक उसने कोई खनन गतिविधियां शुरू नहीं की हैं। पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के मुताबिक तकनीकी रूप से यह पट्टा अब तक रद्द हो जाना चाहिए था लेकिन जिंदल समूह अभी भी इस जमीन पर कब्जा जमाए हुए है क्योंकि कंपनी के पास राजतंत्र में गहरी पहुंच और ताकत है।

कई अन्य विवादास्पद मुद्दे भी हैं जिन पर स्थानीय लोग गहरे आक्रोश में हैं। ये लोग पानी, खेती और सवास्थ्य के संकट से पहले ही जूझ रहे हैं। गाँवों के अपने दौरों में हमें ऐसी कुछ चिंताओं को पास से देखने-समझने का मौका मिला। बच्चों के विषय में हमने इन संकटों को पास से देखा है और इस बात को जाना है कि खान कंपनियों द्वारा शोषण के लंबे इतिहास के चलते यहां लोगों में विरोध और हिंसा की इतनी गहरी मनोदशा क्यों पैदा हो गई है।

तमनार ब्लॉक में बच्चों की शिक्षा की स्थिति

जिन गाँवों का अध्ययन किया गया उनमें से तमनार ब्लॉक का गारे गाँव प्रमुख था। इस गाँव की कुल आबादी 741 है और यहां कुल 150 परिवार रहते हैं। गाँव में 400 लोगों की उम्र 18 साल से कम है। कुल अनुसूचित जनजाति आबादी 438 और अनुसूचित जाति आबादी 44 है। इस गाँव में दो प्राथमिक पाठशालाएं, एक मिडिल स्कूल और एक आंगनवाड़ी केंद्र है। टेबल 2.09 में गारे गाँव की प्राथमिक पाठशाला में जाने वाले बच्चों का ब्यौरा दिया गया है। यह स्कूल बुनियादी ढांचे और पढ़ाई-लिखाई के स्तर की दृष्टि से बहुत खस्ता हालत में है। स्कूल में दो अध्यापक हैं और दोनों को हाल ही में तैनात किया गया है। दोनों शिक्षकों के पास पर्याप्त योग्यता नहीं है। जिंदल ग्रुप ने भी एक स्कूल खोला था लेकिन यह गाँव से बहुत दूर है और यहां पढ़ाई इतनी मंहगी है कि स्थानीय लोग अपने बच्चों को इस स्कूल में नहीं भेज सकते। इस स्कूल में सिर्फ जिंदल समूह के कर्मचारियों के बच्चे ही पढ़ते हैं।

टेबल 2.09 : गारे गाँव के प्राथमिक स्कूल में दाखिलों का विवरण

कक्षा	कुल संख्या	लड़के	लड़कियां	अजा	अजजा	ओबीसी	सामान्य
I	11	9	2	2	6	2	1
II	9	6	3	3	6	--	--
III	12	6	6	--	7	4	1
IV	12	4	8	2	7	2	1
V	11	3	8	1	5	5	--
कुल	**55**	**28**	**27**	**8**	**31**	**13**	**3**

स्रोत : प्राथमिक स्कूल शिक्षक, गारे गाँव।

196. श्री राजेश त्रिपाठी

टेबल 2.10 : गारे गाँव में प्रारंभिक शिक्षा

जिला	ब्लॉक	गाँव	कुल दाखिले	अजा	अजजा	ओबीसी	अन्य
रायगढ़	तमनार	गारे	109	11	68	26	0
		मिलुपाड़ा	385	56	183	133	13
		खमाड़िया	81	14	35	29	0
		कोड़केल	127	11	89	27	0
		कोसमपल्ली	80	1	70	9	7
		सरसमाल	24	0	20	4	0

अन्य = दूसरे वर्ष उसी कक्षा में पढ़ने वाले बच्चे, सीडब्ल्यूएसएन एवं मुसलिम।

नोटः कुल योग में गड़बड़ियां दिखाई देती हैं लेकिन ये आंकड़े डीआईएसई रिपोर्ट कार्ड में इसी तरह दिए गए हैं।

स्रोत : डीआईएसई रिपोर्ट कार्ड, सितंबर 2008.

आंगनवाड़ी या गोदाम? खमड़िया गांव में एक सहायिका आंगनवाड़ी को संभाल रही है (फोटो - नवंबर 2009)

खमाड़िया गाँव में 18 साल से कम उम्र के 250-300 बच्चे हैं। यहां एक प्राइमरी स्कूल और एक मिडिल स्कूल है। हालांकि यहां एक आंगनवाड़ी भी है लेकिन लोगों ने बताया कि उसमें सिर्फ 10-15 बच्चे ही नियमित रूप से जाते हैं। इसका कारण यह है कि आंगनवाड़ी केंद्र बहुत जर्जर हालत में है। लोगों का कहना था कि केंद्र की छत कभी भी गिर सकती है इसलिए वहां बच्चों का बैठना बहुत खतरनाक है। जब हमारी टीम आंगनवाड़ी केंद्र पहुंची तो ऐसा लगता था कि उसका इस्तेमाल सीमेंट के बोरे और ईंटों के गोदाम के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा था। रजिस्टर में तो वहां 28 बच्चों और एक साल से कम उम्र के चार शिशुओं के नाम दर्ज थे लेकिन जिस दिन हम वहां गए उस दिन मौके पर केवल दो बच्चे मौजूद थे। आंगनवाड़ी कामगार के मुताबिक इस केंद्र में एक बच्चा श्रेणी-3 कुपोषण, 8 बच्चे श्रेणी-2 कुपोषण और 23 बच्चे श्रेणी-1 कुपोषण के शिकार हैं। केंद्र की सूची में 9 गर्भवती महिलाओं और 9 दूध पिलानेवाली मांओं के नाम भी दर्ज थे। लेकिन आंगनवाड़ी कामगार ने बताया कि पिछले दो महीने से इन महिलाओं को कोई पूरक पोषण नहीं दिया गया था। उसने यह भी बताया कि पिछले दो साल से उसे कोई मेडिकल किट भी नहीं मिली है।

रजिस्टर के मुताबिक खमाड़िया मिडिल स्कूल में तीन गाँवों के 52 बच्चे पढ़ते हैं। तीन गाँवों के लिहाज से यह संख्या काफी कम है। अकेले खमाड़िया में ही 18 साल से कम उम्र के 250-300 बच्चे हैं। इसका अर्थ है कि इन तीन गाँवों के ज्यादातर बच्चे स्कूल नहीं जाते। यहां तीन सरकारी शिक्षक हैं और दो अस्थायी शिक्षकों को जिंदल समूह से तनख्वाह मिलती है। कंपनी ने स्कूल ही चारदीवारी का निर्माण करवाया है। बीआरसी ने हमें बताया कि तमनार ब्लॉक में 162 प्राथमिक स्कूल, 56 मिडिल स्कूल और 11 हाई स्कूल हैं। इनमें कुल जमा 310 अध्यापक हैं जिनमें से 80 प्रतिशत शिक्षाकर्मी (अस्थायी शिक्षक) हैं और केवल 20 प्रतिशत स्थायी सरकारी शिक्षक हैं। टेबल 2.11 में तमनार ब्लॉक के प्राइमरी और मिडिल स्कूलों में बच्चों के दाखिलों का ब्यौरा दिया गया है।

टेबल 2.11 : तमनार ब्लॉक के प्राइमरी और मिडिल स्कूलों में बच्चों के दाखिलों का ब्यौरा

समूह-लिंग	अजा	अजजा	ओबीसी	सामान्य
आयु समूह 6-11 वर्ष (प्राथमिक स्कूल)				
लड़के	639	2,859	1,616	186
लड़कियां	532	2,851	1,518	161
कुल	1,171	5,710	3,134	347
आयु समूह 11-14 वर्ष (मिडिल स्कूल)				
लड़के	304	1322	990	81
लड़कियां	255	1400	910	83
कुल	**559**	**2,722**	**1,900**	**164**

स्रोत : बीआरसी, सर्व शिक्षा अभियान, तमनार ब्लॉक

शिक्षकों और बीआरसी के मुताबिक वहां ड्रॉपआउट की कोई समस्या नहीं थी लेकिन उन्होंने ये भी माना कि 120 बच्चे स्कूल नहीं आते क्योंकि वे शारीरिक रूप से विकलांग या नेत्रहीन हैं।

बाल मजदूरी

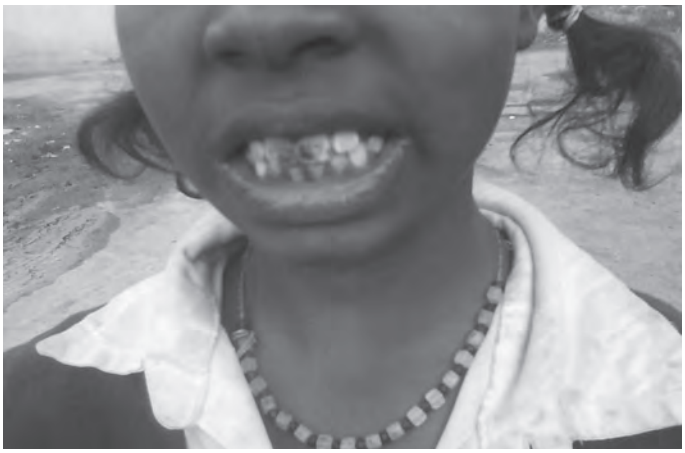

मुड़ागांव, तमनार ब्लॉक में फ्लोरोसिस से पीड़ित बच्ची
(फोटो - नवंबर 2009)

हालांकि बड़ी कंपनियों के कंपनी परिसर में भी बाल मजदूर काम कर रहे हैं लेकिन यहां बाल मजदूरी की परिभाषा ही विवादों के घेरे में आ जाती है। कंपनी के अधिकारियों ने हमें बताया गया कि 15 से 18 साल की उम्र के बहुत सारे किशोर-किशोरियां खनन व्यवसाय से संबंधित सहायक गतिविधियों में काम कर रहे हैं और ऐसा करना गैर-कानूनी नहीं है। गौरतलब है कि ये बच्चे स्थानीय ठेकेदारों के पास ढुलाई, सड़क निर्माण, ट्रकों में क्लीनर और अन्य प्रकार की दिहाड़ी मजदूरी करते हैं। स्थानीय समुदायों के बहुत कम लोगों को खान संबंधी कामों में मजदूरी मिली है। हमें बताया गया कि वहां हरियाणा, उत्तर प्रदेश, झारखंड और बिहार के प्रवासी मजदूरों की संख्या ज्यादा है। लोगों ने बताया कि क्योंकि प्रवासी मजदूरों से विरोध या मांगों की संभावना कम दिखाई देती है इसलिए ज्यादातर कंपनियां बाहर से मजदूर लाना पसंद करती हैं। इस बात से एक बार फिर यह स्पष्ट हो जाता है कि खनन एवं विद्युत परियोजनाओं के चलते विस्थापन के बाद स्थानीय जनता वैकल्पिक आजीविका के अपने साधनों से भी वंचित हो चुकी है।

खनन गतिविधियों के कारण बच्चों और स्थानीय समुदायों की स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं

हरेक गाँव के लोगों ने बताया कि बच्चे प्रदूषित पानी के कारण तरह-तरह की बीमारियों का शिकार बन रहे हैं। मिलुपाड़ा जैसे कुछ गाँव खान स्थलों से निकट हैं इसलिए इन गाँवों के लोगों को जल प्रदूषण के साथ-साथ वायु प्रदूषण का भी सामना करना पड़ता है। मलेरिया, दस्त, हाइड्रोसिल, न्यूमोनिया, त्वचा विकार, ब्रोंकाइटिस, आंत्रशोथ, पेट दर्द, जोड़ों में दर्द, पीलिया और श्वास रोग बच्चों की सबसे आम बीमारियां बताई गईं। पिछले 5 साल के दौरान हाइड्रोसील के रोगियों की संख्या में इजाफा हुआ है। गाँववालों का कहना है कि जल प्रदूषण से महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ रहा हैं। बहुत सारे बच्चे या तो कमजोर पैदा हो रहे हैं या जन्मजात

बंद पड़ा पीएचसी उपकेंद्र, खमाड़िया
(फोटो - नवंबर 2009)

विकलांगता के शिकार हैं। छत्तीसगढ़ में खान कंपनियों, खासतौर से जिंदल ग्रुप की गुंडागर्दी सर्वज्ञात है इसलिए लोग शासन पर इस बात के लिए भी दवाब नहीं डाल पाते कि वह खनन गतिविधियों के कारण पानी में बढ़ रहे प्रदूषण पर अंकुश लगाए।

लोगों ने हमें बताया कि 1998 में सत्यभामा नाम की एक आदिवासी महिला केलो नदी में बढ़ते जल प्रदूषण के खिलाफ भूख हड़ताल पर बैठ गई थी लेकिन शासन ने कंपनियों के भय से कोई कार्रवाई नहीं की और अंत में सत्यभामा ने भूख से दम तोड़ दिया। इस घटना को अब एक दशक से ज्यादा बीत चुका है लेकिन रायपुर एलॉयज तथा मोनेट इस्पात जैसी कंपनियों की चिमनियों से निकल रहा गाढ़ा धुंआ अभी भी लोगों को धूल-जनित ऐलर्जी और श्वास रोगों का शिकार बनाता जा रहा है। कोडकेल गाँव के लोगों ने बताया कि बेंद्रा नाला में विषैले कचरे की एक परत जम गई है जिसके कारण दस्त, पेट रोग और बुखार जैसी समस्याएं बहुत ज्यादा होने लगी हैं। स्थानीय लोगों ने बताया कि खानों में हुई दुर्घटनाओं और विस्फोटों के कारण मकानों को क्षति पहुंचने के भी बहुत सारे मामले सामने आ चुके हैं। महिलाओं ने बताया कि वहां यौन उत्पीड़न की भी कुछ घटनाएं हो चुकी हैं इसलिए वे अपनी किशोर लड़कियों की सुरक्षा को लेकर लगातार भयभीत रहती हैं।

कोडकेल पीएचसी से लाभ ले रहे बच्चों का ब्यौरा टेबल 2.12 में दिया गया है। यहां तैनात नर्स ने बताया कि रिकॉर्ड में केवल 5 प्रतिशत आईएमआर दर्ज किया जा रहा है लेकिन वास्तव में आईएमआर इससे काफी ज्यादा है।

टेबल 2.12 : कोडकेल लोक स्वास्थ्य केंद्र (पीएचसी) में आने वालों का आयुवार विवरण

आयु वर्ग	पुरुष	महिलाएं
0-5 वर्ष	181	182
6-14 वर्ष	149	172
14 वर्ष एवं अधिक	1082	1126
कुल	**1412**	**1480**

स्रोत : उप केंद्र, पीएचसी, कोडकेल।

पीएचसी में तैनात स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारियों ने माना कि अब पहले के मुकाबले बहुत ज्यादा लोग स्वास्थ्य केंद्र में आने लगे हैं। उनके मुताबिक, इसका कारण यह है कि खान उद्योग की गतिविधियों की वजह से स्वास्थ्य समस्याएं बहुत बढ़ गई हैं। महिलाओं ने बताया कि वह पीएचसी की बजाय घर में प्रसव को ज्यादा प्राथमिकता देती हैं क्योंकि सड़कों और परिवहन की हालत बहुत खराब है। अतीत में ऐसी कई घटनाएं हो चुकी हैं जब इन सड़कों पर तनावपूर्ण यात्रा के कारण पीएचसी जाते हुए ही महिलाओं के प्रसव हो गए थे। नर्स ने बताया कि यहां 5 में से 3 महिलाएं खून की कमी (एनीमिया) से ग्रस्त हैं। स्वास्थ्य कर्मचारियों ने बताया कि यहां फंगल संक्रमण और हिपेटाइटिस के मामले बढ़ते जा रहे हैं जो मुख्य रूप से दूषित पानी से फैलने वाला संक्रमण है।

मुड़ागांव में कुपोषित बच्चा
(फोटो - नवंबर 2009)

केलो नदी का स्याह पानी

लोगों से चर्चा करने पर पता चला कि केलो नदी के पानी में प्रदूषण यहां की सबसे गंभीर समस्या बन गया है। यह नदी इन लोगों के लिए पानी का एकमात्र स्रोत है। एक जमाने में रायगढ़ जिले को पूरे राज्य में 'चावल के कटोरे' का दर्जा हासिल था लेकिन बेहिसाब औद्योगीकरण और छत्तीसगढ़ में बहने वाली असंख्य नदियों का पाट निजी कंपनियों की तरफ मोड़ दिये जाने की वजह से यहां की उपजाऊ जमीन नष्ट हो चुकी है। केलो नदी छत्तीसगढ़ के एक विशाल भूभाग में सिंचाई और पीने के पानी का साधन रही है। लेकिन जिंदल ग्रुप और मोनेट इस्पात की खानों के कचरे ने इस नदी को पूरी तरह दूषित कर दिया है।

अध्ययन में लिये गए सभी गाँवों के लोगों ने एक स्वर से कहा कि केलो नदी के पानी को पीने के लिए ही नहीं बल्कि नहाने के लिए भी इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। पिछले तीन साल में लोगों ने इस नदी के पानी को कोयले के कचरे से स्याह होते हुए देखा है। लोगों की शिकायत थी कि इस जल प्रदूषण के कारण मवेशियों की सेहत पर भी बहुत बुरा असर पड़ा है। बिजली घरों के लिए कंपनियों द्वारा लगाए गए बोर वैलों के

गारेगांव में केलो नदी, एक पूरे इलाके के जीवन का स्रोत कोयले की धूल से प्रदूषित हो चुका है
(फोटो - नवंबर 2009)

जरिए भूमिगत जलराशि के समाप्त होते जाने के कारण पूरे ब्लॉक की खेती पर भी बहुत बुरा असर पड़ रहा है। खमाड़िया गाँव में लोगों ने तीन बोर वैल दिखाए जिनमें कोई पानी नहीं था क्योंकि कोयला खुदायी के कारण ज्यादातर भूमिगत जलधाराएं अस्त-व्यस्त हो चुकी हैं। गाँववालों को डर है कि अगर यहां आ रहे बदलावों की यही गति रही तो उनकी खेतिहर जमीन और खेती तबाह हो जाएगी। राज्य रिपोर्टों को देखकर पता चलता है कि यहां कुपोषण बहुत बड़े स्तर पर है। इसका मतलब है कि पानी और खेती के तबाह हो जाने से बच्चों पर बिलकुल सीधा असर पड़ेगा क्योंकि उनकी खाद्य सुरक्षा पहले ही खतरे में पड़ चुकी है। जिंदल ग्रुप तथा अन्य कंपनियों की ओर से इस इलाके में प्रस्तावित नई परियोजनाओं के खिलाफ बार-बार पनप रहे आंदोलनों में लोगों का यह गुस्सा साफ देखा जा सकता है।

निष्कर्ष

आदिवासियों के विकास और तरक्की के नाम पर गठित किया गया छत्तीसगढ़ राज्य खान कंपनियों द्वारा खनिज संसाधनों की बेतहाशा लूट का केंद्र बनकर रह गया है। कार्यकर्ताओं और समुदाय के मुखियाओं के साथ औद्योगिक हिंसा और उत्पीड़न की घटनाएं लगातार बढ़ती जा रही हैं लेकिन इसके बावजूद इन कंपनियों को अदालत में जवाबदेह ठहराना बहुत मुश्किल है। इन कंपनियों ने ऐसे कार्यकर्ताओं और समुदाय के मुखियाओं पर झूठे मुकदमे ठोंक दिए हैं जो इस विनाश पर सवाल खड़ा करने का साहस रखते हैं। ऐसे लोगों को लगातार परेशान किया जा रहा है। समुदायों की गरीबी, जल संसाधनों एवं हवा में प्रदूषण, खनिज दोहन के लिए उपजाऊ कृषि भूमि पर कब्जे किसी से छिपे नहीं हैं लेकिन इस तरह की गतिविधियों में वैधानिकता और अवैधानिकता की बारीक विभाजक रेखा, अपनी स्वास्थ्य समस्याओं को साबित करने के लिए समुदायों के पास सीमित कानूनी और तकनीकी ज्ञान के कारण कंपनियां साफ बच निकलती हैं और जमीन व जल संसाधनों को तबाह करती जा रही हैं। सरकार की ओर से मुहैया कराई जा रही दयनीय शैक्षिक सेवाओं के कारण बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य की भयानक स्थिति खान गतिविधियों से फैल रहे प्रदूषण और भुखमरी के कारण और गंभीर हो गई है। यह स्थिति एक ऐसी अर्थव्यवस्था का संकेत नहीं देती जो यहां के बच्चों को न्यायपूर्ण और स्वस्थ्य विकास का अवसर दे सकती हो। खनन उद्योग ने न केवल जमीन और आजीविका तहस-नहस कर दी है बल्कि संसाधनों और सेवाओं को भी बुरी तरह अस्त-व्यस्त कर डाला है और इस तरह छत्तीसगढ़ के खनन इलाकों में बच्चों से संबंधित सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों (एमडीजी) को हासिल करना एक सपना बनता जा रहा है। छत्तीसगढ़ का उदाहरण एक फिर यह साबित करता है कि जिन खनिज 'संपन्न' राज्यों में खनन उद्योग का लंबा इतिहास रहा है मानव विकास संकेतकों की दशा भी वहीं पर सबसे खराब है।

(***आभार:*** यह केस स्टडी रायगढ़ में सक्रिय जनचेतना पीपुल्स मूवमेंट के साथ मिलकर संपन्न की गई। यह संगठन छत्तीसगढ़ में खान कंपनियों और उद्योगों द्वारा मानव एवं पर्यावरण अधिकारों के हनन क खिलाफ सक्रिय है। फील्ड विजिट्स के आयोजन और प्राथमिक आंकड़ों के संकलन में श्री रमेश अग्रवाल और उनके साथियों से मिली सहायता व मार्गदर्शन के लिए हम उनके आभारी हैं।)

छत्तीसगढ़: जिंदल कोयला खान की ईआईए रिपोर्ट में खतरों की उपेक्षा

सुजीत कुमार, स्रोत: डाउन टू अर्थ
तारीख : 15 फरवरी, 2008

चालीस लाख टन वार्षिक कोयला उत्पादन वाली गारे 4/6 नामक खुली खान परियोजना असंख्य उद्योगों वाले रायगढ़ जिले के तमनार ब्लॉक में स्थित है। 5 जनवरी को हुई जनसुनवाई में लगभग 100 आदिवासी पुलिस लाठीचार्ज में घायल हुए। स्थानीय लोगों का आरोप है कि जब उन्होंने ईआईए रिपोर्ट पर प्रश्न उठाए और दलील दी कि तय समय के बाद जनसुनवाई आयोजित की गई है और इस बारे में पंचायतों को भी सूचीत नहीं किया गया है जबकि तमनार ब्लॉक पेसा अधिनियम, 1996 (पंचायत एक्सटेंशन टू दि शैड्यूल्ड एरियाज ऐक्ट, 1996) के अंतर्गत आता है तो जिंदल ग्रुप के समर्थक हिंसा पर उतर आए। लोग इस बात से काफी गुस्से में हैं कि लाठीचार्ज के बाद ज्यादातर लोगों के जा चुकने के बाद भी जनसुनवाई को जारी रखा गया। उसी दिन तमनार पुलिस थाने में एक एफआईआर दर्ज कराई गई जिसमें आरोप लगाया गया था कि कुछ अज्ञात लोगों ने जनसुनवाई स्थल पर उपलब्ध संपत्तियों को क्षति पहुंचाई है। दिलचस्प बात है कि यह शिकायत जनसुनवाई आयोजित करने वाले राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की ओर से दर्ज नहीं कराई गई थी बल्कि कंपनी ने दर्ज कराई थी। तभी से लोग सड़कों पर चक्का जाम और धरने दे रहे हैं। उनकी मांग है कि इस जनसुनवाई को रद्द किया जाए।

file:///D:/office/media%20reports/all%20mining%20astes/Chattisgarh/IA%20for%20Jindal%20coal%20mine%20in%20Chhattisgarh%20ignores%20threats%20%20%20News%20%20%20Down%20To%20Earth%20magazine.htm

एक बाल खनिक की परिकथा

शुक्रवार, 12 जून 2009, श्रेया रॉय चौधरी
टाइम्स न्यूज नेटवर्क

शुक्रवार 12 जून यानी विश्व बाल श्रम विरोधी दिवस पर यह बच्चा जिनेवा में अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन की सभा को संबोधित करेगा। मनन नाम का यह लड़का बाल मजदूर से बाल कार्यकर्ता तक कई जिम्मेदारियां निभा चुका है और 8 बाल मजदूरों को शोषण से मुक्त करा चुका है। इतनी कम उम्र के बच्चे के लिए यह एक अद्‌भुत यात्रा है।

माइका खानों में काम करना निश्चय ही खराब है लेकिन मनन के मुताबिक उसके गाँव समसाहिरिया के निवासी इस काम को नहीं छोड़ सकते। परिवारों के बड़े आकार को देखते हुए इन लोगों के लिए एक-एक रुपया मायने रखता है। खुद मनन के परिवार में भी 10 लोग हैं। इतने लोगों का पेट पालने के लिए बच्चों को भी चार पैसे जुटाने के लिए काम पर झोंक दिया जाता है। मनन का कहना है कि "हमारे गाँव के आधे से ज्यादा बच्चे अपन मां-बाप के साथ माइका खुदाई में लगे हुए हैं। सबसे कम उम्र मजदूरों की उम्र तो मात्र 6-7 साल है।"

http://www.ummid.com/news/June/12.09.2009/fairy_tale_ride_for_child_miner.htm

मिट्टी की खदानों में मौत

पश्चिम बंगाल में अवैध खनन कार्यों की कीमत चुकाते बच्चे
सलाहुद्दीन सैफी, स्रोत : डाउन टू अर्थ
तारीख : 14 मार्च 2009

पश्चिम बंगाल स्थित बर्दवान जिले के सालनपुर गाँव में लगभग 20 खानें हैं जिनमें से ज्यादातर गैर-कानूनी हैं। इस जिले में कोयला, फायर क्ले और लौह अयस्क के विशाल भंडार हैं। इन्हीं खानों में से एक फायर क्ले माइन में 8 फरवरी को गाँव के 4-5 साल के दो बच्चों की जान चली गई।

झारखंड

व्यापक स्थिति

बिहार को बांट कर सन् 2000 में झारखंड का एक नए राज्य के रूप में गठन किया गया था। 2001 की जनगणना के मुताबिक इस राज्य की आबादी 26,909,428 है। पिछले कुछ सालों के दौरान झारखंड की आर्थिक विकास दर काफी तेज रही है। 2004-05 में झारखंड की विकास दर 33. 83 प्रतिशत के अकल्पनीय स्तर पर थी।[197] यह राज्य खनिज संसाधनों के मामले में बेहद संपन्न है। पूरे देश में लौह अयस्क, तांबा अयस्क और माइका के सबसे बड़े भंडार यहीं पर हैं। देश का 29 प्रतिशत कोयला भी झारखंड की जमीन में ही है। जमशेदपुर, रांची और बोकारो स्टील सिटी आदि भारत के कुछ बेहद उन्नत औद्योगिक शहर भी यहीं हैं। झारखंड में टाटा आयरन ऐण्ड स्टील कंपनी जैसी कई विशाल कंपनियां हैं। इस तेज औद्योगीकरण के बावजूद यहां की लगभग 75 प्रतिशत आबादी अभी भी खेती पर आश्रित है। चावल, गेहूं, आलू और दलहन यहां की मुख्य फसलें हैं।

तमाम आर्थिक वृद्धि के बावजूद झारखंड मानव विकास के मोर्चे पर अभी भी भारी चुनौतियों से जूझ रहा है। 40 प्रतिशत से ज्यादा आबादी अभी भी गरीबी की रेखा से नीचे है जोकि राष्ट्रीय औसत 27.5 प्रतिशत से बहुत अधिक है। राज्य के शहरी और ग्रामीण इलाकों में भी भारी असामनताएं हैं। शहरों की 20.2 प्रतिशत आबादी गरीबी की रेखा से नीचे है जबकि गाँवों में ऐसे लोगों की संख्या 46.3 प्रतिशत है। कुल मिलाकर स्थिति यह है कि झारखंड के प्रत्येक 5 में से 2 लोग हर रोज अपनी न्यूनतम जरूरतों को भी पूरा नहीं कर पा रहे हैं। सामाजिक-आर्थिक विकास की बाकी कसौटियों पर भी भारी गरीबी का साया बना हुआ है।[198]

राज्य में अनुसूचित जनजाति आबादी 26.3 प्रतिशत है। औसत वयस्क साक्षरता 53.56 प्रतिशत है और यह नीचे से बिहार के बाद दूसरे स्थान पर आती है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आबादी में साक्षरता दर और भी खराब है। अनुसूचित जातियों के केवल 37.56 प्रतिशत लोग ही साक्षर हैं। ग्रामीण इलाकों की अनुसूचित जाति महिलाओं में तो साक्षरता केवल 17.3 प्रतिशत है। अनुसूचित जनजातियों के मामले में भी स्थिति ज्यादा बेहतर नहीं है। झारखंड में अनुसूचित जनजाति आबादी में केवल 40.67 प्रतिशत साक्षर लोग हैं जबकि ग्रामीण इलाकों की अनुसूचित जनजाति महिलाओं की साक्षरता तो मात्र 24.38 प्रतिशत ही है।[199]

झारखंड विकास रिपोर्ट, 2009 में बताया गया है कि राज्य की कुल आबादी में मुख्य श्रमिकों का प्रतिशत अखिल भारतीय औसत से भी काफी कम है। दरअसल इस अध्ययन में लिए गए बाकी दूसरे राज्यों के मुकाबले पूर्ण रोजगार वाले लोगों का प्रतिशत झारखंड में ही सबसे कम दिखायी देता है। यह इस बात का संकेत हो सकता है कि राज्य में लोगों के लिए नियमित एवं स्थिर रोजगार अवसरों का अभाव बना हुआ है।

बच्चों की दशा

जब यहां सामान्य मानव विकास संकेतकों की स्थिति ही इतनी खराब है तो बच्चों की स्थिति के बारे में तो सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। राज्य में बच्चों की कुल संख्या 10,708,694 (14 वर्ष से कम) है। 19 साल से कम उम्र के बच्चों की संख्या 13,208,344 है।[200] 2001 की जनगणना के मुताबिक राज्य भर में 407,200 बाल मजदूर (14 वर्ष से कम उम्र) हैं। हालांकि पूरे राज्य में खतरनाक व्यवसायों में काम कर रहे बच्चों की संख्या के बारे में सटीक आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं लेकिन यह संख्या निश्चय ही काफी बड़ी होगी। एनसीएलपी परियोजना राज्य के नौ जिलों में चालू है

197. केंद्रीय सांख्यिकी संस्थान, इंडिकस, झारखंड विकास रिपोर्ट, 2009 में उद्धृत
198. इंडिकस, झारखंड विकास रिपोर्ट, 2009
199. साक्षरता के सभी आंकड़े भारत की जनगणना, 2001 से लिए गए हैं।
200. भारत की जनगणना, 2001

और मई 2007 तक सरकारी आंकड़ों के मुताबिक कुल 12,464 बाल मजदूरों का पुनर्वास किया जा चुका था।[201] सितंबर 2009 में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अंतर्राष्ट्रीय बाल श्रम उन्मूलन कार्यक्रम के तहत भारत के 5 राज्यों में बाल मजदूरी को खत्म करने के लिए एक परियोजना शुरू की गई थी। इन राज्यों में झारखंड को भी शामिल किया गया था। इस परियोजना के तहत इन राज्यों से बच्चों की खरीद-फरोख्त और पलायन को भी रोकने का प्रयास किया जा रहा है।

अधिकृत सूचनाओं के अनुसार मार्च 2008 में झारखंड के 143,143 बच्चे (6-14 वर्ष) स्कूल से बाहर थे।[202] प्रथम की एएसईआर रिपोर्ट, 2008 सर्वेक्षण में इस बात की तरफ संकेत किया गया है कि झारखंड के लगभग 5.6 प्रतिशत बच्चे स्कूली शिक्षा से वंचित हैं।[203] इसका मतलब यह है कि उपरोक्त आयु समूह के लगभग 416,587 बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं। एएसईआर आंकड़ों से यह भी पता चलता है कि 3-4 वर्ष के लगभग एक तिहाई बच्चे (यानी 30.1 प्रतिशत) किसी आंगनवाड़ी केंद्र या स्कूल पूर्व संस्था में दाखिल नहीं है। 2001 की जनगणना के मुताबिक गाँव में रहने वाली 71 प्रतिशत लड़कियों का 18 साल से कम उम्र में ही विवाह कर दिया जाता है।

झारखंड में बाल स्वास्थ्य की स्थिति पर फौरन ध्यान देने की जरूरत है। झारखंड में लिंग अनुपात गिरता जा रहा है। अब यहां प्रत्येक 1,000 लड़कों पर केवल 941 लड़कियां रह गई हैं। इससे पता चलता है कि यहां बेटों की चाह और बालिका भ्रूण हत्या बहुत बड़े पैमाने पर है। 2005-06 में किए गए एनएफएचएस-3 सर्वेक्षण में पता चला कि झारखंड में शिशु मृत्यु दर (आईएमआर) प्रति 1,000 जीवित प्रसवों पर 69 है। यह बड़े चिंता की बात है कि 1998 में एनएफएचएस-2 सर्वेक्षण के समय यह संख्या 1,000 जीवित प्रसवों पर केवल 54 थी।[204] ग्रामीण इलाकों में प्रत्येक 1,000 बच्चों में से 73 बच्चे एक साल से पहले ही मौत के मुंह में चले जाते हैं।

झारखंड में खनन उद्योग

2007-08 में झारखंड कोयले और क्यानाइट का सबसे बड़ा उत्पादक था और सोने के उत्पादन में दूसरे स्थान पर था। चट्टानी फॉस्फेट के 35 प्रतिशत, कोयले के 29 प्रतिशत, तांबा अयस्क के 16 प्रतिशत और चांदी अयस्क के 10 प्रतिशत भंडार झारखंड में ही हैं। 2007-08 में झारखंड में खनिज उत्पादन का मूल्य 95.28 अरब रुपये था जोकि पिछले साल के मुकाबले 11.5 प्रतिशत अधिक था। मूल्य की दृष्टि से राज्य के खनिज उत्पादन का

सीसीएल माइन्स में जलता कोयला, हजारी बाग (फोटो - सितंबर 2009)

90 प्रतिशत से ज्यादा हिस्सा कोयले से आता है। 2007-08 में देश के कुल खनिज उत्पादन मूल्य का 8.6 प्रतिशत झारखंड के हिस्से में रहा था।

यूरेनियम के खनन और प्रसंस्करण का जिम्मा यूरेनियम कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (यूसीआईएल) के पास है। यूसीआईएल 4 भूमिगत खानों, एक खुली खान, दो प्रसंस्करण संयंत्रों और एक सहउत्पाद रिकवरी संयंत्र के जरिए देश के आणविक बिजली घरों के लिए यूरेनियम का उत्पादन करता है। ये सारी खानें और संयंत्र झारखंड के पूर्वी सिंहभूम जिले में स्थित हैं।[205] यह जिला जमशेदपुर शहर के लिए भी मशहूर है जो भारत की पहली स्टील सिटी थी और जहां टाटा स्टील का कारखाना है।

झारखंड का खनन उद्योग बहुत सारे विवादों का स्रोत रहा है। हालांकि यहां खनिज संसाधनों के बेहद समृद्ध भंडार हैं लेकिन यहां की आबादी, खासतौर से अनुसूचित जनजाति आबादी इस विपुल संपदा के लाभों से वंचित रही है। पश्चिमी सिंहभूम जिले में लौह अयस्क और मैंगनीज़ के बहुत बड़े भंडार हैं। लेकिन इससे भी यहां के लोगों की जीवन परिस्थितियों में सुधार नहीं आया है। तकरीबन आधी आबादी गरीबी की रेखा से नीचे है और पूरे जिले में केवल 26.6 प्रतिशत परिवारों के पास अपना शौचालय है। 12-35 महीने के केवल 13.9 प्रतिशत बच्चों का पूरा टीकाकरण हो पाता है और जिले की साक्षरता दर केवल 46.45 प्रतिशत पर अटकी हुई है।

झारखंड के क्षेत्रफल का 29 प्रतिशत भूभाग जंगलों का है।[206] राज्य के ज्यादातर खनिज संसाधन इन्हीं जंगलों में हैं। इन जंगलों में रहने वाली और अपनी आ. जीविका व जीवन के लिए जंगलों पर आश्रित ज्यादातर आदिवासी आबादी राज्य सरकार के तेज औद्योगीकरण अभियान के चलते अपनी जमीन और जंगलों से

201. indiastat.com से ली गई सूचना, राज्य सभा अतारांकित प्रश्न संख्या 3759, दिनांक 09.05.2007, एवं लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 994, दिनांक 20.08.2007 एवं लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 2415, दिनांक 03.12.2007, राष्ट्रीय बाल श्रमिक परियोजना (एनसीएलपी), के अंतर्गत शिक्षा से जोड़े गए बच्चों की राज्यवार संख्या
202. लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 576, दिनांक 21.10.2008, स्कूल न जाने वाले बच्चों की चुनिंदा राज्यवार संख्या, 31 मार्च 2008 को।
203. प्रथम, एसईआर 2008 सर्वे.
204. एनएफएचएस-3, फैक्टशीट झारखंड, 2005-06.
205. खान मंत्रालय वार्षिक रिपोर्ट, 2008-09.
206. झारखंड सरकार की वेबसाइट, http://jharkhand.nic.in/about.htm

विस्थापित होती जा रही है।[207] अनुमानों से पता चलता है कि कोयला खनन के कारण विस्थापित होने वाली आबादी में से 55 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति आबादी रही है और उनमें से केवल 25 प्रतिशत को पुनर्वास दिया गया है। पानोस (पीएएनओएस) की एक रिपोर्ट में झारखंड के हजारीबाग जिले के आदिवासियों पर कोयला खनन के प्रभावों का अध्ययन किया गया है। कोयला खनन गतिविधियों के कारण विस्थापित लोगों के बयानों से पता चलता है कि आदिवासी समुदायों और जल, वन एवं भूमि संसाधनों के संबंध टूट जाने से लोगों पर किस तरह की तबाही बरपा हुई है। अभी तक ये लोग अपनी आजीविका तथा रोजमर्रा जरूरत के बहुत सारे उत्पादों के लिए इन्हीं जंगलों पर आश्रित थे।[208]

जनगणना रिपोर्ट के मुताबिक 2001 में पूरे राज्य की खानों और खुदायी स्थलों में काम कर रहे लोगों की संख्या 317,197 थी।[209] इनमें से 2862 बच्चे थे जिनकी उम्र 14 साल से भी कम थी और 13,146 बच्चे 19 साल से कम उम्र के थे। 2005 में राज्य के औपचारिक खनन क्षेत्र में 130,800 लोग नौकरी कर रहे थे जोकि 2002 के 149,100 के मुकाबले कम है।[210]

आजीविका अवसरों के अभाव में बहुत सारे लोग अवैध कोयला खनन में सक्रिय हैं। झारखंड के खान एवं भूगर्भ विज्ञान विभाग द्वारा जारी की गई एक रिपोर्ट में अनुमान व्यक्त किया गया है कि राज्य के 45,000 लोग अवैध खनन में लिप्त हैं। इससे सरकार तथा कोयला खनन कंपनियों को सलाना एक अरब रुपये से ज्यादा का नुकसान हो रहा है।[211] इस तरह का खनन अवैध खनिकों के लिए बहुत खतरनाक और अस्वास्थ्यकर होता है। बताया जाता है कि इस तरह की कठोर और असुरक्षित कार्य पद्धतियों से इन खनिकों का जीवन औसतन 7 साल घट जाता है।[212]

राज्य के विपुल खनिज संसाधनों की वजह से देश के कुछ बेहद औद्योगिक शहर - जमशेदपुर, रांची, बोकारो और धनबाद आदि - झारखंड में ही पड़ते हैं। औद्योगिक क्षेत्र में राज्य की उपलब्धियों का संक्षप्ति ब्यौरा इस प्रकार हैः अपने समय में झारखंड देश में सबसे बड़ा उरर्वक उत्पादक राज्य था और सिंदरी में बड़े पैमाने पर उरर्वकों का उत्पादन हो रहा था। झारखंड में ही जमशेदपुर में देश का पहला लोहा एवं इस्पात कारखाना लगाया गया था। एशिया का सबसे बड़ा इस्पात संयंत्र - बोकारो स्टील प्लांट - यहीं पर है। झारखंड स्थित गोमिया में सबसे बड़ा विस्फोटक कारखाना है और देश का पहला मीथेन गैस कुंआ भी यहीं है। इस राज्य में लौह अयस्क (1) (कोष्ठकों में दिए गए अंक राज्यों की सूची में झारखंड के स्थान को दर्शाते हैं), कोयला (3), तांबा अयस्क (1), माइका (1), बॉक्साइट (3), मैंगनीज़, चूना पत्थर, चाइना क्ले, फायर क्ले, ग्रेफाइट (8), क्यानाइट (1), क्रोमाइट (2), ऐस्बेस्टॉस (1), थोरियम (3), सिलिमेनाइट, यूरेनियम (जादूगोड़ा माइन्स, नरवा पहाड़) (1), सोना (राखा माइन्स) (6), चांदी और कई दूसरे खनिज पदार्थ बड़ी मात्रा में पाए जाते हैं। कोयला और लौह अयस्क के विशाल भंडारों की वजह से ही जमशेदपुर, बोकारो और रांची जैसे शहरों में इतना घना औद्योगीकरण हुआ है।[213]

जिला धनबाद में स्थित झरिया कोयला खदानें अपनी आग के लिए दशकों से बदनाम है। यहां पिछले कई दशक से जमीन के भीतर-भीतर आग दहक रही है। कोल इंडिया लिमिटेड की सहायक सरकारी कंपनी भारत कुकिंग कोल लिमिटेड (बीसीसीएल) का अनुमान है कि उसके उत्पादन क्षेत्र में कुल 67 जगह आग दहक रही है।[214] यह आग तकरीबन 100 साल पहले तभी से फैली हुई है जब इस जिले में कोयले का औद्योगिक खनन शुरू हुआ था। यह भूमिगत अग्निकुंड लाखों लोगों और मकानों के लिए स्थायी खतरा बना हुआ है। इस आग से निकलती भीषण गर्मी के कारण मकान धंसने की कई घटनाएं हो चुकी हैं। एक गाँव के नीचे की जमीन पहले ही धंस चुकी है। इस धंसान में कई घर समा गए थे और एक पूरा परिवार मौत के मुंह में चला गया था। कोयला खनन के लिए इस्तेमाल की जा रही यह जमीन पहले जंगलों और खेती की जमीन थी और यहां के लोग किसान थे। अब उनको कोयला खनिक बना दिया गया है और असंख्य बच्चे व बड़े खतरनाक परिस्थितियों में दिन-रात इन खानों में काम कर रहे हैं। झरिया के आसपास स्थित गाँवों के लोगों ने बताया कि यहां वायु प्रदूषण के कारण उनको गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं, खासतौर से फेफड़ों की बीमारियों और स्वास्थ्य संबंधी रोगों का सामना करना पड़ रहा है। हालांकि बीसीसीएल ने अपने कर्मचारियों और उनके परिवारों के लिए निशुल्क स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रावधान किया हुआ है लेकिन शेष आबादी की फिक्र करने वाला कोई नहीं है। बीसीसीएल ने स्थानीय लोगों को कहीं ओर जाकर बसने की सलाह तो दी है लेकिन प्रति परिवार 2000 रुपये का जो मुआवजा कंपनी दे रही है वह एक नया मकान जुटाने के लिए कतई पर्याप्त नहीं है।[215]

पूर्वी सिंहभूम जिले में स्थित जादूगोड़ा एक भूमिगत यूरेनियम खान है जहां 1967 में काम शुरू हुआ था। यहां खान मजदूर जमीन की सतह से 1600-2000 फुट नीचे काम करते हैं। ये मुख्य रूप से आदिवासी हैं। उनको कोई सुरक्षात्मक पोशाक नहीं दी जाती है।[216] ये मजदूर इस अयस्क को खुले ट्रकों में भरकर जादूगोड़ा कारखाने तक ले जाते हैं। हर रोज लगभग 200 ट्रक यूरेनियम अयस्क लादे शहर से गुजरते हैं और उनमें से ज्यादातर ढके हुए भी नहीं होते

207. सेंटर फॉर साइंस ऐण्ड एनवायर्नमेंट, स्टेट ऑफ इंडियाज एनवायर्नमेंट : माइनिंग 2008, पृष्ठ 164.
208. पानोस, 'ब्लैक ग्रीन : दि इम्पैक्ट ऑफ माइनिंग ऑन दि मासेज़', 2002.
209. भारत की जनगणना, 2001
210. indiastat.com से लिए गए आंकड़े; श्रम एवं रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा उपलब्ध।
211. इंडोएशियन न्यूज़ सर्विस, झारखंड लूज़ेज़ ओवर रुपीज़ 1 बिलियन टू इलिगल माइनिंग, 18 जून 2008.
212. उपरोक्त।
213. http://jharkhandonline.in/profile/economy/
214. अनरिपोर्टेड वर्ल्ड, इंडिया : चिल्ड्रेन ऑफ दि इन्फर्नो, 2009 शृंखला, एपीसोड 7
215. उपरोक्त।
216. सेंटर फॉर साइंस ऐण्ड एनवायर्नमेंट, स्टेट ऑफ इंडियाज एनवायर्नमेंट : माइनिंग, रिच लैंड्स, पुअर पीपुल, 2008, पृष्ठ 183.

हैं।[217] हालांकि सरकार का कहना है कि स्थानीय आबादी को विकिरण का कोई खतरा नहीं है और न ही यूरेनियम खनन से लोगों के स्वास्थ्य को कोई खतरा पैदा होने वाला है लेकिन स्थानीय लोगों की आपबीती कुछ और है। बहुत सारे अध्ययनों में स्थानीय समुदाय के भीतर भारी स्वास्थ्य समस्याओं का उल्लेख किया जा चुका है। इनमें समय से पहले गर्भ गिर जाने, और शारीरिक व मानसिक रूप से विकलांग बच्चे पैदा होने जैसी भारी समस्याएं भी दर्ज की जा चुकी हैं। इंडियन डॉक्टर्स फॉर पीस ऐण्ड डेवलेपमेंट द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण से पता चला है कि यूरेनियम खनन इलाके के आसपास रहने वाली मांओं के शिशुओं में जन्मजात विकार बहुत ज्यादा बढ़ गए हैं।[218]

एक एनजीओ ने बताया है कि गिरिडीह और कोडरमा के माइका खनन इलाकों में बहुत सारे बच्चे खानों में काम कर रहे हैं। अनुमान लगाया जाता है कि इन दो जिलों में माइका धोने के काम में 18,000 बच्चे सक्रिय हैं और इनमें से ज्यादातर अनुसूचित जनजातियों के हैं।[219] संथाल आदिवासी दशकों से इन जंगलों में रहते आ रहे हैं। 1980 में जब से इस इलाके में माइका खनन कार्य शुरू हुए हैं तभी से बहुत सारे स्थानीय लोगों के परंपरागत आजीविका साधन नष्ट हो चुके हैं और अब वे जिंदा रहने के लिए माइका का कचरा इकट्ठा करते हैं। ज्यादातर मजदूर महिलाएं और बच्चे हैं। लोगों ने बताया कि दुर्घटनाएं काफी आम हैं और अस्थमा व टीबी जैसे व्यावसायिक बीमारियां बच्चे और वयस्क, सभी मजदूरों में पाई जाने लगी हैं।[220]

रहती। मजदूरी इस आधार पर मिलती है कि एक ट्रक भरने के लिए कितना कोयला मौजूद है। औसतन हमें महीने में 10-12 दिन ही काम मिल पाता है। मैं हर महीने लगभग 800-1000 रुपये कमा लेती हूं लेकिन यह पैसा पूरे परिवार का पेट पालने के लिए काफी नहीं पड़ता।"

स्रोत : पोतांगा गाँव, हजारीबाग में लिया गया साक्षात्कार, सितंबर 2009.

झारखंड की आदिवासी आबादी मौटे तौर पर खनिज बाहुल्य के अभिशाप से पीड़ित है। सेंट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड (सीसीएल) झारखंड की एक

ये लड़के साइकिलों पर कोयला लाद कर 3-4 दिन तक चलते हुए बड़े शहरों में कोयला बेचने जाते हैं, हजारीबाग (फोटो - सितंबर 2009)

जिला हजारीबाग : मुख्य तथ्य	
कुल आबादी :	2,277,475 (जनगणना 2001)
आबादी (0-14 वर्ष) :	937,835 (जनगणना 2001)
साक्षरता दर :	कुल 57.74 प्रतिशत पुरुष 71.81 प्रतिशत महिला 42.87 प्रतिशत (जनगणना 2001)
स्कूल न जाने वाले बच्चे (6-14 वर्ष) :	1.5 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
आंगनवाड़ी या स्कूल-पूर्व संस्थाओं में दाखिल बच्चे (3-4 वर्ष) :	91.4 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
बाल मजदूरों की संख्या (5-14 वर्ष) :	26,004 (जनगणना 2001)
5 साल से कम आयु में मृत्यु दर (रैंकिंग) :	सर्वेक्षण में लिए गए 593 जिलों में से 193वां स्थान (जनसंख्या स्थिरता कोष)

हजारीबाग : काले सोने की संतानें

"मेरा नाम हेलेना (बदला हुआ नाम) है और मैं 17 साल की हूं। मैं यहीं के पोतांगा गाँव में रहती हूं। मैं पिछले 5-6 साल से कोयला डम्पिंग साइट पर काम कर रही हूं। यहां हमारी मजदूरी तय नहीं

सार्वजनिक क्षेत्र कोयला खनन कंपनी है। यहां प्रस्तुत की गई केस स्टडी कोयला खनन इलाके में रहने वाले बच्चों से संबंधित है। यह न केवल बाल मजदूरों के रूप में उनके जीवन से संबंधित है या अपनी जमीन और वन-कृषि आधारित अर्थव्यवस्था से उजाड़कर कोयले पर केंद्रित अर्थव्यवस्था में धकेल दिए गए समुदायों के रूप में उनके जीवन से संबंधित है बल्कि

217. उपरोक्त, पृष्ठ 184.
218. इन्फोचेंज, मौसमी बाशु, जादूगौड़ा : नो ऐक्सपेंशन अनटिल प्रॉमिसेज़ आर मेट, मई 2009.
219. ऑल्टरनेटिव फॉर इंडिया डेवलेपमेंट, झारखंड, ट्राइबल चिल्ड्रेन ट्रेप्ड इन माइका माइन्स, http://www.aidjharkhand.org/giridih.html, 22 नवंबर 2009 को अपलोड किया गया।
220. उपरोक्त।

यह केस स्टडी बच्चों के इस जीवन की एक झलक भी दिखाती है जो देश के दूसरे भागों के कोयला खनन क्षेत्रों में रहने वाले बच्चों से ज्यादा अलग नहीं है। यह केस स्टडी देश की सबसे बड़ी कोयला खनन पट्टी वाले हजारीबाग की कुछ खास खानों की यात्राओं पर आधारित है। खनन उद्योग को अक्सर आर्थिक तरक्की और स्थानीय आबादी के विकास के साधन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्रस्तुत केस स्टडी के जरिए इस बात का विश्लेषण किया गया है कि कोयला खनन इलाकों में रहने और काम करने वाले बच्चों की स्थिति के नजरिये से ये मान्यताएं किस हद तक सच हैं।

यह केस स्टडी हजारीबाग जिले के उरीमरी परियोजना क्षेत्र, बड़कागाँव ब्लॉक के जरीमरी क्षेत्र में स्थित सीसीएल के कुछ खान स्थलों पर की गई है। इन फील्ड विजिट्स के दौरान समुदाय के मुखियाओं, महिलाओं के समूहों, खान मजदूरों, युवाओं, स्कूल शिक्षकों, तथा एएनएम, आंगनवाड़ी शिक्षक, सरपंच आदि सामुदायिक सेवा प्रदाताओं से बात की गई। इनके अलावा कंपनी के अधिकारियों, जिला प्रशासन के अधिकारियों, वन, राजस्व एवं श्रम विभाग के अधिकारियों से भी बात की गई ताकि भोजन, साफ पेय जल, सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा और स्वास्थ्य तक बच्चों की पहुंच की दृष्टि से इन परियोजनाओं के प्रभावों को हर कोण से समझा जा सके।

कोयला खनन परियोजना का इतिहास

सीसीएल को लघुरत्न समूह की कंपनियों में रखा गया है। हजारीबाग में सीसीएल की कोयला परियोजनाएं दक्षिण उरीमरी परियोजना और उत्तरी उरीमरी परियोजना में विभाजित हैं। 1986 में सीसीएल का पुनर्गठन किया गया और दो अलग-अलग कंपनियां बनाई गई थीं। एक को नॉर्दन कोलफील्ड्स लिमिटेड (एनसीएल) और दूसरी को महानदी कोलफील्ड्स लिमिटेड (एमसीएल) का नाम दिया गया। फिलहाल सीसीएल के पास 11 इलाके, 65 खान (26 भूमिगत और 39 खुली खान), 7 वॉशरी (4 मझोली कोकिंग कोल और 3 गैर-कोकिंग कोल) हैं जो रांची, हजारीबाग, गिरिडह, बोकारो, चतरा और पलामू जिलों के 2600 वर्ग किलोमीटर इलाके में फैली हुई हैं। कंपनी के पास कुल 33.562 अरब टन कोयला भंडार हैं (मझोला कोकिंग कोल 14.023 अरब टन और गैर-कोकिंग कोल 19.539 अरब टन)। 2006-07 के दौरान सीसीएल ने 4.135 करोड़ टन कोयले का उत्पादन किया जो उसका अभी तक का सर्वाधिक उत्पादन है।

सीसीएल की उरीमरी परियोजना उसकी एक विशाल खुली खान परियोजना है। इसकी स्थापना 1973 में की गई थी और इसकी अधिकतम उत्पादन क्षमता प्रति वर्ष 13 लाख टन है। 1973 के बाद से यह जरजरा ग्राम पंचायत में स्थित है जो कि दक्षिणी उरीमरी परियोजना है। यह परियोजना 14 आदिवासी गाँवों में फैली हुई है। इस परियोजना के तहत आने वाले मुख्य क्षेत्र पोतांगा, जरजरा और उरीमरी हैं जिनके हिस्से में 60-70 वार्ड आते हैं। हजारीबाग के बड़कागाँव ब्लॉक में कम से कम 84 राजस्व गाँव हैं।

खनन गतिविधियां और बच्चों पर उनके असर

स्थानीय लोग, सीसीएल के अधिकारी और स्वराज फाउंडेशन नामक एनजीओ के प्रतिनिधि, सभी इस बात पर सहमत हैं कि कोयला खनन का क्षेत्रफल फैल रहा है और नई-नई जमीनें कोयला खनन के दायरे में आती जा रही हैं। जो इलाका कभी उपजाऊ खेतों के लिए जाना जाता था अब वह कोयले के भीमकाय गड्ढों में तब्दील हो गया है जहां कोयले की खुदायी के अलावा अब आजीविका के और कोई साधन नहीं बचे हैं। क्योंकि ये खुली कोयला खानें हैं इसलिए ईस्टर्न घाट्स के घने जंगलों में एक जमाने की खेतिहर जमीनों के विशाल भूभाग पर लगातार कोयले की खुदाई से गंभीर पर्यावरणीय परिवर्तन आए हैं और स्थानीय आबादी, खासतौर से बच्चों के स्वास्थ्य पर गहरे असर पड़े हैं।

कोयला उत्खनन को सबसे अधिक प्रदूषक खनन गतिविधियों में गिना जाता है। वायुमंडलीय परिवर्तन के विषय में भी इसके गंभीर परिणाम होते हैं। इसके बावजूद, आने वाले दशक में कोयला खनन विस्तार का भारत सरकार का एजेंडा बच्चों के लिए भारी खतरों का सबब बनता जा रहा है। भारत का 70 प्रतिशत बिजली उत्पादन अभी भी कोयले पर आधारित है इसलिए अधिकाधिक कोयला उत्पादन का सीधा अर्थ यह होगा कि मध्य भारत, तमिलनाडु जैसे दक्षिणी राज्यों और मेघालय आदि उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों में रहने वाले असंख्य बच्चों, खासतौर से आदिवासी और दलित बच्चों को गंभीर दीर्घकालिक प्रभावों का सामना करना पड़ेगा। इतना ही नहीं, ज्यादातर कोयला छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल के संथाल इलाके और आंध्र प्रदेश जैसे सबसे पिछड़े राज्यों और इलाकों में स्थित है।

हजारीबाग कोयला खानों में बाल मजदूरी

उरीमरी परियोजना के बहुत थोड़े से कर्मचारी स्थानीय आदिवासी गाँवों से हैं। स्थानीय लोगों में ज्यादातर दिहाड़ी मजदूर हैं। ऐसे बहुत सारे खान मजदूर आसपास के गाँवों के बच्चे और युवा हैं जिनको उनकी जमीनों से विस्थापित कर दिया गया है। ये लोग ट्रकों की लोडिंग और अनलोडिंग का काम करते हैं। यहां 70-80 ट्रक चलते हैं जो रोज 300-350 भरे हुए फेरे लगा लेते हैं। हर ट्रक में कोयला भरने के लिए 15-18 मजदूरों की जरूरत होती है। इन ट्रकों को भरने के लिए आस-पास के गाँवों के परिवार या प्रवासी परिवार मिलकर कार्य करते हैं। देखने में आया कि लगभग प्रत्येक टोली में 4 से 5 मजदूर 18 साल से कम उम्र के थे और ज्यादातर की उम्र बामुश्किल 20 साल थी। इन किशोर मजदूरों में से ज्यादातर आदिवासी लड़कियां और युवा मांएं थीं जो अपने शिशुओं को भी खान स्थल पर अपने साथ लाती हैं। इन मजदूरों के साथ साक्षात्कारों से पता चला कि ज्यादातर मजदूर पढ़ाई छोड़ चुके हैं और ऐसा व्यक्ति ढूंढ़ना मुश्किल था जो कक्षा 12 तक पढ़ चुका हो/चुकी हो।

लड़कों के नाम स्कूल में तो दर्ज हैं लेकिन वे हर वक्त बाहर रहते हैं, हजारीबाग (फोटो - सितंबर 2009)

मजदूरों ने बताया कि कंपनी स्थानीय लोगों को रोज 10 ट्रक देती है ताकि इन लोगों की आजीविका चलती रहे। इसके लिए उन्हें प्रति ट्रक 12 टन कोयला भरने पर 1200-1300 रुपये मिलते हैं। यह पैसा समूह के सभी लोगों में बंट जाता है। औसतन ये मजदूर प्रति ट्रक 18-20 टन कोयला भर देते हैं क्योंकि उन्हें प्रति टन 100 रुपये अतिरिक्त मजदूरी मिल जाती है। उनकी आमदनी पूरी तरह कोयले की उपलब्धता पर आश्रित है जो कि अस्थिर रहती है। इसीलिए कई बार मजदूरों को पूरे दिन में एक पैसे की भी कमाई नहीं हो पाती।

जब पूछा गया तो सीसीएल के अधिकारियों ने बताया कि उनके खान स्थल पर कोई बाल मजदूर नहीं है। लेकिन वे यह कहने से भी नहीं चूके कि बाल मजदूरी तो पूरे देश में फैली हुई है फिर उन पर ही इल्जाम क्यों लगाया जा रहा है।

"हमारे खान स्थलों पर कोई बाल मजदूर नहीं है और हमने इस पर पाबंदी लगाई हुई है। बाल मजदूरी का मसला नया नहीं है और यह सिर्फ खनन उद्योग का मसला नहीं है। बाल मजदूरी में इजाफे के लिए खान उद्योग को जिम्मेदार नहीं माना जा सकता; खनन तथा बाल मजदूरी के बीच कोई संबंध नहीं है।"

- महाप्रबंधक तथा योजना एवं क्रियान्वयन सुपरिन्टेडेंट (एसओपी), सीसीएल का बयान।

बहस करने पर अधिकारियों ने माना कि कुछ बच्चे अपने मां-बाप के साथ खान स्थलों पर आ जाते हैं और संभव है वे गरीबी के कारण कुछ कामों में वयस्कों का हाथ बंटाते हों। लेकिन जब हमने इलाके की खानों का दौरा किया तो पता चला कि खान मजदूरों में बच्चों की संख्या काफी बड़ी थी और अधिकारी उन्हें देखकर दूसरी तरफ मुड़ जाते थे - मानो वे बच्चों को परिवार की रोजी-रोटी में योगदान का मौका देकर खान मजदूरों के परिवारों पर एहसान कर रहे हों।

तकरीबन हर परिवार की महिलाएं और बच्चे सहायक आमदनी के लिए खान स्थलों के आसपास से कच्चा घटिया श्रेणी का कोयला इकट्ठा करते हैं। वे घर ले जाकर कोयले को जलाते हैं। इस कोयले को 20-30 रुपये प्रति बोरे की मामूली दर पर छोटे-मोटे व्यापारी आकर उनके घर से ही खरीदकर ले जाते हैं। ये व्यापारी इस कोयले को शहर में ले जाकर घरों और होटलों में 100 प्रति बोरा की दर पर बेच देते हैं। लिहाजा, हमने पाया कि महिलाएं और बच्चे लगातार काम तो कर रहे हैं लेकिन उनको आमदनी बहुत कम हो रही है। घर में कोयला जलाने के कारण लगातार धुंए के बीच रहने से इन महिलाओं और बच्चों को सांस की भारी समस्याएं घेरने लगी हैं।

विस्थापन और पुनर्वास

उरीमरी में 95 प्रतिशत आदिवासी आबादी वाले 14 गांव सीसीएल के कारण विस्थापित हुए हैं। गांव वालों ने बताया कि आर्थिक मुआवजे के अलावा उन्हें कंपनी से और कोई लाभ नहीं मिला है। खानों में काम करने वाली लड़कियों ने कहा कि वे कोयला खानों के फैलाव से परेशान हैं लेकिन अब उनके गांव खानों के इर्द-गिर्द टापुओं जैसे बनकर रह गए हैं और खनन कंपनियां उनके गांवों की जमीनों को इस तरह नष्ट कर चुकी हैं कि अब उन लोगों के पास जमीन के अधिग्रहण पर सहमति देने के अलावा और कोई चारा नहीं रह गया है।

हजारीबाग के उरी मरी परियोजना क्षेत्र में खनन प्रभावित समुदाय के बच्चों के लिए कोयला ही खिलौना है (फोटो - सितंबर 2009)

कंपनी या सरकार की तरफ से यहां सार्वजनिक यातायात की सुविधा तक उपलब्ध नहीं कराई गई है। कंपनी की तरफ से एक स्कूल खोला गया था लेकिन वह ठप पड़ा है। बिजली की सुविधा भी दी गई थी लेकिन वह भी पूरी तरह बेभरोसा है। चिकित्सा सुविधाएं मुख्य रूप से कंपनी के कर्मचारियों को ही मुहैया हैं। स्थानीय समुदाय या ठेका मजदूरों को इन सुविधाओं से वंचित रखा गया है।

बरखंडवा गांव के मुखिया से हुई चर्चा इस बात को स्पष्ट कर देती है कि कंपनी ने गांव के मुखियाओं को खनन परियोजनाओं पर मंजूरी देने और लोगों के विरोध को दबाने के लिए किस तरह खरीद लिया है। यह गांव विस्थापित होने वाला है। गांव का मुखिया पहले ही कंपनी को इस बात पर अपनी रजामंदी दे चुका है कि गांव का किसी दूसरे स्थान पर पुनर्वास कर दिया जाए। उनके बीच इस बात पर भी सहमति बन चुकी है कि प्रभावित परिवारों को थोड़ा-बहुत मुआवजा देकर उन्हें हटाया जा सकता है। गांव का मुखिया कोयला खनन के नकारात्मक प्रभावों का जिक्र करने से लगातार कतरा रहा था।

आंगनवाड़ी केंद्रों और बच्चों की सेहत का हाल

अध्ययन के दौरान हमने आंगनवाड़ी और प्राथमिक पाठशालाओं जैसी बाल सुरक्षा व शिक्षा संस्थाओं की स्थिति के बारे में भी पड़ताल की। सारे गांवों में आंगनवाड़ी केंद्र नहीं हैं। कुछ स्थानों पर तो हमें यह भी बताया गया कि वहां केवल लघु आंगनवाड़ियां हैं जिसका मतलब लगभग यह है कि वहां कोई आंगनवाड़ी नहीं है। मिसाल के तौर पर, बरखंडवा गांव में आंगनवाड़ी नहीं है इसलिए उसे पोतांगा गांव की आंगनवाड़ी के तहत रखा गया है। वहां तैनात आंगनवाड़ी कामगार ने बताया कि उसके रजिस्टर में 125 बच्चों के नाम दर्ज हैं लेकिन आंगनवाड़ी की क्षमता केवल 40 बच्चों की है। स्वाभाविक है कि केवल पोतांगा गांव के बच्चे ही इस आंगनवाड़ी का लाभ ले पाते हैं क्योंकि शिशु और छोटे बच्चे मुख्य केंद्र तक नहीं आ सकते। हालांकि रिकॉर्ड्स में दिखाया गया है कि वहां केवल 5 बच्चे ही कुपोषित हैं लेकिन आंगनवाड़ी कामगार ने स्वीकार किया कि वह जिन बच्चों को देखने जाती है उनमें से ज्यादातर कुपोषित हैं। आंगनवाड़ी के लिए बुनियादी ढांचे की कोई सुविधा नहीं है इसलिए यह महिला अपने घर से ही केंद्र चला रही है। आंगनवाड़ी में नियमित रूप से केवल 20-25 बच्चे ही आते हैं क्योंकि ज्यादातर बच्चे मां-बाप के साथ खान स्थल पर चले जाते हैं।

आंगनवाड़ी कामगार ने बताया कि त्वचा रोग, मलेरिया और टीबी इन बच्चों की मुख्य स्वास्थ्य समस्याएं हैं लेकिन उनके इलाज के लिए कोई चिकित्सा सुविधा नहीं है। इसी कारण स्थानीय वैद्यों पर लोगों की निर्भरता काफी ज्यादा है। अब इन लोगों का ज्ञान भी बाहरी प्रभावों के कारण नष्ट होता जा रहा है। लोगों ने बताया कि इन चिकित्सा पद्धतियों पर अब उनका पहले जैसा विश्वास नहीं है।

जब जरजरा में एएनएम से बात की गई तो उसने अनुसंधान टीम को अपने पास उपलब्ध स्वास्थ्य रिकॉर्ड्स दिखाए। यह महिला 18,350 की आबादी पर नजर रखती है और इस आबादी में कुल 23 आंगनवाड़ियां हैं। इस महिला के पास मौजूद रिकॉर्ड्स के मुताबिक टीबी के कम से कम 20 प्रतिशत मामले खनन गतिविधियों में काम करने वाले लोगों के बीच से आते हैं और इससे बच्चों पर भी निश्चित रूप से असर पड़ता है। सिर्फ वयस्क ही नहीं बच्चे भी कुपोषित हैं। उसने बताया कि 500-700 बच्चे भारी कुपोषण के शिकार हैं। उसने बताया कि 3-6 साल की उम्र के बच्चों में 1000 से ज्यादा बच्चे कुपोषित हैं। आस-पास में कोई पीएचसी नहीं है। आंगनवाड़ी कामगार का कहना था कि एएनएम तथा स्वास्थ्य कर्मचारी बच्चों के स्वास्थ्य की जांच के लिए नियमित रूप से आंगनवाड़ी नहीं आते। खानों में काम करने वाले ट्रकों की वजह से सड़कों की हालत खस्ता है और इस इलाके तक सार्वजनिक यातायात सुविधाओं का अभाव इन गांवों में स्वास्थ्य कर्मचारियों के न आने का एक जायज बहाना बन गया है।

स्थानीय समुदाय को सीसीएल अस्पतालों से नहीं जोड़ा गया है। इसके चलते ये लोग कस्बे में बैठने वाले निजी डॉक्टरों पर आश्रित रहते हैं। कठोर भौगोलिक स्थिति और यातायात सुविधाओं के अभाव की वजह से बहुत कम महिलाएं संस्थागत प्रसव के लिए पीएचसी में जा पाती हैं। आंगनवाड़ी कामगार ने भी इस बात पर चिंता जताई कि ज्यादातर महिलाएं कुपोषित हैं और फलस्वरूप प्रसव में समस्या, शिशु मृत्यु की आशंका, जन्म के समय बच्चे के कम भार, प्रसव के बाद बीमारी और बच्चे के पहले साल के दौरान बार-बार बीमार पड़ने जैसी आशंकाएं काफी ज्यादा रहती हैं। सड़कों की हालत इतनी खराब है और ट्रकों की लगातार आवाजाही के कारण सड़कों पर इतने बड़े-बड़े गड्ढे हो गए हैं कि गर्भवती महिलाओं के लिए इन सड़कों से सफर करना बेहद खतरनाक हो गया है।

पोतांगा में आंगनवाड़ी कामगार के साथ चर्चा से पता चला कि यहां बच्चों के स्वास्थ्य की स्थिति कितनी गंभीर है। केंद्र (जिसके पास अभी भी कोई बुनियादी ढांचा नहीं है और उसकी सारी गतिविधियां एक पेड़ के नीचे चलती हैं) में जिन 40 बच्चों के नाम दर्ज हैं उनमें से 5 पूरी तरह कुपोषित (श्रेणी-4), 15 बच्चे श्रेणी-2 और श्रेणी-3 कुपोषण के शिकार हैं। चालू वर्ष के दौरान दर्ज किए गए 7 प्रसवों में से केवल 2 प्रसव संस्थागत रहे हैं।

बच्चों को साथ लिए कोयला बीनती विस्थापित महिलाएं। उनके लिए यही आजीविका का एकमात्र स्रोत बचा है, हजारीबाग।

बरखंडवा गांव में हाल ही में टीबी के 3-5 मामले सामने आए हैं। लोगों का कहना है कि यह समस्या सीसीएल की खनन गतिविधियों से पैदा हुई है। गांव की महिलाओं ने कहा कि खनन कार्य शुरू होने के बाद शराबखोरी एक गंभीर समस्या बन गई है। उन्होंने बताया कि घर की 80 प्रतिशत आय पुरुषों की शराबखोरी पर खर्च हो रही है। इसके कारण उन्हें ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है इसलिए वे बच्चों की देखभाल के लिए समय और ताकत नहीं जुटा पातीं। उन्होंने यह भी बताया कि क्योंकि पुरुष अपनी ज्यादातर आय घर पर नहीं देते इसलिए वे खाद्य पदार्थों के मूल्य में इजाफे का सामना नहीं कर पाते और अपने बच्चों को मूलभूत आहार भी नहीं दे पाते।

सीसीएल अधिकारी इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं थे कि खान मजदूरों में टीबी या सिलिकोसिस के मामले सामने आ रहे हैं। उन्होंने कहा कि पक्के या दिहाड़ी, किसी भी तरह के मजदूरों में ये बीमारियां नहीं पाई गई हैं और कंपनी इनकी रोकथाम के लिए लगातार एहतियात बरत रही है। उन्होंने बताया कि सारी बीमारियां लोगों की शराबखोरी के कारण पैदा हुई हैं।

पानीः औरतों व बच्चों के सामने मंडराता संकट

महिलाओं ने भूमिगत जल स्तर गिरते जाने को गंभीर समस्या बताया। वे पीने और घरेलू कामों के लिए पानी की उपलब्धता समाप्त होते जाने से बेहद परेशान हैं। स्थानीय जलधाराएं बेहद दूषित हो चुकी हैं। उन्होंने कहा कि वे पीने, नहाने या यहां तक कि पशुओं के लिए भी इस पानी का इस्तेमाल नहीं कर सकते। उन्हें पानी लाने के लिए दूर-दूर जाना पड़ता है। पहले ऐसा नहीं था। कुछ विस्थापित गांवों में पीने के पानी की आपूर्ति पूरी तरह कंपनी पर निर्भर है। पानी के ट्रक आमतौर पर आधी रात के समय आते हैं और महिलाओं को रात में पानी भरने के लिए जाना पड़ता है। इसके लिए भी उन्हें ट्रक का घंटों इंतजार करना पड़ता है। यह सप्लाई भी बेभरोसा है। कई बार ट्रक नहीं आता तो महिलाओं को खाली बरतन लेकर लौटना पड़ता है। इस तरह, चाहे महिलाएं प्रत्यक्ष रूप से खानों में काम रही हों या खनन उद्योग के कारण पैदा हुई नई घरेलू जिम्मेदारियों को पूरा करने में लगी हों - वे 24/7 काम में जुटी रहती हैं।

तनवा और चतरा के बीच पीपरवार में जहां सीसीएल पोतांगा गांव में सक्रिय है वहां लड़कियों को पानी भरने के लिए आधी रात को डेढ़-दो किलोमीटर तक चलकर जाना पड़ता है। यहां भी वही हालात हैं जो ऊपर बताए गए हैं। लोगों को सिर्फ सीमित और यदा-कदा पानी मुहैया कराया जाता है क्योंकि यही इनके पास पानी का एकमात्र स्रोत है। बाकी जल राशियां इतनी दूषित हो चुकी हैं कि उनका इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। लोग पानी के लिए एक-दूसरे से लड़ते हैं। पंचायत के मुखिया भी पानी की समस्याओं पर औरतों के दुख और शिकायतों को अनसुना कर देते हैं क्योंकि वे कंपनी के लोगों से मिले हुए हैं।

पानी के अभाव और पानी में गंदगी से बच्चों के लिए बहुत अस्वच्छ वातावरण पैदा हो गया है। वे न तो रोज नहा सकते हैं और न ही साफ-सुथरे कपड़े पहन सकते हैं। इसकी वजह से इस इलाके के बच्चों में त्वचा रोगों और दस्त की समस्या काफी पायी गई है। कुपोषण का एक कारण ये भी हो सकता है कि गंदगी की वजह से बच्चों के पेट में कीड़े हों।

इस बच्चे के लिए कोई आंगनवाड़ी नहीं है - खान ही उसका खेल का मैदान है
(फोटो - सितंबर 2009)

कोयला खानों से उड़ने वाली धूल पूरे इलाके पर फैली हुई है। मकानों, लोगों, जल राशियों और भोजन व पानी, सब पर धूल छायी रहती है। शायद यही वजह है कि महिलाओं ने बच्चों में बार-बार खांसी, जुकाम और बुखार तथा श्वास रोगों के बारे में बताया। उनका कहना था कि बच्चों में ये सारी समस्याएं और वयस्कों में टीबी की समस्या काफी बढ़ गई है।

शिक्षा

बरखंडवा गांव में स्थित प्राथमिक पाठशाला का दौरा करने पर पता चला कि वहां सिर्फ एक उपशिक्षक है जो नियमित रूप से स्कूल आता है। या तो वहां स्थायी शिक्षकों की नियुक्ति नहीं की गई है या उन्हें सरकार ने गैर-अध्यापकीय काम सौंप दिये हैं जिसके कारण वे प्रायः स्कूल में पढ़ाते दिखाई नहीं देते। मिसाल के तौर पर, उन्हें मिड-डे मील योजना के संचालन, मतदाता सर्वेक्षण और अन्य सरकारी कामों में लगा दिया जाता है जिससे वे अपने मुख्य काम पर ध्यान नहीं दे पाते। इस स्कूल में कक्षा 1 से 5 तक पढ़ाई होती है और रजिस्टर के मुताबिक स्कूल में 130 बच्चे हैं। लेकिन अध्यापक ने बताया कि वहां सिर्फ 30-40 बच्चे ही नियमित रूप से स्कूल आते हैं। क्योंकि वहां इस शिक्षाकर्मी के अलावा और कोई अध्यापक उपलब्ध नहीं है इसलिए अलग-अलग कक्षाओं के लिए कोई बुनियादी ढांचा भी नहीं है। सारी कक्षाओं के बच्चे साथ बैठते हैं और उन्हें एक साथ पढ़ाया जाता है। यह भी एक कारण है जिसकी वजह से बच्चे पढ़ाई में कम दिलचस्पी दिखाते हैं और नियमित रूप से स्कूल नहीं आते। घर में गरीबी की वजह से उनके सामने मजदूरी की भी संभावना खुली रहती है। इसलिए स्कूल में ड्रॉप-आउट दर काफी ज्यादा है।

मुख्य कस्बे जरजरा में शोध टीम को स्कूल हैडमास्टर से मिलने में सफलता हासिल हुई। यहां हमने बच्चों की शिक्षा के बारे में उनसे चर्चा की। उनका मानना था कि मिड-डे मील योजना के कारण अध्यापकों का ध्यान गैर-अध्यापकीय गतिविधियों में बंट गया है जिसके कारण ड्रॉप-आउट दर बढ़ती जा रही है। हालांकि शुरू में वह स्कूल के रजिस्टर दिखाने में हिचकिचा रहे थे और इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं थे कि कोई ड्रॉप-आउट में इजाफा या हाजिरी में गिरावट का मामला रहा है क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं इसके लिए उन्हीं को जिम्मेदार न ठहरा दिया जाए लेकिन बाद में उन्होंने स्वीकार किया कि खनन गतिविधियों से बच्चों की शिक्षा पर बहुत गंभीर असर पड़ा है। उन्होंने कहा कि इस व्यवसाय के कारण लोगों की जमीनें छिन गई हैं जिससे वे गरीबी की गर्त में पहुंच गए हैं इसलिए अब पहले से बहुत ज्यादा बच्चों को खानों में दिहाड़ी मजदूरी करनी पड़ रही है।

जरजरा हाई स्कूल में 3 गांवों - उरीमरी, पोतांगा और जरजरा - के बच्चे आते हैं। इस तरह 15-20 किलोमीटर के दायरे में यह स्कूल लगभग 50-60

वार्डों को कवर करता है। रजिस्टर के मुताबिक कक्षा 1 से 10 तक स्कूल में कुल 345 बच्चे हैं। लेकिन डीआईएसई रिपोर्ट में केवल 306 दाखिले दिखाए गए हैं। हैडमास्टर का कहना था कि पर्याप्त संख्या में शिक्षक न होने और तरह-तरह के सरकारी कामों की वजह से सरकारी स्कूल स्तरीय शिक्षा उपलब्ध कराने में विफल होता जा रहा है।

उनका कहना था कि खान कंपनियां अपनी छवि चमकाने के लिए निजी स्कूलों को तो अनुदान देती हैं लेकिन सरकारी स्कूलों को कभी कोई सहायता नहीं देतीं। उन्होंने यह भी कहा कि कक्षा 8 से ड्रॉपआउट दर बहुत ज्यादा बढ़ जाती है क्योंकि किशोर-किशोरियां अपने परिवारों की आय में हाथ बंटाने के लिए कोयले की लदाई व परिवहन में मजदूरी करने लगते हैं। हैडमास्टर साहब का कहना था कि तकनीकी रूप से वे ड्रॉपआउट की समस्या नहीं मानते क्योंकि ऐसे विद्यार्थी भी हफ्ते में कुछ दिन स्कूल आते हैं और कुछ दिन खानों में मजदूरी करते हैं। साल के अंत में उनमें से ज्यादातर परीक्षा में भी शामिल होते हैं ताकि रजिस्टर में से उनका नाम न काट दिया जाए। लेकिन पढ़ाई-लिखाई पर बहुत कम ध्यान देने की वजह से उनमें से मुट्ठी भर ही बच्चे इम्तिहान पास कर पाते हैं।

हालांकि यहां बहुत सारे बाल मजदूर हैं लेकिन पूरे इलाके में एक भी एनसीएलपी स्कूल नहीं है। इसका कारण शायद यह है कि इस इलाके में बाल-मजदूरी की उपस्थिति को अभी भी अधिकृत रूप से स्वीकार नहीं किया जा रहा है।

पोतांगा गांव की महिलाओं ने बताया कि उनके बच्चे, खासतौर से किशोर आयु के बच्चे नियमित रूप से स्कूल नहीं जाते बल्कि खनन समुदायों में भटकने वाले आवारा तत्वों की प्रभाव में आते जा रहे हैं। मांओं को शिकायत थी कि उनके बच्चे तंबाकू, नशीली दवाओं, शराब आदि की लत के शिकार होते जा रहे हैं; वे जुआ, वीडियो गेम्स और मोबाइल फोनों पर तो अपना पैसा उड़ाते हैं लेकिन घर की जरूरतों के लिए पैसा नहीं देते। फलस्वरूप, महिलाओं को और ज्यादा कठोर परिश्रम करना पड़ता है और वे खानों की अस्थिर आमदनी पर निर्भर रहती हैं। पोतांगा गांव में स्थित हाई स्कूल के हैडमास्टर को इस बात से शिकायत थी कि खनन गतिविधियां बच्चों के लिए अच्छी नहीं हैं और इससे उन्हें जो फटाफट पैसा मिल जाता है वह उन्हें गलत दिशा में भटका देता है और वे स्कूल से गायब रहने लगते हैं। टेबल 2.13 में बड़कागांव ब्लॉक में दाखिलों का ब्यौरा दिया गया है।

निष्कर्ष

अनुमान लगाया जाता है कि प्रस्तावित खान विस्तार से 2025 तक कम से कम दस लाख और लोग विस्थापित हो जाएंगे। यह अनुमान केंद्रीय खान नियोजन एवं रूपरेखा संस्थान (सीएमपीडीआई) द्वारा किए गए एक अध्ययन में व्यक्त किया गया है। खानों के लिए विशाल भूभागों की आवश्यकता के कारण लोगों को बड़े पैमाने पर विस्थापित किया जाएगा। अध्ययन में अनुमान व्यक्त किया गया है कि कोयला खानों का क्षेत्रफल मौजूदा 1,470 वर्ग किलोमीटर से फैलकर 2025 में 2,925 वर्ग किलोमीटर तक पहुंच जाएगा। यह बात सीएमपीडीआई के महाप्रबंधक बी.दयाल खुद कह चुके हैं। हमारा अध्ययन उरीमरी परियोजना के अंतर्गत पड़ने वाले सिर्फ कुछ गांवों की झलक दिखाता है लेकिन यह छोटी सी झलक भी कोयला पट्टी में रह रहे बच्चों की जीवन की कठोर हकीकत को निर्मम ढंग से सामने ला देती है। यहां भी खनन गतिविधियां एक ऐसी सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी के अंतर्गत चल रही हैं जो लघुरत्न का सम्मान हासिल कर चुकी है। इसके बावजूद यहां भी बच्चों के जीवन की गुणवत्ता और उनकी विकास संबंधी आवश्यकताओं पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

एक तरफ तो आंगनवाड़ियों, प्राथमिक स्कूलों और स्वास्थ्य केंद्रों के जरिए मिल रही सरकारी सेवाएं बच्चों की जरूरतों को पूरा करने में नकामयाब हो चुकी हैं और दूसरी तरफ खनन गतिविधियों ने बच्चों के कुपोषण, विस्थ. पन, गरीबी, बाल-मजदूरी व बीमारियों के जरिए स्थिति को और नाजुक बना दिया है। हमने जिन राज्यों का दौरा किया वहां प्रत्येक खनन क्षेत्र में हालात बहुत कठोर थे। हमने जिन खान स्थलों का दौरा किया उन सभी में बच्चे कुपोषण से जूझ रहे थे। इन क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा का अभाव एक बड़ी चिंता है क्योंकि खान मजदूरी अनिश्चित रहती है, उसमें कभी अच्छी मजदूरी मिलती है कभी कुछ भी नहीं मिलता। सबसे बड़ी समस्या यह है कि खान मजदूर का कामकाजी जीवन बहुत छोटा होता है और उसे बाकी पूरी जिंदगी विभिन्न व्यावसायिक बीमारियों से जूझते हुए बितानी पड़ती है।

झारखंड जैसे जिन क्षेत्रों में आदिवासी समुदाय हमेशा आजीविका स्तरीय अर्थव्यवस्था के तहत जीवनयापन करते रहे हैं और उनके पास नाना प्रकार की फसलों और वन उपजों के रूप में खाद्य सुरक्षा उपलब्ध रही है वहां एक

टेबल 2.13 : बड़कागांव ब्लॉक, हजारीबाग में दाखिलों का ब्यौरा

ब्लॉक	गांव	कुल दाखिले	अजा	अजजा	ओबीसी	अन्य
बड़कागांव	बरखंडवा	आंकड़े उपलब्ध नहीं	-	-	-	-
	जरजरा	306	7	270	29	46
	पोतांगा	362	35	302	25	0
	बड़कागांव	3,936	618	169	3,043	848

अन्य = उसी कक्षा में दोबारा पढ़ रहे बच्चे, सीडब्ल्यूएसएन एवं मुसलिम।

नोट : कुल योग में जो गड़बड़ी है वह डीआईएसई रिपोर्ट कार्ड में इसी प्रकार दी गई है।

स्रोतः डीआईएसई रिपोर्ट कार्ड, सितंबर 2008

खनन अर्थव्यवस्था के प्रसार से जीडीपी के आंकड़ों को भले ही लाभ हुआ हो, आदिवासियों और उनके बच्चों के वास्तविक आर्थिक जीवन को कोई लाभ नहीं पहुंचा है। जब तक खान मंत्रालय मौजूदा खानों में अपनी सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों को सही ढंग से चलाने के लिए सख्त कदम नहीं उठाएगा तब तक यह उद्योग सही अर्थों में सामाजिक रूप से टिकाऊ विकास का सूत्रपात नहीं कर पाएगा। इस नियम-पालन में बच्चों की बुनियादी जरूरतों की जिम्मेदारी को सबसे पहले शामिल किया जाना चाहिए।

यह सर्वविदित है कि समुदायों या परिवारों के लिए खनन उद्योग टिकाऊ व्यवसाय नहीं है लेकिन जब सरकारी नीतियां ही देश की ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इन संसाधनों के दोहन पर केंद्रित हों तो यह बात राज्य की जिम्मेदारियों में सबसे पीछे चली जाती है कि स्थानीय लोगों की जिंदगियों पर पड़ रहे नकारात्मक प्रभावों और तबाही को रोकने के लिए कदम उठाए जाएं। हमारा मानना है इन कष्टों पर बहस करने की बजाय बच्चों को सबसे पहली प्राथमिकता में रखा जाना चाहिए। सरकार को अनुसूचित क्षेत्रों की सुरक्षा के लिए संविधान में जोड़े गए कानूनों का सम्मान करना चाहिए। सरकार को चाहिए कि वह पांचवीं अनुसूची संबंधी कानूनों - 73वें संविधान संशोधन/पंचायती राज (अनुसूचित क्षेत्र विस्तार) अधिनियम, संयुक्त राष्ट्र देशी जन अधिकार घोषण पत्र या पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम, 1986 आदि - का सम्मान करे। सरकार इन कानूनों और समझोतों का हर मोर्चे पर हनन कर रही है। हमारे आदिवासी इलाकों में प्रत्येक खान परियोजना इस उल्लंघन की मिसाल है।

(***आभार :*** यह केस स्टडी स्वराज फाउंडेशन, हजारीबाग के साथ साझीदारी में संपन्न की गई। स्वराज फाउंडेशन इस इलाके में आदिवासी और विस्था. पित समुदायों के अधिकारों के लिए काम कर रहा है। हम डेटा संग्रह और साक्षात्कारों के लिए फील्ड विजिट्स के आयोजन में श्री अरुण आनंद और उनके सहकर्मियों द्वारा दी गई सहायता के लिए उनके आभारी हैं।)

यूरेनियम कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड : आदिवासी जमीनों में तबाही

मौशमी बासु, कॉर्पवॉच के लिए

हीरा हंसदा का कहना है कि "तीन बार मेरा समय से पहले गर्भपात हुआ और पांच बच्चे पैदा होने के बाद सप्ताह भर के भीतर मर गए।" एक सामान्य खान मजदूर की पत्नी हंसदा का कहना है, "शादी के बीस साल बाद आज भी हमारे पास कोई बच्चा नहीं है।" अब हंसदा की उम्र 45 को पार कर चुकी है और वह जादूगोड़ा में मिट्टी की अपनी झोंपड़ी के बाहर बैठी है। यह कस्बा भारत की सबसे पुरानी यूरेनियम खानों में से एक है।

इस खान का संचालन यूरेनियम कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (यूसीआईएल) के पास है। यह खान इस कंपनी की चार भूमिगत, एक खुली खान और दो प्रसंस्करण संयंत्रों के समूह का हिस्सा है। ये सारे स्थान पूर्वी सिंहभूम जिले में पड़ते हैं। इनमें से सबसे गहरी खान लगभग एक किलोमीटर गहरी है।

दुनिया भर में विकिरण और स्वास्थ्य विशेषज्ञों का आरोप है कि खनन एवं प्रसंस्करण कार्यों से यहां जो विषैले पदार्थ और रेडियोधर्मिता फैल रही है उससे बांझपन में भारी इजाफा हुआ है, जन्मजात विकार बेहिसाब बढ़ गए हैं और कैंसर एक सामान्य बीमारी बन गया है। इंटरनैशनल फिजीशियंस फॉर प्रिवेंशन ऑफ न्यूक्लियर वॉर (आईपीपीएनडब्ल्यू) की भारतीय शाखा द्वारा 2008 में किए गए सर्वेक्षण में पाया गया था कि "प्राथमिक बांझपन की समस्या यूरेनियम खनन क्षेत्रों के आस-पास रहने वाले लोगों में ज्यादा आम पाई गई है।"

जादूगोड़ा निवासी कादेराम टुडु और उनकी पत्नी मुनिया ये देख कर खुशी से फूले न समाते थे कि उनका बेटा जीता-जागता पैदा हुआ था। लेकिन उनकी यह खुशी बहुत देर नहीं रह पाई। "अचानक मैंने देखा कि मेरे बेटे का दाहिना कान नहीं है। उसकी जगह सिर्फ मांस की गांठ जैसी लटकी हुई थी।" अब उनका बेटा श्याम टुडु 8 साल का हो चुका है और सुनने से लगभग लाचार है।

बाहरी तौर पर स्वस्थ्य दिखाई दे रहे बच्चे भी अक्सर इन समस्याओं से आजाद नहीं हैं। पार्वती मांझी ने बताया कि "हमारे गांव के युवा सामाजिक बहिष्कार का शिकार बन गए हैं।" अब कोई उनको अपना बेटा/बेटी नहीं देता। अब अधेड़ उम्र में पहुंच चुकी पार्वती और उनके पति धुआ मांझी जो पहले यूसीआईएल के लिए काम करते थे, की कोई संतान नहीं है। "और हमारी बहुत सारी लड़कियों को उनके पति छोड़ चुके हैं क्योंकि वे बच्चे पैदा नहीं कर पाईं," पार्वती सूनी आवाज में बताती हैं।

http://www.global-sisterhood-network.org/content/view/2360/59/

कॉस्मेटिक उद्योग में बाल मजदूरी

दि संडे टाइम्स, 19 जुलाई 2009

निकी स्मिथ

पूर्वी भारत के झारखंड के घने जंगलों में सिर्फ मोटरसाइकिलों के लायक रह गई उबड़-खाबड़ पगडंडी के आखिर में सोनिया नाम की एक छः वर्षीय लड़की दोपहर की तपती धूप में बैठी हुई है। वह एक वक्त की रोटी के लिए कुछ पैसे की उम्मीद में एक खुली खान में खास तरह के पत्थर ढूंढ रही है।

सोनिया को काम करते आधा दिन बीत चुका है और अब वह बुरी तरह पस्त हो चुकी है। उसके बाल धूल से अट गए हैं और फूलदार कपड़े मटमैले हो चुके हैं।

उसके पास अपनी 8 साल की चचेरी बहन भूरी की तरफ आंख उठाकर देखने की भी हिम्मत नहीं बची है जो उसी के बगल में बैठी यही काम कर रही है। वे कंकड़ो में माइका के टुकड़े ढूंढ़ रही हैं क्योंकि इस चमकदार चीज का मेकअप में चमक लाने के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है।

अगर ये लड़कियां पर्याप्त मात्रा में माइका ढूंढ़ लेंगी तो संभव है उन्हें 12 घंटे की इस मेहनत के लिए 63 पेंस (लगभग 25 रुपये) की कमाई हो जाए। अगर वे कुछ नहीं ढूंढ़ पाईं तो शायद उन्हें खाली पेट सोना पड़ेगा।

http://www.timesonline.co.uk/tol/news/world/us_and_americas/article6719151.ece?token=null&offset=0&page=1

आदिवासियों की धीमी तरक्की

नई दिल्ली, 16 जनवरी 2010: संयुक्त राष्ट्र की पहली विश्व देशी समाज रिपोर्ट (2010) में पाया गया है कि दुनिया भर के देशी समाज भारी गरीबी, निरक्षरता, खराब स्वास्थ्य और मानवाधिकार हनन की वजह से दूसरे समाजों से ज्यादा कष्ट उठा रहे हैं। भारत के आदिवासियों की गरीबी लंबे समय से बनी हुई है और वे अनुसूचित जातियों से भी पीछे हैं। रिपोर्ट के अनुसार, इन लोगों की स्थिति उप-सहारा अफ्रीका के लोगों के बराबर पहुंच गई है। "देशी समाजों के बच्चों को शिक्षा नहीं मिल पाती और स्कूलों में जो पढ़ाई होती है वह उनकी संस्कृति के लिए प्रायः निरर्थक होती है। शिक्षक उनके परंपरागत ज्ञान का सम्मान नहीं करते। दुनिया भर में विशाल बांधों और अन्य बड़ी अवरचनागत परियोजनाओं ने बिना पर्याप्त मुआवजे के बड़ी संख्या में देशी सम. ाजों को उजाड़ा है।" रिपोर्ट में जल विद्युत बांध के लिए मणिपुर में आदिवासियों के विस्थापन और झारखंड में खान कंपनियों द्वारा संथाल आदिवासियों के विस्थापन का हवाला भी दिया गया है।

http://timesofindia.indiatimes.com/india/Tribals-make-poor-progress-stay-at-bottom-of-heap/articleshow/5450938.cms

उड़ीसा

व्यापक स्थिति

उड़ीसा की आबादी 36,706,920[221] है। 2007-08 में राज्य का कुल जीडीपी 1,333 अरब रुपये था। गरीबी में जीवनयापन करने वालों की संख्या के लिहाज से यह भारत का सबसे गरीब राज्य है। अभी यहां की लगभग आधी यानी 46.4 प्रतिशत आबादी गरीबी की रेखा से नीचे है।[222] राज्य के 85 प्रतिशत ग्रामीण इलाकों में रहते हैं और उनमें से ज्यादातर यानी 1.5 करोड़ लोग गरीब हैं। उड़ीसा केंद्र सरकार की निवेश योजनाओं की प्राथमिकता में नहीं रहा है जिसके कारण यहां का बुनियादी ढांचा और विकास संकेतक बाकी राज्यों से पीछे हैं। ग्रामीण इलाकों में 35 प्रतिशत से भी कम आबादी के पास पीने का साफ पानी उपलब्ध है।

विपुल प्राकृतिक संसाधनों और विशाल तटरेखा के चलते हाल के सालों में यहां भी बहुत सारा निजी निवेश आने लगा है। यह निवेश स्टील मिलों, बिजली घरों और एल्युमीनियम रिफाइनरीज़ के लिए ज्यादा आया है। देश के कोयले का पांचवां हिस्सा, लौह अयस्क का एक चौथाई और बॉक्साइट का एक तिहाई हिस्सा उड़ीसा में स्थित है। देश का ज्यादातर क्रोमाइट भंडार भी यहीं पर हैं।[223] केंद्र सरकार ने उड़ीसा के आठ स्थानों पर सेज़ की स्थापना के लिए सहमति दे दी है लेकिन इन योजनाओं का स्थानीय आबादी द्वारा सख्त विरोध किया जा रहा है क्योंकि ये लोग आजीविका के लिए मुख्य रूप से खेती पर आश्रित हैं और इन योजनाओं के कारण वे विस्थापित हो रहे हैं। राज्य की अर्थव्यवस्था में खेती का हिस्सा अभी भी बहुत बड़ा है और यह यहां का मुख्य व्यवसाय है। 76 प्रतिशत कामकाजी आबादी खेती में सक्रिय है।

उड़ीसा देश के सबसे बड़े चावल उत्पादक राज्यों में से एक है। देश का 10 प्रतिशत चावल यहीं पैदा होता है। दलहन, नारियल, गन्ना, चाय, रबर, कपास,

काशीपुर में खनन कार्यों से खतरे में पड़ते जंगल और खेतिहर जमीन
(फोटो - अक्तूबर 2009)

आलू और कई दूसरी फसलें भी यहां काफी बड़ी मात्रा में उगाई जाती हैं। उड़ीसा की जमीन काफी उपजाऊ है लेकिन बहुत सारे इलाकों में पानी की भारी कमी है। सूखे की आशंका वाले इलाकों में सिंचाई सुविधाओं का अभाव खेती से जुड़े बहुत सारे लोगों के लिए एक गंभीर रुकावट बना हुआ है। खेती में होने वाले निवेश और उद्योगों में होने वाले निवेश में भारी फासला है क्योंकि राज्य सरकार उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दे रही है। उड़ीसा में ग्रामीण एवं आदिवासी आबादी के भारी विस्थापन से खेती और आजीविका साधनों पर गंभीर असर पड़ा है। अपने अस्तित्व के लिए जूझ रही आबादी और भी गहरी गरीबी में फंसती जा रही है। उड़ीसा उन राज्यों में से एक है जहां अनुसूचित जनजाति आबादी बहुत घनी है। यहां कि 22.13 प्रतिशत आबादी अनुसूचित जनजाति और 16.53 प्रतिशत अनुसूचित जातियों से है। यह संख्या अखिल भारतीय औसत से काफी ज्यादा है। भारत की कुल आ. बादी में अनुसूचित जनजातियों का हिस्सा केवल 8.2 प्रतिशत है। उड़ीसा में 62 विभिन्न आदिवासी समूह रहते हैं। उनमें से कुछ समुदाय सिर्फ यहीं पाए गए हैं। इन समुदायों की एक बहुत बड़ी संख्या जंगलों में रहती है। ये लोग

221. भारत की जनगणना, 2001

222. योजना आयोग, भारत सरकार, नंबर ऐण्ड परसेंटेज ऑफ पापुलेशन बिलो पावर्टी लाइन बाई स्टेट्स, 2004-05.

223. इंडस्ट्रियल ग्रोथ ऐण्ड स्टेटस ऑफ उड़ीसा, http://www.amazingorissa.com/INDUSTRIES.HTML, 5 सितंबर 2009 को अपलोड किया गया।

आजीविका स्तरीय खेती और वानिकी गतिविधियों से जुड़े हुए हैं। औद्योगिक विकास, खासतौर से खनन उद्योग को फैलाने की इस मुहिम का सबसे भारी नुकसान आदिवासियों को उठाना पड़ रहा है। उनके परंपरागत अधिकारों और वन संसाधनों तक पहुंच के नष्ट हो जाने से उनकी खाद्य सुरक्षा पर बहुत बुरा असर पड़ा है। इसके चलते पलायन, परंपरागत व्यवसायों का नाश और सामाजिक संस्थानों व संस्कृतियों का ध्वंस हुआ है।[224]

विस्थापन के बारे में विभिन्न स्रोतों से जो आंकड़े मिले हैं उनसे इस समस्या का अंदाजा लग जाता है। सभी स्रोतों से मिले आंकडों में विस्थापितों की संख्या अलग-अलग दी गई है। साल 2000 तक उड़ीसा में कुल विस्थापित परिवारों की संख्या 133,500 थी।[225] हालिया आंकड़ों में प्रभावित गांवों की संख्या 2,170 बताई गई है जो खनन सहित विभिन्न विकास परियोजनाओं से हुए विस्थापन से प्रभावित हैं।[226] एक अन्य स्रोत में पिछले एक दशक के दौरान राज्य भर में विकास परियोजनाओं से प्रभावित लोगों की संख्या 20 लाख बताई गई है जिनमें से लगभग 5 लाख लोग विस्थापित हो गए हैं। आंकड़ों से ऐसा लगता है कि 70 प्रतिशत विस्थापन बांधों/सिंचाई परियोजनाओं के कारण हुआ है। औद्योगिक परियोजनाओं से 12 प्रतिशत और खनन परियोजनाओं से 3.37 प्रतिशत विस्थापन हुआ है। बाकी विस्थापन वन्य जीव अभयारण्यों, ताप एवं शहरी विकास परियोजनाओं के कारण हुआ है। कुल मिलाकर अकेले उड़ीसा में 14 लाख से ज्यादा लोग विकास परियोजनाओं विस्थापित हुए हैं और उनमें से ज्यादातर आदिवासी हैं।[227]

उड़ीसा की मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) रैंकिंग 0.579 है जोकि राष्ट्रीय औसत से कम है।[228] उड़ीसा में मानव विकास संकेतकों की दृष्टि से जिलों के बीच भारी असमानता है। सबसे कम एचडीआई रैंकिंग वाले जिले राज्य के दक्षिण-पश्चिमी भाग में हैं जहां आदिवासियों की आबादी सबसे घनी है। राज्य के इन इलाकों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आबादी में गरीबी का अनुपात बहुत ऊंचा है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आबादी में साक्षरता की स्थिति भी बेहद चिंताजनक है। हालांकि राज्य में 63.09 प्रतिशत आबादी साक्षर है लेकिन अनुसूचित जाति महिलाओं में यह स्तर केवल 40.33 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति महिलाओं में 23.37 प्रतिशत है (अनुसूचित जनजातियों के लिए औसत 37.37 प्रतिशत)।[229] साक्षरता की यह तस्वीर शिक्षा तक जनता की पहुंच और राज्य की हालिया औद्योगिक 'तरक्की' में जनता की हिस्सेदारी के बारे में बहुत कुछ कह जाती है।

राज्य में स्वास्थ्य की स्थिति बेहद चिंताजनक है। उड़ीसा में औसत आयु तो राष्ट्रीय औसत (58.9 वर्ष) के निकट है लेकिन शहरों और गांवों के बीच भारी फर्क है। गांवों में औसत आयु 58.3 वर्ष है जबकि शहरों में यही 66 वर्ष है। अनुमान लगाया जाता है कि उड़ीसा में तकरीबन आधी (48 प्रतिशत) महिलाएं पोषण अभाव से ग्रस्त हैं। पोषण अभाव से ग्रस्त निरक्षर महिलाओं की संख्या 54.6 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति महिलाओं की संख्या 55.5 प्रतिशत है।[230] उड़ीसा में मलेरिया एक गंभीर समस्या है। पूरे देश में मलेरिया के 23 प्रतिशत मामले और मलेरिया के कारण होने वाली 50 प्रतिशत मौतें इसी राज्य में होती हैं।[231] यह बीमारी कोरापुट जैसे जिलों की अनुसूचित जनजाति आबादी में बहुत ही गंभीर है।

दमनजोड़ी में खनन प्रभावित कुपोषित मां और कुपोषित बच्चा
(फोटो - जनवरी 2010)

बच्चों की दशा

उड़ीसा में 0-14 वर्ष आयु के बच्चों की संख्या 2001 में 12,207,872 थी। उसी समय 19 साल से कम उम्र के बच्चों की संख्या 15,739,256 थी। इस प्रकार, राज्य की आबादी में लगभग 40 प्रतिशत बच्चे हैं।[232] इन बच्चों में से लगभग 86 प्रतिशत बच्चे ग्रामीण इलाकों के हैं। 6-14 साल के स्कूल न जाने

224. उड़ीसा सरकार, मानव विकास रिपोर्ट, 2004.
225. ऐन ओवरव्यू ऑफ डेवलेपमेंट प्रॉजेक्ट्स, डिस्प्लेसमेंट ऐण्ड रीहेबिलिटेशन इन उड़ीसा, प्रोफेसर ए.बी. ओटा, निदेशक, जनजाति शोध संस्थान द्वारा प्रस्तुति, 17 जुलाई 2009, URL: http://www.teamorissa.org/Convention_%20Presentations_%20Sessionwise/Session-5/Session5-2%20development%20Project%20SWOSTI%20PLAZA.Ota.pdf
226. http://chittabehera.com/Rehabilitation/orrisa%20Displaced%20Study/orrisa%20Mining%20Ch-3.pdf
227. http://joharadivasi.org/industrialization-and-development-discontentment-among-tribals-in-orissa-dr-rajat-kumar-kujur/
228. उपरोक्त।
229. भारत की जनगणना, 2001
230. उड़ीसा सरकार, मानव विकास रिपोर्ट, 2004.
231. डॉ. एन.आर. रे, मेजर हैल्थ प्रॉब्लम्ज़ ऑफ उड़ीसा, 24 मार्च 2009, http://www.articlesbase.com/diseases-and-conditions-articles/major-health-problems-oforissa-831947.html, 5 सितंबर 2009 को अपलोड किया गया।
232. भारत की जनगणना, 2001

वाले बच्चों की अधिकृत संख्या 2007 में 350,703 (कक्षा 1-5) थी।[233] प्रथम के एएसईआर 2008 के सर्वेक्षण के अनुसार उड़ीसा में इस आयु वर्ग के 7.2 प्रतिशत बच्चे स्कूली शिक्षा से बाहर हैं।[234] हालांकि दाखिलों की स्थिति में सुधार दिखाई देता है लकिन ड्रॉपआउट दर अभी भी बहुत ऊंची है। यह इस बात का संकेत है कि राज्य की शिक्षा व्यवस्था कुशलता की दृष्टि से गंभीर समस्याओं से जूझ रही है। ड्रॉपआउट दर प्राथमिक स्तर पर 34.7 प्रतिशत और अपर प्राइमरी स्तर पर 59 प्रतिशत है।[235] लड़कियों, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों में ड्रॉपआउट दर और भी ज्यादा है।

स्कूली शिक्षा तक पहुंच का अभाव आदिवासी इलाकों में अभी भी एक बड़ी समस्या है। जहां स्कूल नहीं हैं ऐसी ज्यादातर बस्तियां अनुसूचित जनजातियों की घनी आबादी वाली बस्तियां हैं।[236] टेबल 2.14 में उन जिलों में अनुसूचित जनजाति साक्षरता, ड्रॉपआउट और स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या का ब्यौरा दिया गया है जहां के खनन स्थलों का इस अध्ययन के लिए दौरा किया गया।

टेबल 2.14 : क्योंझर, सुंदरगढ़ और रायगड़ा जिलों में अनुसूचित जनजाति ड्रॉपआउट बच्चे

जिला	आबादी (लाख में)	क्षेत्रफल (वर्ग कि.मी.)	आबादी और साक्षरता दर			ड्रॉपआउट दर				6-14 वर्ष के स्कूल न जाने वाले बच्चे		
			अजजा आबादी का प्रतिशत	साक्षरता का प्रतिशत (सभी)	साक्षरता का प्रतिशत (अजजा)	प्राथमिक कक्षाओं में कुल ड्रॉपआउट	प्राथमिक कक्षाओं में अजजा ड्रॉपआउट	अपर प्राइमरी में कुल ड्रॉपआउट	अपर प्राइमरी में अजजा ड्रॉपआउट प्रतिशत	स्कूल न जाने वाले कुल बच्चे	स्कूल न जाने वाले अजजा बच्चों	स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या
क्योंझर	151.6	8303	44.50	59.24	40.30	16.76	27.95	20.21	31.31	13.51	13.75	19,645
सुंदरगढ़	18.29	9712	53.40	64.86	52.75	18.95	28.58	23.22	31.29	7.10	7.59	13,293
रायगड़ा	83.2	7073	52.82	36.15	20.23	5.96	15.01	18.60	36.29	23.76	27.26	22,771
राज्य (कुल)	3669.1	155707	22.13	63.08	37.37	10.53	22.88	18.05	32.44	8.67	12.93	
कोरापुट जिले में स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या - 25,540												

स्रोत : "मल्टी-लिंग्वल ऐजुकेशन ऐण्ड अदर इनिशिएटिव्ज़ इन उड़ीसा", श्री एन बी दहल, आईएस, राज्य परियोजना निदेशक एवं डॉ. एम के मिश्रा, राज्य संयोजक अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति एवं अल्पसंख्यक शिक्षा, उड़ीसा प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम प्राधिकरण, भुवनेश्वर।

बाल स्वास्थ्य के मोर्चे पर उड़ीसा अभी भी चुनौतियों से जूझ रहा है। सबसे ताजा एनएफएचएस-3 सर्वेक्षण (2007 में प्रकाशित) के अनुसार उड़ीसा में 3 साल से कम उम्र के 44 प्रतिशत बच्चे अल्पभार वाले हैं।[240] 6-35 माह के बच्चों में खून की कमी भी काफी ज्यादा पाई गई है। लगभग 72.3 प्रतिशत बच्चों में अलग-अलग स्तर पर खून की कमी दर्ज की गई है। उड़ीसा में शिशु मृत्यु दर और 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर राष्ट्रीय औसत से काफी अधिक - क्रमशः 64.7 (प्रति 1,000 जीवित प्रसवों पर) और 90.6 - रही है। जबकि राष्ट्रीय औसत क्रमशः 57 और 74.3 है।[241] इन रुझानों के पीछे कई कारण बताए जाते हैं। जन्म के समय

इसका मतलब यह है कि पूरे भारत में खतरनाक व्यवसायों में मजदूरी करने वाले बच्चों की 21.4 प्रतिशत संख्या अकेले उड़ीसा में है।[238] माना जा सकता है कि यह संख्या वास्तविक संख्या से काफी कम होगी क्योंकि 1999 के बाद खतरनाक व्यवसायों की सूची में काफी फैलाव आ चुका है। एनसीएलपी योजना उड़ीसा के 30 में से 18 जिलों में चालू है। 2006-07 में इस योजना के तहत 1781 बच्चों का पुनर्वास किया गया था और मई 2007 तक कुल 72,653 बच्चों को मजदूरी से निकाल कर एनसीएलपी स्कूलों में दाखिल कराया जा चुका था।[239]

जनगणना के अनुसार राज्य में 377,594 बाल मजदूर (14 वर्ष से कम) हैं।[237] अधिकृत आंकड़ों से पता चलता है कि 1999 में पूरे राज्य में खतरनाक व्यवसायों में मजदूरी कर रहे बच्चों की संख्या 23,761 थी।

233. लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 576, दिनांक 21.10.2008.
234. प्रथम एएसईआर 2008 सर्वे।
235. उड़ीसा सरकार, मानव विकास रिपोर्ट, 2004.
236. उपरोक्त।
237. भारत की जनगणना, 2001
238. लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 2691, दिनांक 9.8.2000.
239. indiastat.com से ली गई सूचना; राज्य सभा अतारांकित प्रश्न संख्या 3759, 09.05.2007, लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 994, 20.08.2007 एवं लोकसभा अतारांकित प्रश्न संख्या 2415, 03.12.2007 द्वारा जारी की गई सूचनाओं से संकलित
240. एनएफएचएस-3,
241. उपरोक्त।

पेशेवर सहायिकाओं के अभाव, जन्म के समय कम भार वाले शिशुओं की भारी संख्या और प्रसवोरात पेशेवर देखभाल का अभाव आदि कुछ प्रमुख कारण हैं। 5 साल से कम उम्र के बच्चों की 28 प्रतिशत मौतें दस्त/पेचिश के कारण होती हैं। यह समस्या पीने के साफ पानी की कमी, पर्याप्त पोषण के अभाव और ओरल रीहाइड्रेशन सॉल्ट जैसी आवश्यक जीवनरक्षक औषधियों के अभाव का परिणाम हो सकती है।[242] शिशु मृत्यु दर और बाल मृत्यु दर आदिवासियों में और भी अधिक पाई गई है। शेष आबादी के मुकाबले आदिवासियों में टीकाकरण का दायरा भी सबसे खराब रहा है।

6 साल से कम उम्र के बच्चों की स्वास्थ्य एवं पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए चलाई जा रही एकमात्र राष्ट्रीय योजना आईसीडीएस ने उड़ीसा में काफी प्रगति की है। एनएफएचएस-3 से पता चला कि उड़ीसा उन तीन राज्यों में से एक है जहां 0-71 माह के 50 प्रतिशत से ज्यादा बच्चों को *आंगनवाड़ी* केंद्रों से बीते एक साल के दौरान कोई सेवा मिली है।[243] उड़ीसा में *आंगनवाड़ी* केंद्रों से स्वास्थ्य जांच की सुविधा पाने वाले बच्चों के मामले में भी उड़ीसा सबसे आगे (43 प्रतिशत) है। लेकिन अभी भी राज्य के सामने गंभीर चुनौतियां बनी हुई हैं। उड़ीसा में इस योजना के तहत भारी कमियां रही हैं। कई इलाकों में खाद्य आपूर्ति अनियमित रही है। 2007 में पता चला कि भले ही इस योजना से लाभ उठाने वाली महिलाओं और बच्चों की संख्या उड़ीसा में मध्य प्रदेश के बाद सबसे अधिक है लेकिन यहां प्रति लाभान्वित दैनिक व्यय भी यहीं पर सबसे कम है- केवल 0.59 रुपये।[244]

उड़ीसा में मानव व्यापार की समस्या भी काफी गंभीर है। भारी गरीबी, बार-बार आने वाले प्राकृतिक आपदाओं, स्थायी खाद्य असुरक्षा और विशाल हाशियाई आबादी की वजह से यहां के लोग मानव व्यापार जैसे विभिन्न प्रकार के जोखिमों की चपेट में आने लगे हैं। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, भूमिहीन मजदूरों, महिलाओं और बच्चों के सामने ये स्थितियां गंभीर खतरा पैदा कर देती हैं।[245] राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) आंकड़े भारत में मानव व्यापार की समस्या के विश्लेषण में नाकाफी हैं क्योंकि इस तरह के ज्यादातर मामले कभी दर्ज नहीं हो पाते। 2007 में उड़ीसा में मानव व्यापार के केवल 41 मामले दर्ज किए गए थे।[246] लेकिन उड़ीसा में काम कर रहे गैर-सरकारी संगठनों का कहना है कि राज्य में बाल व्यापार की समस्या काफी बड़े पैमाने पर मौजूद है।[247] 30 में से कम से कम 26 जिलों में मानव व्यापार की समस्या मौजूद है। इस संबंध में एक समस्या यह है कि सहमति के आधार पर प्रवासन और खरीद-फरोख्त के फलस्वरूप प्रवासन के बीच फर्क करना मुश्किल रहता है क्योंकि बहुत सारे बच्चे अकेले या अपने परिवारों के साथ काम-धंधे की तलाश में भी बाहर जाते रहते हैं।[248] उड़ीसा की बहुत सारी लड़कियों को जबरन विवाह के लिए उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पंजाब में ले जाया जाने लगा है। बहुत सारी महिलाओं और लड़कियों को घरेलू मजदूरी व अन्य प्रकार के श्रम और वेश्यावृति के लिए भी खरीदा-बेचा जाता है।[249]

कम उम्र में विवाह अभी भी उड़ीसा की एक बड़ी समस्या है। राज्य की लगभग 30 प्रतिशत लड़कियां 18 साल से कम उम्र में ब्याह दी जाती हैं और अलग-अलग जिलों में इस मामले में काफी फर्क रहता है। कोरापुट, कालाहांडी और बोलांगीर जैसे पिछड़े जिलों में 50 प्रतिशत से ज्यादा लड़कियों का विवाह 18 साल से कम उम्र में कर दिया जाता है।[250] पुरी और जयपुर जैसे तटीय जिलों में ऐसी लड़कियों की संख्या 15 प्रतिशत से कम रही है।

जोड़ा-बारबिल इलाके में लौह अयस्क की लोड़िंग, क्योंझर (फोटो - जुलाई 2009)

उड़ीसा में खनन उद्योग

खनिज संसाधनों के मामले में उड़ीसा बहुत संपन्न है। क्रोमाइट, ग्रेफाइट, बा. ॅक्साइट, मैंगनीज़ अयस्क, लौह अयस्क, सिलिमेनाइट, क्वाट्ज़ाइट, पाइरॉक्साइट, डोलोमाइट के मामले में उड़ीसा भारत का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है।

मूल्य की दृष्टि से उड़ीसा का खनिज उत्पादन देश में दूसरे स्थान पर आता है। देश के कुल खनिज उत्पादन मूल्य में उड़ीसा का हिस्सा 12 प्रतिशत बैठता है। 2007-08 में उड़ीसा का खनिज उत्पादन 129.87 अरब

242. उड़ीसा सरकार, मानव विकास रिपोर्ट, 2004.
243. एनएफएचएस-3, 2007.
244. सेवेंथ रिपोर्ट ऑफ दि कमिश्नर्स ऑफ दि सुप्रीम कोर्ट, नवंबर 2007.
245. शक्तिवाहिनी, यूएनडीपी, ताहा परियोजना, ट्रैफिकिंग ऐण्ड एचआईवी उड़ीसा, 2005.
246. एनसीआरबी, क्राइम्स इन इंडिया, अध्याय 6, 2007.
247. सेव दि चिल्ड्रेन इंडिया, चाइल्ड ट्रैफिकिंग http://www.savethechildren.in/india/key_sectors/child_trafficking.html, 7 सितंबर 2009 को उपलोड किया गया।
248. शक्तिवाहिनी, यूएनडीपी ताहा परियोजना, ट्रैफिकिंग ऐण्ड एचआईवी उड़ीसा, 2005.
249. उपरोक्त।
250. उड़ीसा सरकार, मानव विकास रिपोर्ट, 2004.

रुपये था और यह पिछले साल के मुकाबले 29 प्रतिशत अधिक था।[251] कोयला, बॉक्साइट, क्रोमाइट, लौह अयस्क, मैंगनीज़ अयस्क, चूना पत्थर और डोलोमाइट यहां के सबसे महत्वपूर्ण खनिज हैं। राज्य के कुल खनिज उत्पादन में 99.2 प्रतिशत हिस्सा इन्हीं खनिज पदार्थों का रहता है।

2007-08 में राज्य में 227 अधिकृत खानें थीं। कुल खान पट्टों का क्षेत्रफल 721,323 हैक्टेयर था। इसमें 16,795 हैक्टेयर से ज्यादा वन भूमि भी थी जिसे अधिकृत रूप से खनन परियोजनाओं को दे दिया गया है।[252]

नाल्को कनवेयर बेल्ट (फोटो : समता)

उड़ीसा में बॉक्साइट के प्रमुख स्रोत कोरापुट जिले में पाए गए हैं। राज्य के कुल बॉक्साइट उत्पादन का 98.82 प्रतिशत यहीं पैदा होता है। बाकी 1.18 प्रतिशत बॉक्साइट उत्पादन सुंदरगढ़ जिले में हो रहा है।[253] राज्य के 50 प्रतिशत आदिवासी इन्हीं दो जिलो में रहते हैं। दमनजोड़ी कोरापुट जिले का एक छोटा सा कस्बा है। दमनजोड़ी कस्बे की एक बहुत बड़ी आबादी नैशनल एल्युमीनियम कंपनी (नालको) के कर्मचारियों की है। यह भारत सरकार का सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम है और एल्युमीनियम के मामले में दुनिया का 7वां सबसे बड़ा उत्पादक है। नालको के अंतर्गत एशिया का सबसे बड़ा परिसर आता है जिसमें बॉक्साइट की खानें, एल्युमिना रिफाइनिंग संयंत्र, प्रगलन संयंत्र एव बिजली घर आते हैं। नालकों की खानों में मौजूद बॉक्साइट भंडार अगले 120 साल तक खत्म होने वाले नहीं है। इसके बावजूद कोरापुट को अभी भी सरकार ने 'पिछड़े जिले' के रूप में श्रेणीबद्ध किया हुआ है और यहां की 83.8 प्रतिशत आबादी गरीबी की रेखा से नीचे है।[254]

नई आर्थिक नीति आने के बाद उड़ीसा सरकार राज्य के खनिज संसाधनों को निकालने के लिए राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को लुभाने में लगी हुई है। उड़ीसा में स्टील प्लांट लगाने के लिए समझौतों पर दस्तख्त करने वाली कंपनियों की संख्या 50 तक पहुंच गई है। इनमें दक्षिण कोरियाई बहुराष्ट्रीय कंपनी पोहान आयरन ऐण्ड स्टील कंपनी (पोस्को) भी शामिल है जिसने पारादीप बंदरगाह के पास 580 अरब रुपये का स्टील प्लांट बनाने पर सहमति दी है। भारत के इतिहास में यह सबसे बड़ा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश होगा।[255] लेकिन इन इलाकों की स्थानीय आबादी, जोकि ज्यादातर अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां हैं, इन परियोजनाओं का विरोध कर रही हैं क्योंकि उन्हें विस्थापन और आजीविका के विनाश की आशंका साफ दिखाई दे रही है। उड़ीसा इस बात का बढ़िया उदाहरण है कि जब खनन उद्योग शुरू होता है तो हर मुमकिन औद्योगिक अपराध और मानवाधिकारों का हनन किस तरह किया जाता है और इस तरह की विशाल खनन परियोजनाओं से पैदा होने वाली तबाही किस तरह राज्य को विध्वंस की ओर ढकेलने लगती है।

कालाहांडी जिले में लांजीगढ़ का इलाका हाल के सालों में खनन विकास उद्योग के भारी दवाब में रहा है और अब यहां भारत का सबसे जाना-पहचाना खनन संघर्ष चल रहा है। 2003 में उड़ीसा सरकार और ब्रिटेन के वेदांता ग्रुप के बीच एक समझौता हुआ था। इसके तहत यहां की न्यामगिरि पहाड़ियों में बॉक्साइट खानों और एल्युमिना रिफाइनरी की स्थापना की जानी थी। स्थानीय समुदाय, गैर-सरकारी संगठन और पर्यावरण कार्यकर्ता इस परियोजना का लगातार विरोध कर रहे हैं। लांजीगढ़ में डोंगरिया कोंढ जनजाति रहती है और उनकी आबादी 7,752 है। यह समुदाय रिफाइनरी परियोजना का विरोध कर रही है जोकि उनको प्राकृतिक आवास क्षेत्र से उजाड़ देगी और उनके परंपरागत आजीविका स्रोतों को नष्ट कर देगी।

बगल में स्थित कोरापुट जिले के काशीपुर इलाके में उत्कल एल्युमिना इंटरनैशनल लिमिटेड (यूएआईएल) के खिलाफ चल रहे आदिवासी संघर्ष के बावजूद लांजीगढ़ में सरकार ने एक और खनन परियोजना को मंजूरी दे दी है। यह बात इस बात का सुबूत है कि सरकार जनता के असंतोष को कितने बर्बर ढंग से नजरअंदाज कर रही है। गौरतलब है कि काशीपुर में जन प्रतिरोध पर पुलिस की गोलीबारी भी हो चुकी है जिससे कई आदिवासी मारे गए थे।

उड़ीसा में खनन गतिविधियों के कारण विस्थापन एक बड़ी समस्या है। इन गतिविधियों से राज्य में कुल कितने लोग विस्थापित हो चुके हैं इसका नवीनतम आंकड़ा उपलब्ध नहीं है। 1991 से 1995 के बीच उड़ीसा में खान

251. खान मंत्रालय वार्षिक रिपोर्ट 2008-09.

252. राज्य सभा अतारांकित प्रश्न संख्या 234, दिनांक 20.10.2008, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा खनन के लिए जारी की गई राज्यवार जमीन (25.10.1980 से 30.09.2008).

253. सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, उड़ीसा सरकार, उड़ीसा रिव्यू, नवंबर 2007.

254. भारत की जनगणना, 2001

255. Domain-b.com, उड़ीसा स्टील प्रॉजेक्ट बैक ऑन ट्रेक - सेज़ पोस्को, 27 अगस्त 2009, http://www.domain-b.com/companies/companies_p/posco/20090827_steel_project.html, 10 सितंबर 2009 को अपलोड किया गया।

256. प्रज्ञा पारमिता मिश्रा, सेकेंड कॉलोनियलाइजेशन : माइनिंग इंड्यूस डिस्प्लेसमेंट इन उड़ीसा, शोधार्थी, सीईएसएस, हैदराबाद।

परियोजनाओं के फलस्वरूप लगभग 100,000 लोग विस्थापित हो चुके थे। उनमें से 40 प्रतिशत लोगों को किसी तरह का पुनर्वास नहीं मिला।[257] विभिन्न स्रोतों से प्राप्त हालिया विस्थापन आंकड़ों से खनन कार्यों के कारण होने वाले विस्थापन की व्यापकता का पता चलता है। वर्ष 2000 तक खनन कार्यों के कारण विस्थापित परिवारों की कुल संख्या विस्थापित आबादी का 11 प्रतिशत यानी लगभग 15,000 थी।[258] एक अन्य स्रोत से बताया गया है कि राज्य भर में पिछले एक दशक के दौरान विकास परियोजनाओं से प्रभावित लोगों की संख्या 20 लाख है जिनमें से लगभग 5 लाख लोगों को पूरी तरह विस्थापित कर दिया गया था। इनमें से 3.37 प्रतिशत खान परियोजनाओं के कारण विस्थापित हुए हैं।[259]

राज्य का लगभग आधा क्षेत्रफल संविधान की पांचवी अनुसूची के अंतर्गत आता है। इसके बावजूद ऐसी लगभग 1,019 वर्ग किलोमीटर जमीन पहले ही खान परियोजनाओं के लिए पट्टे पर दी जा चुकी है। इस जमीन का ज्यादातर हिस्सा अनुसूचित क्षेत्रों में आता है।[260] जुलाई 2003 में उड़ीसा के मुख्यमंत्री के नेतृत्व में गठित की गई एक राज्य समिति ने निष्कर्ष निकाला कि देश भर के सभी पांचवीं अनुसूची क्षेत्रों में आदिवासियों के भूमि अधिकारों की रक्षा के लिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया समता फैसला सिर्फ आंध्र प्रदेश पर लागू होता है; उसे उड़ीसा पर लागू नहीं किया जा सकता।

मसविदा उड़ीसा पुनर्स्थापन एवं पुनर्वास योजना, 2006 में प्रस्ताव किया गया है कि विस्थापित लोगों को उस उद्योग में एक संबंधित पक्ष का दर्जा दिया जाए जिससे वे विस्थापित होने वाले हैं। इसमें मुआवजे की रकम 37,000 प्रति एकड़ से बढ़ाकर 150,000 रुपये प्रति एकड़ तो कर दी गई है लेकिन उसमें वैकल्पिक रोजगार गारंटी का प्रावधान नहीं किया गया है।[261] इसमें यह भी कहा गया है कि विस्थापित परिवारों को रोजगार, स्वरोजगार प्रशिक्षण और आवासीय पट्टा भी दिया जाएगा लेकिन भूमिहीन परिवारों का कोई जिक्र नहीं किया गया है। आबादी के एक बहुत बड़े हिस्से के पास जमीन का मालिकाना हक नहीं है लेकिन वे दूसरों की जमीन पर काम करके अपना जीवन चलाते हैं। ऐसे लोगों के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई है।

अब कुछ आदिवासी दिहाड़ी मजदूरी करके पेट पालने के लिए खनन कार्यों में भी मजदूरी करने लगे हैं। वे इसलिए यह काम करने को मजबूर हो गए हैं क्योंकि उनके पास जमीन नहीं है। इन बदलावों से महिलाओं पर खास असर पड़े हैं। आदिवासी महिलाएं खेती में प्रमुख भूमिका निभाती हैं, वे वन उपज इकट्ठा करती हैं और मवेशियों को संभालती हैं। विस्थापित हो जाने के बाद वे इन परंपरागत गतिविधियों को जारी नहीं रख सकतीं। उड़ीसा में किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि वहां बिन ब्याही मांओं की संख्या हाल के सालों में काफी बढ़ गई है। इसके साथ ही मानव व्यापार, एचआईवी/एड्स और घरेलू हिंसा की घटनाओं में भी भारी इजाफा हुआ है।[262]

जनगणना 2001 के अनुसार 2001 में उड़ीसा में खनन उद्योग और खदानों में काम करने वाले लोगों की संख्या 149,318 थी। इनमें 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों की संख्या 2257 और 19 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की संख्या 11,203 थी।[263] लेकिन खानों में काम करने वाले बाल मजदूरों की वास्तविक संख्या इससे काफी ज्यादा होगी।

257. फर्नांडीज, डब्ल्यू एवं मोहम्मद ए., डेवलेपमेंट इंड्यूस डिस्प्लेसमेंट इन उड़ीसा 1951 टू 1995. ए डेटाबेस ऑन इट्स ऐक्सटेंट ऐण्ड नेचर, 1997.
258. एन ओवरव्यू ऑफ डेवलपमेंट प्रॉजेक्ट्स, डिस्प्लेसमेंट ऐण्ड रीहेबिलिटेशन इन उड़ीसा, प्रोफेसर ए बी ओटा, जनजाति शोध संस्थान निदेशक द्वारा प्रस्तुति, 17 जुलाई 2009, URL: http://www.teamorissa.org/Convention_%20Presentations_%20Sessionwise/Session-5/Session5-2%20development%20Project%20SWOSTI%20PLAZA.Ota.pdf
259. http://joharadivasi.org/industrialization-and-development-discontentment-among-tribals-in-orissa-dr-rajat-kumar-kujur/
260. कुमार के., डिस्पजेस्ड ऐण्ड डिस्पलेस्ड : ए ब्रीफ पेपर ऑन ट्राइबल इश्यूज इन उड़ीसा, डिस्कशन पेपर, वसुंधरा, उड़ीसा, 2004.
261. प्रज्ञा पारमिता मिश्रा, सेकेंड कॉलोनियलाइजेशन : माइनिंग इंड्यूस्ड डिस्प्लेसमेंट इन उड़ीसा, शोधार्थी, सीईएसएस, हैदराबाद।
262. उपरोक्त।
263. भारत की जनगणना, 2001

रायगड़ा जिला : मुख्य तथ्य	
कुल आबादी :	831,109 (जनगणना 2001)
बच्चों की आबादी (0-14 वर्ष) :	303,760 (जनगणना 2001)
साक्षरता दर :	कुल 36.15 प्रतिशत पुरुष : 48.18 प्रतिशत महिलाएं :24.56 प्रतिशत (जनगणना 2001)
स्कूल न जाने वाले बच्चे (6-14 वर्ष):	17.7 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
आंगनवाड़ी या स्कूल पूर्व संस्थाओं में दाखिल बच्चे (3-4 वर्ष) :	51.7 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
बाल मजदूरों की संख्या (5-14 वर्ष) :	16,982 (जनगणना 2001)
5 वर्ष से कम आयु में मृत्यु दर (रैंकिंग) :	593 जिलों में 565वां स्थान *(जनसंख्या स्थिरता कोष)*

क्योंझर जिला : मुख्य तथ्य	
कुल आबादी :	1,561,990 (जनगणना 2001)
बच्चों की आबादी (0-14 वर्ष) :	548,357 (जनगणना 2001)
साक्षरता दर :	कुल 59.24 प्रतिशत पुरुष : 71.99 प्रतिशत महिलाएं :46.22 प्रतिशत (जनगणना 2001)
स्कूल न जाने वाले बच्चे (6-14 वर्ष):	7.7 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
आंगनवाड़ी या स्कूल पूर्व संस्थाओं में दाखिल बच्चे (3-4 वर्ष) :	68.1 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
बाल मजदूरों की संख्या (5-14 वर्ष) :	12,741 (जनगणना 2001)
5 वर्ष से कम आयु में मृत्यु दर (रैंकिंग) :	593 जिलों में 455वां स्थान *(जनसंख्या स्थिरता कोष)*

सुंदरगढ़ जिला : मुख्य तथ्य	
कुल आबादी :	1,830,673 (जनगणना 2001)
बच्चों की आबादी (0-14 वर्ष) :	699,304 (जनगणना 2001)
साक्षरता दर :	कुल 65 प्रतिशत पुरुष : 75.34 प्रतिशत महिलाएं :53.88 प्रतिशत (जनगणना 2001)
स्कूल न जाने वाले बच्चे (6-14 वर्ष):	4.8 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
आंगनवाड़ी या स्कूल पूर्व संस्थाओं में दाखिल बच्चे (3-4 वर्ष) :	कोई सूचना उपलब्ध नहीं (एएसईआर 2008)
बाल मजदूरों की संख्या (5-14 वर्ष) :	9,407 (जनगणना 2001)
5 वर्ष से कम आयु में मृत्यु दर (रैंकिंग) :	593 जिलों में 372वां स्थान *(जनसंख्या स्थिरता कोष)*

शोध की पृष्ठभूमि

उड़ीसा भारत के सबसे सघन खनन गतिविधियों वाले राज्यों में आता है इसलिए हमने उड़ीसा में शोध के लिए कई स्थानों को चुना ताकि पूरे राज्य में बच्चों पर इस उद्योग के प्रभावों को समझा जा सके। इस राज्य में आदिवासी समुदायों के जीवन पर भी बहुत गहरे असर पड़े हैं क्योंकि कई समुदाय खनन एवं संबंधित उद्योगों के कारण कई-कई बार विस्थापित हो चुके हैं और नई परियोजनाओं के चलते उनके सामने एक

एक और विस्थापन का खतरा मंडरा रहा है। इस शोध में हमने नालको जैसी कुछ पुरानी परियोजनाओं (बॉक्साइट खनन) को भी लिया है जिनके असर विस्थापित समुदायों पर साफ देखे जा सकते हैं। इसके साथ ही हमने उनकी तुलना काशीपुर (यूएआईएल परियोजना) जैसे प्रस्तावित खनन क्षेत्रों से भी की है जोकि नालको के निकट ही स्थित है और इस इलाके की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि बिल्कुल वैसी ही है। इन केस स्टडीज के आधार पर आदिवासी बच्चों के विस्थापन, पुनर्वास और संवैधानिक स्थिति को अच्छी तरह समझा जा सकता है।

एक जमाने में क्योंझर उड़ीसा में पर्यटन का मुख्य केंद्र था। क्योंझर की यहां के जोड़ा और बारबिल इलाकों में खनिजों की लूट के लिए विशाल निगमों और ठेकेदारों की घुसपैठ के बाद यही शांत आदिवासी पट्टी अब अपराध, भ्रष्टाचार, हिंसा और तस्करी का गढ़ बन गई है। हमने इस बदलाव के फलस्वरूप इलाके के बच्चों पर पड़े प्रभावों का अध्ययन किया है जिनकी तुलना बेल्लारी, कर्नाटक की स्थितियों से की जा सकती है।

पश्चिमी उड़ीसा का सुंदरगढ़ जिला भी एक आदिवासी इलाका है। यहां आजादी के पहले से ही डोलोमाइट और चूना पत्थर का खनन चल रहा है। यहां इस उद्योग के प्रभाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। यहां की खानों में बहुत सारी किशोरियां अमानवीय रूप से मामूली मजदूरी करती देखी जा सकती हैं।

अकेले उड़ीसा में खनन उद्योग की स्थिति और लोगों, खासतौर से बच्चों पर उसके प्रभावों को बाकी देश के खनन प्रभावित समुदायों की स्थिति का संकेतक माना जा सकता है। उड़ीसा भारत के सबसे निर्धन राज्यों में है जहां मानव विकास संकेतक, खासतौर से खनन प्रभावित इलाकों में बहुत खराब है। अगर खान उद्योग को आर्थिक विकास का पथ प्रदर्शक माना जाता है तो उड़ीसा के हालात इस दावे की कलई खोल देते हैं। कि राज्य में विकास का सामान्य रुझान और केस स्टडीज इस बात को साबित करने के लिए काफी हैं।

नैशनल एल्युमीनियम कंपनी लिमिटेड बॉक्साइट खनन परियोजना से दमनजोड़ी में बच्चों पर विस्थापन के प्रभाव

राजेश (बदला नाम) की उम्र 15 साल है। वह जानीगुड़ा गांव का रहने वाला है। वह दमनजोड़ी के डुमरीपुट में सड़क पर बने ढाबे में काम करता है। उसके परिवार की सारी जमीन नालको परियोजना में चली गई थी। उसके पिता को कंपनी में नौकरी नहीं मिली और इस तनाव से उन्हें शराब की लत लग गई। मुआवजे की सारी रकम शराब पर गंवा देने के बाद राजेश के पिता ने परिवार को सड़कों पर छोड़ दिया। राजेश ने पढ़ाई छोड़ दी और उसे परिवार का पेट पालने के लिए दमनजोड़ी आना पड़ा। उसे माहवार 1200 रुपये मिलते हैं और इसमें से वह 1000 रुपये घर भेज दे देता है। वह कहता है, "होटल का काम बहुत मुश्किल है। यहां आधी रात से पहले आराम नहीं मिलता।"

स्रोत : डुमुरीपुट, दमनजोड़ी में लिया गया साक्षात्कार, फरवरी 2010.

कोरापुट उड़ीसा के सबसे निर्धन जिलों में से एक है। यह अनुसूचित क्षेत्र है। यहां की 50 प्रतिशत आबादी अनुसूचित जनजाति है (1,180,637 में से 585,830)। जिले की 13 प्रतिशत आबादी (1,180,637 में से 153,932) अनुसूचित जातियों से है। अविभाजित कोरापुट घने पतझड़ी जंगलों के पार उपजाऊ जमीनों वाला इलाका था। यहां के आदिवासी परंपरागत खाद्य फसलों की घुमंतू खेती करते थे। यहां के आदिवासी वर्षा आधारित सिंचाई के सहारे साल में दो फसलों की खेती करते थे। आजीविका चलाना और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना उनका मुख्य उद्देश्य था। स्थानीय बाजार में बेचने के लिए वन उपज संग्रह और वानिकी यहां के लोगों की आजीविका का दूसरा मुख्य स्रोत था। आजादी मिलने के बाद कोरापुट और यहां के पड़ोसी जिले में कई विकास परियोजनाएं तथा औद्योगीकरण शुरू हुआ जिसके चलते लोगों की जमीनें छीनने लगीं, उन्हें जबरन पलायन के लिए मजबूर होना पड़ा और स्थानीय लोगों, खासतौर से आदिवासियों के प्राकृतिक संसाधनों और आजीविका पर गहरा असर पड़ा। अपर इंद्रावती, बालीमेला, कोलब, जोलापुट जलाशय जैसी जल विद्युत परियोजनाओं ने हजारों परिवारों को उनके गांवों और घरों से एक बार नहीं बल्कि कई बार उजाड़ा है। एचएएल फैक्ट्री, नालको और अन्य संबंधित उद्योगों की स्थापना ने स्थानीय आबादी को और भी तेजी से भूमिहीनता और गरीबी की गर्त में धकेल दिया है।

बॉक्साइट खनन परियोजना और उसकी टाउनशिप ने आदिवासियों के सामाजिक-आर्थिक तानेबाने को पूरी तरह बदल डाला है। गांव के मुखियाओं, परियोजना प्रभावित व्यक्तियों (पीएपी) की यूनियनों और विस्थापित शिविरों व गांवों में महिलाओं के साथ सामूहिक चर्चाओं से पता चलता है कि जिन बच्चों के परिवार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए हैं वे दमनजोड़ी शहर के आसपास हो रहे प्रत्यक्ष शहरीकरण के बावजूद कितनी अमानीय परिस्थितियों में पहुंच गये हैं। यहां हम ये समझने का प्रयास कर रहे थे कि ऐसे बच्चों के जीवन पर खनन उद्योग से क्या असर पड़े हैं जिनके परिवार नालको परियोजना के कारण विस्थापित हो गए थे और जो खनन क्षेत्र में रहते हैं। हमने यह समझने का प्रयास किया है कि इससे इन बच्चों के स्वास्थ्य, साक्षरता, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा, आर्थिक सुरक्षा और कानूनी अधिकारों पर क्या असर पड़ रहे हैं।

खनन उद्योग के आने से पहले इस इलाके में विशाल प्राकृतिक संसाधन थे और आदिवासी समुदाय अपनी आजीविका के लिए उन्हीं पर आश्रित थे। शिक्षा, चिकित्सा या आर्थिक उत्थान आदि के लिए सरकार की तरफ से किए गए विकास हस्तक्षेप यहां नगण्य रहे हैं और आदिवासियों को विरले ही कोई लाभ मिला है। खनन व्यवसाय को राष्ट्र के लिए समय की

मांग घोषित कर दिया गया था और इसे स्थानीय आबादी की तरक्की के लिए भी रामबाण नुस्खा बताया जा रहा था। आश्वासन दिया गया कि यह उद्योग राष्ट्र और स्थानीय जनता, दोनों के लिए आर्थिक खुशहाली का रास्ता खोल देगा। ऐसे बड़े-बड़े दावों के साथ उड़ीसा के दमनजोड़ी इलाके में नालको की बॉक्साइट परियोजना शुरू की गई थी। यह केस स्टडी इलाके के बच्चों की जमीनी हकीकत को उजागर करती है जो खनन और विकास की प्रचलित समझ से भिन्न है।

नैशनल एल्युमीनियम कंपनी लिमिटेड

नालको भारत की शुरुआती सार्वजनिक क्षेत्र कंपनियों में से एक है। इसकी स्थापना 1981 में कोरापुट जिले की पंचपटमली पहाड़ियों में मौजूद विशाल बॉक्साइट भंडारों से बॉक्साइट अयस्क निकालने और एल्युमिना का उत्पादन करने के लिए की गई थी। नालको द्वारा निकाले जा रहे अयस्क के कुल भंडार 11.28 करोड़ टन हैं। खान से 11 किलोमीटर दूर दमनजोड़ी स्थित रिफाइनरी परिसर की क्षमता सलाना 80 लाख टन एल्युमिना उत्पादन की है। कंपनी द्वारा कब्जे में लिया गया कुल क्षेत्रफल 10,058.76 एकड़ है जिसमें से 427.3 एकड़ खनन के लिए, 2638.96 एकड़ टाउनशिप के लिए और 6,992.5 एकड़ संयंत्र के लिए था। कुल जमीन में से 2,805. 49 एकड़ सरकारी जमीन है और 2834.56 हैक्टेयर यानी लगभग 41.36 प्रतिशत स्थानीय किसानों की थी।[264] नालको बिजली घर की क्षमता 55.5 मेगावॉट है जबकि उसकी वास्तविक आवश्यकता केवल 32 मेगावॉट है।

विस्थापन और मुआवजा/पुनर्वास

परियोजना प्रभावित लोगों के साथ साक्षात्कारों के आधार पर जो प्राथमिक जानकारियां इकट्ठा की गईं उनसे पता चलता है कि कोरापुट, पोतांगी, सेमिलिगुड़ा और लक्ष्मीपुर ब्लॉकों के 26 गांव प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए थे। इन गांवों के 597 परिवारों के जमीन और आवास, दोनों छिन गए थे। प्रस्तुत ऐक्शन रिसर्च अमलबाड़ी, चम्पापदर, दमनजोड़ी, गोड़ागुड़ा, जालीगुड़ा, मारिचीमाला और पुत्सिल गांवों में की गई जो इस परियोजना से सर्वाधिक प्रभावित गांव रहे हैं। कुल परियोजना प्रभावित आबादी में से 254 परिवार आदिवासी समुदायों के, 56 परिवार दलित समुदायों के और शेष परिवार माली, सुंडी आदि ओबीसी समुदायों के थे। विस्थापित लोगों के बयानों के मुताबिक नालको परियोजना से विस्थापित परिवारों की नवीनतम संख्या 631 है।

नालको द्वारा दिए गए प्रारंभिक पुनर्वास में 597 परिवारों को विस्थापित परिवार माना गया था। इनमें से 441 को अमलबाड़ी विस्थापित शिविर (डिस्प्लेस्ड पर्सस कैम्प-डीपी) में पुनर्वास दिया गया। यहां परियोजना प्रभावित 13 गांवों को पुनर्वास दिया जाना था। बाद में इन गांवों की संख्या बढ़ाकर 156 कर दी गई। खोरागुड़ा (हमारी अध्ययन टीम ने इस प्रभावित गांव का दौरा नहीं किया) और चम्पापदर, इन दो गांवों से विस्थापित 75 परिवारों के लिए चम्पापदर में एक और विस्थापित शिविर खोला गया।[265] फिलहाल चम्पापदर विस्थापित शिविर में 200 से ज्यादा परिवार रह रहे हैं। नालकों द्वारा जो आवास उपलब्ध कराए गए वे 10X10 फुट क्षेत्रफल वाले हैं। क्योंकि पुनर्वास कभी भी सही मायनों में पूरा नहीं हो पाया इसलिए परियोजना प्रभावित लोगों को अपने मकान बनाने या कंपनी द्व ारा उपलब्ध कराए गए आधे-अधूरे मकानों को पूरा करने के लिए अपने पास से पैसा लगाना पड़ा। चम्पापदर का विस्थापित शिविर कंपनी की टाउनशिप से काफी दूर है जबकि अमलबाड़ी का शिविर नजदीक पड़ता है। इन दोनों विस्थापित शिविरों में पीने के पानी की आधारभूत सुविधा दी गई थी। कुछ गांवों में ट्यूबवैल और नल्के लगे हुए थे लेकिन इन गांवों के लोग भी घरेलू कामों के लिए प्राकृतिक जलधाराओं और नदियों के पानी पर ही निर्भर हैं। पिछले साल प्रभावित परिवारों के कर्मचारियों ने एक विशाल रैली निकाली थी और मांग की थी कि ऐसे परिवारों को भी पुनर्वास कार्यक्रम में जगह दी जाए जिनकी मुखिया महिलाएं हैं। यह इस बात का संकेत है कि परियोजना प्रभावित योजनाओं में कंपनी एकल महिलाओं और विधवाओं को कितनी उपेक्षा की दृष्टि से देखती है।

ज्यादातर प्रभावित गांव अपनी उपजाऊ खेतिहर जमीन गंवा चुके हैं। सबसे ज्यादा विस्थापित दमनजोड़ी के थे (लगभग 170) जहां लोगों की निजी खेतिहर जमीन छीन ली गई थी। लोगों ने बताया कि उन्हें धान के खेतों के लिए 3,000 रुपये प्रति एकड़ और सूखी जमीन के लिए 1,100 रुपये प्रति एकड़ मुआवजा दिया गया था। पुत्सिल में प्रति परिवार औसत मुआवजा केवल 1,300 रुपये प्रति एकड़ रहा है। मरचीमाला में 50 परिवारों की जमीन छीन ली गई लेकिन उनके मकान बचे रहे। इन परिवारों को कोई वैकल्पिक जमीन नहीं दी गई। उन्हें सिर्फ नगद मुआवजा दिया गया जो 1,500 रुपये प्रति एकड़ के आसपास बैठता था। सिर्फ एक व्यक्ति को कंपनी में नौकरी मिली क्योंकि उसकी जमीन और मकान, दोनों छिन गए थे। जानीगुड़ा गांव में कंपनी ने 240 एकड़ से ज्यादा जमीन का अधिग्रहण किया लेकिन जिन लोगों की जमीन ली गई उनको कोई वैकल्पिक जमीन नहीं दी। यहां के लोगों को भी केवल आर्थिक मुआवजा दिया गया जो औसतन 1,500 रुपये प्रति एकड़ था। क्योंकि गांव वालों की सिर्फ जमीन छिनी थी और उनके मकान बच गए थे इसलिए कंपनी ने उन्हें नौकरी नहीं दी। चम्पापदर से विस्थापित 75 परिवारों को 1500 रुपये प्रति एकड़ का औसत मुआवजा दिया गया।[266]

264. ईपीडब्ल्यू, जून 15, 1996, पृष्ठ 1533-1538.

265. सचिव, नाल्को डिस्पलेस्ड ऐण्ड लैंड लूजर एम्पलॉयी एसोसिएशन।

266. जानीगुड़ा के ग्रामीणों का वक्तव्य।

विस्थापित शिविर, दमन जोड़ी
(फोटो - जून 2009)

जमीन का मुआवजा सिर्फ उन किसानों को दिया गया जिनके पास अपने नाम पर पट्टे थे। इस प्रकार ऐसे कई आदिवासी और दलित परिवारों की आजीविका भी छीन ली गई और उन्हें कोई मुआवजा भी नहीं दिया गया जिनके पास जमीन के पट्टे नहीं थे। परियोजना प्रभावितों ने यह भी बताया कि अब ज्यादातर प्रभावित परिवार भूमिहीन मजदूर बनकर रह गए हैं। वे खेती, पशुपालन करते हैं या निर्माण एवं अन्य औद्योगिक गतिविधियों में दिहाड़ी मजदूर हैं। इन सभी प्रभावित गांवों में साक्षरता दर 10-30 प्रतिशत के बीच है। केवल दमनजोड़ी में साक्षरता दर 60-70 प्रतिशत है क्योंकि यहां बाहर के लोग काफी संख्या में आकर बस गए हैं।

कंपनी में प्रति परिवार ज्यादा से ज्यादा एक व्यक्ति को नौकरी दी गई। जिन परिवारों को नौकरी मिली उनमें प्रायः सबसे बड़े बेटे को तो नौकरी मिल गई लेकिन बाकी भूमिहीन भई मजदूर बनकर रह गए। नौकरी सिर्फ ऐसे परिवारों को दी गई जिनकी जमीन और मकान, दोनों छीन लिये गए थे। विस्थापित व्यक्तियों को जो नौकरियां दी गई वे मुख्य रूप से ड्राइवर, ऑपरेटर, ऑफिस अटेंडेंट और मजदूर जैसी अर्द्धकुशल और अकुशल श्रम वाली नौकरियां थीं। लोगों ने बताया कि कंपनी के 25 साल के जीवन काल में तमाम विस्थापित लोगों में से केवल 7 लोगों को अकुशल से अर्द्धकुशल श्रेणी में पदोन्नित दी गई है। नौकरी पाने वाले विस्थापित लोगों में से 108 लोगों की मृत्यु हो चुकी है और 20 से ज्यादा रिटायर हो चुके हैं। ऐसे लोगों के परिवार से किसी और को नौकरी नहीं दी गई। परियोजना प्रभावित लोगों के अनुसार अभी तक

टेबल 2.15 : प्रभावित गांवों की आबादी

क्र.सं.	गांव	प्रभावित परिवार	छीनी गई कुल जमीन की संख्या	विस्थापित परिवारों	प्राप्त मुआवजा की संख्या	नालको में मिली नौकरियों की संख्या
1.	अमलबाड़ी	-	-	-	-	200
2.	चम्पापदर	75	सूचना उपलब्ध नहीं	75	औसतन 1500 रुपये प्रति एकड़	59
3.	दमनजोड़ी	170	सूचना उपलब्ध नहीं	170	औसतऩ 1500 रुपये प्रति एकड	170
4.	गोडूगुड़ा	-	-	-	-	-
5.	जानीगुड़ा	129	240 एकड़	कोई विस्थापन नहीं	औसतन 1500 रुपये प्रति एकड़	0
6.	मरचीमाला	50 से अधिक	सूचना उपलब्ध नहीं	1	1550 रुपये प्रति एकड़	1
7.	पुत्सिल	20 से अधिक	सूचना उपलब्ध नहीं	18	लगभग़ 1300 रुपये प्रति एकड	18

नोट : 1. अमलबाड़ी में ही नया डीपी शिविर स्थापित किया गया था।
2. गोड़ागुड़ा गांव बॉक्साइट खान से सटा हुआ है। यहां के लोगों की जमीन या मकान तो नहीं लिये गए लेकिन यहां के निवासी खनन कार्यों के कारण अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए हैं।

स्रोत : पीएपी यूनियनें एवं गांव के बुजुर्ग, ये संख्याएं लोगों के बयानों पर आधारित हैं।

विस्थापित समुदायों की केवल 20 महिलाएं ही कंपनी में काम कर रही हैं। चम्पापदर डीपी शिविर में 75 विस्थापित परिवारों में से 59 लोगों को नौकरियां मिली जिनमें से 7 अनुसूचित जाति समुदाय से और बाकी ओबीसी वर्ग से हैं। अमलबाड़ी डीपी शिविर में 400 से ज्यादा परिवार हैं लेकिन केवल 200 परिवारों को ही कंपनी में नौकरी मिल पाई। जानीगुड़ा की 240 एकड़ खेतिहर जमीन का अधिग्रहण किया गया था लेकिन किसी भी प्रभावित परिवार के व्यक्ति को नौकरी नहीं दी गई। उन्हें 1981 में सिर्फ नकद मुआवजा दिया गया था। मरचीमाला में प्रभावित परिवारों की संख्या 50 से ज्यादा थी लेकिन केवल एक ऐसे व्यक्ति को ही कंपनी में नौकरी दी गई जिसकी जमीन और मकान, दोनों छीन लिए गए थे। पुत्सिल में 18 परिवारों के जमीन और मकान, दोनों छीन लिए गए थे इसलिए उन्हें नौकरी दे दी गई।

टेबल 2.15 में ऐसे कुछ प्रभावित गांवों की स्थिति का ब्यौरा दिया गया है जिनका अध्ययन टीम ने दौरा किया। यहां प्रभावित परिवारों, उनको दिए गए मुआवजे और नौकरी की स्थिति देखी जा सकती है।

खनन प्रभावित गांवों के बच्चों की शिक्षा

नालको द्वारा दो स्कूल चलाए जा रहे हैं। इनमें एक दिल्ली पब्लिक स्कूल है जो अंग्रेजी माध्यम का स्कूल है और दूसरा सरस्वती विद्या मंदिर है जो उड़ीया माध्यम का स्कूल है। हमने देखा कि कंपनी द्वारा चलाए जा रहे शिक्षा संस्थान मुख्य रूप से कर्मचारियों और प्रबंधकीय स्टाफ के बच्चों के लिए हैं। इन स्कूलों में स्थानीय समुदायों के बच्चों को दाखिला नहीं मिलता। फलस्वरूप, विस्थापित परिवारों या आस-पास के गांवों का कोई भी आदिवासी या दलित बच्चा कंपनी के स्कूलों में नहीं जाता। इन स्कूलों में केवल उन्हीं विस्थापित परिवारों के बच्चे जा पाते हैं जिनके परिवार से किसी को कंपनी में नौकरी मिल गई है। इसका एक कारण यह भी है कि यह स्कूल टाउनशिप के पास स्थित है जहां कर्मचारी रहते हैं जबकि प्रभावित आदिवासी और दलित समुदाय तथा डीपी शिविर इन संस्थाओं से बहुत दूर हैं और यातायात की कोई भरोसेमंद सुविधा नहीं है। लोगों ने यह भी बताया कि वे अपने बच्चों को नालको के स्कूलों में नहीं भेजना चाहते क्योंकि ये बच्चे वहां की पाठ्यचर्या को नहीं समझ पाते और उनमें से बहुत सारे हाई स्कूल तक पहुंचते-पहुंचते स्कूल छोड़ देते हैं। इसके अलावा आदिवासी व दलित बच्चों तथा नालको के कर्मचारियों व प्रबंधकों के बच्चों के बीच जो सामाजिक फासला है उसकी वजह से भी विस्थापित समुदायों के बच्चे इन स्कूलों में नहीं जा पाते। इनमें से ज्यादातर सरकारी प्राइमरी और अपर प्राइमरी स्कूलों की शरण में जाते हैं जहां सुविधाओं और पढ़ाई का स्तर बहुत खराब है।

पूरे इलाके में स्कूल ड्रॉपआउट दर बहुत चिंताजनक है। टेबल 2.16 से इस बात का अंदाजा मिलता है कि प्रभावित गांवों के बच्चों में ड्रॉपआउट दर कितनी ज्यादा है। इससे यह भी पता चलता है कि बाल मजदूरी में फंसे बच्चों की कितनी तदाद है। टेबल 2.17 में प्रभावित गांवों के साथ तुलना के लिए अधिकृत डीआईएसई आंकड़े दिए गए हैं।

जानीगुड़ा गांव के स्कूल में दो स्थायी शिक्षक और एक सहायक शिक्षक/शिक्षाकर्मी हैं। गांव वालों का कहना है कि उनमें से केवल हैडमास्टर ही नियमित रूप से स्कूल आता है। स्कूल की इमारत बहुत खस्ता हालत में है। वहां बच्चों के लिए न्यूनतम सुविधाएं हैं। हैडमास्टर ने बताया कि स्कूल ड्रॉपआउट दर बढ़ती जा रही है जोकि चिंता का विषय है क्योंकि बच्चे खेतिहर मजदूरी या मवेशियों को चराने के लिए जाने लगे हैं। गोड़ागुड़ा गांव के करीब 50-60 बच्चे पढ़ाई छोड़ चुके हैं और 20-30 बच्चे कभी-कभी स्कूल जाते हैं। जानीगुड़ा में गांव वालों ने बताया कि 150 से ज्यादा बच्चे पढ़ाई छोड़ चुके हैं।

चम्पापदर गांव में सिर्फ एक प्राथमिक स्कूल है जो जैसे-तैसे चल पा रहा है। इतनी आबादी वाली बस्ती में कॉलेज जाने वाले सिर्फ 3-4 विद्यार्थी हैं और केवल 4-5 युवाओं के पास डिप्लोमा है।

टेबल 2.16 : कोरापुट जिले में प्रभावित परिवारों के बच्चों से संबंधित कुछ आंकड़े

जिला	ब्लॉक	गांव	कुल बच्चे	स्कूल जाने वाले बच्चे	बाल मजदूर	स्कूल ड्रॉपआउट्स की संख्या
कोरापुट	दमनजोड़ी	अमलबाड़ी	800-900	250-300	150	पिछले साल 20
	कोरापुट	चम्पापदर	300	60-70	50-70	सूचना उपलब्ध नहीं
	दमनजोड़ी	दमनजोड़ी	3000-3500	लगभग 2500	500-600	सूचना उपलब्ध नहीं
	काकिरीगुमा	गोड़ागुड़ा	650-700	222	60	पिछले साल 15-20
	दमनजोड़ी	जानीगुड़ा	लगभग 250	30-35	लगभग 150	150 से अधिक

स्रोत : स्थानीय समुदायों के मुखिया (ये संख्याएं लोगों के बयानों पर आधारित हैं।)

टेबल 2.17 : स्कूल में दाखिलों की स्थिति

जिला	ब्लॉक	गांव	कुल दाखिले	अजा	अजजा	ओबीसी	अन्य
कोरापुट	दमनजोड़ी	अमलबाड़ी	44	9	24	0	0
	कोरापुट	चम्पापदर	28	0	4	0	0
	काकिरीगुमा	गोडागुड़ा	176	14	59	0	0

अन्य = उसी कक्षा में दोबारा पढ़ रहे बच्चे, सीडब्ल्यूएसएन एवं मुसलिम।
नोट : कुल योग में जो गड़बड़ी है वह डीआईएसई रिपोर्ट कार्ड में इसी प्रकार दी गई है।

स्रोतः डीआईएसई रिपोर्ट कार्ड, सितंबर 2008

टेबल 2.18 : इलाके में शैक्षिक संस्थाओं की स्थिति

गांव	प्राथमिक स्कूलों की संख्या	हाई स्कूलों की संख्या	कॉलेजों की संख्या
अमलबाड़ी	1	0	0
चम्पापदर	1	0	0
दमनजोड़ी	6	2	1
गोड़ागुड़ा	1	0	0
जानीगुड़ा	1	0	0
मरचीमाला	1	0	0

स्रोतः डीआईएसई रिपोर्ट कार्ड, सितंबर 2008

जानीगुड़ा गांव में एक प्राथमिक-अपर प्राथमिक स्कूल है। लेकिन यह स्कूल सही ढंग से नहीं चल रहा है। टेबल 2.18 में शिक्षा संस्थानों की मोटा-मोटी तस्वीर दी गई है।

आंगनवाड़ियों में बच्चे और कुपोषण की स्थिति

परजा स्ट्रीट *आंगनवाड़ी* भी गोडागुड़ा के तीन *आंगनवाड़ी* केंद्रों में से एक है। इस *आंगनवाड़ी* में तैनात *आंगनवाड़ी* कामगार ने बताया कि वहां 51 बच्चों के नाम दर्ज हैं जिनमें से 0-5 वर्ष के 10 बच्चे सामान्य श्रेणी में हैं जबकि 11 बच्चे श्रेणी-3 कुपोषण, 12 बच्चे श्रेणी-2 कुपोषण और शेष बच्चे गंभीर कुपोषण की श्रेणी में हैं। उसने यह भी बताया कि अध्ययन के समय वहां नवजात प्रसव के तीन मामले थे और तीन महिलाएं गर्भवती थीं। *आंगनवाड़ी* में नियमित रूप से बहुत कम बच्चे आते हैं क्योंकि वहां कोई सुविधाएं नहीं हैं। नालको की तरफ से कभी-कभार लगने वाले स्वास्थ्य शिविरों के अलावा वहां कोई चिकित्सा सुविधा नहीं है। *आंगनवाड़ी* कामगार ने बताया कि वहां टीबी के भी मामले आते हैं लेकिन वह उनकी सटीक संख्या नहीं बता पाई। टेबल 2.19 में परजा स्ट्रीट *आंगनवाड़ी* केंद्र में दर्ज बच्चों की संख्या दी गई है। जानीगुड़ा में भी एक *आंगनवाड़ी* केंद्र है लेकिन यहां की *आंगनवाड़ी* कामगार दूसरे गांव में रहती है और वह कभी-कभी यहां के बच्चों को देखने आती है। चम्पापदर गांव में एक *आंगनवाड़ी* केंद्र है जो नियमित रूप से नहीं चल पाता।

टेबल 2.19 : परजा स्ट्रीट, गोड़ागुड़ा स्थित आंगनवाड़ी केंद्र में दर्ज बच्चों की संख्या

नाम	कुल		अजजा		अजा	
	लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां
परजा स्ट्रीट	25	26	19	23	06	03

स्रोत : आंगनवाड़ी केंद्र, परजा स्ट्रीट, गोड़ागुड़ा।

बाल मजदूरी

बाल मजदूरी किसी भी समुदाय की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का एक स्पष्ट पैमाना होती है। खनन परियोजनाओं के कारण आधारभूत शिक्षा के अभाव, आजीविका अवसरों में गिरावट और भूमिहीनता के चलते बाल मजदूरी इन समुदायों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को स्पष्ट कर देती है। इन सभी कारकों के फलस्वरूप पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चों की संख्या में इजाफा हुआ है क्योंकि वे परिवार की आय में हाथ बंटाने के लिए विवश हैं। टाउनशिप में घरेलू नौकरानियों की बढ़ती मांग की वजह से भी लड़कियां पढ़ाई छोड़कर यह काम करने लगी हैं। हमने जिन युवाओं से बात की उन्होंने बताया कि स्कूलों में पढ़ाई की खराब हालात के कारण वे मैट्रिक का इम्तिहान पास नहीं कर पाते और इक्का-दुक्का ही कॉलेज तक पहुंच पाते हैं इसलिए वे ट्रकों में क्लीनर व ड्राइवर बन जाते हैं; निजी ठेकेदारों के लिए ऑटो और बस चलाने लगते हैं या छोटी-मोटी दुकानों या व्यवसायों में नौकरी पकड़ लेते हैं।

नाल्को टाउनशिप के बाहर बाल मजदूर
(फोटो : समता)

नालको इलाके के आसपास बाल मजदूरी काफी ज्यादा है हालांकि कंपनी परिसर के भीतर कोई बाल मजदूर नहीं है। दमनजाड़ी स्थिति नालको टाउनशिप के निकट स्थित माठलपुट में बाल मजदूरी ज्यादा है क्योंकि यह प्रवासी मजदूरों की बस्ती है। स्थानीय ग्रामीणों के अनुसार दमनजोड़ी में विभिन्न प्रकार के कामों में लगभग 500-600 बाल मजदूर हैं। इनमें से ज्यादातर बाल मजदूर माठलपुट झुग्गी-बस्ती के हैं जो कि दमनजोड़ी कस्बे का ही विस्तार क्षेत्र है। अमलबाड़ी और चम्पापदर के डीपी शिविर के लड़के-लड़कियां ठेकेदारों के तहत काम करते हैं। चम्पापदर में 18 साल से कम उम्र के लगभग 30-40 ठेकेदारों के पास दिहाड़ी मजदूर हैं जबकि 20-30 लड़कियां या तो घरेलू नौकरानी हैं या ठेकेदारों के पास काम करती हैं। अमलबाड़ी में हमें बताया गया कि लगभग 150 बच्चे खनन टाउनशिप और आसपास के इलाके में विभिन्न प्रकार की दिहाड़ी मजदूरी करते हैं।

क्योंकि अमलबाड़ी डीपी शिविर के 131 परिवारों की मुखिया विधवाएं हैं जिनके पास आमदनी का कोई स्रोत नहीं है इसलिए इन परिवारों के ज्यादातर बच्चे खनन एवं संबंधित गतिविधियों में शारीरिक श्रम करते हैं। मरचीमाला में लगभग 200 लड़के और 100 लड़कियां बाल मजदूर थीं। पुत्सिल में कुछ बच्चे खनन एवं संबंधित व्यवसायों में दिहाड़ी मजदूरी कर रहे हैं। गोड़ागुड़ा में 50 से ज्यादा बच्चे मजदूरी करते हैं। जानीगुड़ा के लोगों ने बताया कि स्कूल छोड़ चुके 150 बच्चे दिहाड़ी खेतिहर मजदूरी करते हैं।

ऐसे बहुत सारे बच्चे होटलों, ढाबों और छोटी दुकानों में मजदूरी करते हैं इसलिए अनुमान लगाया जा सकता है कि परियोजना प्रभावित क्षेत्रों के लगभग 500-1000 बच्चे लक्ष्मीपुर, काकिरीगुमा, दमनजोड़ी कस्बा, कोरापुट, सेमिलीगुड़ा, पोतांगी क्षेत्र में मजदूरी कर रहे हैं। बहुत सारे युवा अपनी रोजी-रोटी के लिए चेन्नई, मुंबई, हैदराबाद और अन्य शहरों को चले गए हैं।

स्वास्थ्य एवं पर्यावरण

स्थानीय समुदाय के लोगों ने बताया कि वायु एवं जल प्रदूषण बहुत ज्यादा है। कुटुंडी, करडीगुड़ा, भीतरगुड़ा, लचुआनी, गोड़ागुड़ा गांव सबसे बुरी तरह प्रभावित हैं।[267] पानी का संकट यहां के लोगों का सबसे बड़ा संकट है। पानी के लिए महिलाओं और बच्चों को बहुत दूर तक जाना पड़ता है। इन गांवों के लोगों ने बताया कि खनन गतिविधियों के कारण पंचपटमली पहाड़ियों के परंपरागत जल स्रोत (प्राकृतिक झरने) सूख चुके हैं और कई बारहमासी जलधाराओं में पानी घट गया है। फलस्वरूप घरेलू इस्तेमाल और खेती, दोनों के लिए पानी की व्यवस्था मुश्किल हो गई है। गर्मियों में समस्या और गंभीर हो जाती है। खान से निकलने वाले गंदे पानी तथा स्थानीय एवं प्रवासी आबादी द्वारा गंदे पानी को सही ढंग से निस्तारण न करने के कारण जल संसाधन दूषित हो गए हैं और यह यहां के लोगों की प्रमुख समस्या थी। फलस्वरूप यहां दस्त और त्वचा रोग काफी बढ़ गए हैं। अब यहां कैंसर जैसे जानलेवा रोग भी सामने आने लगे हैं। ये बात समुदायों के मुखियाओं और सदस्यों ने बताई जिसकी चिकित्सकीय पुष्टि बाकी है। पुत्सिल गांव के जिन 18 लोगों को नालको की खानों में नौकरी मिली है उनमें से 10 लोगों की मृत्यु हो चुकी है। गांव वालों का कहना है कि ये सभी लोग कैंसर से मरे हैं। उनका कहना है कि वे नालको अस्पताल की रिपोर्ट के आधार पर ऐसा मानते हैं।[268] जानीगुड़ा गांव में टीबी के 30-40 मामले दिहाड़ी मजदूरों में से थे। गांव के लोगों ने अपने पीने के पानी में प्रदूषण का भी जिक्र किया और बताया कि इससे उनके स्वास्थ्य पर किस तरह असर पड़ रहा है।

267. नाल्को डिस्पलेस्ड ऐण्ड लैंड लूजर एम्पलॉयी एसोसिएशन के सदस्यों का वक्तव्य।
268. उपरोक्त।

सरकारी स्वास्थ्य तंत्र के नाम पर गोड़ागुड़ा और अमलबाड़ी में 1-1 एसएचसी और दमनजोड़ी में एक पीएचसी है।

सामाजिक उथल पुथल और यौन उत्पीड़न

गांव वालों ने अपने समुदाय की महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न की 10-15 घटनाओं के बारे में बताया। दिहाड़ी मजदूरी के लिए खानों की ओर जाते हुए महिलाओं को अक्सर प्रवासी मजदूरों और ट्रक ड्राइवरों के हमलों का सामना करना पड़ता है।[269] जिन एकल महिलाओं व विधवाओं के पास आजीविका का कोई दूसरा स्रोत नहीं है उनको दमनजोड़ी और माठलपट के आस-पास देह व्यापार में धकेल दिया गया है। 100-200 एचआईवी/एड्स प्रभावित लोग भी यहां हैं लेकिन उनके बारे में सटीक आंकड़े देना मुश्किल है। एचआईवी के मामले में तो दमनजोड़ी को दूसरे गंजम का दर्जा दिया जाने लगा है। गंजम कोरापुट जिले का ही एक शहर है जहां एचआईवी/एड्स के मामले बहुत ज्यादा पाए गए हैं। गंजम और तटीय पट्टी से बहुत सारे प्रवासी मजदूर यहां आते हैं।[270]

एकल महिला - असुरक्षित और बेसहारा, दमनजोड़ी
(फोटो - जून 2009)

डीपी शिविरों का सामाजिक परिवेश एक ग्रामीण समुदाय की बजाय झुग्गी-बस्ती वाला परिवेश बन गया है जहां शराबखोरी, घरेलू हिंसा, चोरी और अपराध जैसी समस्याएं आम हो गई हैं। हालांकि डीपी शिविरों में बुनियादी सुविधाएं नहीं हैं लेकिन वहां शराब बहुत आसानी से मिल जाती है। पुनर्वास बस्तियों के भीतर ही शराब की दुकानें खुली हुई हैं। दमनजोड़ी में भी हालात भिन्न नहीं है। पुरुष जो पैसा कमा कर लाते हैं वह सीधे शराब पर खर्च हो जाता है जिससे घरेलू हिंसा, छोटे-मोटे झगड़ों और महिलाओं के शारीरिक उत्पीड़न को बढ़ावा मिलता है। पहले आदिवासी बच्चों को इस तरह की सामाजिक उथल-पुथल का कोई अनुभव नहीं था लेकिन अब वे इस पतनशील सामाजिक माहौल से रोज जूझ रहे हैं। यह एक अप्रत्यक्ष कीमत है और इसको मुआवजे की तराजू में नहीं तोला जा सकता। ये एक ऐसी कीमत है जिसे आर्थिक लाभ के मुकाबले महत्वपूर्ण नहीं माना जाता है; इस तरह के प्रभावों के उल्लेख का मजाक उड़ाया जाता है और यह दलील दी जाती है कि एक औद्योगिक रूप से उन्नत भारत की आर्थिक छवि के सामने इस तरह के मामूली और अपरिहार्य प्रभावों को बेवजह तूल दिया जा रहा है।

निष्कर्ष

नालको द्वारा विस्थापित समुदाय का पुनर्वास तीन दशकों बाद भी अधूरा है। 2009 में इस अध्ययन के समय भी परियोजना प्रभावित लोग समुचित पुनर्वास के लिए हड़ताल और आंदोलनों का रास्ता अपनाए हुए थे। यह इस बात का संकेत है कि नालको प्रशासन ने विस्थापित परिवारों की समस्याओं को अभी भी पूरी तरह संसोधित नहीं किया है। इस दौरान अगर कोई प्रभाव आकलन रिपोर्ट तैयार की गई होगी तो उसे भी कभी सार्वजनिक नहीं किया गया और न ही पुनर्वास प्रक्रिया की कोई समीक्षा हुई है। परियोजना प्रभावित लोगों के साथ मिलकर उपलब्ध सेवाओं का भी जायजा नहीं लिया गया है। खास बात यह है कि भारी बाल मजदूरी, स्कूल ड्रॉपआउट दर में भारी इजाफे और कुपोषण की व्यापक स्थिति के बावजूद बच्चों पर पड़ने वाले प्रभावों का कोई आकलन नहीं किया गया है। विस्थापितों के शिविरों में एकल माताओं, विधवाओं और बेसहारा औरतों की भारी तादाद खनन परियोजना का सीधा नतीजा है और वे अपने बच्चों की न्यूनतम आवश्यकताओं को भी पूरा करने में असमर्थ हैं। परंतु उनकी दुर्दशा पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। नई राष्ट्रीय पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन नीति में सिर्फ नकद मुआवजे और इस आशय के स्वैच्छिक आश्वासन का उल्लेख किया गया है कि संबंधित परियोजनाओं और सरकारों की ओर से अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह किया जाएगा।

(*आभार :* यह केस स्टडी नालको डिस्प्लेस्ड ऐण्ड लैंड लूज़र्स एम्प्लॉई एसोसिएशन की सहायता से की गई जिन्होंने हमें आंकड़े उपलब्ध कराए, समुदायों से मिलवाया और फील्ड डेटा इकट्ठा करने में मदद दी।)

सुंदरगढ़ में डोलोमाइट और चूना पत्थर की खदानें

"मेरा नाम अंजना (बदला हुआ नाम) है। मैं पिछले साल भर से यहां की क्रशिंग यूनिट में नौकरी कर रही हूं क्योंकि मेरा

269. जानीगुड़ा व चंपापदर के लोगों का वक्तव्य।
270. नाल्को डिस्प्लेस्ड ऐण्ड लैंड लूजर एम्पलॉयी एसोसिएशन के सदस्यों का वक्तव्य।

परिवार बहुत गरीब है। गाड़ी में एक टोकरी अयस्क भरने के लिए क्रशर मालिक हमें 25 पैसे देता है। मुझे दिन में 40-50 रुपये मिलते हैं। इसी पैसे से मैं अपने छोटे भाई और बहन को स्कूल भेजती हूं। क्रशर का मालिक हर हफ्ते मुझे गन्ने देता है ताकि मैं और काम कर सकूं। मैं कभी स्कूल नहीं गई।"

स्रोत : ब्रह्मणीमारा गांव, सुंदरगढ़ के पास लिया गया साक्षात्कार, नवंबर 2009.

सुंदरगढ़ जिले में डोलोमाइट और चूना पत्थर खुदाई का लंबा इतिहास रहा है। यह केस स्टडी सुंदरगढ़ जिले के बिरमित्रापुर में की गई है जहां उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत से ही खनन कार्य चल रहे हैं। यहां खनिज पदार्थों की खुदाई बड्र्स इंडिया लिमिटेड कंपनी के जरिए अंग्रेजों ने शुरू की थी जिसे अब बिसरा स्टोनलाइम कंपनी लिमिटेड (बीएसएल) के नाम से जाना जाता है। यहां चूना पत्थर और डोलोमाइट के अनुमानित भंडार क्रमशः 37.5 करोड़ टन और 26.5 करोड़ टन बताए जाते हैं।

खान विभाग, उड़ीसा के अनुसार सुंदरगढ़ जिले में कुल 87 रिपोर्टिंग मान्इस हैं जिनमें से 19 खानों में डोलोमाइट और चूना पत्थर तथा 4 में केवल डोलोमाइट निकलता है। विभाग के पास खनन पट्टों के लिए 268 अर्जियां अभी भी विचाराधीन हैं। जिले में 49 स्पंज आयरन फैक्टरियां हैं। हर फैक्टरी में 15-20 बोर वैल हैं जिनकी गहराई कम से कम 800 फुट है। कुछ स्पंज आयरन संयंत्रों और खानों को प्रदूषण मानकों का पालन न करने की वजह से बंद कर दिया गया था। यह एक सर्वविदित तथ्य है जिसको बिरमित्रापुर के भूतपूर्व चेयरमैन श्री किशोर कुजुर ने भी दोहराया कि इस इलाके में जितनी कानूनी खानें हैं उतनी ही गैर-कानूनी खानें भी चल रही हैं। अब सरकार सुंदरगढ़ में सीमेंट के विशाल कारखाने लगाने के लिए बहुराष्ट्रीय निगमों को आमंत्रित कर रही है।

एनसीएलपी स्कूल, बिरमित्रापुर, सुंदरगढ़
(फोटो - नवंबर 2009)

यह केस स्टडी बिरमित्रापुर नगरपालिका क्षेत्र में की गई जो कि सुंदरगढ़ में सर्वाधिक खनन वाला इलाका है। यह रिपोर्ट कुखराजोला, चनाबहार और कंसाबहल गांवों में स्थित डोलोमाइट एवं चूना पत्थर खानों तथा मुंडाटोली, ब्रह्मणीमारा गांवों में बीएसएल की खानों के दौरों के आधार पर तैयार की गई है। इस दौरे में पूर्णा पन्नी डोलोमाइट एवं चूना पत्थर खानों एवं गांवों का भी दौरा किया गया जो अब एक बंद कर दिया गया खान स्थल है।

सुंदरगढ़ जिले में 17 ब्लॉक और 262 ग्राम पंचायतें हैं। यहां मुख्य रूप से अनुसूचित जनजाति आबादी रहती है। जिले की कुल 1,830,673 की आबादी में अनुसूचित जनजाति आबादी 918, 903 है। सुंदरगढ़ में खरिया, मानकीड़ी, मानकीड़िया और बिरहोर मुख्य आदिवासी समूह हैं जिनका जिले की आबादी में हिस्सा 50.74 प्रतिशत बैठता है। यह जिला संविधान की पांचवी अनुसूची वाले क्षेत्रों में आता है।

आंगनवाड़ियों में बच्चों की स्थिति

बिरमित्रापुर में 0-6 साल के बच्चों की संख्या लगभग 2500 है लकिन उनमें से बहुत थोड़े बच्चे ही *आंगनवाड़ी* केंद्रों में जाते हैं। ब्रह्मणीमारा गांव में *आंगनवाड़ी* केंद्र और स्कूल, दोनों एक छत के नीचे ही चलते हैं। *आंगनवाड़ी* केंद्र के लिए अलग से इमारत का इंतजाम नहीं हो पा रहा है। यह बिरमित्रापुर नगर पालिका का एक बड़ा गांव है इसलिए यहां 0-6 वर्ष के बच्चों की संख्या काफी ज्यादा है। ब्राह्मणीमारा गांव में 0-6 साल के बच्चों की संख्या 91 है जिसका ब्यौरा टेबल 2.20 में दिया गया है।

टेबल 2.20 : ब्राह्मणीमारा आंगनवाड़ी में बच्चों का ब्यौरा

श्रेणी	कुल	लड़के	लड़कियां
अजजा	58	27	31
अजा	18	11	7
सामान्य	15	8	7

स्रोत : आंगनवाड़ी केंद्र, ब्राह्मणीमारा गांव।

इस साल इस केंद्र में 18 कुपोषित बच्चे हैं जिनमें से 3-4 गंभीर कुपोषण के शिकार हैं और बाकी बच्चे श्रेणी-1, 2, 3 और 4 कुपोषण के तहत आते हैं।

आंगनवाड़ी कामगार ने बताया कि इस साल गांव में टीबी के भी 3-4 मरीज आ चुके हैं जिनका इलाज चल रहा है। उसने बताया कि गांव में फाइलेरिया के 8-9 पंजीकृत मामले हैं। उसका कहना था कि यह मुख्य रूप से पानी में बढ़ रहे प्रदूषण का नतीजा है। बिरमित्रापुर आईसीडीएस परियोजना के बाल विकास परियोजना अधिकारी ने इस नगरपालिका में बच्चों की दशा

के बारे में कुछ महत्वपूर्ण बातें बताईं। उनके पास रिकॉर्ड्स के मुताबिक यहां 6 साल से कम उम्र के 3,390 बच्चे हैं। टेबल 2.21 में बिरमित्रापुर *आंगनवाड़ी* के सितंबर 2009 के रिकॉर्ड्स के मुताबिक बच्चों के पोषण स्तर के बारे में जानकारी दी गई है। इस टेबल से पता चलता है कि 41 प्रतिशत बच्चे ही ऐसे हैं जो कुपोषण की सीमा से ठीक ऊपर हैं।

टेबल 2.21 : बच्चों के स्वास्थ्य की स्थिति : बिरमित्रापुर आंगनवाड़ी

श्रेणी	कुल बच्चे	कुल बच्चों का प्रतिशत
सामान्य भार	1397	41
श्रेणी-1	1363	40
श्रेणी-2	582	17
श्रेणी-3	20	0.59
श्रेणी-4	2	0.05

स्रोत : आईसीडीएस कार्यालय, बिरमित्रापुर।

कंसबहल गांव के *आंगनवाड़ी* केंद्र के पास कोई बुनियादी ढांचा नहीं है। यह केंद्र एक पेड़ के तले चलता है। *आंगनवाड़ी* कामगार ने बताया कि वहां कम से कम 12 बच्चे पूरी तरह कुपोषित हैं और गांव में टीबी के 50-100 मामले आ चुके हैं।

गांव वालों के मुताबिक चनाबहार गांव में 6 साल से कम उम्र के लगभग 100 बच्चे (कुल बच्चों का 80 प्रतिशत) कुपोषित हैं। संक्षेप में, लगभग सभी गांवों में यह बताया गया कि ज्यादातर बच्चे कुपोषित हैं और ड्रॉपआउट बच्चों की संख्या काफी ज्यादा है। किसी भी गांव के लोगों ने यह नहीं कहा कि शिक्षा, पोषण या चिकित्सा सुविधाओं के मद में इलाके की खान कंपनियों से उनके बच्चों को कोई विकास सहायता मिली है।

शिक्षा

जिले में साक्षरता 65 प्रतिशत है लेकिन प्रारंभिक शिक्षा के आंकड़ों को देखें तो ग्रामीण स्कूलों में बहुत चिंताजनक स्थिति दिखाई देती है। ग्रामीण स्कूलों में प्राथमिक स्तर पर 82,016 दाखिलों में से माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर सिर्फ 7,425 बच्चे रह जाते हैं। इससे पता चलता है कि इस जिले में किशोर-किशोरियों के पास उच्चतर शिक्षा की कितनी संभावनाएं हैं। यह इस बात का भी संकेत है कि अधिकांश आबादी की सामाजिक-आर्थिक स्थिति कितनी खराब है।

इसी पृष्ठभूमि में हमने बिरमित्रापुर ब्लॉक के बच्चों की स्थिति पेश की है जो उड़ीसा के सबसे ज्यादा खनन प्रभावित इलाकों में से एक है। बिरमित्रापुर नगरपालिका में 18 साल से कम उम्र के लगभग 4,000-5,000 बच्चे हैं। बिरमित्रापुर में 15 सरकारी स्कूल, एक कॉलेज और तीन हाई स्कूल हैं। बिरमित्रापुर का डकुआ ग्रुप (महिलाओं का एसएचजी) जिससे शोध टीम ने *आंगनवाड़ी* केंद्र में मुलाकात की, उसका कहना था कि प्रत्येक वार्ड के कम से कम 20-25 बच्चे स्कूल नहीं जाते और हर साल 30 प्रतिशत बच्चे स्कूल जाना छोड़ देते हैं।

इन आंगनवाड़ी के लिए कोई बुनियादी सुविधाएं नहीं।
बच्चे और जानवर, दोनों पेड़ के नीचे आंगनवाड़ी में उपस्थित हैं, ब्राह्मणीमारा, सुंदरगढ़
(फोटो - नवंबर 2009)

गांव वालों तथा स्थानीय संगठन गंगपुर आदिवासी फोरम फॉर सोशल ऐण्ड कल्चरल अवेकनिंग (जीएएफएससीए) के मुताबिक गरीबी के कारण ज्यादातर परिवारों के बच्चे नियमित रूप से स्कूल नहीं जा पाते। इसी वजह से बहुत सारे बच्चे प्राथमिक स्कूल के बाद पढ़ाई छोड़ देते हैं। महिलाओं ने कहा कि पढ़ाई छोड़ देने के पीछे एक कारण यह भी है कि स्कूलों में अच्छी पढ़ाई नहीं होती और अध्यापक स्कूल से गायब रहते हैं। मुंडाटोली यहां की सबसे छोटी आबादी है जिसमें लगभग 25 परिवार हैं। हमने पाया कि वहां स्कूली उम्र के कम से कम 55 बच्चे हैं। गांव में कोई सरकारी या निजी स्कूल नहीं है इसलिए इन बच्चों को स्कूल जाने का अवसर नहीं मिल पाता। यहां के सिर्फ 5 लड़के और 4 लड़कियां पड़ोसी गांव में स्थित डॉन बॉस्को नामक हाई स्कूल में जाते हैं।

ब्राह्मणीमारा गांव के स्कूल में सिर्फ 1 अध्यापक है और वहां कुल 25 बच्चे हैं (टेबल 2.22)। डी.आई.ओ.एस रिपोर्ट कार्ड (सितंबर 2008) में कक्षा 1 से 5 में दाखिल बच्चों की संख्या लगभग 219 दिखाई गई है। अध्यापिका के मुताबिक यहां ड्रॉपआउट की कोई समस्या नहीं है और

टेबल 2.22 : ब्राह्मणीमारा प्राइमरी स्कूल में दाखिले, 2009-10

कक्षा	अजजा		अजा		सामान्य	
	लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां
1-5	7	2	3	8	3	2
कुल	**9**		**11**		**5**	

स्रोत : हाजिरी रजिस्टर, ब्राह्मणीमारा प्राइमरी स्कूल, ब्राह्मणीमारा।

सिर्फ दो बच्चे खानों में काम करते हैं। लेकिन उसने माना कि ज्यादातर बच्चे अपने मां-बाप की मदद करने के लिए खान स्थलों पर जाते हैं और बाद में स्कूल में भी आते हैं। मजदूरी में बच्चों की यह अल्पसहभागिता बाल मजदूरी का सबसे अप्रत्यक्ष रूप है।

चनाबहार गांव के लोगों ने बताया कि कम से कम 20 बच्चे खनन गतिविधियों के कारण गरीबी के चलते पढ़ाई छोड़ चुके हैं और लगभग 25 किशोर-किशोरियां खानों में दिहाड़ी मजदूर हैं।

बिरमित्रापुर में कक्षा 5 तक का एक एनसीएलपी स्कूल है जो राउरकेला स्थिति एक एनजीओ द्वारा चलाया जा रहा है। इस स्कूल में केवल 40 बच्चों के नाम दर्ज हैं। जिस दिन हम इस स्कूल में गए उस दिन वहां सिर्फ 11 बच्चे थे। अध्यापिका ने बताया कि अकेले बिरमित्रापुर कस्बे में 200 से ज्यादा बाल मजदूर हैं लेकिन वे अपने परिवारों की भीषण गरीबी के कारण एनसीएलपी स्कूल नहीं आ पाते और उन्हें मजदूरी करनी पड़ती है।

विस्थापन

बीएसएल द्वारा डोलोमाइट खनन, सुंदरगढ
(फोटो - नवंबर 2009)

खान कंपनियों की उपस्थिति के बावजूद सुंदरगढ़ में अकुशल मजदूरों का प्रवासन बहुत बड़े पैमाने पर है जिससे पता चलता है कि खनन कंपनियों ने स्थानीय लोगों के लिए रोजगार के कितने कम अवसर उपलब्ध कराए हैं। इसी कारण सुंदरगढ़ मानव व्यापार और पलायन का भी एक मुख्य केंद्र बन गया है। यहां ऐसे गिरोह सक्रिय हैं जो खासतौर से लड़कियों को मानव व्यापार और वेश्यावृत्ति के लिए फुसलाकर ले जाते हैं।[271]

बिरमित्रापुर में कम से कम 50 और परिवार हैं जिनकी जमीन खनन कार्यों के लिए अधिग्रहित कर ली गई थी लेकिन उन्हें अभी तक मुआवजा नहीं मिला है। ये परिवार अभी बिरमित्रापुर की झुग्गी-बस्ती में रह रहे हैं। उन्हें मुआवजे का इंतजार है। इन परिवारों की जमीन छिन जाने के कारण उनके बच्चों ने पढ़ाई छोड़कर खान मजदूरी शुरू कर दी है। इन लोगों की दरिद्रता साफ देखी जा सकती है और उनके पास आजीविका के लिए दिहाड़ी मजदूरी करने के अलावा और कोई साधन नहीं है।

जब हम पूर्णा पन्नी चूना पत्थर और डोलोमाइट खदानों में पहुंचे तो सहायक महाप्रबंधक ने व्यावसायिक सामाजिक उत्तरदायित्व (सीएसआर) के तहत कंपनी द्वारा चलायी जा रही समाज कल्याण गतिविधियों के बारे में बताया। ये खानें फिलहाल बंद हैं और सेल के साथ संयुक्त उद्यम के रूप में दोबारा चालू हो सकती हैं। उन्होंने बताया कि खान उद्योग से स्थानीय लोगों को बिजली, सड़क, स्वास्थ्य शिविर, मछुवाही अधिकारों के अलावा कई आर्थिक अवसर मिल रहे हैं। पूर्णा पन्नी गांव के लोगों के बयानों से ये दावे सच्चे दिखाई नहीं देते।

पूर्णा पन्नी गांव में 40 प्रतिशत आबादी 18 साल से कम उम्र की है। पूर्णा पन्नी लाइमस्टोन ऐण्ड डोलोमाइट खदानों के कारण कम से कम पांच गांव प्रभावित हुए हैं जिन्हें गुजरात, दिल्ली, पंजाब, अंडमान व निकोबार एवं अन्य स्थानों पर मजदूरी के लिए पलायन करना पड़ा। कंपनी ने अपनी परियोजनाओं के कारण विस्थापित 1000-1200 लोगों को रोजगार नहीं दिया है जबकि जमीन के अधिग्रहण के समय उनको मुआवजे और नौकरियों का आश्वासन दिया गया था। और तो और, समुदाय को पीने का पानी और चिकित्सा सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं कराई गईं।

चनाबहार में स्थानीय मुखियाओं ने इस बात पर असंतोष व्यक्त किया कि मैसर्स चेरियॉट स्टील ऐण्ड पावर प्राइवेट लिमिटेड, मैसर्स त्रिपाठी कंपनी एवं अन्य कंपनियां अवैध खनन कार्यों में लिप्त हैं और वे आदिवासियों की जमीन पर कब्जा जमाती जा रही हैं। उनका कहना था कि इस तरह अवैध रूप से लगभग 81 एकड़ जमीन का खनन कार्यों के लिए इस्तेमाल हो रहा है जिससे लगभग 10 परिवार उजड़ चुके हैं। गांव वालों का कहना था कि प्रभावित परिवारों को 1500 रुपये प्रति एकड़ की दर से मुआवजा दिया गया था और उन्हें नौकरी व अन्य लाभों का भी आश्वासन दिया गया था। लेकिन उन्हें ये लाभ कभी नहीं मिले। ये सभी परिवार गहरी विपन्नता में जी रहे हैं और अब भूमिहीन मजदूर बनकर रह गए हैं।

दूषित पानी और स्वास्थ्य पर उसके प्रभाव

बच्चों के कुपोषण के बाद स्थानीय समुदाय के लोगों ने पानी को अपनी सबसे गंभीर समस्या बताया। खनन गतिविधियां शुरू होने से पहले यहां की स्थानीय नदी एक साझा संसाधन थी और उसी से पीने और सिंचाई के लिए पानी मिलता था। बीएसएल कंपनी को खनन पट्टा मिल जाने

271. http://comhlamh.org/assets/files/pdfs/Web_Focus80(1).pdf

खान मजदूरों की बस्तियों में दूषित पानी, सुंदरगढ़
(फोटो - नवंबर 2009)

के कारण नदी का पानी कंपनी की तरफ मोड़ दिया गया और कंपनी का गंदा नाला नदी में छोड़ दिया गया जिससे उसका पानी बेहद दूषित हो गया और उसका किसी काम के लिए इस्तेमाल नहीं हो सकता था। यह साफ था कि पूरे इलाके का पानी दूषित है। उसमें भारी धातुओं की घनी धूल जमी हुई है जोकि पानी के अतिदोहन तथा खानों के कचरे का परिणाम है। स्पंज आयरन फैक्टरियों में बोर वैल लगा लिए हैं जिससे भूमिगत पानी तेजी से समाप्त होता जा रहा है। यहां 49 स्पंज आयरन फैक्टरियां हैं और हरेक फैक्टरी में लगभग 800 फीट गहरे 15-20 बोर वैल हैं। इतने बड़े पैमाने पर पानी का दोहन इस इलाके के लोगों के लिए चिंता का बड़ा कारण है।

इस इलाके में पानी के दूषित हो जाने की वजह से जल संबंधी बीमारियां तेजी से फैलने लगी हैं। हमने जिन स्थानीय मुखियाओं और महिलाओं से बात की उन्होंने फाइलेरिया और हाइड्रोसील और स्त्री रोगों का बार-बार जिक्र किया। लोगों ने राजगंगपुर में स्थित सीमेंट फैक्ट्रियों के आस-पास गंभीर व्यावसायिक स्वास्थ्य खतरों का जिक्र किया। गरमी के महीनों में और साल के दूसरे हिस्सों में यहां पानी की भारी किल्लत रहती है क्योंकि भूमिगत जल स्तर बहुत नीचे चला जाता है। पानी लाने के लिए महिलाओं

जल संकट! इस पानी में खानों का कचरा मिल चुका है और यह मनुष्यों या पशुओं, किसी के भी लायक नहीं बचा है, सुंदरगढ़ (फोटो - नवंबर 2009)

के साथ प्रायः उनकी लड़कियां ही जाती हैं। वे इन जलराशियों में मिले खानों के कचरे के विषैलेपन से लगातार खतरे में रहती हैं।

ब्राह्मणीपुरा गांव खनन कार्यों से सबसे ज्यादा प्रभावित है। यहां लगभग 810 परिवार पीने और सिंचाई के पानी की भारी किल्लत से जूझ रहे हैं। इनमें से ज्यादातर अनुसूचित जनजातियों के परिवार हैं। क्योंकि खनन गतिविधियों ने भूमिगत जलस्तर काफी नीचे धकेल दिया है इसलिए पीने के लिए जो पानी निकाला जाता है उसमें चूना पत्थर और धूल की मात्रा ज्यादा होती है। गांव वालों को यही पानी पीना पड़ता है क्योंकि उनके पास और कोई विकल्प नहीं है। पानी की कमी के कारण जमीन की उत्पादकता काफी गिर गई है इसलिए हर साल और परिवारों को काम के लिए बाहर जाना पड़ता है।

सिर्फ मुंडाटोली में ही लोगों ने ऐसा बताया कि बीएसएल वहां चिकित्सा सहायता और लाभ मुहैया कराती है तथा मजदूरों और समुदाय को पीने का पानी देती है।

लोक स्वास्थ्य विभाग के जूनियर इंजीनियर ने बताया कि बिरमित्रापुर के 11 वार्डों में केवल 7-9 वार्डों में ही बीएसएल जल भंडार से उपचारित पानी भेजा जाता है। लेकिन, उसने स्वीकार किया कि यह पानी भी प्रदूषक तत्वों से पूरी तरह मुक्त नहीं होता। ऐसा आवश्यक नहीं है और सारे प्रभावित गांवों को यह पानी भी नहीं मिलता। उसने यह भी बताया कि वहां 181 ट्यूबवैल है जिनकी लगभग गहराई 200 फुट है। क्योंकि खान कंपनियां 400 फुट नीचे से भी पानी निकाल रही हैं इसलिए इलाके में पानी का संकट गहराता जा रहा है और नई खानों को स्वीकृति नहीं दी जा रही है।

बच्चों और समुदाय के स्वास्थ्य की दशा

मरेया, फाइलेरियासिस, टीबी और उदर रोगों को यहां बच्चों की मुख्य बीमारियां बताया गया। बच्चों की ज्यादातर स्वास्थ्य समस्याएं बेहद प्रदूषित पानी का परिणाम हैं क्योंकि इसी से बच्चों को उदर रोग, पीलिया, पेचिश आदि बीमारियां हो जाती है। इस इलाके में डायबिटीज़ भी काफी ज्यादा है। क्योंकि खान स्थलों के गंदे पानी और खनन कचरे में मच्छर बड़े पैमाने पर पैदा हो रहे हैं इसलिए बच्चों को भारी गंदगी में जीना पड़ रहा है। वे कुपोषण और मलेरिया से भी जूझ रहे हैं जिससे वे बार-बार बीमार पड़ते हैं। इसके कारण वे खून की कमी के भी शिकार हो जाते हैं जिससे उनके बीमार पड़ने की संभावना और बढ़ जाती है। *आंगनवाड़ी* कामगारों ने बताया कि कुछ बच्चे टीबी से भी पीड़ित हैं। जीएएफसीए के फादर निकोलस बरला ने बताया कि फाइलरियासिस बच्चों में एक गंभीर समस्या बन गया है। उनकी टीम ने 2006 में एक सर्वेक्षण किया था जिससे पता चला कि अकेले इसी गांव में फाइलेरियासिस के 40 मामले

थे। उनमें से 10-12 बचे थे। उनके मुताबिक इतनी बड़ी संख्या में यह बीमारी फैलने का कारण ये है कि आसपास की बंद हो चुकी खानों के गड्ढों में बरसाती पानी भरा रहता है।

ब्राह्मणीपुरा गांव के लोगों ने बताया कि पहले वे खानों में काम करते थे लेकिन उनमें से बहुत सारे मजदूरों को इस काम के कारण टीबी हो गई थी। खान से निकटता के कारण उनके सामने खानों में होने वाले विस्फोटों से लगने वाली चोटों और दुर्घटनाओं की भी आशंका रहती है। इस गांव को शिक्षा, आवास, सड़कों, बिजली या अन्य सुविधाओं के रूप में कंपनी से कोई सामाजिक अथवा स्वास्थ्य संबंधी लाभ नहीं मिले हैं हालांकि यह गांव इस परियोजना से सर्वाधिक प्रभावित गांव है।

बिरमित्रापुर में सीएचसी मेडिकल ऑफिसर के मुताबिक इलाके में व्यावसायिक स्वास्थ्य समस्याएं काफी ज्यादा हैं। उसने बताया कि यहां के लोग श्वास संबंधी बीमारियों, मलेरिया, टीबी (टीबी के मामलों के बारे में टेबल 2.23 देखें), फाइलेरिया और दूसरी जल संबंधी बीमारियों से काफी ग्रस्त हैं और इसके पीछे मुख्य रूप से खनन गतिविधियों का हाथ है। उन्होंने यह भी बताया कि पीएचसी में दवाइयों का भारी अभाव है। यहां बीमारियां बहुत ज्यादा हैं जबकि अस्पताल को खान कंपनियों से कोई मदद नहीं मिलती।

टेबल 2.23 : अक्तूबर 2009 तक चार साल के दौरान टीबी के आंकड़े

वर्ष	टीबी के दर्जशुदा मामले	टीबी के पॉजीटिव मामले
2006	228	52
2007	227	53
2008	376	53
2009	433	41

स्रोत : सीएचसी, बिरमित्रापुर (बीएसएल द्वारा संचालित अस्पताल के आंकड़े शामिल नहीं हैं।)

बाल मजदूरी

बिरमित्रापुर में बहुत सारी महिलाएं और 18 साल से कम उम्र की लड़कियां प्रत्यक्ष रूप से खनन गतिविधियों या अप्रत्यक्ष रूप से सड़कों या फैक्ट्रियों के निर्माण में अकुशल मजदूर के रूप में काम कर रही हैं। महिलाओं ने कहा कि उन्हें 60 रुपये दिहाड़ी मिलती है जबकि पुरुषों को 100 रुपये मिलते हैं। सभी खान स्थलों पर मजदूरों के साथ साक्षात्कारों से पता चला कि जो लोग प्रत्यक्ष रोजगार पा चुके हैं उन्हें थोड़े-बहुत लाभ मिल रहे हैं लेकिन ज्यादातर ठेका मजदूरों को अपनी दिहाड़ी मजदूरी के अलावा कोई लाभ नहीं मिलता।

बिरमित्रापुर में डोलोमाइट की खानों और पत्थर के क्रशर्स में काम करने वाली लड़कियां (फोटो - नवंबर 2009)

विस्थापित परिवारों और खान मजदूरों के बच्चे या तो खानों में या सड़कों के निर्माण, ट्रकों के लदान, पत्थर तोड़ने, क्रशर में मजदूरी या ट्रक क्लीनर जैसी सहायक गतिविधियों में काम कर रहे हैं। किशोरियों के जत्थे हर रोज एक साथ खानों में जाते हैं और वे शाम 5 बजे तक वहां काम करती हैं। वे नंगे हाथों से चूना पत्थर में काम करती हैं। उन्हें कोई सुरक्षात्मक उपकरण या पोशाक नहीं दिए जाते हैं। ब्राह्मणीमारा गांव के पास स्थिति डिल्लू खदान में हमें बहुत सारी किशोरियां खान मजदूरी करती हुई मिलीं। उनमें से ज्यादातर की उम्र 14 से 16 साल के बीच थी। इन किशोरियों के अलावा वहां 11 लड़के भी बाल मजदूर थे। लड़कियों ने बताया कि उन्हें ठेका पर मजदूरी पर रखा जाता है और उन्हें दिन भर की सख्त मेहनत के बदले 40-50 रुपये दिहाड़ी मिलती है। लड़कियों को ज्यादातर स्टोन क्रशर में रखा जाता है जहां उन्हें बहुत मामूली मजदूरी मिलती है। क्योंकि उनके परिवारों की हालत बहुत खराब है इसलिए मां-बाप उन्हें क्रशर में काम करने की छूट दे देते हैं। लड़कियों ने ये भी बताया कि खान मालिक उन्हें हर हफ्ते गन्ना देते हैं ताकि उनकी ताकत बढ़े और वे ज्यादा काम कर पाएं। स्थानीय संगठनों का कहना था कि इस दरिद्रता की वजह से बहुत सारी लड़कियों को कई दलाल नौकरी का झांसा देकर दिल्ली और मुंबई में भी ले जाकर बेच देते हैं। बाल अधिकारों के लिए सक्रिय स्थानीय संगठनों ने सुंदरगढ़ में मानव व्यापार का मुद्दा उठाया है जो कि मुख्य रूप से खान कंपनियों और दूसरे उद्योगों के कारण पैदा हुई कर्जदारी का नतीजा है। खानों में काम करने वाले ज्यादातर लड़के गुटका, शराब और जुए के आदी बताए गए हैं। हैरानी की बात है कि हमें इस इलाके में बहुत सारे अनाथालय दिखाई दिए लेकिन एक ही इलाके में इतने सारे अनाथालयों की उपस्थिति का कारण स्पष्ट नहीं हो पाया क्योंकि हम इन संस्थाओं के किसी मुखिया से बात नहीं कर पाए।

सामाजिक मुद्दे

हमने जिन एसएचजी या डकुआ सदस्याओं से बात की उन्होंने बताया कि खनन गतिविधियों के कारण वहां बहुत सारी बिन ब्याही मांएं बन गई हैं जिससे

लड़कियों व महिलाओं की खरीद-फरोख्त में काफी इजाफा हुआ है। इतने छोटे इलाके में पांच अनाथालयों की उपस्थिति इस बात का सुबूत है।

पहले बड्र्स ग्रुप अपने मुनाफे का एक अंश 'शेष निधि' के रूप में समाज कल्याण गतिविधियों के लिए खर्च करता था। कंपनी की परोपकारी गतिविधियों के तहत 'ऐडवर्ड बेंथॉल निधि' के जरिए विद्यार्थियों को वजीफे दिए जाते थे।

निष्कर्ष

सुंदरगढ़ को देश के सबसे दूषित और पिछड़े इलाकों में गिना जाता है। यह जिला तीन राज्यों की सीमा रेखा पर पड़ता है जहां महिलाओं और बच्चों की खरीद-फरोख्त बहुत बड़े पैमाने पर मानी जाती है। यहां बच्चों से संबंधित मानव विकास संकेतक देश भर में काफी नीचे हैं और यह बात यहां बाल व्यापार एवं मानव व्यापार के स्तर से समझी जा सकती है। राउरकेला सोशल सर्विसेज सोसायटी द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण में अनुमान लगाया गया था कि यहां हर रोज कम से कम 20 लड़कियां दिल्ली और मुंबई जैसे शहरों में बिकने के लिए भेज दी जाती हैं। उनके सर्वेक्षण के मुताबिक सुंदरगढ़ जिले से हर साल 7,000 लड़कियों को बेचा जाता है। 2003-04 में इसी संगठन द्वारा किए गए सर्वेक्षण में पाया गया था कि उस साल वहां कम से कम 35,000 लड़कियों को देश के दूसरे भागों में बेच दिया गया था। लड़कियों को बेचने की इतनी ज्यादा घटनाओं के पीछे गरीबी के साथ विकास योजनाओं को सही ढंग से लागू न करना और खनन परियोजनाओं की उपस्थिति भी एक मुख्य कारण है। जिस तरह औद्योगीकरण, खासतौर से खान उद्योग तेजी से इन जिलों में फैला है वैसे-वैसे यहां के आदिवासी प्रवासन और मानव व्यापार की आशंका में घिरते चले गए हैं। इस जिले में बिन ब्याही मांओं की संख्या और वेश्यावृत्ति भी बहुत ज्यादा है। 2006 में बिरमित्रापुर और राजगंगपुर में एचआईवी/एड्स प्रभावित 12 लोगों की मौत हुई थी।

सुंदरगढ़ में चरमवामपंथी (माओवादी) संगठनों की हिंसक गतिविधियां भी ज्यादा रही हैं। अब इस इलाके को राजनीतिक रूप से अशांत इलाका माने जाने लगा है। सुंदरगढ़ की आदिवासी जमीनों पर आंखे गड़ाए बैठी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को देखते हुए यह माना जा सकता है कि सरकार और माओवादी संगठनों के बीच आने वाले समय में और ज्यादा हिंसक टकराव होते रहेंगे। सुंदरगढ़ इस बात का एक उदाहरण है कि किस तरह एक खेतिहर आदिवासी इलाका खान ठेकेदारों, व्यापारियों, भू-माफिया, कॉर्पोरेट ऐजेंटों, पुलिस व राजनीतिक ताकतों की मिली. भगत से एक बेजान मोहरा बनकर रह जाता है। भारतीय माइन ब्यूरो की जिस टीम को कथित खनन घोटालों के जांच के लिए भेजा गया था उसे मौका मुआयना भी नहीं करने दिया गया, यह इस बात का संकेत है कि खान कंपनियों के गिरोह राजनीतिक सत्ता पर कितना भारी दवाब बना सकते हैं।

यहां की महिलाओं के मुताबिक, भूमिगत जलस्तर में लगातार गिरावट और डोलोमाइट एवं चूना पत्थर खदानों के इलाके में जलराशियों का दूषित होना सबसे बड़ी समस्या बन गई है। ये महिलाएं इस पानी को घरेलू इस्तेमाल में नहीं लाना चाहती। दहशतनाक स्थिति यह है कि उनके पानी का कोई वैकल्पिक साधन नहीं है और बेतहाशा खनन गतिविधियों से इस इलाके में जो संकट पैदा हुआ है उससे खनन कंपनियों या शासन के कानों पर जूं नहीं रेंग रही है। सिर्फ खनिज पदार्थों का दोहन ही नहीं बल्कि सुंदरगढ़ और क्योंझर, दोनों जिलों में बहुत सारी स्पंज आयरन फैक्टरियों की उपस्थिति भी वायु प्रदूषण और पानी में गंदगी को बढ़ा रही है। सुंदरगढ़ में नई परियोजनाओं को मंजूरी दी जा रही है और लोगों को इस बात पर गहरी हताशा है कि जिला प्रशासन पूरी तरह खनन लॉबी की गिरफ्त में जा चुका है और उसके पास अभिशासन का कोई गुण नहीं बचा है। इस तरह, हम देखते हैं कि खनन उद्योग के फलस्वरूप प्रांत दर प्रांत राज्य तंत्र पूरी तरह धराशायी होता जा रहा है।

(*आभार :* सुंदरगढ़ जिले में यह केस स्टडी जीएएफएससीए के साथ मिलकर संपन्न की गई। हम फादर निकोलस बरला और उनके साथियों से मिली सहायता के लिए उनका आभार व्यक्त करते हैं। उन्होंने हमारी फील्ड विजिट्स और गांवों में लोगों से मुलाकातों का इंतजाम किया और अपने संगठन के पास उपलब्ध आंकड़े व सूचनाएं उपलब्ध करायीं।)

काशीपुर में खनन परियोजना तथा उत्कल एल्युमिना लिमिटेड के कारण पैदा हो रहा टकराव

अजीत (बदला हुआ नाम) टिकीरी के डोम कोरल गांव का रहने वाला है। उसकी उम्र 17 साल है। उसके पिता का पांच साल पहले देहांत हो गया था। इसके बाद पूरे परिवार की रोजी-रोटी का जिम्मा अजीत पर आ गया और वह घर का एकमात्र कमाऊ सदस्य बन गया। वह खनन गतिविधियों में अलग-अलग ठेकेदारों के तहत मजदूरी करता रहा है और उसे प्रतिदिन 60 रुपये के आसपास दिहाड़ी मिलती है। उसने बताया कि खनन कार्य बहुत अस्थिर रहते हैं इसलिए उसकी आय भी बढ़ती-घटती रहती है। "मुझे खानों में तरह-तरह के काम करने पड़ते हैं क्योंकि वहां निर्माण कार्य चल रहा होता है। काम बहुत मुश्किल है इसलिए अब मुझे शराब और गुटके की आदत लग गई है लेकिन अब मैं इसे नहीं छोड़ सकता।"

स्रोत : डोम कोरल, काशीपुर में लिया गया साक्षात्कार, जून 2009.

काशीपुर ब्लॉक उड़ीसा के अविभाजित कोरापुट क्षेत्र के रायगड़ा जिले में पड़ता है। कोरापुट जिले की काशीपुर पहाड़ियों में बॉक्साइट के बहुत समृद्ध भंडार छिपे हुए हैं। राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय खान कंपनियां लंबे समय से इन संसाधनों पर आंखें गड़ाए हुए हैं। उन्हें सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरण विनाश की कोई परवाह नहीं है।

खनन पूर्व क्षेत्र, काशीपुर
(फोटो : समता)

काशीपुर इलाके में मुख्य रूप से आदिवासी हैं जो घने जंगलों और पहाड़ों में रहते हैं। कानूनी तौर पर यह इलाका संविधान की पांचवीं अनुसूची के अनुसार अनुसूचित क्षेत्र कहलाता है (जहां आदिवासियों की संख्या बहुमत में हो और जमीन पर उन्हीं का स्वामित्व हो, ऐसे इलाकों को संविधान की पांचवीं अनुसूची में रखा जाता है)। जिले की आबादी में से लगभग 72.03 प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा से नीचे हैं[272] तथा यहां की 50 प्रतिशत से ज्यादा आबादी आदिवासियों की है। काशीपुर में 20 ग्राम पंचायतें हैं जिनके तहत लगभग 270 गांव आते हैं। 2001 की जनगणना के अुनसार इस ब्लॉक की कुल आबादी 67,254 है। इस आबादी में 70-80 प्रतिशत हिस्सा झोड़िया, कंधो, परजा जनजातियों तथा पानोस (अछूत या दलित) समुदायों का है। बाकी आबादी ओबीसी जातियों की है। यहां के आदिवासी मुख्य रूप से खेती और वन उपज संग्रह के सहारे अपना गुजारा करते हैं।

क्षेत्र में प्रस्तावित खनन परियोजनाएं

काशीपुर की बाफलीमाली और न्यामगिरि पहाड़ियों में भारत का 67.7 प्रतिशत बॉक्साइट छिपा हुआ है। यह इलाका मुख्य रूप से उड़ीसा के पश्चिमी भाग में है और दुनिया के 13 प्रतिशत बॉक्साइट भंडार यहीं हैं। इस इलाके की बॉक्साइट अयस्क में एल्युमिना का अंश 45-48 प्रतिशत के आस-पास पाया गया है। यूएआईएल बाफलीमाली से बॉक्साइट अयस्क निकालेगा। लारसन ऐण्ड टूब्रो को सिजूमाली में, स्टरलाइट इंडिया लिमिटेड को न्यामगिरि में और आदित्य बिरला समूह की हिंदुस्तान एल्युमिनियम कंपनी (हिंडालको) को कोडिंगामाली पहाड़ियों में बॉक्साइट खनन का अधिकार दिया गया है। इन सारी कंपनियों के क्रियाकलापों से लगभग 200 गांवों के 2700 परिवार प्रभावित होने वाले हैं।

यूआईएएल पहले नॉर्स्क हाइड्रो, एल्कॉन तथा हिंडालको का संयुक्त उद्यम था। अब यह आदित्य बिरला ग्रुप के हिंडालको कंपनी के स्वामित्व में है। यूआईएल ने यहां सालाना 10-30 लाख टन बॉक्साइट उत्खनन परियोजना स्थापित करने का प्रस्ताव रखा है।

काशीपुर में जनसंघर्ष का इतिहास

1993 में स्थानीय लोगों को पहली बार पता चला कि बहुराष्ट्रीय कंपनी यूएआईएल ने काशीपुर ब्लॉक में कूचीपदर के पास एक एल्युमिना उत्खनन संयंत्र की स्थापना का फैसला लिया है। प्राकृतिको संपदो सुरक्षा परिषद् (पीएसएसपी) एक जनांदोलन है जो उत्कल परियोजना के प्रतिरोध में खड़ा हुआ है। यह अपने आप में एक अनूठा संघर्ष है क्योंकि इसका नेतृत्व आदिवासियों के ही हाथों में रहा है।

(फोटो : समता)

काशीपुर के लोग शुरू से ही एल्युमिना परियोजना का विरोध कर रहे हैं। वे कंपनी को अपनी जमीन देने को तैयार नहीं है। 1993 से स्थानीय समुदाय ने कंपनी द्वारा सड़कों के निर्माण, पुलों, पुनर्वास बस्तियों के निर्माण आदि का विरोध किया है। जब भी कंपनी के कर्मचारियों या सरकारी अधिकारियों ने उत्कल रूरल डेवलेपमेंट सोसाइटी (यूआरडीएस) जैसी फर्जी समुदाय विकास परियोजनाओं के जरिए या भविष्य में रोजगारों अथवा आर्थिक लाभों का झूठा आश्वासन देकर लोगों का दिल जीतने की कोशिश की है तो लोगों ने उनका जमकर विरोध किया है। जब इस प्रतिरोध का कोई जवाब नहीं सूझा तो सरकार ने यूआईएएल के साथ मिलकर पीएसएसपी के नेताओं पर कई-कई झूठे आपराधिक मुकदमे भी थोप दिए और उनको गैर-कानूनी हिरासत में रखा। यहां के लोगों को तरह-तरह से डराने-धमकाने का प्रयास किया जाता रहा है।

272. उड़ीसा मानव विकास रिपोर्ट, 2005

सरकार की ज्यादती और मानवाधिकारों का हनन

काशीपुर के लोगों का संघर्ष (फोटो : समता)

अभी तक आंदोलन के स्थानीय नेताओं के खिलाफ 60 से ज्यादा आपराधिक मुकदमे दायर किया जा चुके हैं। इसके बावजूद लोगों ने इस परियोजना के क्रियान्वयन को रोकने के लिए रैलियों, जनसभाओं और हड़तालों का रास्ता नहीं छोड़ा है। 16 दिसंबर 2008 को पुलिस बलपूर्वक इस इलाके में घुस आई और लोगों पर अंधाधुंध गोलियां चलानी शुरू कर दीं। इस गोलीबारी में तीन आदिवासी मारे गए और बहुत सारे गंभीर रूप से जख्मी हुए। तभी से काशीपुर में तनाव का माहौल बना हुआ है। परियोजना का विरोध कर रहे आदिवासियों और औद्योगिक दलालों के उकसावे पर काम करने वाले बाहरी तत्वों के बीच कई टकराव हो चुके हैं। जब भी लोगों का दवाब बढ़ता है तो पुलिस की दखलंदाजी और छिटपुट टकराव शुरू हो जाते हैं। ऐसे टकरावों ने इस इलाके की शांति और सुरक्षा को खतरे में डाल दिया है। अध्ययन टोली को भी यहां अपनी केस स्टडी पूरी करने में भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। यहां के लोग हमें भी संदेह, शत्रुता और भय की नजर से देख रहे थे। उनका यह रवैया इसलिए था क्योंकि वे बार-बार राजनीतिक और औद्योगिक जोड़-तोड़ का सामना करके तंग आ चुके हैं। टेबल 2.24 में काशीपुर परियोजना क्षेत्र का जनसांख्यिकीय ब्यौरा दिया गया है।

सरकारी आंकड़ों के मुताबिक यह परियोजना डोम कोराल, केंदुखुंटी और रामीबेड़ा, इन तीन गांवों के केवल 148 परिवारों को विस्थापित करने वाली है। टेबल 2.25 में काशीपुर के उन गांवों में विस्थापन की स्थिति को दर्शाया गया है जहां हमारी अध्ययन टीम गई थी। 2007 में रामीबेड़ा और केंदुखुंटी, इन दोनों गांवों को नुवापाड़ा स्थित डीपी कैंप में ले जाकर छोड़ दिया गया था। इन दोनों गांवों से कुल 147 परिवार इस बस्ती में आए थे जबकि डोम कोराल के लिए पुनर्वास बस्ती अभी भी निमार्णाधीन थी। नए डीपी कैंप में कंपनी ने आवास, बिजली, पीने के पानी और एक स्कूल की भी व्यवस्था की थी। स्कूल में एक स्थानीय शिक्षक को तैनात किया गया था। यूआईएल ने आश्वासन दिया था कि कंपनी की पुनर्वास और पुनर्स्थापन योजना में सभी परिवारों को एक-एक मकान, शौचालय, समुदाय केंद्र, नहाने व कपड़े धोने के लिए जलाशय, स्कूल, बच्चों के लिए खेल का मैदान और विस्थापितों के लिए अन्य आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था होगी। कंपनी ने यह भी कहा था कि मुआवजे में लोगों को जमीन के बदले जमीन दी जाएगी। प्रत्येक विस्थापित परिवार को जमीन के दस सेंट जमीन और 300 वर्गफुट का आवास भी दिया जाएगा।[273]

कंपनी ने अभी तक इन वादों को पूरा नहीं किया है हालांकि परिवारों को विस्थापित किया जा चुका है। गांववालों को शिकायत थी कि विस्थापितों को जो मुआवजा दिया गया है वह नालको द्वारा दमनजोड़ी में दिए गए मुआवजे से भी कम है। प्रभावित परिवारों ने बताया कि जिन लोगों की जमीन छिन गई है उनमें से 80-90 प्रतिशत लोगों को अभी भी मुआवजा नहीं मिला है। पहले चरण में यूएआईएल ने प्रति एकड़ 21,300 रुपये का मुआवजा दिया था और दूसरे चरण में 1,00,000 रुपये प्रति एकड़ मुआवजा देने का निर्णय लिया। कंपनी ने ऐलान किया कि मुआवजे का मूल्य 1,00,000 रुपये प्रति एकड़ बढ़ा दिया जाएगा। यह घोषणा अभी तक लागू नहीं हुई है। कंपनी ने नौकरियों का भी आश्वासन दिया था लेकिन अभी सिर्फ अनियमित दिहाड़ी मजदूरी ही मिल रही है। भविष्य में भी लोगों को पक्के रोजगार की कोई उम्मीद नहीं है क्योंकि वे जान चुके हैं कि खनन कार्य बेहद मशीनी ढंग से चलाए जाएंगे जिन्हें संभालने का जिम्मा उन्हें नहीं सौंपा जाएगा।

प्रभावित इलाके में 130 जलधाराएं हैं। ये धाराएं यहां से गुजरने वाली नागवली, इंद्रावती और वामसधारा, इन तीन मुख्य नदियों में जाकर गिरती हैं। परियोजना के लिए जो जमीन ली गई है उसमें से ज्यादातर पर्याप्त पानी वाली ऐसी जमीन थीं जहां धान की कम से कम दो फसलें और अनाज व दलहन की कई फसलें उगाई जाती थीं।[274]

विस्थापित शिविर और प्रभावित गांवों में बच्चों की स्थिति

इस इलाके में बच्चों की शिक्षा की स्थिति का पता लगाने के लिए समुदाय के मुखियाओं, पीएसएसपी नेताओं और *आंगनवाड़ी* कामगारों से बात की गई। सभी लोगों ने बताया कि यहां के लगभग 50 प्रतिशत बच्चे स्कूल से बाहर हैं। ये बच्चे खेतिहर या खान मजदूर हैं। उपरोक्त समूहों के साथ हुई चर्चाओं से मिली दाखिले और ड्रॉप-आउट संबंधी सूचनाएं सरकारी डीआईएसई रिपोर्ट

273. दास वी, 2001 माइनिंग बॉक्साइट, मेमिंग पीपुल, इकॉनॉमिक ऐण्ड पोलिटिकल वीकली, जुलाई 2001, पृष्ठ 2612-2613, मैकांच में लिया गया साक्षात्कार, 24 जून 2009

274. भगवान मांझी, संयोजक, पीएसएसपी का वक्तव्य।

टेबल 2.24 : परियोजना क्षेत्र, काशीपुर का जनसांख्यिकीय विवरण

क्र.सं.	कुल परिवार	कुल	लिंगवार आबादी		गांवों का जातिवार ब्यौरा	पेयजल स्रोत	चिकित्सा सुविधा	व्यवसाय
			पुरुष	महिलाएं				
1.	300	लगभग 2000	1100	900	50/अजा (डोंबो); 6/ओबीसी (लोहार); 244/अजजा	नदी, 5 चालू बोरवैल	1 पीएचसी	खेती, दिहाड़ी मजदूरी, अध्यापक, पुलिसकर्मी
2.	340	2600	1250	1350	280/अजजा; 20/अजा; 40/ओबीसी 1/ब्राह्मण (सुंडी);	नदी, धारा, बोरवैल	नहीं	खेती, दिहाड़ी मजदूरी, एक दूसरे के लिए काम करना (बार्टर व्यवस्था)
3.	30	130	60	70	अजजा	नदी, टयूबवैल	नहीं	खेती
4.	45	220	120	100	>30/अजजा; शेष/अजा	नदी, बोरवैल	नहीं	खेती
5.	400	2500	1300	1200	70/अजजा (लगभग); 330 अजा	नदी, 5 बोरवैल	नहीं	खेती, दिहाड़ी मजदूरी, एक दूसरे के लिए श्रम, सरकारी नौकरियां
6.	170	1200	700	500	15-20/अजा; शेष/अजजा	नदी, धारा, बोरवैल	नहीं	खेती
7.	150	850	450	400	70/अजा; >80/अजजा	नदी, धारा, बोरवैल	नहीं	खेती, एक दूसरे के लिए श्रम
8.	147	1200	700	500	107/अजजा (डीपी शिविर निवासी); 30-40/अजा	नदी, बोरवैल	1 उप-	पहले खेती, पीएचसी अब कंपनी में दिहाड़ी मजदूरी

गांव का नाम : (1) कूचीपदर, (2) मेकांच, (3) रामीबेड़ा, (4) केंदुखुंटी, (5) कोरल (डीकोरल एवं तालाकोरल, दोनों), (6) बगरीझोला, (7) द्विमुंडी, (8) डीपी कैंप

स्रोत : प्राथमिक आंकड़े (ये संख्याएं लोगों के वक्तव्यों पर आधारित हैं।)

कार्ड के अंतर्गत उपलब्ध सूचनाओं से बिल्कुल अलग हैं। नीचे हमने सूचना स्रोतों का ब्यौरा दिया है लेकिन जब तक एक विस्तृत पारिवारिक सर्वेक्षण नहीं किया जाएगा तब तक स्कूल न जाने वाले और बाल मजदूरी करने वाले बच्चों की वास्तविक संख्या का पता लगाना मुश्किल रहेगा। पीछे उड़ीसा के प्रारंभिक विवरण में द्वितीयक आंकड़ों के जिन स्रोतों का इस्तेमाल किया गया है उनमें कोरापुट और रायगड़ा के इस इलाके में स्कूल ड्रॉप-आउट बच्चों की अच्छी खासी संख्या दिखाई देती है। जिन परिवारों को पुनर्वासित किया गया है उनसे बात करने पर पता चला कि 2005 में खान संबंधी निर्माण कार्य शुरू होने के बाद से बहुत सारे बच्चे निर्माण एवं अन्य दिहाड़ी मजदूरी गतिविधियों में लग गए हैं। टेबल 2.26 में काशीपुर ब्लॉक में अध्ययन के लिए चुने गए गांवों में दाखिलों से संबंधित सूचनाएं दी गई हैं।

विस्थापित परिवार मुख्य रूप से सड़क निर्माण, पुलों के निर्माण, चारदीवारी के निर्माण जैसी कंपनी संबंधी गतिविधियों में दिहाड़ी मजदूरी कर रहे हैं। कई लोग अन्य कामों में भी दिहाड़ी मजदूरी करते हैं लेकिन किसी भी काम में नियमित आय या आजीविका नहीं मिलती।

टेबल 2.25 : विस्थापन के बारे में इकट्ठा की गई सूचनाएं, काशीपुर

क्र.सं.	परियोजना के लिए अधिग्रहित कुल जमीन	कुल विस्थापित परिवार	प्राप्त पुनर्वास एवं मुआवजे की कुल राशि
1.	लगभग 150 एकड़ धान खेत और 100 एकड़ सूखे खेत, एक नदी की दिशा मोड़ी गई	नहीं	1992 में पहला भुगतान; 21,300 रुपये प्रति एकड़, दूसरे और तीसरे चरण में कोई मुआवजा नहीं मिला।
2.	कोई जमीन नहीं लेकिन यूएआईएल खनन गतिविधियों के दायरे में एक नदी आ रही है।	नहीं	नहीं
3.	150 एकड़ से ज्यादा जमीन	30	2003 में पिछला भुगतान 1 लाख रुपये प्रति एकड़ था।
4.	100 एकड़ से ज्यादा जमीन	लगभग 30	2003 में आखिरी भुगतान 1 लाख रुपये प्रति एकड़ था।
5.	लगभग 850 एकड़	92	2003 में आखिरी भुगतान 1 लाख रुपये प्रति एकड़ था लेकिन सारे परिवारों को मुआवजा नहीं मिला है।
6.	लगभग 65 एकड़	उपलब्ध नहीं	2003 में आखिरी भुगतान 1 लाख रुपये प्रति एकड़
7.	67 एकड़	ज्यादातर विस्थापित हो गए हैं जिन्हें डीपी कैंप में रखा गया है।	ज्यादातर को डीपी कैंप में पुनर्वास दिया गया है; 2003 में आखिरी भुगतान 1 लाख रुपये प्रति एकड़ था।
8.	परियोजना के लिए आवश्यक लगभग 25 प्रतिशत जमीन। शिविर के सारे निवासी रामीबेड़ा, कोरल और केंदुखुंटी गांवों के हैं जिनकी जमीन और मकान, दोनों जा चुके हैं।	147	सभी को कंपनी की ओर से मकान और टम्पेरेरी मजदूर के रूप में पुनर्वास दिया गया है।

गांव का नाम : (1) कूचीपदर, (2) मेकांच, (3) रामीबेड़ा, (4) केंदुखुंटी, (5) कोरल (डीकोरल एवं तालाकोरल, दोनों), (6) बगरीझोला, (7) द्विमुंडी, (8) डीपी कैंप

स्रोत : स्थानीय नेता और प्रभावित परिवार (ये आंकड़े लोगों के वक्तव्यों पर आधारित हैं)।

टेबल 2.26 : प्राथमिक आंकड़ों में ग्राम स्तरीय स्कूल दाखिला आंकड़े

जिला	ब्लॉक	गांव	कुल	अजा	अजजा	ओबीसी	अन्य	प्राथमिक आंकड़े
रायगड़ा	काशीपुर	कूचीपदर	280	88	164	28	38	100
		मेकांच	235	47	190	58	3	150
		रामीबेड़ा						25
		केंदुखुंटी						45
		कोरल (डोम कोराल और ताला कोराल, दोनों)	248	119	104	72	1	350
		बगरीझोला						130
		डीपी कैंप						160
		दिमुंडी	217	82	116	29	2	सूचना उपलब्ध नहीं।

अन्य - दोबारा उसी कक्षा में पढ़ रहे बच्चे, सीडब्ल्यूएसएन एवं मुसलिम।
नोट : कुल योग में गड़बड़ी है लेकिन ये आंकड़े डीआईएसई रिपोर्ट कार्ड में भी इसी तरह दिए गए हैं।

स्रोत : डीआईएसई रिपोर्ट कार्ड, सितंबर 2008 एवं इकट्ठा किए गए प्राथमिक आंकड़े (ये आंकड़े लोगों के बयानों पर आधारित हैं)।

टेबल 2.27 : बच्चों की स्थिति, काशीपुर

क्र.सं.	18 साल से कम आबादी	लिंगवार 18 साल से कम आबादी		शिक्षा संस्थान	साक्षरता दर (प्रतिशत)	स्कूल जाने वाले बच्चे		ड्रॉप-आउट बच्चे	खानों/अन्य क्षेत्रों में काम करने वाले बच्चे	
		लड़के	लड़कियां						लड़के	लड़कियां
1.	900	500	400	2 (एक सरकारी, एक प्राइवेट)	5 (लगभग)	60	40	लगभग 350	250	100
2.	1000-1200	600	500	2(एक सरकारी एक प्राइवेट)	5(लगभग)	80	70	लगभग 300	20 लड़के गैर-खनन गतिविधियों में	10 गैर-खनन गतिविधियों में
3.	50	30	20	कोई प्राथमिक पाठशाला नहीं	5 से कम	15	10	लगभग 30	लगभग 30 लडके खनन, होटल, ट्रक हेल्पर, ट्रक ड्राइवर	10-15 लड़कियां घरेलू नौकर
4.	80	50	30	एक प्राथमिक स्कूल	5 से कम	25	20	लगभग 30-40	लगभग 20	डेटा उपलब्ध नहीं
5.	1100	600	500	1 प्राथमिक स्कूल, 1 मिडिल स्कूल	30 (लगभग)	200	150	200-300	कम से कम 200 से 300	खनन एवं अन्य नौकरियों में 100-150
6.	500	300	200	1 प्राथमिक स्कूल	5 से कम	100 के भीतर	लगभग 30	लगभग 50-70	लगभग 100	कुछ लड़कियां उजरती मजदूर
7.	440	240	200	1 प्राथमिक स्कूल	डेटा उपलब्ध नहीं	डेटा उपलब्ध नहीं	डेटा उपलब्ध नहीं	लगभग 50	50 से अधिक	लगभग 15
8.	550	300	250	1 प्राथमिक स्कूल	10 से कम	लगभग 100	60 से ज्यादा	लगभग 100	लगभग 70-80	20-30

गांव का नाम : (1) कूचीपदर, (2) मेकांच, (3) रामीबेड़ा, (4) केंदुखुंटी, (5) कोरल (डोम कोराल एवं तालाकोरल, दोनों), (6) बगरीझोला, (7) दिमुंडी, (8) डीपी कैंप

स्रोत : स्थानीय लोगों के साथ बातचीत (ये संख्याएं लोगों के वक्तव्यों पर आधारित हैं।)

डीपी कैंप गांव से काफी दूर है इसलिए यहां के बच्चों के पास गांव के प्राथमिक स्कूल तक जाने का साधन नहीं है। फलस्वरूप, कुछ छोटे बच्चे पुनर्वास बस्ती में ही कंपनी के स्कूल में जाते हैं। यह अस्थायी व्यवस्था है और इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि यह स्कूल जारी रहेगा। 12 साल से ज्यादा उम्र के बहुत सारे बच्चे स्कूल नहीं जाते। वे या तो घर पर रहते हैं या खनन अथवा निर्माण कार्यों में कार्य करते हैं। ज्यादातर युवा खनन अथवा निर्माण गतिविधियों या चाय की दुकानों, होटलों एवं अन्य छोटे-मोटे व्यवसायों में काम करते हैं। टेबल 2.27 में काशीपुर में उन गांवों के बच्चों की स्थिति दी गई है जहां हमारी टीम गई।

हमने पाया कि प्रत्येक गांव में मुश्किल से 50-100 बच्चे ही नियमित रूप से स्कूल जाते हैं। उदाहरण के लिए, रामीबेड़ा, केंदुखुंटी गांवों के लिए दिमुंडी गांव में स्कूल है। भले ही सरकारी कागजों में यहां स्कूल हो लेकिन उसका बुनियादी ढांचा नहीं है। न ही कोई शिक्षक नियमित रूप से आता है। लोगों ने बताया कि लगभग हर गांव में हर साल ड्रॉप-आउट दर बढ़ती जा रही है। गांव वालों ने बताया कि हर गांव के 10 प्रतिशत बच्चे किसी न किसी वजह से हर साल स्कूल छोड़ते जा रहे हैं। इसका मुख्य कारण उनकी गरीबी को बताया गया। इलाके के ज्यादातर बच्चे विभिन्न निर्माण स्थलों, खनन एवं छोटे होटलों और बाजारों में काम करते पाए गए जहां उन्हें परिवार को जिंदा रखने के लिए दिहाड़ी मजदूरी मिल जाती है।

टिकीरी गांव में हमने जिस एएनएम से बात की उसके पास 11 गांवों का जिम्मा है। उसके तहत 4 *आंगनवाड़ी* कामगार हैं। उसके तहत आने वाले इलाके की आबादी 4,479 है जिसमें लगभग 700-800 बच्चे 0-5 वर्ष की उम्र के हैं। हालांकि उसके पास विस्तृत रजिस्टर नहीं था लेकिन उसका अनुमान था कि वहां सिर्फ 20-30 प्रतिशत लोग ही साक्षर हैं। कुपोषण, मलेरिया, दस्त और पेचिश इस इलाके के बच्चों की सबसे बुनियादी स्वास्थ्य समस्याएं हैं। उसने पाया है कि इन गांवों में टीबी के मामले बढ़ते जा रहे हैं। जब उसने कोरल गांव में मौखिक गिनती लगाई तो वहां गहन कुपोषण के लगभग 10 मामले दिखाई दिए। उसका कहना था कि इनके अलावा भी बहुत सारे बच्चे खून की कमी और कुपोषण के शिकार हैं।

इस साल 120 में से 70 संस्थागत प्रसव हुए और प्रति 1000 जीवित प्रसवों में आईएमआर 51 थी जो कि पूरे जिले में सबसे ज्यादा है। पिछले साल एचआईवी/एड्स के कम से कम 4-5 मामले पहचान में आए थे।

बाल मजदूरी

152 काशीपुर इलाके में बाल मजदूर (फोटो - जून 2009)

टिकीरी की *आंगनवाड़ी* कामगार ने बताया कि इलाके में बाल मजदूरों की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है। फिलहाल 10-15 साल की उम्र के लगभग 30 प्रतिशत बच्चे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खनन गतिविधियों में सक्रिय हैं। खनन परियोजना के निकटतम कस्बे में कम से कम 500 बच्चे होटलों, दुकानों, गैरेजों, रेलवे स्टेशन और चाय की दुकानों पर काम करते बताए जाते हैं।[275] यूएआईएल परियोजना से प्रभावित प्रत्येक गांव में 18 साल से कम उम्र के औसतन 50-60 बच्चे और किशोर स्थानीय ठेकेदारों के तहत खनन क्षेत्र में निर्माण क्षेत्रों में काम कर रहे हैं। फिलहाल (खनन गतिविधियां बंद होने से ठीक पहले) खान स्थल पर दिहाड़ी मजदूरों के रूप में 400-500 बच्चे और युवक-युवतियां मजदूरी कर रहे हैं।

कूचीपदर गांव में सिर्फ एक प्राथमिक स्कूल और पंचायत स्कूल है। मोटा अनुमान यह है कि वहां लगभग 300-400 बच्चे[276] खान एवं गैर-खान गतिविधियों में बाल मजदूर हैं। गांव वालों के बयानों के मुताबिक ये बच्चे, खास तौर से किशोर लड़के बाहरी प्रभावों के चलते शराबखोरी, चोरी, जुआ, छिटपुट उठाई-गिरी जैसी असामाजिक गतिविधियों और उप. भोक्तावाद के शिकार हो रहे हैं।

बुनियादी सुविधाएं और बच्चों की सेहत

हमने पाया कि यह इलाका आधारभूत सुविधाओं के लिहाज से बहुत बुरी स्थिति में है। यहां *आंगनवाड़ी* केंद्र, पीने का पानी, प्राथमिक पाठशालाएं, बिजली और चिकित्सा सुविधाओं का भारी अभाव है। काशीपुर सहित पूरा दक्षिण उड़ीसा कुपोषण और भुखमरी के कारण होने वाली मौतों के लिए बदनाम रहा है। काशीपुर गांव के लोगों ने बताया कि 6 साल से कम उम्र

275. टिकिरी में एएनएम के साथ साक्षात्कार।

276. भगवान मांझी के साथ बैठक।

के 25-30 बच्चे हर साल कुपोषण व अन्य बीमारियों के कारण मर जाते हैं। मलेरिया, दस्त जैसी पानी से फैलने वाली बीमारियां और टीबी जैसी संक्रामक बीमारियां इस इलाके में काफी ज्यादा हैं। बच्चों के टीकाकरण की स्थिति खराब है जिससे वे बचपन की कुछ प्राणघातक बीमारियों के भी खतरे में रहते हैं। शासन की लापरवाही के कारण यह इलाका स्वास्थ्य समस्याओं और भारी शिशु मृत्यु दर से कराह रहा है।

एक तरफ तो प्रशासन की लापरवाही बच्चों के स्वास्थ्य और विकास को खतरा पैदा कर रही है जबकि दूसरी तरफ खनन गतिविधियों के कारण हुए विस्थापन ने खेती की जगह मजदूरी के प्रचलन और भोजन के अभाव में बाल मजदूरी व कुपोषण को बढ़ावा दे दिया है। इस इलाके में खनन गतिविधियों के कारण आतंक और हिंसा का जो स्थायी माहौल बना हुआ है उससे शिक्षक और स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं को अपनी जिम्मेदारियों को अनदेखा करके गांवों में न जाने का ठोस बहाना मिल गया है। यह इस बात का संकेत है कि इस इलाके के बच्चों के सामने अभी और संकट आने वाले हैं। राजनीतिक उथल-पुथल की जटिलता भी बढ़ गई है क्योंकि हिंदू और इसाई, दोनों धर्मों के धार्मिक कट्टरपंथी गुट इस नाजुक स्थिति का फायदा उठाने से बाज नहीं आ रहे हैं। पुलिस, उद्योग जगत, माओवादियों, सांप्रदायिक ताकतों, गैर-आदिवासियों एवं अन्य पक्षों की ओर से आदिवासियों पर पड़ रहे नाना प्रकार के दवाबों ने अस्थायी आतंक की स्थिति पैदा कर दी है और स्थानीय आंदोलनकारियों के सिर पर एक के बाद एक झूठे मुकदमे लगा दिए गए हैं। इस तरह, यहां न केवल एक जटिल राजनीतिक स्थिति पैदा हुई है बल्कि इलाके की महिलाओं और बच्चों के जीवन में गहरी असुरक्षा व अनिश्चितता भी पसर गई है।

जिन महिलाओं के पति झूठे मुकदमों में फंसे हुए हैं उनमें से बहुत सारी लाचारी और भुखमरी के हालात में पहुंच गई हैं। उन्हें अपने बच्चों की पढ़ाई बंद करनी पड़ी और वे अकेले अपने परिवार का पेट पालने की कोशिश कर रही हैं क्योंकि उनके पति या तो जेल में हैं या उनका सारा समय और पैसा अदालती सुनवाई में खत्म हो जाता है।

निष्कर्ष

यह बात स्पष्ट नहीं है कि प्रस्तावित खनन परियोजना से ऐसे इलाके के आदिवासी बच्चों को क्या फायदे मिलेंगे जहां कुपोषण, शिशु मृत्यु दर पहले ही आसमान छू रही है और स्कूल में हाजिरी सबसे कम है। जो पुनर्वास दिया गया है उसमें नकद मुआवजे के अलावा कुछ नहीं है क्योंकि बॉक्साइट खनन बेहद तकनीक-सघन कार्य है इसलिए विस्थापितों को नौकरी की उम्मीद नहीं है। लिहाजा, आर्थिक स्थिरता के लिहाज से नकद मुआवजा यहां के समुदाय के लिए अच्छा विकल्प नहीं है। बेशक, शिक्षा और स्वास्थ्य संकेतकों की दृष्टि से हालात अच्छे नहीं हैं लेकिन खनन उद्योग के आ जाने से भविष्य में भी स्थिति सुधरने की कोई गुजाइंश दिखाई नहीं देती। बल्कि, हो सकता है कि इससे स्थिति और बिगड़ जाए जैसा कि नालको प्रभावित समुदायों के मामले में भी देखा जा चुका है।

जब तक पुनर्वास में सरकार और खान कंपनियां बच्चों की सेहत और अच्छी शिक्षा तक उनकी पहुंच में सुधार के लिए स्पष्ट आश्वासन नहीं देतीं, जब तक वे उनकी सामाजिक सुरक्षा का प्रावधान नहीं करतीं तब तक गोलमोल वादों से इस इलाके में खानों के कचरे के अलावा और कुछ आने की उम्मीद नहीं की जा सकती। जब तक उपरोक्त विकास कार्यक्रमों और निवेशों को खनन पट्टे पर मंजूरी के लिए पूर्वशर्त का दर्जा नहीं दिया जाता और बच्चों से संबंधित कार्यक्रमों के क्रियान्वयन पर नजर रखने के लिए ठोस निगरानी व्यवस्था लागू नहीं की जाती तब तक खान कंपनियों और सरकार से गंभीर और ठोस उत्तरदायित्व की उम्मीद बेमानी है।

संयुक्त राष्ट्र देशी समुदाय अधिकार घोषणापत्र में स्थानीय आदिवासी समुदायों की स्वतंत्र, समयपूर्व और सचेत सहमति (एफपीआईसी) पर जोर दिया गया है। इस पर भारत सरकार भी दस्तखत कर चुकी है लेकिन आदिवासी इलाकों में ग्रीन फील्ड परियोजना का सवाल आने पर वह इस संधि को कोई सम्मान नहीं देती। न ही काशीपुर में और न ही बगल में स्थित लांजीगढ़ में उड़ीसा सरकार ने एफपीआईसी के सिद्धांतों को लागू किया है। अपने बच्चों के अधिकारों की रक्षा के संबंध में समुदायों की मांगों पर तो सरकार और भी लापरवाह दिखाई देती है। एक ही झटके में इन परियोजनाओं ने लोगों के संवैधानिक पांचवीं अनुसूची अधिकारों तथा समता जजमेंट में दिए गए फैसले को काशीपुर के बच्चों की जिंदगी से मिटा दिया है जो भविष्य में अपनी जमीनों के मालिक हो सकते थे। तरह उनकी जमीनों को निजी खान कंपनियों के हवाले कर दिया गया है।

उड़ीसा सरकार के रवैये ने आदिवासियों की भावी पीढ़ियों के लिए पांचवीं अनुसूची के उद्देश्य को नेस्तनाबूद कर दिया है। यह स्थिति उड़ीसा में और तीखी दिखाई देती है जहां आदिवासियों की लगभग एक-एक इंच जमीन पर कोई न कोई परियोजना प्रस्तावित है और जमीन का एक विशाल भाग पहले ही उद्योगों को सौंपा जा चुका है। बच्चों या समुदायों के लिए खनन व्यवसाय को तब तक एक टिकाऊ विकास नहीं माना जा सकता है जब तक उससे संबंधित वैधानिक स्वैच्छिक प्रतिबद्धताएं सिर्फ कागजों तक सिमटी रहेंगी। हमारे देश में खान उद्योग ने आदिवासी बच्चों के साथ यह सबसे बड़ा अन्याय किया है।

(*आभार :* यह केस स्टडीज अंकुरण, रायगड़ा के साथ साझेदारी में और काशीपुर व आसपास के गांवों की फील्ड विजिट्स के दौरान श्री बादल कुमार ताह, श्रीमती विदुलता हुइका की सहायता से संपन्न की गई हैं। हम श्री नवीन नाइक और श्री प्रहलाद नायड के विशेष आभारी हैं जो डेटा

संग्रह और साक्षात्कारों के लिए गांवों में हमारे साथ रहे। श्री भगवान माझी, पीएसएसपी ने हमें जो समय दिया और यूएआईएल विरोधी अभियान के बारे में अपने विचार हमें बताएं, उसके लिए हम उनके आभारी हैं।)

क्योंझर में खनन उद्योग

"मेरा नाम मोहित (बदला हुआ नाम) है। मेरी उम्र 16-17 साल है। मुझे अपनी उम्र का ठीक से पता नहीं है। मैं सालर पेंठा गांव का हूं। जब खान कंपनी ने हमारे परिवार की जमीन छीन ली तो मेरे पिता कुछ समय तक खान कंपनी में काम करने के बाद टीबी से बीमार हो गए और उनकी मृत्यु हो गई। शुरू में कंपनी ने वादा किया था कि सभी प्रभावित परिवारों को नौकरी दी जाएगी लेकिन अभी तक किसी गांव वाले को नौकरी नहीं मिली है। मैं अपने गांव में सबसे ज्यादा पढ़ा लिखा हूं। मैं मैट्रिक में फेल हुआ था। मैं खानों में दिहाड़ी मजदूरी करता हूं और रोज 60 रुपये कमाता हूं। अगर पूरे महीने काम मिल जाता है तो मुझे महीने में 1800 रुपये की मजदूरी मिलती है लेकिन असल में हमेशा काम नहीं मिलता। हमारे पास पीने का पानी, चिकित्सा सुविधाएं या कंपनी की तरफ से आवास की व्यवस्था नहीं है। मेरी शादी हो चुकी है और मुझे परिवार चलाने के लिए भारी तनाव झेलना पड़ता है। कभी-कभी मैं इस तनाव से उबरने के लिए महुआ पी लेता हूं। मेरी मां को भी टीबी है और अब उसके इलाज का खर्चा उठाना और खाने का इंतजाम करना मुश्किल हो गया है। मैं कॉलेज जाना चाहता था लेकिन मुझे अपने परिवार की देखभाल करनी पड़ती है इसलिए मैं कॉलेज नहीं जा सकता।"

स्रोत : सलारपेंठा, क्योंझर में लिया गया साक्षात्कार, फरवरी 2010

इस उपजाऊ खेतिहर जमीन में खनन परियोजना प्रस्तावित है, क्योंझर
(फोटो - जून 2009)

क्योंझर उत्तरी मध्य पठार का हिस्सा है। इसका क्षेत्रफल 8,240 किलोम. ीटर है। यह जिला उत्तर में झारखंड के सिंहभूम जिले, दक्षिण में जयपुर, पश्चिम में ढेंकानाल और सुंदरगढ़ तथा पूर्व में मयूरभंज और भद्रक जिलों से घिरा हुआ है।

देश के कुल लौह अयस्क भंडारों में से एक तिहाई उड़ीसा में हैं और कोयले के कुल भंडरों का पांचवां हिस्सा इसी राज्य में पड़ता है।[277] राज्य में उपलब्ध लौह अयस्क के 75 प्रतिशत भंडार क्योंझर में पड़ते हैं। बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में भू-वैज्ञानिकों ने यहां खनिज पदार्थों के भंडार ढूंढ़े और 1905 में जोड़ा नामक स्थान क्योंझर के खान एवं औद्योगिक गतिविधियों का केंद्र बन गया। 1990 के दशक के शुरुआती सालों में इन गतिविधियों में कई गुना इजाफा हुआ। निजी और विदेशी निवेशकों ने यहां बड़े पैमाने पर निवेश किया। क्योंझर में छोटे-बड़े लगभग 118 खनन पट्टे जारी हो चुके हैं।

पिछले तीन दशकों से क्योंझर में बड़े पैमाने पर खनन गतिविधियां जारी हैं। क्योंझर, मयूरभंज और सुंदरगढ़ में लौह अयस्क का बेलगाम खनन चल रहा है। यहां कानूनी और गैर-कानूनी, दोनों तरीके से अयस्क निकाले जा रहे हैं। विभिन्न रिपोर्टों के अनुसार क्योंझर फॉरेस्ट डिवीजन के भीतर 100 से ज्यादा खुली लौह अयस्क खानें हैं जिनका क्षेत्रफल 60,000 हैक्टेयर से अधिक है। इनके अलावा बहुत सारा इलाका गैर-कानूनी खनन कार्यों के तहत आता है।[278]

खान कंपनियों के बारे में

यहां सक्रिय कंपनियों के विवरण या उनके कामकाज के इलाके की पूरी जानकारी देना मुश्किल है क्योंकि यहां गैर-कानूनी खनन भी उतना ही है जितना कानूनी ढंग से हो रहा है। यहां तक कि विशाल कंपनियां भी ठेकेदारों के जरिए काम कर रही हैं इसलिए स्थानीय समुदायों के लिए भी यह समझना नामुमकिन हो गया है कि कौन सी खान का मालिक कौन है। स्थानीय समुदाय के नेताओं ने बताया कि वहां 100-200 अवैध खानें और लगभग 400 अवैध क्रशर चल रहे हैं। टेबल 2.28 में इलाके में मौजूद कुछ खान कंपनियों का ब्यौरा दिया गया है।

क्योंझर की एक दिलचस्प विशेषता यह है कि यहां दुनिया की सबसे पुरानी चट्टान पाई गई है। आसनपट में स्थित लगभग 100 वर्ग किलोमीटर की यह चट्टान 38 अरब साल पुरानी है। जिले का कम से कम 30 प्रतिशत क्षेत्रफल घने जंगलों वाला है जिसमें कई संसाधनों के विपुल भंडार हैं। इलाके का लगभग 60 प्रतिशत हिस्सा आरक्षित वनों का है और बाकी हिस्सा राजस्व विभाग के तहत आता है। जिले में खान गतिविधियों के तहत आने वाला कुल क्षेत्रफल 312 वर्ग किलोमीटर है।

277. http://www.boloji.com/analysis2/0173.htm.

278. http://india.merinews.com/catFull.jsp?articleID=136864

टेबल 2.28 : क्योंझर में सक्रिय कुछ खान कंपनियां			
क्र.सं.	कंपनी/पाधारक	उत्पादन	स्थान
1.	मैसर्स सेल	लौह अयस्क	बोलानी
2.	मैसर्स एसेल माइनिंग ऐण्ड इंडस्ट्री	लौह अयस्क, डोलोमाइट, चूना पत्थर	खसिया
3.	मैसर्स बीपीएमईएल	लौह अयस्क	ठकुरानी
4.	डॉ पटनायक	लौह अयस्क एवं मैंगनीज़ अयस्क	ठकुरानी
5.	एस आर स्टील	लौह अयस्क एवं मैंगनीज़ अयस्क	दोबुना
6.	कलिंगा स्पंज ऐण्ड स्टील कंपनी		दोबुना
7.	फेरो मेंगनीज	मैंगनीज़ फेरो एलोय	जोड़ा
8.	एसआर स्टील	लौह अयस्क	बोडोकालीमाटी

स्रोत : फील्ड विजिट्स, जुलाई 2007, उपरोक्त आंकड़े मुख्य रूप से गांव वालों के बयानों और लुथेरान वर्ल्ड सर्विस इंडिया (एनडब्ल्यूएसआई) के पास उपलब्ध सूचनाओं पर आधारित हैं।

स्थानीय गांवों का जनसांख्यिकीय विवरण

क्योंझर उड़ीसा के आदिवासी बहुल इलाकों में से एक है इसलिए यहां जुआंग आदि अन्य आदिवासी समुदाय, खासतौर से भटूड़ी, गोंड, मुंडा और संथाल समुदाय रहते हैं। 2001 की जनगणना के मुताबिक जिले की कुल आबाद 1,561,990 है जिसमें से अनुसूचित जनजाति आबादी 44.5 प्रतिशत और अनुसूचित जाति आबादी 11.62 प्रतिशत है। जिले की 75 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है। 2001 की जनगणना से पता चलता है कि पूरे जिले में कम से कम 46 आदिवासी समुदाय हैं। इनमें से 16 मुख्य कबीलों की आबादी कुल आदिवासी आबादी में 96.12 प्रतिशत बैठती है। टेबल 2.29 में क्योंझर के उन स्थानों का ब्यौरा दिया गया है जहां शोध टीम ने दौरा किया।

फील्ड ट्रिप के दौरान शोधकर्ताओं ने जिन इलाकों का दौरा किया उनमें ज्यादातर अनुसूचित जनजाति और कुछ अनुसूचित जाति परिवार थे। नीचे दिए गए कुछ आंकड़े गांव वालों के बयानों पर आधारित हैं। इनसे गांवों की सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक स्थिति, विस्थापन और खनन की कीमत, विशेष रूप से पारिस्थितिकीय असंतुलन, महिलाओं और बाल मजदूरी की स्थिति का पता चलता है।

2.29: ग्रामवार आंकड़े : क्योंझर								
क्र.सं.	गांव	कुल परिवार	कुल आबादी	लिंगवार		18 साल से कम आबादी	लिंगवार	
				पुरुष	महिलाएं		लड़के	लड़कियां
1.	बोलानी	350	1500	800	700	900	500	400
2.	खसिया	350	2000	950	1050	1100	550	600
3.	तांतो	135	700	370	330	300	160	140
4.	ठकुरानी	100	500	250	250	200	100	100
5.	दोबुना	350	1700	900	800	700	400	300
6.	बोडोकालीमाटी	190-200	1000-1300	650	600	500	250	250
7.	जोड़ा	120	600-700	350	300	300	200	100

स्रोत : फील्ड विज़िट्स, जुलाई 2009 : उपरोक्त आंकड़े मुख्य रूप से गांव वालों के बयानों पर आधारित हैं।

279. इम्पैक्ट ऑफ माइनिंग ऐण्ड ऐलाइड ऐक्टिविटीज़ इन क्योंझर ऐण्ड मयूरभंज, एलडब्ल्यूएसआई, 2006.

विस्थापन की सामाजिक लागत

जैसा कि हमने सलारपेंठा और मदरंगजोड़ी गांवों में में देखा, जिन लोगों की जमीन छीनी गई उनको 2 से 10 लाख रुपये तक मुआवजा मिला है। मुआवजा इस बात पर आधारित था कि किसकी कैसी जमीन छिनी है। ज्यादातर स्थानों पर गांव वालों का कहना था कि उन्हें सिर्फ 60-70 हजार रुपये मुआवजा मिला है। इतने कम मुआवजे के सहारे वे नई जमीन नहीं खरीद सकते थे इसलिए अब वे खानों में मजदूर बनकर रह गए हैं। ऐसे लगभग सभी लोग गरीबी की रेखा से नीचे हैं लेकिन ज्यादातर के पास बीपीएल कार्ड या नरेगा कार्ड नहीं हैं। यह स्थिति राजस्व अधिकारियों की लापरवाही का नतीजा है।

टिकरापाड़ा गांव की आबादी 1200 है। खनन गतिविधियों का सबसे अधिक प्रभावत इसी गांव पर पड़ा है। ज्यादातर गांव वाले, जो अनुसूचित जनजातियों से हैं, वे पहले खेती और वानिकी के सहारे जीवनयापन करते थे। इस गांव के लगभव सारे परिवार अपनी जमीन गंवा चुके हैं और अब वे खान ठेकेदारों के पास दिहाड़ी मजदूर बनकर रह गए हैं। उनकी आर्थिक स्थिति दयनीय है। उनके बच्चे भी स्कूल छोड़ कर खान मजदूर बन गए हैं।

विस्थापन ने गांव के बहुत सारे युवाओं को खानों में मजदूरी के लिए विवश कर दिया है। बाहर से आयी प्रवासी आबादी, जैसे ट्रक ड्राइवर आदि (इस इलाके में हर रोज लगभग 60 हजार ट्रक चलते हैं) ने आदिवासी युवाओं में उथल-पुथल पैदा कर दी है। पहले यहां के युवा शराब, गुटका, चोरी और पॉकेटमारी जैसी चीजों से आजाद थे। अब इन विकृतियों से आदिवासी समुदायों की नई पीढ़ी में सामाजिक सामंजस्य खत्म हो गया है।

सलारपेंठा गांव 5 बड़ी खनिज प्रसंस्करण फैक्टरियों और क्रशरों के बीचोंबीच स्थित है। यह गांव न केवल खनन गतिविधियों की वजह से बुरी तरह प्रभावित हुआ है बल्कि यहां विकास सुविधाओं या आधारभूत सुविधाओं का भी भारी अभाव है। ज्यादातर गांव वालों ने बहुत मामूली कीमत पर अपनी जमीन खान कंपनियों को बेच दी थी। गांव वालों का कहना है कि उन्हें प्रति डेसीमल जमीन के लिए बमुश्किल 1500 रुपये मुआवजा दिया गया था। गांव की कम से 80-100 एकड़ जमीन खान कंपनियों के कब्जे में जा चुकी है।

मदरंगजोड़ी गांव जिले के पहाड़ी इलाके में स्थित है। यहां विशाल वन पट्टी एवं खनिज संसाधन हैं। खान कंपनियों ने यहां की 20-30 एकड़ जमीन का अधिग्रहण करके गांव के लोगों को खान मजदूर बना दिया है। इन मजदूरों को अब महज 2000 रुपये माहवार से ज्यादा मजदूरी नहीं मिलती। जिन स्थानीय लोगों की जमीन ली गई है उनको पहले नौकरी का आश्वासन दिया गया था लेकिन यहां की स्थिति भी कमोबेश मदरंगजोड़ी गांव वाली ही है।

एक तरफ तो गांव वालों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति गरीबी की रेखा से नीचे है और दूसरी तरफ विधवा पेंशन, बीपीएल कार्ड और नरेगा जैसे सरकारी कार्यक्रम भी इस समुदाय तक नहीं पहुंच पा रहे हैं। सिर्फ 15-20 महिलाओं को विधवा पेंशन मिल रही है और बहुत थोड़े परिवारों के पास बीपीएल राशन कार्ड है।

शराबखोरी इस गांव की एक और बड़ी समस्या है। क्योंकि खान कंपनियां, पुलिस और आबकारी अधिकारी आपस में मिले हुए हैं इसलिए इलाके में बहुत सारी शराब की दुकानें खुल गई हैं जिससे स्थानीय समुदाय और मजदूर शराब की चपेट में आ रहे हैं। यहां पुरुष ही नहीं बल्कि महिलाएं और लड़कियां भी खानों में भारी परिश्रम की वजह से शराब की आदी होती जा रही हैं।

खनन उद्योग से प्राथमिक शिक्षा पर असर : बाल मजदूरी के लिए निहितार्थ

आगे दी गई टेबल्स में अध्ययन के लिए चुने गए गांवों की आबादी और दूसरे ब्यौरे दिए गए हैं। ये आंकड़े जनगणना दस्तावेजों के साथ-साथ फील्ड साक्षात्कारों पर भी आधारित हैं। प्राथमिक आंकड़ो में आबादी में जो वृद्धि दिखाई देती है वह इस कारण हो सकती है कि पिछली जनगणना को लगभग दस साल पूरे हो गए हैं। जनगणना 2001, डीआईएसई रिपोर्ट कार्डों पर आधारित स्कूल दाखिला आंकड़े और प्राथमिक सूचनाओं से ली गई स्कूल ड्रॉप-आउट की दर को देख कर पता चलता है कि यहां के बच्चों की एक बड़ी संख्या स्कूली शिक्षा से वंचित है और वे विभिन्न प्रकार की बाल मजदूरी में फंस चुके हैं। मिसाल के तौर पर, बोलानी गांव में स्थानीय समुदाय के अनुसार 18 साल से कम उम्र के 650-700 बच्चे हैं लेकिन स्कूल में सिर्फ 480 बच्चों के नाम दर्ज हैं। इसका मतलब यह है कि कम से कम 100-150 बच्चे स्कूल नहीं जाते। खसिया गांव में नाबालिग आबादी 700 है लेकिन स्कूल में सिर्फ 143 बच्चों का दाखिला है। तांतो गांव में 78 बच्चे स्कूल जाते हैं जबकि 18 साल से कम उम्र के बच्चों की आबादी 250 के आसपास है। दूसरे स्थानों की तरह यहां भी कई बच्चे स्कूल जाने के साथ-साथ अनौपचारिक स्तर पर मजदूरी भी करते हैं। जनगणना के आंकड़ों से पता चलता है कि ज्यादातर बच्चे अनुसूचित जनजाति आबादी से हैं। उनके बाद सबसे बड़ी संख्या अनुसूचित जाति बच्चों की है। टेबल 2.30 में जनगणना 2001 के आंकड़े और 2.31 में आबादी के बारे में इकट्ठा किए गए प्राथमिक आंकड़े दिए गए हैं। टेबल 2.32 में प्राथमिक आंकड़ों और डीआईएसई रिपोर्ट कार्ड में दी गई सापेक्ष सूचनाएं प्रस्तुत की गई हैं।

टेबल 2.30 : जनगणना 2001 में ग्रामवार आंकड़े, क्योंझर

क्र.सं.	गांव	कुल परिवार	आबादी	लिंगवार		जाति के अनुसार कुल आबादी
				पुरुष	महिलाएं	
1.	बोलानी	305	1562	811	751	अजा-187 (पु-71, म-65), अजजा-(पु-591, म-576)
2.	खसिया	295	1301	646	655	अजा-207 (पु-14, म-83), अजजा - 848 (पु-416, म-432)
3.	तांतो	115	535	276	259	अजा (पु-9, म-9), अजजा (पु-238, म-229)
4.	ठकुरानी	61	318	162	156	अजजा-266 (पु-136, म-130)
5.	दोबुना	263	1140	564	576	अजा-289 (पु-121, म-168), अजजा - 499 (पु-950, म-249)
6.	बड़कालीमाटी	163	663	346	317	अजा-69 (पु-39, म-30), अजजा-435 (पु-221, म-214)
7.	जोड़ा	90	433	228	205	अजा-2 (पु-1, म-1) अजजा -312 (पु-156, म-156)

स्रोत : जनगणना 2001.

टेबल 2.31 : आबादी के बारे में अनुमानित आंकड़ें, क्योंझर

क्र.सं.	गांव	कुल परिवार	कुल आबादी	लिंगवार कम आबादी		18 साल से	लिंगवार	
				पुरुष	महिलाएं		लड़के	लड़कियां
1.	बोलानी	350	1,600	800	700	650-700	350	300
2.	खसिया	350	1,700	950	1,050	700-750	450	300
3.	तांतो	135	700	370	330	250	150	100
4.	ठकुरानी	100	500	250	250	200	100	100
5	दोबुना	350	1,300-1,350	700	650	350	200	150
6.	बड़कालामाटी	190-200	800-850	450	400	350	200	150
7.	जोड़ा	120	600-700	350	300	300	200	100

स्रोत : फील्ड विज़िटस 2009; उपरोक्त आंकड़े मुख्य रूप से गांव वालों के बयानों पर आधारित हैं।

खनन गतिविधियों ने बच्चों की शिक्षा पर निश्चय ही गहरा नकारात्मक असर डाला है। इस क्षेत्र के बारे में उपलब्ध प्राथमिक या द्वितीयक आंकड़ों से इस तस्वीर की पुष्टि होती है।

टेबल 2.32 : सापेक्ष ग्रामवार स्कूल दाखिले एवं प्राथमिक आंकड़े, जोड़ा ब्लॉक, क्योंझर

जिला	ब्लॉक	गांव	कुल दाखिले	अजा	अजजा	ओबीसी	अन्य	प्राथमिक आंकड़े
क्योंझर	जोड़ा	दोबुना	366	88	179	99	21	300
		बड़कालीमाटी	234	51	143	40	2	250
		ठकुरानी	112	0	108	14	30	70
		बोलानी	480	26	397	0	11	350
		तांतो	78	0	78	0	2	100
		खसिया	143	22	99	22	2	600*
		जोड़ा						

अन्य - दोबारा उसी कक्षा में पढ़ रहे बच्चे, सीडब्ल्यूएसएन एवं मुसलिम।

नोट : कुल योग में गड़बड़ी है लेकिन ये आंकड़े डीआईएसई रिपोर्ट कार्ड में भी इसी तरह दिए गए हैं।

* खासिया में दो टोले हैं। प्राथमिक आंकड़े दोनों टोलों के लिए गए हैं लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि डीआईएसई आंकड़ों के लिए भी यही पद्धति अपनाई गई थी या नहीं।

स्रोत : डीआईएसई रिपोर्ट कार्ड 2008; प्राथमिक आंकड़े गांव वालों के बयानों पर आधारित हैं।

बाल मजदूरी और स्कूल ड्रॉप-आउट के बारे में प्राथमिक सूचनाएं

जैसा कि टेबल 2.33 में दिया गया है, प्रत्येक गांव में कम से कम 50 बच्चे दिहाड़ी मजदूर हैं। हालांकि ड्रॉप-आउट और बाल मजदूरों की संख्या में फर्क दिखाई देता है लेकिन इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि इसमें छः साल से कम उम्र के बच्चे भी शामिल हैं और संभव है कुछ बच्चे नियमित रूप से मजदूरी पर न जाते हों बल्कि घर पर रहते हों। टेबल 2.33 में क्योंझर के उन गांवों में बाल मजदूरी और स्कूल ड्रॉप-आउट से संबंधित जानकारी दी गई है जहां शोध टीम ने दौरा किया।

खसिया खान स्थल के पास सड़क किनारे ढाबे में काम करते बच्चे, क्योंझर
(फोटो - जुलाई 2009)

टेबल 2.33 : बाल मजदूरी और स्कूल ड्रॉप-आउट आंकड़े, क्योंझर

गांव	खनन/अन्य क्षेत्र में बाल मजदूर		स्कूल ड्रॉप-आउट
	लड़के	लड़कियां	
बोलानी	150	100	150-200
खसिया	100	50	250-300
तांतो	50-100	50	सूचना उपलबध नहीं
ठकुरानी	50	30	100
दोबुना	150	100	100-200
बड़ा कालामाटी	100	50	250
जोड़ा	150	50	सूचना उपलब्ध नहीं।

स्रोत : समुदाय के मुखियाओं से साक्षात्कार; प्राथमिक आंकड़े गांव वालों के बयानों पर आधारित हैं।

आंकड़े स्पष्ट दिखाते हैं कि जब से इस क्षेत्र में खनन गतिविधियां शुरू हुई हैं तब से बहुत सारे बच्चे स्कूल छोड़ चुके हैं और गरीबी के कारण खानों या खेतों में मजदूरी करने लगे हैं। इन गांवों के चारों तरफ सिर्फ खानें है इसलिए चाहे कितनी ही कम मजदूरी हो, बच्चों को काम की तलाश में सबसे पहले इन्हीं खानों में जाना पड़ता है।

टिकरापाड़ा गांव में एक प्राथमिक स्कूल है लेकिन गांव में कम से कम 40-50 ऐसे बच्चे हैं जो स्कूल नहीं जाते। तांतो, बड़कालीमाटी और खसिया जैसे कुछ गांवों के लोगों ने बताया कि वहां प्राथमिक स्कूल तो है लेकिन स्कूल रोज नहीं खुलता इसलिए बच्चे खानों में मजदूरी के लिए

चले जाते हैं। ठकुरानी के लोगों ने बताया कि वहां कोई सरकारी स्कूल नहीं है इसलिए बच्चे स्कूल नहीं जाते। सलारपेंठा गांव में 18 साल से कम उम्र के कम से कम 80 बच्चे मजदूरी करते हैं क्योंकि खान कंपनियां गांव की सीमा से सटी हुई हैं। गांव का एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो अभी तक मैट्रिक भी पास कर पाया हो।

सलारपेंठा का स्कूल इस इलाके में शिक्षा की खराब गुणवत्ता का उदाहरण है। यहां स्कूल की इमारत के नाम पर सिर्फ एक कमरा है और स्कूल में सिर्फ एक अध्यापक तैनात है। जिस दिन हम इस स्कूल को देखने पहुंचे उस दिन वहां सिर्फ चार बच्चे थे। शिक्षक ने बताया कि कम से कम 45 बच्चे हमेशा अनियमित रूप से स्कूल आते हैं क्योंकि उन्हें गरीबी के कारण जंगलों या खानों में मजदूरी करनी पड़ती है। टेबल 2.34 में सलारपेंठा गांव के दाखिलों के आंकड़े दिए गए हैं।

राजाबंधा प्राइमरी स्कूल में भुइंया साही, संताल साही और जर्नादनपुर गांवों के बच्चे भी पढ़ते हैं क्योंकि यह इस इलाके का सबसे बड़ा प्राइमरी स्कूल है। सरकारी दस्तावेजों में बताया गया है कि वहां ड्रॉप-आउट की कोई समस्या नहीं है लेकिन स्कूल की मुख्य अध्यापिका ने हमें बताया कि उनके अनुमानों के अनुसार आस पास के गांवों के कम से कम 100 बच्चे स्कूल नहीं आ रहे हैं और इन बच्चों को घर की आर्थिक गतिविधियों में हाथ बंटाना पड़ता है। स्कूल में अध्यापकों की कमी है और विद्यार्थियों व अध्यापकों का अनुपात बहुत ज्यादा है। टेबल 2.35 में 2009-10 के दौरान राजाबंधा प्राइमरी स्कूल में दाखिलों का ब्यौरा दिया गया है।

टेबल 2.34: 2009-10 में दाखिलों की स्थिति, सलारपेंठा गांव

कक्षा	कुल बच्चे	अजजा		अजा		अन्य	
		लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां
1	19	4	1	0	0	7	7
2	40	0	0	0	0	18	22

स्रोत : प्राथमिक स्कूल, सलारपेंठा, क्योंझर।

टेबल 2.35 : 2009-10 में दाखिलों की स्थिति, राजाबंधा प्राइमरी स्कूल

कक्षा	कुल बच्चे	कुल		अजजा		अजा		अन्य	
		लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां
1	52	34	18	30	15	4	2	0	1
2	48	20	28	17	25	3	3	0	0
3	44	24	20	19	17	3	2	2	1
4	43	24	19	21	16	3	2	0	1
5	50	26	24	23	17	0	6	3	1
कुल	237	128	109	110	90	13	15	5	4

स्रोत : राजाबंधा प्राइमरी स्कूल, क्योंझर।

राजाबंधा में अनुसूचित जनजाति विद्यार्थियों के लिए एक सस्ता छात्रावास भी है लेकिन इसमें बहुत कम विद्यार्थी रहते हैं। टेबल 2.36 में राजाबंधा के छात्रावास में दाखिलों का ब्यौरा दिया गया है।

टेबल 2.36 : राजाबंधा छात्रावास में विद्यार्थियों के दाखिले, 2009-10

कक्षा	कुल क्षमता		अजजा	
	लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां
1	5	4	5	4
2	4	3	4	3
3	2	4	2	4
4	5	7	5	7
5	4	2	4	2
कुल	20	20	20	20

स्रोत : राजाबंधा प्राइमरी स्कूल, क्योंझर

आंगनवाड़ियां

ज्यादातर *आंगनवाड़ियां* खस्ता हालत में चल रही हैं। उनमें से कुछ लघु आंगनवाड़ियां हैं। सलारपेंठा गांव के *आंगनवाड़ी* केंद्र में 59 बच्चों के नाम दर्ज हैं लेकिन बहुत थोड़े बच्चे ही नियमित रूप से आते हैं। कुछ शिशुओं को उनकी मांएं खान स्थल पर साथ ले जाती हैं क्योंकि *आंगनवाड़ी* केंद्र दिन में ज्यादातर बंद ही रहता है। *आंगनवाड़ी* हैल्पर ने बताया कि यहां कम से कम 30 बच्चे कुपोषित हैं। बच्चों के दाखिले और पोषण की स्थिति का अंदाजा टेबल 2.37, 2.38 को देखकर लगाया जा सकता है जिसमें जर्नादनपुर *आंगनवाड़ी* केंद्र की जानकारी दी गई है। टेबल 2.39 में जर्नादनपुर *आंगनवाड़ी* में आने वाले कुल बच्चों की संख्या और आयु समूह का ब्यौरा दिया गया है।

टेबल 2.37 : आंगनवाड़ी केंद्र जर्नादनपुर में दाखिले, 2009-10

बच्चों की श्रेणी	कुल बच्चे	लड़के	लड़कियां
अजजा	48	25	23
अजा	2	0	2
सामान्य	0	0	0

स्रोत : आंगनवाड़ी केंद्र, जर्नादनपुर।

टेबल 2.38 : जर्नादनपुर आंगनवाड़ी में बच्चों के पोषण की स्थिति, 2009-10

श्रेणी	कुल बच्चे
श्रेणी 1	31
श्रेणी 2	3-5
श्रेणी 3	10-12
श्रेणी 4	02

स्रोत : आंगनवाड़ी केंद्र, जर्नादनपुर।

टेबल 2.39 : जर्नादनपुर आंगनवाड़ी में बच्चों के आयु समूह, 2009-10

आयु समूह	कुल बच्चे
0-6 माह	7
6 महीने - 3 साल	24
3-6 साल	19

स्रोत : आंगनवाड़ी केंद्र, जर्नादनपुर।

पर्यावरण पर खनन के प्रभाव और समुदाय व बच्चों का स्वास्थ्य

जोड़ा और बारबिल की पट्टी में वायु एवं जल प्रदूषण की स्थिति बहुत गंभीर थी। घटते जंगलों के फलस्वरूप पर्यावरणीय ध्वंस को साफ महसूस किया जा सकता था। खनन कार्यों के लिए कानूनी और गैर-कानूनी, दोनों ढंग से जंगल काटे जा रहे हैं। रोज कम से कम 60,000 ट्रक अयस्क भरकर जोड़ा और बारबिल इलाके से राज्य के विभिन्न भागों की ओर रवाना होते हैं। सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ इससे भारी धूल जनित प्रदूषण भी पैदा होता है। बैतरणी और ब्राह्मणी इस इलाके की मुख्य नदियां हैं। दोनों नदियां बेहद प्रदूषित हो चुकी हैं। उनका जल प्रवाह भी घट गया है। इस इलाके में गांवों के लिए सुरक्षित पेय जल की व्यवस्था नहीं है क्योंकि कंपनी की गतिविधियों से जल स्रोत और नहरें पहले ही दूषित हो चुकी हैं। हम जिन गांवों में गए, उन सभी गांवों में जल प्रदूषण और

बड़ा कालामाटी इलाके में लौह अयस्क की लोडिंग, क्योंझर
(फोटो - जुलाई 2009)

जलराशियों में खानों के कचरे की बेलगाम डंपिंग का जिक्र किया गया। कभी-कभी कंपनियां समुदायों के विरोध को शांत करने के लिए पानी भेज देती हैं लेकिन ऐसा बहुत कम होता है।

जोड़ा इलाके में पानी से फैलने वाली बीमारियां सबसे आम हैं। हमने जिन इलाकों का दौरा किया उनमें से ज्यादातर जगह मलेरिया की समस्या बहुत ज्यादा बताई गई। स्थानीय समुदायों ने बताया कि टीबी और त्वचा रोग जैसे व्यावसायिक खतरे खानों में काम करने वाले लोगों में काफी आम हैं। जोड़ा के आसपास यह स्थिति ज्यादा गंभीर थी। इस इलाके में न तो मजदूरों के लिए और न ही समुदायों के लिए स्वास्थ्य सुविधाओं का इंतजाम किया गया है। बहुत सारे मजदूरों ने बताया कि इस इलाके में खांसी, जुकाम और श्वास संबंधी समस्याएं बहुत ज्यादा हैं। ज्यादातर गांवों की शिकायत थी कि उनके पास चिकित्सा सुविधाएं नहीं हैं।

खसिया गांव में कोई स्वास्थ्य सेवा नहीं है जबकि यहां टीबी, मलेरिया, कुपोषण और पानी से फैलने वाली बीमारियां काफी ज्यादा हैं। इन बीमारियों के इलाज के लिए लोगों को पड़ोस में स्थित बारबिल कस्बे में जाना पड़ता है। बोलानी और बड़कालीमाटी गांव में एचआईवी/एड्स तथा यौन संक्रामक रोगों के भी कई मामले बताए गए। दोबुना गांव में लोगों ने उपरोक्त बीमारियों के अलावा त्वचा रोगों और हृदय रोगों का भी जिक्र किया। तांतो सबसे प्रदूषित गांवों में से एक है। जहां लोग इन सारी बीमारियों को झेल रहे हैं। हमें बताया गया कि हाल ही में मदरंगजोड़ी गांव के 12 लोग टीबी के कारण मारे गए थे और 12-15 अन्य लोग टीबी का इलाज करा रहे हैं।

क्योंझर के ग्रीनफील्ड इलाकों में खनन

राज्य सरकार ने मीडिया और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा बताए जा रहे गंभीर कानूनी और मानवाधिकार उल्लघंनों पर कोई कार्रवाई नहीं की है। यहां खान कंपनियां पग-पग पर अपना कब्जा जमा चुकी हैं लेकिन अभी भी नई परियोजनाएं आती जा रही हैं। इस इलाके पर पड़ने वाले प्रभावों, खासतौर से महिलाओं, बच्चों और आदिवासियों पर पड़ने वाले प्रभावों का समुचित आकलन किए बिना सरकार खनन गतिविधियों के लिए नए-नए गांवों के दोहन का प्रस्ताव रख रही है। कुछ प्रस्तावित इलाके तो बेहद दुर्गम आदिवासी गांवों में है जिनके पास बहुत उपजाऊ जमीनें हैं और जहां साल में तीन-तीन फसलें होती हैं। ये ऐसे गांव हैं जहां स्थानीय अभिशासन तंत्र बस कहने को ही मौजूद है और इन समुदायों की सामाजिक व आर्थिक सुरक्षा उनके अपने परंपरागत संसाधनों और आजीविका पर निर्भर है।

क्योंझर एक परंपरागत सांमती कृषि पट्टी है जहां ज्यादातर लोग मजदूरी और खाद्य फसलों की खेती पर निर्भर रहते हैं। प्रस्तावित खनन परियोजनाओं से बच्चों की खाद्य सुरक्षा के लिए खतरा पैदा हो रहा है। इसके अलावा यहां पुराने आजीविका साधनों की जगह लोग खान मजदूर भी बनते जा रहे हैं। जिन जमीनों का अधिग्रहण होने वाला है वे सारी जमीनें या तो धान की खेती वाली उपजाऊ जमीनें हैं या गैर-लकड़ी वन उत्पादों वाली जंगली जमीनें हैं। जर्नादनपुर के 9 में से 8 वार्डो के गांव वाले वेदांता ग्रुप की स्टरलाइट कंपनी के खिलाफ आंदोलन कर रहे हैं जो इनकी जमीन का अधिग्रहण करने वाली है। टेबल 2.40 में मैसर्स स्टरलाइट आयरन ऐण्ड स्टील लिमिटेड (जो ब्रिटेन की वेदांता ग्रुप की कंपनी है) द्वारा अधिग्रहित की जाने वाली कुछ गांवों की जमीन के बारे में जानकारी दी गई है।

टेबल 2.40 : मैसर्स स्टरलाइट आयरन ऐण्ड स्टील लिमिटेड के लिए अधिग्रहित होने वाली जमीन

गांव	कुल परिवार	अधिकृत होने वाली जमीन/प्रतिशत	विस्थापित होने वाले परिवारों की प्रस्तावित संख्या
टिकरापाड़ा	370	600 एकड़/33	84
महादीजोड़ा	383	270 एकड़/13	सूचना उपलब्ध नहीं
सिलीगुंआं	393	73 एकड़/25	16
सिंगरायसुंहा	15+ लोवर संताल	124 एकड़/99	सूचना उपलब्ध नहीं
कड़ागढ़	282	440 एकड़/40	16
गोपीनाथपुर	245	124 एकड़/31	16
जर्नादनपुर	271	248 एकड़/35	सूचना उपलब्ध नहीं
धतिका	65	220 एकड़/91	29
नरसिंहपुर	83	55 एकड़/24	सूचना उपलब्ध नहीं

स्रोत : ग्राम प्रधान, राजाबंधा (ये आंकड़े लोगों के बयानों पर आधारित हैं)।

यह सिर्फ एक कंपनी है जो लौह अयस्क खनन के लिए जमीन का अधिग्रहण करने वाली है। इसके अलावा भी कई दूसरी कंपनियां हैं जो खनन गतिविधियों के लिए कानूनी और गैर-कूनी ढंग से जमीन का अधिग्रहण कर रही हैं।

निष्कर्ष

क्योंझर में खनन गतिविधियों ने आदिवासियों की खेती और वन कार्यों को पूरी तरह नष्ट कर दिया है। स्थानीय समुदाय, खासतौर से बच्चों पर खनन उद्योग के प्रभावों की मिसाल के रूप में क्योंझर का बार-बार उल्लेख आने लगा है। यहां से जो हजारों ट्रक गुजरते हैं उन्होंने स्थानीय जीवन को अपने शिकंजे में ले लिया है और यहां का सामाजिक ताना-बाना तार-तार कर दिया है। इसके बावजूद नई-नई खनन परियोजनाएं प्रस्तावित की जा रही हैं और बहुत सारे इलाकों का अधिग्रहण किया जाना है। ज्यादातर मामलों में अयस्कों की खुदाई या प्रसंस्करण के लिए इतने विशाल भू-भागों के अधिग्रहण का कोई तकनीकी औचित्य नहीं पाया गया है। न ही कंपनियों के पास प्रस्तावित परियोजनाओं के लिए तकनीकी रूप से ठोस डिजाइन है। हमारे देश में खान योजनाओं को सामाजिक अथवा आपदा प्रबंधन योजनाओं की गंभीर जांच किए बिना ही क्लियरेंस दे दी जाती है इसलिए, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अस्त-व्यस्त स्वरूप को देखते हुए खान कंपनियां ज्यादा से ज्यादा जमीन कब्जाने में लिए जुटी हुई हैं। यह सवाल अभी भी अनुत्तरित है कि ये कंपनियां अपने कब्जे में आने वाली जमीन पर वाकई खनिज पदार्थों की खुदाई करेंगी या सिर्फ उस पर कब्जा करके बैठ जाएंगी। खान परियोजनाओं के प्रति अतिउत्साह में कंपनियों को जमीन बांटते जाने के तरीके पर गंभीर सवाल खड़े किये जा चुके हैं। इससे क्योंझर में बच्चों के कुपोषण व पढ़ाई छोड़ने की दर आसमान छूने लगी है। अगर बच्चों की स्थिति पहले वाली जीवन परिस्थितियों के मुकाबले खराब होती जा रही है तो यह किसी तरक्कीयाफ्ता अर्थव्यवस्था का संकेत नहीं है।

(*आभार :* क्योंझर की केस स्टडी एलडब्ल्यूएसआई, खासतौर से श्री सुभाष दास की सहायता से संपन्न की गई। क्योंझर के गांवों की फील्ड विजिट्स के आयोजन में हमें श्री नीलाद्रि मिश्रा, श्री संतोष कुमार दास, श्री दयानिधि मरांडी और श्री शिवशंकर मरांडी से भी मदद मिली है। इस अध्ययन में उनकी सहायता के लिए हम आभारी हैं।)

खान कंपनियों द्वारा मीडिया में बच्चों का दुरुपयोग

आप जैसे ही भुबनेश्वर में दाखिल होंगे तो खान कंपनियों के बोर्ड आपकी आंखों को चौंधियाने लगेंगे। हर कंपनी की मुहिम औरों से एक कदम आगे जाकर ये साबित कर रही है कि उसकी मेहरबानी से लोग, इस राज्य के बच्चे कितने खुशहाल हो गए हैं। शिक्षा, खेल, सेहत, परिवार की खुशहाली, ठोस आजीविका, खुशी का जश्न - ये संदेश बड़े-बड़े लेकिन फुसलाने वाले हैं। जहां वास्तव में बच्चे कुपोषित हैं, स्कूल नहीं जा रहे हैं, बेघर हैं, भूखों मर रहे हैं और खनन उद्योग से पैदा हुई गरीबी के कारण खानों या दूसरे स्थानों पर मजदूरी कर रहे हैं वहां इश्तहारों में बच्चों को इस्तेमाल करना उनके अधिकारों का गंभीर हनन है। बच्चों का दुरुपयोग करके जनता में अपनी चमचमाती छवि गढ़ने की ऐसी कोशिशों की सख्त निंदा की जानी चाहिए।

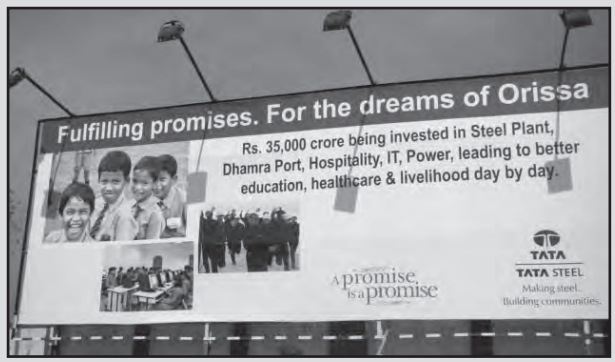

आन्ध्र प्रदेश

व्यापक स्थिति

आंध्र प्रदेश की आबादी 2001 में 76,210,007 थी जिसमें से 70 प्रतिशत लोग गांवों में रहते थे। कुल आबादी में 5,024,104 लोग अनुसूचित जनजातियों से और 12,339,496 अनुसूचित जाति समुदायों से हैं।[280] आर्थिक वृद्धि के लिहाज से अखिल भारतीय आंकड़ों के मुकाबले आंध्र प्रदेश की जीएसडीपी वृद्धि दर भी पिछले ढाई दशक के दौरान काफी बढ़ी है। आंध्र प्रदेश की वृद्धि दर पहले अखिल भारतीय स्तर से पीछे थी लेकिन अब यह फासला घटता जा रहा है। 2004-08 के दौरान राज्य की औसत वृद्धि दर 8.7 प्रतिशत थी। वर्ष 2007-08 के दौरान आंध्र प्रदेश की औसत वार्षिक वृद्धि दर अखिल भारतीय औसत से भी अधिक थी।[281]

आंध्र प्रदेश देश के उन गिने-चुने राज्यों में आता है जहां सत्तर के दशक की शुरुआत में हरित क्रांति का प्रयोग किया गया था। इस राज्य की अर्थव्यवस्था में खेती एक अहम भूमिका अदा करती है। रोजगारों में खेती का हिस्सा सबसे ऊंचा है और दूसरे राज्यों से तुलना करने पर खेती का जीएसडीपी भी सारे दूसरे राज्यों से अधिक बैठता है। कुल जीएसडीपी में गैर-कृषि क्षेत्र का योगदान आंध्र प्रदेश में ही नहीं बल्कि अखिल भारतीय औसत में भी लगातार बढ़ता जा रहा है। 60 के दशक में यह 50 प्रतिशत था जो 2005-06 में 79 प्रतिशत तक पहुंच गया था।[283]

हालिया एनएसएसओ सर्वेक्षण (2004-05) के अनुसार, अनुमान लगाया जाता है कि आंध्र प्रदेश की लगभग आधी आबादी कामकाजी आबादी है। कृषि सेवाओं के मामले में आंध्र प्रदेश सारे भारतीय राज्यों में दूसरे स्थान पर है। यहां की 62.3 प्रतिशत आबादी कृषि कार्यों में संलग्न है।[284] आंध्र प्रदेश ग्रामीण क्षेत्र में सबसे ज्यादा रोजगार उपलब्ध कराता है (कुल रोजगारशुदा लोगों में से 13.14 प्रतिशत)[285] आंध्र प्रदेश के सेवा क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी सबसे तेजी से बढ़ता हुआ घटक है। फिलहाल कर्नाटक, महाराष्ट्र और तमिलनाडु के बाद आंध्र प्रदेश सॉफ्टवेयर निर्यात में चौथे स्थान पर है। राज्य की राजधानी हैदराबाद आईटी कंपनियों की एक मुख्य मंजिल बन चुकी है।[286] आंध्र प्रदेश में प्रवासी आबादी काफी बड़ी है। जनगणना 2001 के अनुसार राज्य में लगभग 2.3 करोड़ लोग प्रवासी हैं।

आंध्र प्रदेश भारत के तीन सबसे कम साक्षर राज्यों में से एक है। आंध्र प्रदेश की कुल साक्षरता दर 60.47 प्रतिशत है। राज्य के 70.32 प्रतिशत पुरुष और 50.43 महिलाएं साक्षर हैं। ग्रामीण महिलाओं में साक्षरता दर बहुत ही कम है। ग्रामीण महिलाओं में केवल 43.5 प्रतिशत ही साक्षर हैं। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति समुदायों में महिलाओं की साक्षरता दर क्रमशः 43.4 प्रतिशत और 34.8 प्रतिशत ही रह गई है। आंध्र प्रदेश में लिंग अनुपात 1000 पुरुषों पर 978 महिलाओं का है।

शिशु मृत्यु दर एवं प्रसवोपरांत मृत्यु दर के आंकड़े दूसरे ग्रामीण राज्यों के मुकाबले काफी ऊंचे हैं। इस मामले में ग्रामीण आंध्र प्रदेश की स्थिति ज्यादा खराब है। कुपोषण, ऐनीमिया और बढ़ता एचआईवी संक्रमण राज्य में लोक स्वास्थ्य के लिए एक बड़ी चुनौती है। मलेरिया यहां की एक मुख्य समस्या है। अनुमान लगाया जाता है कि राज्य में 160,000

280. भारत की जनगणना।
281. मानव विकास रिपोर्ट आंध्र प्रदेश, 2007
282. उपरोक्त।
283. उपरोक्त।
284. इकॉनॉमिक सर्वे ऑफ महाराष्ट्र 2002-03, अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी निदेशालय, योजना विभाग, महाराष्ट्र सरकार।
285. दि फाइनेंशियल ऐक्सप्रेस http://www.financialexpress.com/printer/news/316250/
286. मानव विकास रिपोर्ट आंध्र प्रदेश 2007

के आसपास लोग टीबी से पीड़ित हैं और देश में टीबी से होने वाली 10 प्रतिशत मौतें यहीं होती हैं।[287]

राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संस्थान (नाको) द्वारा जारी किए गए अनुमानों के अनुसार, 31 जुलाई 2005 तक पूरे भारत में दर्ज किए गए एड्स के 103,857 मामलों में से 11,280 यानी तकरीबन 11 प्रतिशत आंध्र प्रदेश के थे। आंध्र प्रदेश में एड्स के कारण अभी तक 739 लोगों की मौत हो चुकी है।[288]

वर्ष 2001 में राज्य के लगभग 39.91 प्रतिशत परिवार गरीबी की रेखा से नीचे थे जोकि अखिल भारतीय औसत 41.23 प्रतिशत से बेहतर स्थिति थी।[289] दूसरी ओर, स्वतंत्र शोधकर्ताओं द्वारा लगाए गए वैक. ल्पिक अनुमानों से पता चलता है कि राज्य में गरीबी की दर अखिल भारतीय रुझान के आसपास यानी ग्रामीण इलाकों में 26 प्रतिशत और शहरी इलाकों में 12 प्रतिशत है।[290] सच्चर कमेटी रिपोर्ट, 2006 में अलग-अलग समूहों की गरीबी के बारे में आंकड़े दिए गए हैं। इस रिपोर्ट में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय सबसे गरीब श्रेणी में रखे गए हैं।

बच्चों की स्थिति

जनगणना 2001 के अनुसार आंध्र प्रदेश में 14 साल से उम्र के 17,713,764 और 5-19 वर्ष के 25,293,728 बच्चे थे। अधिकृत आंकड़ों में राज्य भर का ड्रॉप-आउट दर 43.03 प्रतिशत बताया गया है - लड़कों के लिए 42.62 प्रतिशत और लड़कियों के लिए 43.46 प्रतिशत। आंध्र प्रदेश के सरकारी आंकड़ों से पता चलता है कि 6-14 साल की उम्र के लगभग 10 लाख बच्चे स्कूल से बाहर हैं।[291] प्रथम के एएसईआर 2008 सर्वेक्षण के अनुसार इस आयु वर्ग के 3.4 प्रतिशत बच्चे स्कूल नहीं जाते और 3-4 साल की उम्र के लगभग 12.1 प्रतिशत बच्चों के नाम किसी आंगनवाड़ी केंद्र या स्कूल-पूर्व संस्था में दर्ज नहीं हैं।[292]

जनगणना 2001 के मुताबिक आंध्र प्रदेश में 5-14 साल की उम्र के 1,363,339 और 5-19 साल की उम्र के 4,504,471 बच्चे हैं। जनगण ाना रिपोर्ट में ये भी पता चलता है कि 5-14 साल की उम्र के 11,660 और 5-19 साल के 37,586 बच्चे खानों में मजदूरी कर रहे हैं। राज्य में 7,760 बच्चे खतरनाक व्यवसायों में मजदूरी करते हैं।[293] आंध्र प्रदेश में एमसीएलपी के तहत आने वाले बच्चों की कुल संख्या 50,921 है।[294]

2005-06 में राज्य की आईएमआर प्रति 1000 जीवित प्रसवों पर 54 और 5 वर्ष से कम उम्र में मृत्यु दर प्रति 1000 जीवित प्रसवों पर 63 थी। आंध्र प्रदेश के ग्रामीण इलाकों में शिशु मृत्यु दर शहरी इलाकों के मुकाबले लगभग दो गुना है। जीवन के पहले साल में आंध्र प्रदेश की लड़कियां लड़कों के मुकाबले मृत्यु की कम आशंका में रहती हैं लेकिन 1-5 साल के बीच लड़कियों की मृत्यु दर लड़कों से कुछ अधिक रहती है।[295]

आंध्र प्रदेश में कुपोषण एक बहुत बड़ी समस्या है। लगभग आधे बच्चों में स्थायी कुपोषण के लक्षण दिखाई देते हैं और पांच साल से कम उम्र के 43 प्रतिशत बच्चों का विकास अवरुद्ध दिखाई देता है। ग्रामीण इलाकों के बच्चों में अल्पपोषण की आशंका ज्यादा दिखाई देती है और लड़कियों के मामले में अल्पपोषण की संभावना लड़कों से कुछ ज्यादा रही है।[296] कुपोषण की भारी दर प्रवासी मजदूरों के बच्चों में भी दिखाई देती है। प्रवासी मजदूरों के ज्यादातर बच्चे सामान्य से कम वजन वाले हैं और उनके चेहरे पर दाग दिखाई देते हैं।[297] आंध्र प्रदेश में 6-15 महीनों के बच्चों में खून की कमी बहुत बड़े पैमाने पर (70 प्रतिशत से अधिक बच्चों में) है।[298]

आंध्र प्रदेश में बाल व्यापार की समस्या बहुत गंभीर है और देश भर में लगभग 40 प्रतिशत मामले यहीं के रहे हैं। 26 प्रतिशत महिलाएं या लड़कियां 14-16 साल की उम्र में देह व्यापार में फंस जाती हैं। 20 प्रतिशत 16 से 18 साल की उम्र के बीच और 16 प्रतिशत लड़कियां 14 साल से कम उम्र में इस व्यापार की शिकार हो जाती हैं।[299]

---

287. http://www.whoindia.org/en/section3/section123.htm
288. मानव विकास रिपोर्ट आंध्र प्रदेश 2007
289. राज्य सभा अतारांकित प्रश्न संख्या 2688, दिनांक 8.8.2001
290. डीटन (2000, 2001) ने एनएसएस आंकड़ों का इस्तेमाल करते हुए 1987-88, 1993-94 और 1999-00 के लिए विभिन्न राज्यों के मूल्यों का आकलन किया है।
291. मानव विकास रिपोर्ट आंध्र प्रदेश 2007
292. प्रथम, एसईआर 2008 सर्वे।
293. राज्य सभा अतारांकित प्रश्न संख्या 2691, दिनांक 9.8.2000
294. वार्षिक रिपोर्ट 2001-02, श्रम मंत्रालय, भारत सरकार।
295. एनएफएचएस-3
296. मानव विकास रिपोर्ट आंध्र प्रदेश 2007.
297. दि हिंदू, आंध्र प्रदेश, सोमवार 16 नवंबर 2009.
298. एनएफएचएस-3
299. मानव विकास रिपोर्ट आंध्र प्रदेश 2007.

आंध्र प्रदेश में खनन उद्योग

आंध्र प्रदेश में लगभग सारे महत्वपूर्ण खनिज पाए जाते हैं। इनमें कोयला, चूना पत्थर, बेराइट्स, डोलोमाइट, फेल्सपर, लौह अयस्क, मैंगनीज़ अयस्क, सिलिका मिट्टी, बॉल क्ले, लैटेराइट और माइका (कच्चा) प्रमुख हैं।[300]

पत्थर की खदान में लोडिंग करवाते युवा

आंध्र प्रदेश में खनन उद्योग बहुत बड़े पैमाने पर फैला हुआ है। खनन उद्योग के मामले में राज्यों की सूची में आंध्र प्रदेश तीसरे स्थान पर आता है। देश के कुल खनिज उत्पादन मूल्य का 9.1 प्रतिशत आंध्र प्रदेश में पैदा होता है। यहां रिपोर्टिंग मान्इस की संख्या में उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। यहां 2006-07 में 415, 2007-08 में 372 और 2008-09 में 406 खानें थीं।[301] लेकिन हमारा मानना है कि खानों की वास्तविक संख्या इससे काफी ज्यादा होगी क्योंकि पूरे राज्य में अवैध खनन बहुत ज्यादा होता है। 2006 से जून 2009 के बीच ही खान मंत्रालय ने यहां अवैध खनन के 411 मामले पाए थे। अवैध खनन केवल अनंतपुर जिले के लौह अयस्क उद्योग तक ही सीमित नहीं है बल्कि राज्य के कई दूसरे जिलों में भी बड़े पैमाने पर चल रहा है।[302]

इस बारे में कोई सटीक जानकारी उपलब्ध नहीं है कि खनन उद्योग का कुल क्षेत्रफल कितना है या पूरे राज्य में खानों के लिए कितनी वन भूमि इस्तेमाल की जा रही है। अनुमान लगाया जाता है कि अभी 206,250 हैक्टेयर क्षेत्रफल में खनन कार्य चल रहे हैं और 1980 से 2008 के बीच 18,178.54 हैक्टेयर वन भूमि खान उद्योग को दी जा चुकी है।[303]

अकेले 2004-05 में ही आंध्र प्रदेश में 6,200 करोड़ रुपये मूल्य के खनिज पदार्थों का उत्पादन किया गया जोकि पूरे देश के खनिज उत्पादन मूल्य का 8 प्रतिशत बैठता है। पिछले दो दशकों के दौरान यहां खनिज पदार्थों के मूल्य में काफी इजाफा हुआ है और पूरे राज्य में 2007-08 में खनिज उत्पादन का मूल्य 9,841 करोड़ रुपये था जोकि पिछले साल से 14 प्रतिशत ज्यादा था।[304]

खनन उद्योग के भारी मुनाफों के बावजूद राज्य की आय में इस उद्योग का हिस्सा काफी छोटा रहा है। 2004-05 में राज्य सरकार रॉयल्टी के तौर पर केवल 864 करोड़ रुपये वसूल कर पाई थी जोकि राज्य सरकार की कुल राजस्व आय का मात्र 3 प्रतिशत था। अनुमान लगया जाता है कि इस उद्योग में लगभग पांच लाख लोग सक्रिय हैं। हमारा मानना है कि यह संख्या इससे काफी ज्यादा होगी क्योंकि अवैध खानों में भी बहुत बड़ी संख्या में लोग काम कर रहे हैं।[305]

जिला विशाखापट्नम : मुख्य तथ्य	
कुल आबादी :	3,832,336 (जनगणना 2001)
बच्चों की आबादी (0-14 साल) :	850,611 (जनगणना 2001)
साक्षरता दर :	कुल 60 प्रतिशत पुरुष 69.68 प्रतिशत महिला 50.12 प्रतिशत (जनगणना 2001)
स्कूल न जाने वाले बच्चे (6-14 साल) :	3.1 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
आंगनवाड़ी केंद्र या स्कूल पूर्व संस्थाओं में दाखिल बच्चे (3-4 साल):	98.3 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
बाल मजदूरों की संख्या (5-14 वर्ष) :	51,536 (जनगणना 2001)
5 साल से कम आयु में मृत्यु दर (रैंकिंग) :	593 जिलों में 153वां स्थान *(जनसंख्या स्थिरता कोष)*

300. खान मंत्रालय: वार्षिक रिपोर्ट 2008-09.

301. उपरोक्त।

302. http://www.expressbuzz.com/edition/story.aspx?Title=Andhra+tops+list+in+illegal+mining&artid=YUcRSNuCQA0=&SectionID=e7uPP4%7CpSiw=&Main Sectio nID=e7uPP4%7CpSiw=&SectionName=EH8HilNJ2uYAot5nzqumeA==&SEO=illegal%20mining,%20andhra,%20OMC,%20janardhan%20reddy,

303. सेंटर फॉर साइंस ऐण्ड एनवायर्नमेंट "रिच लैंड, पुअर पीपुल : इज सस्टेनेबल माइनिंग पॉसिबल?" ऐण्ड फॉरेस्ट लैंड डाइवर्टेड फॉर माइनिंग बाई मिनिस्ट्री ऑफ एनवायर्नमेंट ऐण्ड फॉरेस्ट्स इन इंडिया (25.10.1980 से 30.09.2008)।

304. खान मंत्रालय: वार्षिक रिपोर्ट 2008-09.

305. सेंटर फॉर साइंस ऐण्ड एनवायर्नमेंट "रिच लैंड पुअर पीपुल : इज सस्टेनेबल माइनिंग पासिबल?"

जिला कुडप्पा : मुख्य तथ्य	
मुख्य आबादी :	1,283,704 (जनगणना 2001)
बच्चों की आबादी (0-14 साल) :	285,324 (जनगणना 2001)
साक्षरता दर :	कुल 63 प्रतिशत पुरुष 75.83 प्रतिशत महिला 49.54 प्रतिशत (जनगणना 2001)
स्कूल न जाने वाले बच्चे (6-14 साल) :	2.1 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
आंगनवाड़ी केंद्र या स्कूल पूर्व संस्थाओं में दाखिल बच्चे (3-4 साल) :	86.6 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
बाल मजदूरों की संख्या (5-14 वर्ष) :	312,391 (जनगणना 2001)
5 साल से कम आयु में मृत्यु दर (रैंकिंग) :	593 जिलों में 92वां स्थान *(जनसंख्या स्थिरता कोष)*

जिला चित्तूर : मुख्य तथ्य	
मुख्य आबादी :	3,745,875 (जनगणना 2001)
बच्चों की आबादी (0-14 साल) :	791,554
साक्षरता दर :	कुल 67 प्रतिशत पुरुष 77.62 प्रतिशत महिला 55.76 प्रतिशत (जनगणना 2001)
स्कूल न जाने वाले बच्चे (6-14 साल) :	1.9 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
आंगनवाड़ी केंद्र या स्कूल पूर्व संस्थाओं में दाखिल बच्चे (3-4 साल) :	84.9 प्रतिशत (एएसईआर 2008)
बाल मजदूरों की संख्या (5-14 वर्ष) :	46,841 (जनगणना 2001)
5 साल से कम आयु में मृत्यु दर (रैंकिंग) :	593 जिलों में 79वां स्थान *(जनसंख्या स्थिरता कोष)*

पत्थर की खानों में बच्चे

निर्मला चित्तूर जिले में वड्डी समुदाय से है। उसकी उम्र 9 साल है। कक्षा 4 से उसे पढ़ाई छोड़नी पड़ी। उसके मां-बाप, दोनों पत्थर की खानों में काम करते थे। उसकी मां का टीबी से देहांत हो चुका है और उसके पिता बहुत बीमार रहते हैं इसलिए वह मजदूरी पर नहीं जा सकते। अब वह अपने बेटे और बेटी पर आश्रित हैं। बेटे की उम्र 16 साल और बेटी की उम्र 15 साल है। इस परिवार में निर्मला के दादा-दादी भी हैं जिनकी उम्र 80 साल से ज्यादा है। दोनों बड़े भाई-बहन को पत्थर की खानों और फैक्टरी में नौकरी पर जाना पड़ता था इसलिए निर्मला और उसके छोटे भाई को पढ़ाई छोड़नी पड़ी ताकि वे अपने पिता और दादा-दादी की देखभाल कर सकें और रसोई व अन्य घरेलू कामों का जिम्मा संभाल सकें।

स्रोत : टी वड्डुरू गांव, पालामनेरू में एक परिवार के साथ साक्षात्कार, जून 2009.

आंध्र प्रदेश की खनन गतिविधियों में छोटे खनिज पदार्थों की एक बड़ी भूमिका रही है। आंध्र प्रदेश में कोयला, बॉक्साइट, चूना पत्थर और मैंगनीज़ जैसे बड़े खनिज पदार्थ पाए जाते हैं। खासतौर से कोयला और बॉक्साइट आंध्र प्रदेश के उत्तरी और पूर्वोत्तरी आदिवासी पट्टी में पाए गए हैं जबकि ज्यादातर लघु खनिज और पत्थर की खदानें रायलसीमा के दक्षिणी इलाके में स्थित हैं। पत्थर की खदानों के कारण रायलसीमा इलाके में सीमेंट की भी बहुत सारी फैक्टरियां हैं।

पिछले कुछ साल से इस खदान में काम कर रहा किशोर

इस अध्ययन के तहत कुडप्पा, चित्तूर और विशाखापट्नम जिलों में ऐसे

स्थानों का दौरा किया गया जहां पत्थर की खानें, क्रशर और छोटे पैमाने की परंपरागत खनन गतिविधियां चल रही हैं। यह अध्ययन असंगठित क्षेत्र मजदूरों और स्थानीय समुदायों के बीच सक्रिय तीन स्थानीय संगठनों द्वारा किया गया है। कुडप्पा और चित्तूर जिलों में इस अध्ययन के तहत जो इलाका लिया गया वहां लम्बे समय से खनन गतिविधियां चल रही हैं और इलाके में राजनीतिक सत्ता यहां की खनन अर्थव्यवस्था और ताकत से ही निर्धारित होती है। विशाखापट्नम में जो इलाका चुना गया वह इस बात का सुबूत है कि देश भर में बढ़ते शहरीकरण और नए निर्माण कार्यों के लिए निर्माण सामग्री मुहैया कराने के वास्ते किस तरह नई खानें सामने आ रही हैं और खेती व परंपरागत भूमि प्रयोग के लिए खतरा पैदा कर रही हैं। इन सभी स्थानों पर खान उद्योग से बच्चों पर गहरे असर पड़े हैं। प्रवासी मजदूरों की बढ़ती संख्या और परंपरागत रूप से पत्थर तोड़ने वाले समुदायों में बढ़ रही समस्याओं के कारण बच्चों के लिए उपलब्ध सहायक संस्थाएं विखंडित होती जा रही हैं। इस अध्ययन में उन परिस्थितियों का विश्लेषण किया गया है जिनमें बच्चों को खान मजदूरी के लिए विवश किया जा रहा है और यह देखा गया है कि बच्चों के लिए मौजूद संस्थागत संरचना किस हालत में है।

केस स्टडी : कुडप्पा जिला

अकेले कुडप्पा जिले में लगभग 25 तरह के खनिज पदार्थ निकाले जाते हैं। पुलीवेंदुला में बेराइट्स, एस्बेस्टॉस, सोपस्टोन और यूरेनियम के अच्छे-खासे भंडार पाए गए हैं। इनके अलावा पीला गेरू, सफेद गेरू, शेल पत्थर, डोलोमाइट, लैटेराइट, केलसाइट, लौह अयस्क, काला पत्थर और सल्फर भी यहां मिलते हैं। अध्ययन में यहां सक्रिय दस बड़ी पत्थर खदान कंपनियों को चिन्हित किया गया जिनमें कृष्णप्पा बेराइट्स, रंगराज्या मिनरल्स, गांधी कंपनी, केलटेक्स, पीवीएस माइन्स, आईबीई शिवगंगा, प्रताप रेड्डी माइन्स, वाईएस माइन्स, टिफिन माइन्स, ब्लू डायमंड और कई अन्य छोटी कंपनियां शामिल हैं जिनके काम पूरे जिले में फैले हुए हैं। सुरक्षा एवं श्रम मानकों का पालन करने वाली कंपनियां बहुत थोड़ी हैं इसलिए ज्यादातर खानों में कानूनों का जमकर उल्लघंन होता है। इन कंपनियों के अलावा इस इलाके में तीन बड़ी सीमेंट फैक्टरियां भी हैं।

इस अध्ययन में कुडप्पा जिले में खनन कार्यों में लगे 201 परिवारों का विश्लेषण किया गया है। इन परिवारों में ज्यादातर अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति या ओबीसी समुदायों के थे। जिन पत्थर खदानों का दौरा किया गया वे मंडल मुख्यालय से 2-3 किलोमीटर दूर थीं। टेबल 2.41 में कुडप्पा जिले के उन परिवारों का ब्यौरा दिया गया है जिनका अध्ययन किया गया।

टेबल 2.41 : पत्थर खान मजदूरों के परिवारों और बच्चों का विवरण, कुडप्पा

मंडल	खानों की संख्या	परिवारों की संख्या	जाति	पुरुष	महिलाएं	लड़के	लड़कियां	कुल आबादी
चक्रयापेटा	2	18	बीसी	18	18	7	9	52
गालिवीडू	4	26	बीसी, अजा	26	29	27	35	117
लक्कीरेड्डीपल्ले	2	17	बीसी	19	23	14	13	69
रायचोटी	2	14	बीसी	16	19	10	10	55
चिन्नामांडेम	1	9	बीसी	14	13	7	6	40
साम्बेपल्ले	2	21	बीसी, अजा	22	24	8	8	62
रामापुरम	3	28	बीसी, अजा	31	35	11	13	90
चुदुपल्ले	1	11	बीसीए, अजा	12	11	5	4	32
पोरुमामिल्ला	3	14	अजा	17	19	8	5	49
चिंताकोमांधिने	1	28	अजा, बीसी, अजजा	28	18	23	30	99
बढ़वेलु	2	15	बीसी	15	22	9	7	53
कुल	23	201		218	231	129	140	718

स्रोत : वीआरडीएस द्वारा किया गया सर्वेक्षण, अक्टूबर 2009.

खान मजदूरों के बच्चों की समस्याएं

क्योंकि ठेकेदार पूरे के पूरे परिवारों को खान स्थल पर ले आते हैं इसलिए वयस्क और बच्चे, सभी पत्थर की खानों में मजदूरी करने लगते हैं। पति-पत्नी, दोनों पूरे दिन खदानों में मजदूरी करते हैं इसलिए उनके पास बच्चों की देखभाल का मौका नहीं होता। बच्चे इन्हीं खदानों में बड़े होते हैं इसलिए शुरू से ही इन खानों और क्रशर्स से निकलने वाली भारी धूल के शिकार हो जाते हैं। उन पर दुर्घटनाओं, विस्फोटों और ध्वनि प्रदूषण का खतरा बना रहता है। ज्यादातर खदानों में मांओं का कहना था कि दिन-रात चलने वाले क्रशर की कानफोडू आवाजों से उनके बच्चे रात में नहीं सो पाते।

बाल मजदूरी और शिक्षा

7 साल की उम्र से बच्चे अपने मां-बाप के साथ काम पर जाने लगते हैं और उन्हें 150 रुपये के आसपास दिहाड़ी मिलती है। इस सर्वेक्षण में हमने जिन 269 बच्चों की स्थिति पर विचार किया उनमें से केवल 53 बच्चों के नाम स्कूल में दर्ज थे। इस सर्वेक्षण की एक सीमा है कि इसमें केवल 14 साल से कम उम्र के बच्चों को ही लिया गया है। खानों में काम करने वाले ज्यादातर बच्चे 14-18 साल की उम्र वाले हैं लेकिन उनको सर्वेक्षण में नहीं लिया गया था। 6-7 साल की छोटी-छोटी लड़कियां भी पत्थर की खानों में काम करती पाई गईं। औरतों ने बताया कि 12-13 साल की उम्र तक आते-आते पिता अपनी बेटियों की शादी कर देते हैं। लड़कियों के बाप इस आधार पर दामादों का चुनाव करते हैं कि किसके पास शराब पिलाने की ज्यादा औकात है। इस तरह छोटी-छोटी लड़कियां बहुत कम उम्र से ही खान मजदूरी में बंधकर रह जाती हैं।

क्योंकि ये मजदूर प्रवासी परिवारों के हैं और पत्थर खदानें किसी गांव या कस्बे के बाहर स्थित होती हैं इसलिए बच्चों के पास स्कूलों या आंगनवाडियों की सुविधा नहीं होती। इस काम के अस्थायी स्वरूप के कारण भी मां-बाप अपने बच्चों के लिए स्कूल नहीं ढूंढ़ पाते। ऊपर से गरीबी के कारण मजदूर भी यही चाहते हैं कि उनके बच्चे जल्दी से जल्दी काम पर लग जाएं। गालीवेडु और चिंताकोमाधिने के अलावा बाकी खानों में अलग-अलग उम्र के औसतन 20 बच्चे पाए गए। वहां उनके लिए आंगनवाड़ी या प्राथमिक स्कूल जैसी संस्थाएं नहीं थीं। इनमें से कहीं भी एनसीपीएल स्कूल भी नहीं थे। कुछ बच्चे अपने मूल गांव में स्कूल जाते थे लेकिन अब वे प्रवासी परिवार के साथ गांव छोड़कर आ चुके हैं इसलिए लंबे-लंबे समय तक किसी स्कूल में नहीं जा पाते।

बच्चों के सामने मौजूद सामाजिक समस्याएं

खनन एक खतरनाक गतिविधि है। इसके लिए भारी शारीरिक श्रम की जरूरत होती है इसलिए ज्यादातर मजदूर नशीली दवाओं और शराब के आदी हो जाते हैं। मजदूरों और खासतौर से महिलाओं के साथ चर्चाओं से कई महत्वूपर्ण जानकारियां मिलीं। उन्होंने बताया कि खान मालिक मजदूरों और उनके परिवारों की जिम्मेदारी नहीं उठाते। मालिकों का कहना है कि खान मजदूर अपना सारा पैसा शराब और नशीली दवाओं पर उड़ा देते हैं इसलिए उनकी गरीबी उन्हीं की सामाजिक कुरीतियों और आदतों से पैदा हुई है। इस काम के अप्रवासी स्वरूप और बेहद थकन भरी परिस्थितियों के कारण मजदूर जुए जैसी दूसरी आदतों के भी शिकार हो जाते हैं। कुडप्पा में हमने जिन खानों का विश्लेषण किया वहां सभी जगह मटका जुए को सबसे गंभीर समस्या बताया गया। यह एक बेहद संगठित गिरोह है जिसको कई राजनीतिक ताकतें अवैध रूप से बढ़ावा दे रही हैं। इसीलिए, खान मजदूरों में मटका और शराब की वजह से घरेलू हिंसा और महिलाओं का उत्पीड़न बहुत ज्यादा है। पुरुषों के ऊपर ग्राम समुदाय वाले अंकुश भी नहीं बचे हैं इसलिए भी महिलाओं की हालत ज्यादा खराब है। बच्चे लगातार इन सामाजिक विकृतियों के साये में रहते हैं इसलिए सामाजिक और शारीरिक, दोनों लिहाज से एक असुरक्षित वातवरण में रहते हैं।

ज्यादातर खान मजदूरों ने बताया कि टीबी और/या सिलिकोसिस यहां सबसे बड़ी स्वास्थ्य समस्या है। उनका कहना था कि वे खानों में 10-12 साल मजदूरी करने के बाद कोई भी काम करने में अक्षम हो जाते हैं और उनकी बाकी जिंदगी बीमारियों और इलाज में बीतती है। जिस इलाके का सर्वेक्षण किया गया वहां वड्डेपल्ली और इलागल्लू खानों में 6-8 लोग एचआईवी पॉजिटिव बताए गए जबकि 3 मामले देवीपाटला खान में बताए गए।

(*आभार :* कुडप्पा जिले में यह अध्ययन वेनेल्ला रूरल डेवलेपमेंट सोसायटी (वीआरडीएस) के श्री विजय कुमार द्वारा किया गया। हम उनके इस योगदान के लिए आभार व्यक्त करते हैं।)

केस स्टडी : जिला विशाखापट्नम

यहां जिन खानों का अध्ययन किया गया है वे 6 से 20 साल पुरानी छोटी खानें हैं। विशाखापट्नम जिले का अंकापल्ली मंडल एक उपजाऊ इलाका है। राष्ट्रीय राजमार्ग से सटा यह मंडल एक महत्वपूर्ण औद्योगिक इलाका भी है। यहां की खानें स्थानीय ठेकेदारों और राजनेताओं की देखरेख में चलती हैं जो खेतों के चारों तरफ स्थित पहाड़ियों को पट्टे पर लेकर स्थानीय क्रशर्स में पत्थर सप्लाई करते हैं। इन खानों में ज्यादातर काम प्रवासी मजदूर करते हैं जो आंध्र प्रदेश के निकटवर्ती उत्तरी तटवर्ती जिलों से हर साल या कई सालों के लिए यहां आ जाते हैं। कुछ परिवार पिछले 10-12 साल से यहीं रह रहे हैं। वे या तो खानों में मजदूरी करते हैं या लॉरी अथवा ट्रक चलाते हैं। बहुत सारे परिवार हर साल काम बंद

होने पर लौट जाते हैं। खान मजदूर मुख्य रूप से अनुसूचित एवं पिछड़ी व अन्य पिछड़ी जातियों के हैं जिनके पास न तो जमीन है और न ही कोई रोजगार है।

बाल मजदूरी

यहां प्रत्यक्ष और अदृश्य, दोनों तरह की बाल मजदूरी दिखाई देती है क्योंकि कुछ बच्चे ऐसे हैं जो स्कूल भी जाते हैं और साथ ही मजदूरी भी करते हैं। वेटा जंगला पालेम में 13 बच्चे खान मजदूर हैं। उनके मां-बाप या तो यहीं मजदूरी करते हैं या ऑटो रिक्शा चलाते हैं। यहां ज्यादातर परिवारों में ऐसे सदस्य हैं जो लॉरी ड्राइवर हैं और क्रशर्स में पत्थर पहुंचाते हैं। सभी बच्चों का कहना था कि उन्हें गरीबी, मां-बाप की मृत्यु या कर्जों के कारण पूरी तरह या आंशिक रूप से पढ़ाई छोड़नी पड़ी। वे हर महीने 300-1700 रुपये के बीच कमाते हैं और एक दिन में 5-8 घंटे तक काम करते हैं। बच्चों का कहना था कि वे जोड़ों के दर्द, पेट दर्द, कमजोरी, सिर दर्द, त्वचा रोगों और बुखार से परेशान रहते हैं। वेटा जंगला पालेम क्वेरी कॉलोनी में 11 बच्चे पत्थर तोड़ते पाए गए। इसी गांव की एससी कॉलोनी में 14-18 साल के 16 बच्चे पिछले दो साल से खानों में काम कर रहे हैं। इनमें से कुछ बच्चे 3,000 रुपये माहवार तक कमा लेते हैं। रोंगलावाणी पालेम में 43 बच्चे खानों में मजदूरी करते हैं। वे पत्थर तोड़ते हैं और ट्रकों की सफाई करते हैं। यहां के 4 बच्चे पूरी तरह पढ़ाई छोड़ चुके हैं। कुंद्रम एससी गांव में 22 बच्चों ने कहा कि वे खानों में ढुलाई, पत्थर तोड़ने और ट्रकों की सफाई जैसे काम करते हैं। ट्रकों में काम करने वाले बच्चों ने कहा कि वे लगातार 24 घंटे काम करते हैं। उनके काम का कोई तय समय नहीं होता जबकि दूसरे बच्चे रोज 5-10 घंटे काम करते हैं। कुछ बच्चों ने मां-बाप की मौत के बाद मजदूरी शुरू की थी। दूसरी कुंद्रम कॉलोनी में 18 बच्चे पिछले 2 साल से काम कर रहे थे। कुंचांगी गांव में 16 बच्चे बाल मजदूर थे जबकि कुंचांगी क्वेरी कॉलोनी में 10 बच्चे थे। इनमें से कुछ बच्चों की उम्र 13 साल से भी कम थी। वे अपने मां-बाप की मृत्यु के बाद गरीबी के कारण मजदूर बने हैं। तकरीबन सारे स्थानों पर बच्चों का यह कहना था कि उन्हें भारी मेहनत के कारण सिर दर्द, बुखार, बदन दर्द और हाथ-पांव में कमजोरी महसूस होती है। बहुत थोड़े बच्चे ही कॉलेज तक की शिक्षा हासिल कर पाए हैं

टेबल 2.42: विशाखापट्नम के 8 सर्वेक्षण स्थलों पर खान मजदूरों के बच्चों का विवरण

गांव	पंचायत	पत्थर खानों में काम करने वाले बच्चे	बाल मजदूरों की उम्र	क्या स्कूल जा रहे हैं	कक्षा	मजदूरी की वजह	काम की किस्म रहे हैं	कितने समय से काम कर
वेटा जंगला पालेम	जंगला पालेम	13	13-18 साल	हां	कक्षा 7-8	गरीबी	पत्थर तोड़ना ढुलाई, ट्रक क्लीनर	6 माह- 3 साल
रोंगलावाणी पालेम	रोंगगलावाणी पालेम	43	12-18 साल	39 स्कूल जाते हैं, 4 ड्रॉप-आउट	प्राथमिक से कॉलेज तक	गरीबी, मां-बाप की बीमारी, माता-पिता की मृत्यु	ट्रक क्लीनर, पत्थर तोड़ना, ढुलाई, बढ़ईगीरी, साइकिल की दुकान	औसतन 2 साल
वेटा जंगला पालेम एससी कॉलोनी	जंगला पालेम	16	14-18 साल	हां	कक्षा 4-10, एक आईटीआई	गरीबी	मजदूरी, पत्थर तोड़ना	औसतन 1-2 साल
पेटा जंगला पालेम क्वेरी कॉलोनी	जंगला पालेम	11	15-18 साल	हां	कक्षा 9-10	गरीबी, मां-बाप की मृत्यु	मजदूरी, पत्थर तोड़ना	औसतन 1-4 साल
कुंद्रम एससी कॉलोनी	कुंद्रम	22	12-18 साल	हां	हाई स्कूल	गरीबी, मां-बाप की मृत्यु	पत्थर तोड़ना, ढुलाई, लॉरी क्लीनिंग, खेत मजदूरी	औसतन 3-7 साल
कुंद्रम	कुंद्रम	18	13-18 साल	हां	औसतन कक्षा 9-10 तक	गरीबी, मां-बाप की बीमारी, मां-बाप की मृत्यु	मजदूरी, पत्थर तोड़ना, बिजली मिस्त्री, चाय की दुकान	औसतन 2 साल
कुंचांगी	कुंचांगी	16	13-18 साल	हां	हाई स्कूल	गरीबी, मां-बाप की मृत्यु	मजदूरी, पत्थर तोड़ना, खेत मजदूरी	
कुंचांगी क्वेरी कैंप	कुंचांगी	10	12-18 साल	हां	औसतन कक्षा 7 तक	गरीबी, मां-बाप की बीमारी	लॉरी क्लीनिंग और मजदूरी	औसतन एक साल

स्रोतः एसजीवीएस द्वारा किया गया सर्वेक्षण, विशाखापट्नम, 2009.

क्योंकि वे परिवार चलाने के लिए इतना कठोर परिश्रम करते हुए पढ़ाई पर पूरा ध्यान नहीं दे पाते थे। आस-पास के 8 गांवों/खान बस्तियों में कोई एनसीएलपी स्कूल नहीं है हांलाकि यहां लगभग 150 बच्चे खानों में मजदूरी कर रहे हैं। टेबल 2.42 में विशाखापट्नम जिले के 8 स्थानों में खान मजदूर बच्चों का ब्यौरा दिया गया है।

सामाजिक प्रभाव

यहां वैसी हिंसा और सामाजिक उथल-पुथल नहीं है जैसी बड़ी खानों के इलाके में पाई जाती है। लेकिन यहां भी बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य पर असर साफ देखा जा सकता है। न केवल खान मजदूर बल्कि स्थानीय किसान भी इस व्यवसाय से प्रभावित हुए हैं क्योंकि यह उपजाऊ जमीन वाला इलाका है। खानों और क्रशर्स से निकलने वाले धुंए से खेती की पैदावार पर सीधा असर पड़ा है। किसानों का कहना है कि अब खेती घाटे का सौदा बनती जा रही है और सीमांत किसान खानों में दिहाड़ी मजदूर बनते जा रहे हैं। इस तरह यहां के किसानों की आजीविका पर गहरा असर पड़ा है।

शिक्षा पर सबसे ज्यादा प्रभाव देखा जा सकता है जिसका ब्यौरा टेबल 2.42 में दिया गया है। खानों में मजदूरी और बार-बार बुखार व बीमारियों के कारण बहुत सारे बच्चे पढ़ाई छोड़ चुके हैं। धूल के कारण आस-पास के गांवों के बच्चों में बीमारियां फैल रही हैं। गांव वालों का कहना था कि उनके बच्चे खांसी, सर्दी-जुकाम और श्वास तंत्र में संक्रमण के शिकार हो रहे हैं।

इस इलाके में पत्थर ले जाती लॉरियों के दुर्घटनाग्रस्त होने के इक्का-दुक्का मामले भी सुनने में आए लेकिन बड़ी दुर्घटनाओं में भी खान मालिक कोई जिम्मेदारी नहीं लेते। अगर इस तरह की दुर्घटना होती है तो स्थानीय पीएचसी में छोटा-मोटा इलाज करके मामले को रफा-दफा कर दिया जाता है।

(*आभार :* विशाखापट्नम जिले में इस अध्ययन के लिए सोसायटी फॉर ग्राम विकास सर्धी (एसजीवीएस) द्वारा सर्वेक्षण किया गया। हम एसजीवीएस और उसकी सचिव के.प्रभावती का आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने यह सर्वेक्षण किया और आंध्र प्रदेश की रिपोर्ट तैयार करने के लिए महत्वपूर्ण जानकारियां हमें उपलब्ध कराईं।)

केस स्टडी : चित्तूर जिला

जनसांख्यिकीय विवरण

पालामानेर में स्थित मित्रा एसोशिएशन फॉर सोशल सर्विसेज़ (मास) द्वारा आंध्र प्रदेश के चित्तूर जिले में तीन मंडलों के खान मजदूरों के बच्चों का सर्वेक्षण किया गया। पालामानेर मंडल तमिलनाडु व कर्नाटक की सीमा पर स्थित है। इसमें 16 पंचायतें व 96 बस्तियां आती हैं। बाइरेड्डीपल्ली मंडल कर्नाटक की सीमा पर स्थित है। इसमें 24 पंचायतें और 102 बस्तियां हैं। पेड्डापंजानी मंडल कर्नाटक की सीमा पर है। इसमें 22 पंचायतें और 302 आबादियां हैं। इस इलाके को इसलिए चुना गया क्योंकि यहां परंपरागत पत्थर तोड़ने वाले समुदायों के बहुत सारे टोले हैं और इन समुदायों में मास का काफी काम चलता रहा है।

एक खान मजदूर की बेटी जिसने परिवार का गुजारा चलाने के लिए पढ़ाई छोड़ दी है (फोटो - जुलाई 2009)

खान मजदूरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति

- ज्यादातर खान मजदूर वड्डी/वड्डेरा (पत्थर तोड़ने वाली जातियां) समुदायों के हैं। कुछ मजदूर अनुसूचित जाति समुदाय के हैं।
- ज्यादातर खान मजदूर भूमिहीन हैं। वे मुख्य रूप से पत्थर तोड़कर अपना पेट पालते हैं। उनमें से कुछ सीमांत किसान भी हैं लेकिन वे सिर्फ मौसमी खेती कर पाते हैं क्योंकि उनके पास 1-2 एकड़ सूखी जमीन है जो बारिश पर निर्भर रहती है।
- जब इन लोगों के पास खानों में पर्याप्त काम नहीं होता तो वे बंगलूरू, चेन्नई जैसे बड़े शहरों और आस-पास के कस्बों में काम की तलाश करते हैं।

खनन कार्यों का स्वरूप

वड्डी समुदाय में पैदा होने का परंपरागत अर्थ ये है कि उस व्यक्ति को पत्थर तोड़ने और खानों में मजदूरी का ही काम करना पड़ेगा। मास द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार यहां के वयस्कों में साक्षरता 25 प्रतिशत से भी कम है। ज्यादातर लोग भूमिहीन हैं। इन लोगों के पास पत्थर तोड़ना ही एकमात्र व्यवसाय है। असंगठित क्षेत्र में पत्थर तोड़ना स्वरोजगार की तरह है। ये लोग कच्चे माल के लिए पूरी तरह ठेकेदारों पर निर्भर रहते हैं। ठेकेदार ट्रकों में भरकर पत्थर लाते हैं और उन्हें वड्डियों के घरों के आस-पास उलट देते हैं। वड्डी समुदाय के लोग पारिवारिक तौर पर या कई परिवारों के साथ मिलकर ठेकेदारों से यह कच्चा माल खरीद लेते हैं। ये मजूदर बिचौलियों पर भी निर्भर हैं जो कच्चा माल खरीदने के लिए कर्जा या पेशगी देते हैं और बदले में भारी ब्याज वसूल करते हैं।

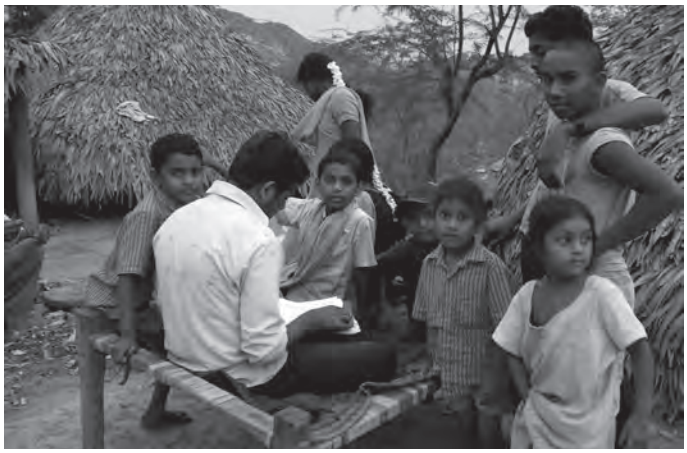

खान मजदूरों के बच्चे - उनमें से कुछ खानों में भी जाते हैं और स्कूल भी जाते हैं
(फोटो - जुलाई 2009)

जब अध्ययन टीम इन गांवों में गई तो मजदूर औरतों ने बताया कि वे लगभग 600 रुपये में एक ट्रक पत्थर खरीदते हैं और 6-7 लोग मिलकर उन पत्थरों को तोड़ते हैं। वे एक हफ्ते में एक ट्रक पत्थर तोड़ पाते हैं जिसके लिए उन्हें 1500 रुपये मिलते हैं। यह पैसा समूह में शामिल सभी लोगों के बीच बंट जाता है। इन मजदूरों में ज्यादातर औरतें व बच्चे, खासतौर से लड़कियां होती हैं जो अपनी मांओं के साथ पत्थर तोड़ती हैं। पत्थरों को तोड़ने में लगे बाल मजदूरों की उम्र 6-16 के बीच थी। उन्हें पत्थर तोड़ने से रोज औसतन 30-35 रुपये मिलते हैं। बाद में ठेकेदार टूटे हुए पत्थरों को ले जाते हैं और गांव के पास स्थित हाईवे एवं रीयल ऐस्टेट उद्योग को बेच देते हैं। मजदूरों का कहना है कि पत्थर की मांग बढ़ती जा रही है क्योंकि बंगलूरू-चेन्नई इलाके के आस-पास निर्माण गतिविधियां तेजी से फैलती जा रही हैं। पुरुष मजदूर शिलान्यास पत्थर बनाने जैसे भारी काम करते हैं और उन्हें 5 रुपये प्रति पत्थर की दर पर बेच देते हैं। वे लगभग 150 रुपये रोजाना की दर पर पत्थर की फैक्टरियों में भी काम करते हैं। बहुत सारे युवा और किशोर भी इस काम में लगे हुए हैं।

खान मजदूरों के बच्चों का जीवन : बाल मजदूरी और शिक्षा

इन बच्चों की जिंदगी में गरीबी सबसे निर्णायक पहलू है। खाली पेट लेकिन शाम के खाने की उम्मीद में ये बाल मजदूर दिन भर मेहनत करते हैं। यह काम घर के सामने ही चल रहा होता है इसलिए बच्चे बचपन से ही इस व्यवसाय में चले जाते हैं। इन परिवारों की आर्थिक स्थिति हमेशा भुखमरी जैसी रहती है इसलिए ज्यादातर बच्चे स्कूल नहीं जा पाते या ज्यादा काम होने पर पढ़ाई छोड़ देते हैं। ग्रामीण इलाकों में शिक्षा व्यवस्था भी खस्ता हालत में है जो बच्चों को पढ़ने के लिए प्रेरित नहीं कर पाती। जब अध्ययन टीम इन गांवों में गई तो हमने पाया कि कई बच्चे भी महिलाओं की सामूहिक बैठकों में हिस्सा लेते हैं। जब हमने पूछा कि बच्चे स्कूल क्यों नहीं जाते तो महिलाओं ने बताया कि वे उन्हें स्कूल भेजने की कोशिश करती हैं लेकिन पढ़ाई में उनका मन ही नहीं लगता इसलिए वे बार-बार पढ़ाई छोड़ देते हैं।

महिलाओं में हमें जबरदस्त गुस्सा दिखायी दिया। उनका कहना था कि वे अपने बच्चों को पढ़ाना चाहती हैं ताकि वे भी सिर्फ पत्थर तोड़ते न रह जाएं लेकिन बच्चे भी कमाई के लालच से नहीं बच पाते क्योंकि इससे उन्हें कम उम्र में ही क्रयशक्ति मिल जाती है। महिलाओं ने यह भी बताया कि लड़कियां तो अपनी ज्यादातर आमदनी मांओं को दे देती हैं लेकिन लड़के शुरू से ही थोड़ा-बहुत पैसा इधर-उधर उड़ाने लगते हैं। ज्यादा उम्र के लड़कों को ज्यादा पैसा मिलता है और वे शराब व गुटके आदि की चपेट में आ जाते हैं।

इन गांवों में हमने प्राइमरी स्कूल भी देखे और स्थानीय संगठन मास के प्रयासों को भी देखा जो पहले एनसीएलपी स्कूल चलाता था। बाद में संगठन ने यह काम छोड़ दिया क्योंकि बच्चों को स्कूल की तरफ आकर्षित करना आसान नहीं था। सरकार भी यहां शिक्षा को गंभीरता से नहीं लेती। यह शिक्षा व्यवस्था की स्पष्ट विफलता है जो बच्चों को अच्छी शिक्षा नहीं दे पा रही है और फलस्वरूप वे स्कूल की छत तले बैठकर पढ़ने की बजाय तपती गर्मी में पत्थर तोड़ने को ज्यादा बेहतर मानते हैं। इससे भारत के ग्रामीण इलाकों में शिक्षा की स्थिति का पता चलता है। कुछ ऐसी ही स्थितियां कर्नाटक और राजस्थान में भी दिखाई दीं जहां बहुत सारे गरीब मां-बाप अपने बच्चों को खान मजदूरी से तो बचाना चाहते हैं लेकिन उन्हें स्कूल जाने के लिए राजी नहीं कर पाते। इन समुदायों के सिर्फ कुछ बच्चे ही हाई स्कूल जा रहे थे लेकिन क्योंकि स्कूल बहुत दूर है इसलिए ऐसे बच्चों की संख्या बहुत छोटी थी।

स्वास्थ्य समस्याएं

खान मजदूरों में बहुत सारी विधवाएं भी थीं। कोठाइंडलु में 35, जी. कोटुरू में 26, सल्लावरीपल्ली में 12 और गड्डूरू में 9 विधवा औरतें थीं। जिन 1321 महिलाओं का सर्वेक्षण किया गया उनमें से लगभग 203 खान मजदूर महिलाएं विधवा थीं। या तो उनके पति टीबी जैसी किसी बीमारी के कारण या खनन संबंधी दुर्घटनाओं के कारण मर चुके हैं। यह भी एक वजह थी कि जिसके चलते बच्चे, खासतौर से लड़कियां पढ़ाई छोड़कर अपनी मांओं का हाथ बंटाने लगी हैं। विधवाओं की औसत उम्र 35 साल से ज्यादा दिखाई नहीं दी जो इस बात का संकेत है कि खान मजदूरों की जिंदगी बहुत लंबी नहीं होती और व्यावसायिक बीमारी के कारण या तो लोग जल्दी मर जाते हैं या लंबी बीमारियों की चपेट में आ जाते हैं जिनके इलाज के लिए छोटे-छोटे बच्चों को मजदूरी करनी पड़ती है।

टेबल 2.43 में दिखाया गया है कि 1,248 बच्चों में से 210 पत्थर तोड़ते हैं और 544 बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं। यह सर्वेक्षण 7 गांवों में किया गया। इन गांवों के ज्यादातर परिवार पत्थर की खानों में काम कर रहे हैं। जिन बच्चों का अध्ययन किया गया उनकी उम्र 18 साल से कम थी। स्कूल जाने या न जाने से संबंधित आंकड़े केवल 14 साल की उम्र तक के बच्चों के बारे में है। इस प्रकार, सर्वेक्षण में 14-18 साल की उम्र के ऐसे बच्चों को शामिल नहीं किया गया है जो स्कूल नहीं जा रहे हैं। इस इलाके में एक भी एनसीएलपी स्कूल नहीं था हालांकि बहुत सारे बच्चे खनन एवं गैर-खनन गतिविधियों में काम कर रहे थे।

इस इलाके में खान दुर्घटनाएं भी बहुत ज्यादा होती हैं। इन गांवों के लगभग 50 प्रतिशत बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं।

वड्डी समुदाय के बच्चे और कुछ दलित परिवारों के बच्चे अपने खतरनाक और थकान भरे काम की वजह से कई स्वास्थ्य समस्याओं की आशंका में रहते हैं। जन्म से ही इन बच्चों में खून की कमी साफ देखी जा सकती है। महिलाओं का कहना था कि वे अपने बच्चों को पूरा भोजन नहीं दे पातीं इसलिए उनके बच्चे कुपोषित रह जाते हैं। ये बच्चे मुख्य रूप से खून की कमी, त्वचा रोगों, कुपोषण, बदन दर्द और श्वास संबंधी समस्याओं से पीड़ित दिखाई दिए। औरतों ने बताया कि उनके बच्चों को पोलियो की खुराक के अलावा कोई टीका नहीं लगा है। इन बस्तियों में सफाई की सुविधा नहीं थी। वड्डी समुदाय आमतौर पर गांव के बाहर रहता है। इन परिवारों के पास छोटे-छोटे कच्चे-पक्के मकान होते हैं। जिनमें शौचालय, बिजली या पीने के पानी का इंतजाम नहीं होता। केवल कुछ मकानों में बिजली के कनेक्शन थे। एकल माताएं खस्ता झोंपड़ियों या छप्परों में रह रही थीं। यहां जल निकासी की कोई व्यवस्था नहीं थी जिसके कारण मलेरिया काफी फैल रहा है।

महिलाओं की सेहत एक गंभीर चिंताजनक विषय है। ज्यादातर महिलाएं खून की कमी और कुपोषण से पीड़ित थीं। उन्होंने बताया कि बार-बार होने वाले प्रसव और असमय गर्भपात (जोकि यहां काफी आम समस्या बताई गई) के कारण वे पत्थर तोड़ने की थकान और मेहनत को बर्दाश्त करने में कठिनाई महसूस करती हैं। वयस्क पुरुषों और महिलाओं में टीबी एक बड़ी समस्या है और टीबी के कारण पुरुषों की मृत्यु दर काफी बढ़ गई है। इसके अलावा विधवा होने और मौसमी प्रवासी होने के कारण यहां की महिलाओं को असुरक्षित यौन क्रियाओं में भी ढकेला जाता है जिसके कारण वे यौन संक्रामक बीमारियों और श्वास तंत्र के रोगों की चपेट में आ जाती हैं।

टेबल 2.43 : पालामनेरू क्षेत्र, चित्तूर में खान मजदूरों के बच्चों का विवरण

गांव	कोठांइडलु	टी.वड्डूरू	जी.कोटरू	सल्लावरीपल्ली	गड्डूरू	पी.वड्डूरू	ओबुलापुरम
गांव में बच्चों की कुल आबादी (0-18 साल)	205	333	126	104	109	122	121
खनन गतिविधियों में लगे बच्चों की संख्या	12	70	35	40	19	21	13
स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या (14वर्ष से कम)	138	170	57	15	19	76	71
बच्चों की दिहाड़ी मजदूरी (रुपये)	50	40	40	30	40	35	40
गैर खान गतिविधियों में बच्चे व युवा	राजगीर-3, फैक्टरी मजदूर-3	दर्जी-5, फैक्टरी मजदूर-10	मजदूर-10, दर्जी-7, बढ़ई-2	दर्जी-3, मजदूर-17, बढ़ई-1	दर्जी-2, मजदूरी-12, सुनार-1	राजगीर-5, दर्जी-4	राजगीर-3, दर्जी-2

स्रोत : मास, पालामनेरू द्वारा किया गया सर्वेक्षण, 2009.

निष्कर्ष

कुडप्पा, विशाखापट्नम और चित्तूर जिलों में किए गए सूक्ष्म अध्ययन खान मजदूरों के बच्चों के जीवन को समझने के उद्देश्य पर केंद्रित थे। इन तीनों अध्ययनों से पता चलता है कि खान मजदूरों का जीवन कितना अस्थिर होता है और उसमें नियमित रोजगार कितना अनिश्चित रहता है। इसके साथ ही बच्चे भी बेहद अमानवीय परिस्थितियों में मजदूरी के लिए विवश होते जाते हैं। खासतौर से चित्तूर जिले में परंपरागत वड्डी समुदाय के बच्चों का जीवन गहरे शोषण का शिकार है। गरीबी और स्कूलों की खस्ता हालत के कारण यहां ड्रॉप-आउट दर बहुत ज्यादा है। यह दशा शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 के पारित होने के बाद शिक्षा के मौलिक अधिकार को साकार करने में सरकार की विफलता का संकेत है। इन इलाकों में सिर्फ एक प्राथमिक स्कूल खोल कर इस मौलिक अधिकार को साकार नहीं किया जा सकता। इसके लिए जरूरी है कि स्कूलों में अच्छी पढ़ाई हो और बच्चे मजदूरी की बजाय स्कूलों की तरफ आकर्षित हों। विशाखापट्नम जिले की खानों में काम करने वाले बहुत सारे बच्चे स्कूल भी जाते हैं। यह एक भ्रामक स्थिति है। इनमें से ज्यादातर बच्चे या तो नियमित रूप से स्कूल नहीं जाते या उनके पास पढ़ाई-लिखाई के ऐसे अवसर नहीं होते कि वे हाई स्कूल तक भी पढ़ पाएं। ऐसे में उन्हें भी किस श्रेणी में रखा जाए ये तय करना मुश्किल नहीं रहता। कुडप्पा में खान स्थलों को देखकर पता चलता है कि वहां इस बात पर फौरन ध्यान दिया जाना चाहिए कि सरकार किस तरह इन प्रवासी बच्चों की जरूरतों को पूरा कर सकती है जोकि किसी आंगनवाड़ी या प्राथमिक स्कूल से बहुत दूर पहुंच गए हैं। बाल कल्याण, श्रम, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं खान विभागों की जिम्मेदारी है कि वे बच्चों को शिक्षा के साथ-साथ ऐसा स्वस्थ्य वातावरण भी उपलब्ध कराएं जहां वे प्रदूषण के खतरे से आजाद हों और खान मजदूरी की चपेट में आने से बचे रहें। इन विभागों को समन्वित व समग्र नीतियां बनानी चाहिएं जो इन प्रवासी बच्चों को न्याय दे सकें।

(***आभार :*** चित्तूर जिले में मास, पालामनेरू के साथ मिलकर अध्ययन किया गया। हम बी.सुनंदा और उनकी टीम के आभारी हैं जिन्होंने हमारी फील्ड विजिट्स में मदद दी और इस अध्ययन के लिए अपने पास उपलब्ध सूचनाएं हमें मुहैया कराईं।)

तमिलनाडु में पूर्वोत्तर से खरीदे गए बाल मजदूर
शुक्रवार, 29 जनवरी 2010, 2:29:16 बजे सायं

हाल ही में तमिलनाडु के कन्याकुमारी जिले में स्थित कुलीतोराई में एक घर से 76 बाल मजदूरों को आजाद कराया गया जिन्हें मणिपुर और असम से खरीद कर यहां लाया गया था। इन बच्चों को आजाद कराने वाली बाल कल्याण समिति के सदस्य प्रभाकरण ने कहा कि इन बच्चों को बेहद अमानवीय परिस्थितियों में रखा गया था।

उन्होंने बताया, "मणिपुर और असम के बहुत सारे बच्चों को यहां पत्थर की खानों में काम करने के लिए लाया गया था। हमने इन बच्चों को कुल. ोतोराई नामक स्थान से बरामद किया है जहां वे बेहद अस्वच्छ परिस्थितियों में रह रहे थे। ज्यादातर बच्चों के पास पूरे कपड़े भी नहीं थे। सौभाग्य से हमने उन्हें बचा लिया है और अब वे तिरुनेलवल्ली स्थित शराणालयम की देखरेख में हैं।"

स्रोत : एएनआई
TRI http://www.medindia.net/news/Kids-Being-Traffickedfrom-NE-as-Child-Labor-in-Tamil-Nadu-64323-1.htm

खान ट्रकों का खूनी सफर
वी.के. राकेश रेड्डी
15 नवंबर 2009, 5:31:00 बजे सुबह, आईएसटी
इंडियन एक्सप्रेस

अनंतपुर : जहां एक तरफ कर्नाटक के पर्यटन मंत्री और ओबुलापुरम माइनिंग कंपनी (ओएमसी) के प्रॉमोटर गली जर्नादन रेड्डी अपनी कंपनी द्वारा अवैध लौह अयस्क खनन के आरोपों से पीछा छुड़ाने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा रहे हैं वहीं दूसरी तरफ ओएमसी के कारण हो रही भारी मानवीय क्षति से सबका ध्यान हट गया है।

आंकड़ों को देखने पर बात स्पष्ट हो जाती है - अनंतपुर जिले में पिछले तीन महीनों के दौरान 50 से अधिक लोग अपनी जान गंवा चुके हैं। इनमें से लगभग सारे लोग लौह अयस्क ले जाते ट्रकों के नीचे कुचले गए थे। अभी तक एक भी ट्रक ड्राइवर को दोषी साबित नहीं किया गया है और न ही कोई ट्रक जब्त किया गया है। सूत्रों का कहना है कि इन दुर्घटनाओं में शामिल ज्यादातर ट्रक ओएमसी कंपनी के रहे हैं।

.... हाल ही में हुई एक दुर्घटना में एक लड़की की मौत हो गई थी। उसकी मृत्यु स्कूल में स्वतंत्रता दिवस समारोह के बाद उस समय हुई जब वह स्कूल से लौट रही थी। स्कूल के ठीक सामने ही लौह अयस्क से भरे एक ट्रक ने उसे कुचल दिया था और उसने मौके पर ही दम तोड़ दिया था।

http://www.expressbuzz.com/edition/story.aspx?Title=Mine+trucks'+bloody+trail&artid=NFUxa/rkTX4=&SectionID=e7uPP4|pSiw=&MainSectionID=e7uPP4|pSiw=&SectionName=EH8HilNJ2uYAot5nzqumeA==&SEO=Obulapuram%20Mining%20Company

भाग 3

सारांश व सिफारिशें

सारांश व सिफारिशें

भारत के लगभग हर राज्य और जिले में किसी न किसी तरह का उत्खनन या खनिज प्रसंस्करण चल रहा है। जाहिर है हमारी टीम पूरे देश की खनन गतिविधियों या तमाम खनिज पदार्थों से बच्चों के जीवन पर पड़ने वाले गहरे प्रभावों का अध्ययन नहीं कर सकती थी। लिहाजा हमने 8 राज्यों में कुछ ऐसे स्थानों को चुना जहां खनन गतिविधियों के कारण बच्चों पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई दे रहे हैं। इन केस स्टडीज को भारत के खनन प्रभावित बच्चों के हालात की एक सटीक झलक माना जा सकता है। ये केस स्टडीज भारत के आदिवासी, ग्रामीण, प्रवासी एवं दूसरे गरीब बच्चों की वास्तविक जीवन परिस्थितियों को दिखाती हैं जोकि खनन गतिविधियों से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो रहे हैं। इन कहानियों में न केवल खनन उद्योग से संबंधित सूचनाएं दी गई हैं बल्कि इन इलाकों में बच्चों के विकास की स्थिति भी दर्शाई गई है।

बच्चों से संबंधित राज्य स्तरीय आंकड़ों को देखकर पता चलता है कि जिन इलाकों में खनन गतिविधियां ज्यादा हैं वहीं बाल विकास की स्थिति सबसे ज्यादा खराब है। यह रुझान इस बात को दर्शाता है कि इन इलाकों के हाशियाई तबकों के बच्चे किन हालात में हैं। इससे नागर समाज व मानवाधिकार संगठनों द्वारा दी जा रही इस दलील को और बल मिलता है कि खान उद्योग ने बच्चों के विकास में उल्लेखनीय योगदान नहीं दिया है बल्कि उसने बच्चों के जीवन को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है।

इन केस स्टडीज के प्राथमिक आंकड़े इस तस्वीर की पुष्टि करते हैं और हमें एक बहुत कठोर सच्चाई से रूबरू कराते हैं - **समस्याएं बहुत बड़ी हैं लेकिन जवाबदेही कोई नहीं लेता।** हमारे देश के बहुत सारे बच्चे इसलिए पीछे छूटते जा रहे हैं क्योंकि सरकारी मशीनरी उन्हें बुनियादी विकास सेवाएं उपलब्ध कराने में नाकामयाब और गैरजवाबदेह साबित हुई है। इसी वजह से ग्रामीण, दलित और आदिवासी बच्चों की बहुत बड़ी संख्या कुपोषण, निरक्षरता, भुखमरी, बेघरी और कई जानलेवा बीमारियों से जूझ रही है।

खनन प्रभावित बच्चों के सामने यह समस्या एक बेहद निर्मम शोषक उद्योग के कारण और गंभीर हो गई है। यह उद्योग इस लापरवाही का फायदा उठाकर ऐसी स्थितियां पैदा कर रहा है जहां गरीबी, भूमिहीनता, खाद्य असुरक्षा के हालात में बच्चे खानों और दूसरे व्यवसायों में बाल मजदूरी के लिए मजबूर हुए हैं और उनके सामने अपराध व हिंसा की नई दुनिया खुल रही है। इन हालात में ये बच्चे मानव तस्करी, लगातार बीमारियों और अमानवीय जीवन परिस्थितियों की स्थायी आशंका में फंसते जा रहे हैं। खानों के इर्द-गिर्द रहने वाले स्थानीय समुदायों, मजदूरों (असंगठित, ठेका मजदूर), किसानों के बच्चों को खनन गतिविधियों के कारण विरले ही कोई लाभ मिल पा रहा है। जहां भी खनन परियोजनाएं चल रही हैं वहां सामान्य जीवन परिस्थितियों और शासन तंत्र के तेज पतन ने बच्चों की बुनियादी जरूरतें पूरा करने के लिए चलाए जा रहे स्कूलों, आंगनवाड़ी केंद्रों, पीएचसी या परिवहन जैसी मौजूदा संस्थानों और विकास संरचनाओं को भी और कमजोर कर दिया है। लिहाजा, हमने पाया कि बहुत सारे बच्चों और परिवारों के जीवन में सुधार आने की बजाय उनके जीवन की गुणवत्ता महज जिंदा रहने की जद्दोजहद में सिमट कर रह गई है।

खनन गतिविधियों का विरोधाभास इस तथ्य में निहित है कि खनन उद्योग या खनन प्रशासन बच्चों के ज्यादातर अधिकारों की रक्षा और विकास संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कानूनन बाध्य नहीं है। हमारा देश बच्चों के लिए बहुत सारी कानूनी सुरक्षाओं की दुहाई देता है जिनमें शिक्षा के अधिकार को हाल ही में मौलिक अधिकार का दर्जा भी दे दिया गया है। इन कानूनों को बच्चों को गरीबी व हाशियाकरण से बाहर निकालने के लिए चलाई जा रही सकारात्मक योजनाओं से और बल मिला है लेकिन इनमें से शायद ही कोई योजना खनन प्रभावित बच्चों को किसी तरह की सुरक्षा या राहत दे पा रही है। महिला एवं बाल कल्याण विभाग, शिक्षा विभाग, जनजाति कल्याण विभाग और श्रम विभाग आदि कई दूसरे विभाग भी खनन उद्योग के कारण पैदा हुई समस्याओं से जुड़े हुए हैं। इसके चलते इन विभागों के बीच टकरावों की आशंका बढ़ जाती है और सरकारी जवाबदेही में भ्रम पैदा होता है। इस प्रक्रिया में बच्चे हर बार कहीं पीछे छूट जाते हैं।

ये बच्चा किसका बच्चा है?

खान मंत्रालय का बुनियादी काम है धरती से खनिज पदार्थ निकालना। इस काम के दौरान जो बहुत सारे मानवाधिकार हनन और उल्लघंन होते हैं, खासतौर से जिस तरह बच्चों के अधिकारों का हनन होता है, वह खान मंत्रालय की परेशानी नहीं है। इसकी जिम्मेदारी दूसरे महकमों के ऊपर आती है जिसके कारण बच्चों के लिए न्याय के रास्ते में कई रुकावटें पैदा हो जाती हैं।

आदिवासी इलाकों में खनन कार्यों की वजह से लोगों की जमीन छिनी है और वन संसाधनों का क्षरण हुआ है। इस विस्थापन और क्षरण से बच्चों के पोषण पर बहुत गहरे असर पड़े हैं। लेकिन राजस्व विभाग की जिम्मेदारी सिर्फ जमीन का अधिग्रहण करना है। क्योंकि खनन कार्य एक 'जनहितकारी' गतिविधि है इसलिए बच्चों की सेहत और पोषण का सवाल इस मंत्रालय के दायरे में भी नहीं आता। महिला एवं बाल कल्याण विभाग का जिम्मा बच्चों को पूरक पोषण मुहैया कराना और बाल मृत्यु दर पर अंकुश लगाना है। खनन पट्टे जारी करने के महिला एवं बाल कल्याण विभाग से इस बारे में कोई सलाह नहीं ली जाती है कि इससे आदिवासियों के बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ने वाले हैं या उनकी खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए क्या कदम उठाए जा सकते हैं। दूसरी तरफ यह भी सच है कि इस विभाग का पूरक पोषण कार्यक्रम अगर लागू किया भी जा रहा है तो भी इस भारी कुपोषण और खनन इलाकों में बच्चों की मृत्यु दर पर अंकुश लगाने के लिए बेहद नाकाफी दिखाई देता है (हालांकि ज्यादातर स्थानों पर तो इस कार्यक्रम का कोई नामलेवा तक कोई नहीं था)।

खान उद्योग के कारण पैदा हुई गरीबी के चलते बहुत सारे बच्चे ऐसे मिले जो स्कूल नहीं जा रहे थे। शिक्षा विभाग की जिम्मेदारी है कि वह बच्चों को पढ़ाई जारी रखने के लिए प्रेरित करे और उनके दाखिले व हाजिरी सुनिश्चित करे। लेकिन अब यह जिम्मेदारी मां-बाप के कंधों पर डाल दी गई है। अब उन्हीं को बच्चों के स्कूल न जाने के लिए सबसे बड़ा दोषी ठहराया जाने लगा है। स्कूल ड्रॉप-आउट दर में इजाफे या बाल मजदूरों के हालात के लिए खनन उद्योग या खान कंपनियों को कभी जिम्मेदार नहीं ठहराया जाता है जबकि प्रत्येक खान स्थल पर बच्चों ने स्कूल छोड़ने और मजदूरी करने के पीछे खनन कार्यों के कारण पैदा हुई गरीबी और कर्जों को ही मुख्य कारण बताया है।

बच्चों के स्कूल न जाने का कारण यह है कि उन्हें खानों में काम करना पड़ता है क्योंकि या तो उनके मां-बाप की मृत्यु हो चुकी है या वे इतने बीमार हैं कि अब मजदूरी नहीं कर सकते। बाल मजदूरी की समस्या को दूर करना श्रम विभाग की जिम्मेदारी है। लेकिन श्रम विभाग तो यह मानने के लिए ही तैयार नहीं है कि बाल मजदूरी अभी भी कायम है। यह बात बाल मजदूरी के विषय में हमारी ओर से भेजे गए आरटीआई आवेदनों के जवाब में बार-बार दिखाई दी। इसी तरह शिक्षा विभाग भी या तो ये दावा करता है कि ज्यादातर बच्चों को स्कूल में दाखिला दिलाया जा चुका है या उनका कहना है कि ये बच्चे एनसीएलपी स्कूलों में पढ़ रहे हैं। लेकिन जनगणना और खुद शिक्षा विभाग के डीआईएसई काड्र्स तथा हमारी अपनी केस स्टडीज में साफ दिखाई देता है कि बहुत सारे बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं या नाना प्रकार की अनौपचारिक गतिविधियों में मजदूरी कर रहे हैं। केस स्टडीज से यह भी पता चलता है कि एनसीएलपी स्कूल सिर्फ इक्का-दुक्का खनन इलाकों में ही चल रहे हैं।

हमने पाया कि प्रवासी खान मजदूरों के पास स्कूल के नाम पर एक छत तक नहीं है। उनके लिए खान स्थल ही खेल का मैदान भी है और घर भी। प्रवासी मजदूरों का कल्याण किसी भी निश्चित विभाग की जिम्मेदारी नहीं हैं। लिहाजा, कोई विभाग उनको बुनियादी विकास सुविधाएं मुहैया कराने की फिक्र नहीं करता। फलस्वरूप उनके पास आवास या जमीन का अधिकार नहीं है। प्रवासी मजदूरों के बच्चे कुपोषित हैं क्योंकि उनके परिवारों के पास राशन कार्ड नहीं है और न ही उनके पास बाजार से पर्याप्त भोजन खरीदने के लिए पैसा है। इन परिवारों को राजस्व विभाग से राशन काड्र्स बनवाने में भी भारी कठिनायों का सामना करना पड़ता है क्योंकि उनके पास आवास का सुबूत या एक स्थिर पहचान नहीं होती।

महिलाओं ने बताया कि खनन क्षेत्रों में पानी की उपलब्धता एक गंभीर समस्या बन गई है क्योंकि खनन गतिविधियों में सभी जगह जल संसाधनों को सोख लिया है और जो जल स्रोत बचे हैं उनको इतना प्रदूषित कर दिया है कि वे मनुष्यों की तो बात ही छोड़िए, पशुओं के उपभोग के लायक भी नहीं बचे हैं। हमारी केस स्टडीज में पता चला कि बहुत सारे जल स्रोत सूख चुके हैं, धाराओं और नदियों की दिशा बदल गई है, बहुत सारे स्थानों पर भूमिगत जलस्तर गिर गया है और सिर्फ खानों के गड्ढों में ही गंदा पानी बचा है। हमने खनन क्षेत्रों में जो बच्चे देखे वे जल एवं वायु प्रदूषण से फैलने वाली बीमारियों की भारी आशंका से जूझ रहे हैं। खनन कार्यों से पैदा होने वाले प्रदूषण के चलते या तो उन्हें दूषित पानी का इस्तेमाल करना पड़ता है या उन्हें जरूरी मात्रा में पानी नहीं मिलता।

बहुत सारे स्थानों पर महिलाओं ने घड़ों में स्याह और गंदा पानी दिखाया जो कतई खाने-पीने के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। प्रवासी मजदूरों की बस्तियों में इस तरह की बुनियादी सुविधाएं मुहैया कराने का सीधा जिम्मा किसी विभाग के पास नहीं है। स्थानीय पंचायत और नगर पालिका इन बस्तियों में पानी पहुंचाने के लिए जिम्मेदार नहीं हैं क्योंकि प्रवासी बस्तियां उनके शासनाधिकार में नहीं आतीं। जब खान परियोजनाओं को मंजूरी दी जाती है तो जल संसाधन मंत्रालय से भी कभी सलाह नहीं ली जाती। इस तरह खनन प्रभावित इलाकों में जल संसाधनों के नियमन और संरक्षण में उनकी भूमिका लगभग समाप्त हो जाती है। जल संकट से न केवल आस-पास के बच्चों की सेहत और स्वच्छता पर गहरा असर पड़ता है बल्कि इससे आगे बहने वाली जल धाराएं भी गहरे तौर पर प्रभावित होती हैं। या तो पानी की कमी के कारण आगे के इलाकों में किसानों को सिंचाई के लिए पर्याप्त पानी नहीं मिलता और उनकी खाद्य सुरक्षा नष्ट होने लगती है या पानी में विषैले कचरे से लोगों के स्वास्थ्य को भारी नुकसान पहुंचता है।

गंभीर श्वास रोग, मलेरिया, दस्त और पेचिश, जन्मजात विकार, मानसिक विकलांगता, यौन उत्पीड़न आदि खनन क्षेत्रों में रहने वाले बच्चों की गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं हैं और ये सभी खनन गतिविधियों के कारण पैदा हुए प्रदूषण, गंदगी और असुरक्षा से पैदा हो रही हैं। स्वास्थ्य विभाग के पास खनन इलाकों में फैलने वाली स्वास्थ्य समस्याओं का विश्लेषण करने और खानों से फैलते प्रदूषण पर कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त आंकड़े व रिकॉर्ड्स नहीं हैं। प्रभावित समुदायों, यहां तक कि मरीजों के लिए भी अपनी समस्या का सही निदान करा पाना मुश्किल साबित होता है क्योंकि कंपनियां और सरकार अकसर यही दावा करते रहते हैं कि प्रदूषण स्वीकार्य सीमाओं के भीतर है और स्वास्थ्य समस्याएं खनन समुदयों की सामाजिक कुरीतियों और बुरी आदतों का परिणाम है; कि उनका खनन उद्योग की गतिविधियों से कोई संबंध नहीं है। लेकिन ज्यादातर केस स्टडीज में बच्चों के भीतर कई बीमारियां, शारीरिक विकार और लंबी बीमारियां पाई गई हैं जो खनन गतिविधियां शुरू होने के बाद ही सामने आई हैं।

जिन केस स्टडीज क्षेत्रों का दौरा किया गया उन सभी स्थानों पर खनन क्षेत्रों में बच्चों के भीतर भारी कुपोषण सबसे बड़ी समस्या थी। ज्यादातर बच्चे गंभीर और लंबे समय से कुपोषण के शिकार थे। आधे-अधूरे आंगनवाड़ी कार्यक्रम को खनन गतिविधियों के कारण पैदा हो रही खाद्य असुरक्षा की भारी समस्या को दूर करने के लिए काफी नहीं माना जा सकता। 2007 के बाद खनन उद्योग में आई मंदी से भी खाद्य वस्तुओं और ईंधन की कीमतों में अचानक बढ़ोतरी हो गई है जिससे ऐसे खनन प्रभावित बच्चे और कुपोषित हो गए हैं जिनके परिवार उनका पेट पालने के लिए भोजन नहीं खरीद सकते। नरेगा कार्यक्रम को रोजगार गारंटी मुहैया कराने के लिए शुरू किया गया था। इस तरह यह कार्यक्रम खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने का एक साधन था लेकिन दुख की बात यह है कि हमने जिन केस स्टडीज क्षेत्रों का दौरा किया वहां कहीं भी यह कार्यक्रम साल भर में 15-30 दिन से भी ज्यादा रोजगार मुहैया नहीं करा पा रहा है।

ज्यादातर खान मजदूर अनौपाचारिक क्षेत्र में हैं जहां खान मालिक और ठेकेदार मजदूरों को न तो नियमित रोजगार का आश्वासन दे सकते हैं और न ही उनको लगातार मजदूरी दे सकते हैं। लिहाजा, खेतिहर जमीनों को खानों में तब्दील कर देने से एक ऐसी स्थिति पैदा हुई है जहां न तो खान और न ही खेती नियमित आय उपलब्ध करा सकती है।

जब आदिवासी परिवारों को उनकी जमीन से उजाड़ दिया जाता है तो आदिवासी बच्चे अपनी जमीन और जंगलों पर अपने संवैधानिक अधिकार गंवा देते हैं। उड़ीसा और झारखंड में पुनर्वास के जो नतीजे हमने देखे हैं वे विस्थापितों के प्रति लोक प्रशासन द्वारा उपेक्षा की कहानी कहते हैं। खान कंपनियों या सरकारी महकमों को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि विस्थापित/प्रभावित परिवार भारी विपन्नता में ढकेल दिए गए हैं और उनके पास आजीविका या आमदनी का कोई जरिया नहीं बचा है। ये कंपनियां और सरकारी विभाग को इन लोगों की जमीनें छीनकर उन्हें पुनर्वास के नाम पर नकद मुआवजा देकर अपनी जिम्मेदारी खत्म मान लेते हैं।

माफिया, अपराध, भ्रष्टाचार और हिंसा में डूबे उद्योग के कारण सामाजिक सुरक्षा का क्षरण सभी खान क्षेत्रों में दिखाई दिया। परंपरागत आदिवासी इलाकों में ऐसा कम ही दिखाई देता है कि आदिवासी बच्चे गैर-कानूनी गतिविधियों में लिप्त हों लेकिन जिन खनन क्षेत्रों में केस स्टडीज की गई वहां आदिवासी बच्चे भी अपराधों के संपर्क में आ रहे हैं और आपराधिक गतिविधियां कर रहे हैं। यह स्थिति सामाजिक ताने-बाने पर खनन गतिविधियों के नकारात्मक प्रभावों का नतीजा है। प्रत्येक केस स्टडीज क्षेत्र में शराबखोरी औरतों की एक गंभीर समस्या थी। उनका कहना था कि अब शराबखोरी उनकी जिंदगी पर हावी हो गई थी और उनकी आर्थिक व सामाजिक खुशहाली को नष्ट कर रही है क्योंकि खनन क्षेत्र में और कोई चीज इतनी आसानी से नहीं मिलती जितनी आसानी से शराब मिल जाती है। ज्यादातर फील्ड विजिट्स में हमने पाया कि स्कूल और आंगनवाड़ी केंद्र खानों के बीच स्थित हैं जहां ट्रक ड्राइवर और खान मजदूर आंगनवाड़ी केंद्र/स्कूल के सामने ही कहीं पेड़ के तले जुआ खेलते या शराब पीते देखे जा सकते थे। लोकतंत्र के सारे खंभे कानून और शासन के इस ध्वंस को रोकने में अक्षम और लाचार दिखाई पड़ रहे हैं।

इस तरह, हम देखते हैं कि समूची शृंखला में खनन कंपनियों ने उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार नहीं किया है। इसका एक कारण ये है कि उत्तरदायित्व का सवाल स्वेच्छा पर आधारित है और उसे सीएसआर में श्रेष्ठ व्यवहार के साथ जोड़ दिया गया है। मिसाल के तौर पर, बाल मजदूरी एक ऐसा मसला है जिस पर सारी दुनिया में लोग बेचैन हो जाते हैं। यह मानवाधिकारों का ऐसा मुद्दा है जिस पर कोई समझौता नहीं किया जा सकता। लेकिन बाल मजदूरों की सही संख्या बताना और कंपनियों को जवाबदेह ठहराने के लिए सुबूत जुटाना भी मुश्किल रहता है। भारत में बड़ी कंपनियां बाल मजदूरों को प्रत्यक्ष रूप से मजदूरी पर नहीं रखती। लेकिन अक्सर ही वे अनौपचारिक खानों, ठेकेदारों या अवैध खानों से आने वाले कच्चे या प्रसंस्करित अयस्क की सप्लाई पर निर्भर रहती हैं। ये अयस्क पैदा करने वाली खानें दूर-दूर तक फैली होती हैं और प्रायः प्रवासी मजदूरों पर ही निर्भर रहती हैं। यह बात क्योंझर, बेल्लारी, पन्ना, जोधपुर और सुंदरगढ़, सब जगह दिखाई दी जहां खानों में हजारों बाल मजदूर काम कर रहे हैं लेकिन कंपनियों को ढूंढ़ना मुश्किल है।

शोध के दौरान हमें बहुत सारी खानों में बच्चे खुलेआम काम करते दिखाई दिए। उनमें से कुछ बच्चे स्कूल जाने के साथ-साथ मजदूरी भी करते थे लेकिन क्योंकि अनौपचारिक या अवैध खानों का खुद ही कोई रिकॉर्ड नहीं होता इसलिए वहां काम कर रहे बाल मजदूरों का वजूद साबित करना तो और भी कठिन हो जाता है। बाल मजदूर और उनके परिवारों को जिस

तरह डरा-धमका कर रखा जाता है उससे भी वे अपनी समस्याओं को कह पाने या सटीक जानकारी देने से डरते हैं। हालांकि बलुआ पत्थर, संगमरमर और अन्य निर्यात योग्य खनिज पत्थरों की खुदाई में बाल मज. ूदरी के मुद्दों पर दुनिया भर में ध्यान दिया जाने लगा है लेकिन बच्चों को काम पर रखने वाली खानों और उनका माल खरीद कर दूसरे देशों को निर्यात करने वाली कंपनियों के बीच स्पष्ट संबंध स्थापित करना अभी भी लगभग असंभव है।

औद्योगिक अनुत्तरदायित्व की ऐसी ही स्थिति उन उद्योगों में दिखाई दी जहां हीरे जैसे कीमती पत्थर निकाले जाते हैं। मध्य प्रदेश में स्थानीय ठेकेदार बच्चों को हीरे ढूंढ़ने और इकट्ठा करने के काम पर रखे हुए हैं। ओबुलापुरम माइन्स और बेल्लारी में बाल मजदूरी इसी तरह का एक और उदाहरण है। बाल मजदूरों को काम पर रखने वाले स्थानीय ठेकेदार इस हकीकत को छुपाने की कोशिश तक नहीं करते। बेल्लारी में कई ठेकेदारों ने कि वे कानूनों की परवाह नहीं करते क्योंकि ओबुलापुरम माइन्स कानून को खुद 'संभाल' लेती है। इससे पता चलता है कि खान उद्योग में लगे लोग कानूनों के प्रति कितने बेफिक्र हैं। उनका कहना है कि कानून के रखवालों को वो कभी भी खरीद सकते हैं।

हमने जिन ईआईए दस्तावेजों की समीक्षा की उनमें से ज्यादातर में खान कंपनियों द्वारा पुनर्वास संबंधी आश्वासनों और सामाजिक प्रभावों के रूप में स्थानीय समुदायों व बच्चों के लिए अप्रत्यक्ष लाभों का बेतरतीब जिक्र किया गया था। ये दस्तावेज इस मान्यता पर आधारित हैं कि खनन कार्य शुरू होने से स्थानीय अर्थव्यवस्था फैलेगी जिससे स्थानीय बाजार की ताकतें निजी शिक्षा संस्थानों, अस्पतालों, नए रोजगारों और उपभोक्तावाद के साथ इन इलाकों में आने लगेंगी। हकीकत यह है कि दलित और आदिवासी बच्चे इन अवसरों का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं बल्कि स्थानीय मध्यवर्ग और कंपनियों के अधिकारियों के बच्चों को ही ये अवसर मिल रहे हैं। प्रायः देखने में आया है कि स्थानीय बच्चे आसपास बनी चाय की दुकानों, मिस्त्री की दुकानों, होटलों और खान कंपनियों के कारण पैदा हो रहे नए आर्थिक 'अवसरों' और 'लाभों' में काम कर रहे हैं।

जिन केस स्टडीज में बड़ी खनन परियोजनाओं का अध्ययन किया गया वहां सभी जगह लोगों का ये कहना था कि खनन कार्य शुरू होने से पहले उन्हें नौकरियों और रोजगारों का वादा किया गया था लेकिन बाद में प्रभावित समुदायों के किसी भी व्यक्ति को नौकरी मिल पाई। ज्यादातर केस स्टडीज सार्वजनिक क्षेत्र खनन कंपनियों से संबंधित थीं जिनको सामाजिक रूप से ज्यादा जिम्मेदार माना जाता है। नाल्को बॉक्साइट परियोजना को शुरू हुए तीस साल से ज्यादा समय हो गया है। केस स्टडीज से पता चलता है कि इन तीस सालों भी प्रभावित बच्चों को पढ़ाई-लिखाई या आर्थिक दृष्टि से कोई खास फायदा नहीं मिला है। यह स्थिति तो उन लोगों की है जो एक सार्वजनिक क्षेत्र परियोजना से प्रभावित हुए हैं जिसके लिए सामाजिक उत्तरदायित्व को केंद्रीय ऐजेंडा माना जाता है। हमारे सामने एक भी खनन परियोजना ऐसी नहीं है जिसमें पुनर्वास के आश्वासनों को इस तरह अंजाम दिया हो कि प्रभावित समुदाय के जीवन में वाकई सुधार आया हो या कंपनी के आचरण को निजी खान कंपनियों के लिए श्रेष्ठ व्यवहार के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सके। इतना ही नहीं, पुनर्वास, खासतौर से बच्चों की स्थिति के लिहाज से पुनर्वास का कहीं कोई आकलन नहीं किया जा रहा है। अब हमारी सरकार खनन परियोजनाओं के निजीकरण पर जमकर जोर देने लगी है इसलिए अगर टिकाऊ खनन पद्धतियों को गंभीरता से लागू किया जाता है तो सार्वजनिक क्षेत्र कंपनियों को ज्यादा आदर्श आचरण करना होगा और कानून व नियमन व्यवस्था में जो भारी दरारें रह गई हैं उनको पाटना होगा।

वेदांता/स्टरलाइट जैसी खान कंपनियों का दुनिया भर में मानवाधिकारों के मोर्चे पर बहुत खराब रिकॉर्ड रहा है। लिहाजा, काशीपुर और लांजीगढ़ में इस तरह की कंपनियों द्वारा शुरू की जा रही नई परियोजनाएं भी सामाजिक रूप से उत्तरदायित्वपूर्ण खनन का उदाहरण प्रस्तुत नहीं करतीं। ये परियोजनाएं समुदायों और नागर समाज द्वारा व्यक्त किए जा रहे संदेह और गहरे विरोध को जायज सिद्ध कर रही हैं। इन क्षेत्रों में व्यावसायिक कंपनियों द्वारा पैदा किए गए टकराव और दहशत, खासतौर से उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और झारखंड में, को अध्ययन क्षेत्र के दौरान हर क्षण महसूस किया जा सकता था। डेटा संग्रह के दौरान हड़ताल, बंद, पुलिस व उद्योगों के भय से स्थानीय समुदायों के असहयोग और अध्ययन क्षेत्र में हिंसा की आशंका के बिना यात्रा कर पाने की अक्षमता, ये सारी चीजें इस दहशत और तनाव का सुबूत हैं। यह बहुत चिंता की बात है कि आदिवासी बच्चों को अनुसूचित क्षेत्रों से बाहर फेंका जा रहा है (जो कि खनन गतिविधियां शुरू होने के बाद दमनजोड़ी, पन्ना और अन्य आदिवासी इलाकों में देखा जा सकता है) और संविधान की पांचवीं अनुसूची कानून तथा समता जजमेंट के विपरीत इन इलाकों को बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हवाले किया जा रहा है। इस तरह आज के आदिवासी बच्चे अपने अनुसूचित क्षेत्र आधारित स्वामित्व को गंवाते जा रहे हैं और उनकी जमीन निजी खान कंपनियों के हाथों में सौंपी जा रही है। आदिवासी बच्चों के साथ यह सबसे भीषण सरकारी अन्याय है।

ये केस स्टडीज कोई मनगंढत कहानियां नहीं हैं बल्कि हमारे देश के कई लाख खनन प्रभावित बच्चों के जीवन की एक हकीकत हैं। इन तथ्यों को देखकर पता चलता है कि जिस समय हमने सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों को हासिल करने का संकल्प लिया था तब से अब तक हम इस दिशा में कतई आगे नहीं बढ़ पाए। इसका कारण यह है कि हमारी विकास नीतियां हमारे तय लक्ष्यों से उलटी दिशा में चल रही हैं। केस स्टडीज के साथ जो राज्यवार आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं उनसे पता चलता है कि प्रत्येक खनन प्रभावित जिले में खनन प्रभावित बच्चों के विकास संकेतक कितनी दयनीय स्थिति में पहुंच गए हैं। खनन उद्योग के कारण विकास की इस विरोधाभासी दिशा को काफी बल

मिला है। यह विरोधाभास खनन क्षेत्रों के बच्चों और सरकार द्वारा तय लक्ष्यों को हासिल करने की संभावना को लगातार क्षीण करता जा रहा है।

इस तरह राजनीतिक इच्छाशक्ति, सार्वजनिक उत्तरदायित्व और नौकरशाही पारदर्शिता पर बहुत कुछ निर्भर करता है। राष्ट्र की अंतरात्मा पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। हमें उम्मीद है कि यहां जो केस स्टडीज़ पेश की गई हैं वे इस अंतरात्मा को जागृत करने में कामयाब रहेंगी। हमें इस बात की भी उम्मीद है कि ये केस स्टडीज हमें बच्चों से संबंधित मुद्दों को संबोधित करने के लिए कानूनन बाध्यकारी व्यवस्था विकसित करने और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बच्चों को प्रभावित करने वाली मौजूदा नीतियों की समीक्षा में मदद दे पाएंगी। हम उम्मीद करते हैं कि इन केस स्टडीज के जरिए बच्चों की सुरक्षा के लिए समुचित संस्थागत प्रणाली विकसित करने की संभावनाओं पर भी विचार किया जा सकता है।

सिफारिशें

बच्चे परिवारों और समुदायों में रहते हैं। लिहाजा, जब तक उनके वातावरण, परिवारों और समुदायों पर पड़ने वाले प्रभावों को नहीं समझा जाएगा तब तक किसी खास मुद्दे से बच्चे पर पड़ने वाले प्रभावों को अलग से नहीं समझा जा सकता। फिर भी ये बहुत जरूरी है कि बच्चों पर कौन से खास असर पड़ रहे हैं इसे पहचाना जाए और ये समझा जाए कि बच्चों की खास जरूरतों को पूरा करने के लिए क्या उपाय किए जा सकते हैं। इस रिपोर्ट के आधार पर हम जो सिफारिशें दे रहे हैं उनके जरिए हम सभी संबंधित विभागों और मंत्रालयों को संबोधित करना चाहते हैं।

बच्चों के बारे में व्यापक सिफारिशें

- सरकार को सबसे पहले इस बात को मानना चाहिए कि खनन उद्योग से बच्चों पर नाना प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं और खनन चक्र के हर चरण में इन प्रभावों पर ध्यान दिया जाना चाहिए और उनको दूर किया जाना चाहिए।
- खनन प्रभावित बच्चों के सामने सबसे बड़ी समस्या ये है कि वे किसी एक मंत्रालय या विभाग की जिम्मेदारी नहीं बनते। खान मंत्रालय खान परियोजनाओं को चलाने वाला मुख्य निकाय है और कायदे से इन बच्चों के अधिकारों की अवहेलना के लिए वही जिम्मेदार है लेकिन इन बच्चों को सुरक्षा प्रदान करना उसकी जिम्मेदारी नहीं है। मौजूदा शासन संरचना में खनन प्रभावित बच्चों की सुरक्षा का जिम्मा शिक्षा, महिला व बाल कल्याण/विकास, श्रम, आदिवासी व समाज कल्याण, स्वास्थ्य और पुलिस आदि बहुत सारे दूसरे विभागों और मंत्रालयों के ऊपर भी आता है। हमारा मानना है कि सारे मंत्रालयों और विभागों को खनन प्रभावित बच्चों की चिंताओं पर ध्यान देना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इन बच्चों को न्याय दिलाने के लिए कानूनी और नीतिगत स्तर पर उन सबके बीच समन्वय हो।
- 18 साल से कम उम्र के बहुत सारे बच्चे बेहद खतरनाक खनन कार्यों में संलग्न हैं। इस समस्या को अधिकृत रूप से मान्यता दी जानी चाहिए। अब सरकार और समाज खानों में बाल मजदूरों की उपस्थिति को नहीं नकार सकते।
- खनन प्रभावित बच्चों की जरूरतों को पूरा करने के लिए सभी संबंधित कानूनों की पड़ताल की जानी चाहिए और जहां जरूरत हो, उनमें संशोधन किया जाना चाहिए।
- राष्ट्रीय खनिज नीति 2008 में कहा गया है कि 'जब खान कंपनी अपने खनन क्षेत्र को छोड़ेगी तो वह इलाका पारिस्थितिकीय तौर पर उससे ज्यादा सुरक्षित होना चाहिए जितना उस समय था जब वह कंपनी को सौंपा गया था।' बच्चों के संदर्भ में पारिस्थितिकी तंत्र की परिभाषा में सभी मानवीय-पारिस्थितिकीय आयामों को शामिल किया जाना चाहिए। इसके अलावा सरकार को केवल 'मददगार' दिखने की आड़ में खनन क्षेत्रों के बच्चों के प्रति अपनी आधारभूत जिम्मेदारियों को भी नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। खासतौर से उसे अनुसूचित क्षेत्रों में खनन परियोजनाओं के सारे आयामों की जिम्मेदारी लेनी चाहिए और यह जिम्मेदारी निजी ताकतों के ऊपर नहीं डालनी चाहिए। खनन क्षेत्र में बच्चों की समस्याओं को दूसरी चीजों से काटकर नहीं देखा जा सकता और उन्हें नीति, कार्यक्रम और परियोजना के संदर्भ में भी देखा जाना चाहिए।
- खनन परिस्थितियों में जमीन के अधिग्रहण, पुनर्वास, पर्यावरण, प्रदूषण, वनों, खनन प्रक्रियाओं आदि के विषय में बहुत सारे कानून और नीतियां महत्वपूर्ण हो जाती हैं। इनमें से कुछ पहले से मौजूद हैं और कुछ पर विचार चल रहा है। लेकिन इनमें बच्चों की चिंताओं और जरूरतों को विरले ही संबोधित किया जाता है। लिहाजा, यह जरूरी है कि मौजूदा नीतियों, खनन संबंधी कानूनों के संशोधनों और पुनर्वास विधेयक, खान व खनिज (विकास एवं नियमन) (एमएमडीआर) विधेयक, सामाजिक सुरक्षा विधेयक, भूमि अधिग्रहण विधेयक आदि प्रस्तावित कानूनों में बाल अधिकारों की फिक्र को स्पष्ट रूप से शामिल किया जाए।
- बाल मजदूरी के सिलसिले में खान अधिनियम, 1952 और उसके संशोधन अधिनियम, 1983 में 18 साल से कम उम्र के व्यक्ति को 'बच्चा' परिभाषित किया गया है। यह प्रावधान संयुक्त

306. सीएलपीआर में 14 साल तक के बच्चों को सभी खनन कार्यों में काम करने से नहीं रोका गया है और 14 साल की उम्र के बाद उन्हें खानों में काम करने की छूट दी गई है। खान अधिनियम 1952 और खान (संशोधन) अधिनियम, 1983 में कहा गया है कि 18 साल से कम उम्र के किसी भी बच्चे को किसी खान या उसके हिस्से में काम करने की अनुमति नहीं दी जाएगी (अनुच्छेद 40) और न ही वह किसी खनन कार्य से संबंधित गतिविधि में काम करेगा (अनुच्छेद 45) लेकिन, इसमें 16 साल से अधिक उम्र के बच्चों को नौसिखिए और प्रशिक्षु के रूप में काम करने की छूट भी दी गई है।

राष्ट्र बाल अधिकार संधि और बाल न्याय देखभाल एवं सुरक्षा अधिनियम, 2000 (संशोधन 2006) के भी अनुरूप है। लेकिन बाल श्रम निषेध एवं नियमन अधिनियम, 1986 (सीएलपीआरए) और यहां तक कि खान अधिनियम (1983) में भी 18 साल से कम उम्र के बच्चों को खानों में काम पर रखने की इजाजत दी गई है।[306] इस व्यवसाय के बेहद खतरनाक स्वरूप को देखते हुए खान अधिनियम, 1952 और खान (संशोधन) अधिनियम, 1983 में फौरन संशोधन किया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि 18 साल से कम उम्र के बच्चों को किसी भी हैसियत से खानों में काम पर नहीं रखा जाएगा। कानून में संशोधन करके यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उस धारा को भी समाप्त कर दिया जाएगा जिसके तहत 16 साल या उससे अधिक उम्र के बच्चों को प्रशिक्षु और नौसिखिये के रूप में काम पर रखने की छूट मिली हुई है।

- मौजूदा बाल सुरक्षा संस्थानों, खासतौर से राज्य बाल अधिकार सुरक्षा आयोग और राष्ट्रीय बाल अधिकार सुरक्षा आयोग, को खनन प्रभावित बच्चों से जोड़ना जरूरी है।

विभिन्न मंत्रालयों के लिए सिफारिशें

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय

- खनन क्षेत्रों में पाई गई भारी खाद्य असुरक्षा, भूख और कुपोषण को दूर करने तथा भोजन अधिकार मामले में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश को लागू करने के लिए[307] जरूरी है कि खनन क्षेत्रों में आईसीडीएस परियोजना के क्रियान्वयन की पूरी समीक्षा की जाए।
- प्रवासी खान मजदूरों के बच्चों को आईसीडीएस के तहत प्रायः कोई संस्थागत सहायता नहीं मिलती। लिहाजा, प्रवासी परिवारों के बच्चों तक आईसीडीएस कार्यक्रम को पहुंचाने के लिए रचनात्मक प्रयास/कार्यक्रम शुरू किए जाएं।
- खनन कार्यों की पूर्वशर्त वाले भाग में दी गई सिफारिशों को मंत्रालय की नीतियों और कानूनों में शामिल किया जाना चाहिए।
- क्योंकि महिला एवं बाल विकास मंत्रालय भी आईसीपीएस - एकीकृत बाल सुरक्षा योजना - के क्रियान्वयन के लिए राज्य सरकारों के साथ समझौतों पर हस्ताक्षर कर रहा है इसलिए इन समझौतों में खनन जैसे संवेदनशील क्षेत्रों को खास प्राथमिकता दी जानी चाहिए। बच्चों की असुरक्षा पर अंकुश लगाना इस योजना का मुख्य मकसद है ताकि सामाजिक सुरक्षा संबंधों से बाहर छूट जाने वाले बच्चों को सुरक्षा प्रदान की जा सके।
- खनन क्षेत्रों में बच्चों की परिस्थितियों को संबोधित करने के लिए बाल न्याय अधिनियम, 2000 को संजीदगी से लागू करना बहुत जरूरी है।
- खनन क्षेत्रों में इन बच्चों को सुरक्षा प्रदान करने वाली संस्थागत संरचना और मजबूत की जानी चाहिए ताकि बच्चों का शोषण करने वाली ताकतों पर और कड़ी निगरानी रखी जा सके। बच्चों, खासतौर से प्रवासी खान मजदूरों के बच्चों को संस्थागत सहायता प्रदान की जानी चाहिए क्योंकि उनके पास अपने बच्चों की सुरक्षा के लिए कोई सहायक संरचना या सुनवाई व्यवस्था नहीं होती।
- बाल न्याय (देखभाल व सुरक्षा) संशोधन अधिनियम, 2006 खनन क्षेत्रों के बच्चों - खानों में काम करने वाले बच्चे, खनन गतिविधियों से पैदा हुई गरीबी के कारण अन्य क्षेत्रों में काम करने वाले बच्चे - और खानों के आसपास रहने वाले बच्चों पर बहुत अच्छी तरह लागू किया जा सकता है क्योंकि इन बच्चों के सामने खनन क्षेत्रों में फैले अपराधों और शोषण की स्थायी आशंका रहती है।
- जिन इलाकों में विस्थापन और भूमिहीनता की वजह से बच्चे शोषण का शिकार हुए हैं या गैर-कानूनी गतिविधियों में फंस गए हैं वहां बाल न्याय बोर्डों, बाल कल्याण समितियों (सीडब्ल्यूसी)और राज्य बाल पुलिस इकाइयों द्वारा आदिवासी बच्चों को और ठोस सहायता दी जानी चाहिए।
- सीडब्ल्यूसी कमेटियों को उन निगरानी समितियों का हिस्सा बनाया जाना चाहिए जो बच्चों पर पड़ने वाले प्रभावों की समीक्षा करती हैं और खान कंपनियों द्वारा स्वीकृत शर्तों के क्रियान्वयन पर नजर रखती हैं। खनन क्षेत्रों में अपराध और असुरक्षा काफी ज्यादा होती है इसलिए सीडब्ल्यूसी में पर्याप्त लोग और संसाधन होने चाहिए।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय

- सभी बच्चों को निःशुल्क और सार्वभौमिक अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा का अधिकार प्राप्त है। खनन क्षेत्रों के बच्चों की विशेष स्थिति और "विकास" के लिए उनके द्वारा चुकायी जा रही कीमत को देखते हुए सरकार को इस बात का खास खयाल रखना चाहिए कि खनन प्रभावित क्षेत्रों के बच्चों, पुनवार्सित, विस्थापित और प्रवासी समुदायों के बच्चों को पहुंच के भीतर और अच्छी शिक्षा मिले। इसके लिए प्राथमिक और प्रारंभिक स्कूलों की संख्या, स्तर और पहुंच में पर्याप्त सुधार लाना और उनकी अवरचनागत सुविधाओं व शिक्षाशास्त्रीय क्षमताओं में सुधार लाना बहुत जरूरी है।
- शिक्षा के अधिकार का मतलब ये भी है कि सभी बच्चों को "समान और अच्छी शिक्षा' मिलनी चाहिए। मंत्रालय को चाहिए कि वह स्कूल चलाने के लिए टेम्पेरेरी, एडहॉक और शिक्षाकर्मी आधारित पद्धति को छोड़ कर खनन प्रभावित इलाकों में बच्चों के लिए ठीक वैसी ही नियोजित, स्थायी और टिकाऊ व्यवस्था करे जैसी खान कंपनियों के अधिकारियों के बच्चों को मिलती है।

307. श्रम मंत्रालय की वेबसाइट http://labour.nic.in/cwl/ChildLabour.htm (11 मार्च 2010 को देखा)।

श्रम मंत्रालय

- बाल मजूदरी (निषेध एवं नियमन) अधिनियम, 1986 में खान बाल मजदूरों के संबंध में जो खामियां बनी हुई हैं उनको दूर करने के लिए इस कानून में संशोधन किया जाना चाहिए ताकि सभी खनन कार्यों को इस अधिनियम की अनुसूचित ए के अंतर्गत निषिद्ध व्यवसायाओं की सूची में शामिल किया जा सके।[308]
- श्रम मंत्रालय का दावा है कि "बाल मजदूरी का उन्मूलन इस मंत्रालय की गतिविधियों में सबसे बड़ा कार्यक्रम"[309] है लेकिन अभी भी उसकी सारी कोशिशें खानों में बाल मजदूरी की समस्या को दूरे करने के लिए नाकाफी साबित हुई हैं। राष्ट्रीय बाल श्रम कार्यक्रम (एनसीएलपी) को विस्तार देकर खानों में काम करने वाले सभी बाल मजदूरों को उसके अंतर्गत लाया जाना चाहिए। इसका मतलब है कि इस कार्यक्रम में संख्या, धन और डिलीवरी की गुणवत्ता में इजाफा करना होगा और निगरानी की उचित व्यवस्था करनी होगी।
- एनसीएलपी स्कूलों में जाने वाले सभी बच्चों को सामान्य स्कूलों में दाखिला दिलाना अनिवार्य है और खान मजदूरी से मुक्त कराए गए सभी बच्चों को इन मुख्यधारा के स्कूलों में दाखिला दिलाया जाना चाहिए।
- बाल मजदूरी की स्थिति पर नजर रखने और अंकुश लगाने के लिए लेबर इंस्पेक्टरों को नियमित दौरा करना चाहिए और इस विषय में अपनी रिपोर्ट अनिवार्य रूप से जमा करानी चाहिए।

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय

- खनन क्षेत्रों में रहने और काम करने वाले बच्चों के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का समग्र आकलन किया जाना चाहिए।
- खनन गतिविधियों के कारण फैल रहे भारी पर्यावरण प्रदूषण एवं व्यावसायिक रोगों को देखते हुए मंत्रालय के पास ऐसी डिलीवरी सेवाएं होनी चाहिएं जो बाल स्वास्थ्य और मृत्यु दर से जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दो को संबोधित कर सकती हैं।
- निर्धारित संकेतकों के अनुसार समय-समय पर स्वास्थ्य आकलन की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि समय रहते स्थिति का पता लगाया जा सके और समस्याओं की रोकथाम की जा सके।
- खनन गतिविधियों, संबंधित प्रदूषण, गंदगी, विषैलेपन, जल संसाधनों के नष्ट हो जाने और फलस्वरूप समुदायों के पोषण व खाद्य सुरक्षा के प्रभावित होने से स्थायी व दीर्घकालिक स्वास्थ्य समस्याओं से जूझ रहे बच्चों व उनके अभिभावकों पर खास ध्यान दिया जाना चाहिए।
- खनन कार्यों की पूर्वशर्त वाले भाग में दी गई सिफारिशों को मंत्रालय की नीतियों और कानूनों में शामिल किया जाना चाहिए।

खान मंत्रालय एवं अन्य मंत्रालयों के लिए कानूनी और नीतिगत सिफारिशें

निम्नलिखित सिफारिशें खान मंत्रालय को केंद्र में रखकर सोची गई हैं लेकिन बाल सुरक्षा संबंधी सभी संबंधित मंत्रालयों और राजकीय संस्थानों की नीतियों और कानूनों में भी इनको शामिल किया जाना चाहिए।

खनन पट्टा लेने के लिए पूर्वशर्त (बाल अधिकारों की सुरक्षा के संदर्भ में) :

- एमएमडीआर अधिनियम एक ऐसा अधिनियम है जो खनन कार्यों को चलाने और 'वैज्ञानिक' ढंग से खनिज पदार्थों के सदुपयोग को बढ़ावा देता है। इस अधिनियम के तहत निर्धारित नियम मुख्य रूप से खान नियोजन, खनन प्रक्रियाओं, प्रौद्योगिकी के स्वरूप, खनन पट्टे हासिल करने की प्रक्रिया व योग्यता मानकों से संबंधित हैं। इस कानून में इस बात का खास जिक्र नहीं है कि सामाजिक संदर्भ में खनन कार्य किस तरह किए जाएंगे। इसमें पर्यावरण, पुनर्वास और सामाजिक प्रभावों की दृष्टि से सिर्फ कुछ मोटा-मोटी दिशानिर्देश दिए गए हैं। खनन कार्यों से बच्चों पर जो भीषण प्रभाव पड़ते हैं उनको देखते हुए यह जरूरी है कि खनन पट्टे जारी करने से पहले निश्चित पूर्वशर्तें तय की जाएं और खनन कंपनी से इस बात का आश्वासन लिया जाए कि वह बच्चों के विकास व सुरक्षा के लिए क्या ठोस कदम उठाने वाली है। उत्तरदायित्वपूर्ण खनन कार्यों के लिए जरूरी है कि खासतौर से बच्चों के संबंध में सामाजिक प्रभावों और उत्तरदायित्व की व्यवस्था कानून और खान योजना में जरूरी शामिल की जाए। जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक खनन क्षेत्रों में बाल अधिकारों का हनन इसी तरह चलता रहेगा।
- प्रस्तावित संशोधन में लाइसेंस और पट्टे हासिल करने की प्रक्रिया, खनन की पद्धति, योग्यता मानदंड व मानकों, जिम्मेदारियों, सामाजिक-पारिस्थितिकीय पुनर्वास प्रणाली के बारे में तकनीकी ब्यौरों के साथ इस बात का भी स्पष्ट प्रावधन होना चाहिए कि किस अपराध के लिए कितनी सजा दी जाएगी और वह कानूनन बाध्यकारी होनी चाहिए। इस संशोधन में खनन चक्र के तीनों चरणों - खनन गतिविधियां शुरू होने से पहले, खनन गतिविधियों के दौरान और खान बंदी के बाद - को शामिल किया जाना चाहिए।
- बच्चों की सुरक्षा सुनिश्चित करने वाली अंतर्राष्ट्रीय कन्वेंशनों और राष्ट्रीय कानूनों के पालन पर आधारित पूर्व शर्तों को किसी भी परियोजना संबंधी गतिविधि शुरू करने से पहले या मंजूरी से पहले स्पष्ट रूप से तय किया जाना चाहिए। इन शर्तों पर निगरानी के लिए नागर समाज संगठनों, मजदूरों और स्थानीय अभिशासन संस्थानों को भी अधिकार दिया जाना चाहिए ताकि कंपनियों पर व्यावहारिक अंकुश लगाया जा सके। एमएमडीआर अधिनियम के नियमों में इस बात का स्पष्ट उल्लेखन होना चाहिए कि खनन पट्टे सिर्फ तभी जारी किए जाएंगे जब महिला एवं बाल कल्याण, शिक्षा, आदिवासी कल्याण, श्रम, स्वास्थ्य, पुलिस आदि संबंधित विभागों

308. फिलहाल अनुसूची ए में सिर्फ खनन एवं कोलियरीज को ही खनन उद्योग की विभिन्न गतिविधियों के रूप में शामिल किया गया है।
309. श्रम मंत्रालय की वेबसाइट http://labour.nic.in/cwl/ChildLabour-htm (11 मार्च 2010 को देखा)।

से कंपनी के साथ मिलकर काम करने या विस्थापित/प्रभावित/प्रवासी खनन समुदायों के बच्चों को प्रत्यक्ष संस्थागत सहायता प्रदान करने के लिए मंजूरी हासिल कर ली जाएगी। इसका मकसद बच्चों की दृष्टि से खनन व्यवसाय में एक टिकाऊ विकास व्यवस्था सुनिश्चित करना है जो कथित रूप से राष्ट्रीय खनिज नीति का आधार होगी।

- अन्य विभागों की नीतियों और कार्यक्रमों की रूपरेखा में भी इसी तरह के बदलाव किए जाने चाहिए ताकि उनमें इन पूर्व शर्तों का समावेश किया जा सके और वे अपने अधिकार क्षेत्र में बच्चों के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह कर सकें।

खनन पट्टा जारी करने के समय खनन चक्र के तीनों चरणों में बच्चों के मुद्दों और सरोकारों को शामिल करना :

खनन पूर्व योजना :

- खान मालिक को पट्टा/लाइसेंस सिर्फ तभी जारी किया जाएगा जब उससे इस बात का लिखित आश्वासन मिल जाएगा कि खनन या किसी भी संबंधित गतिविधि में कोई बाल मजदूर नहीं रखा जाएगा। अगर बच्चों को ऐसे किसी खनन क्षेत्र/पट्टा क्षेत्र में काम करते पाया जाता है तो वह पट्टा फौरन रद्द कर दिया जाना चाहिए।
- प्रत्येक खनन परियोजना में मौजूदा आर्थिक, शैक्षिक एवं खाद्य सुरक्षा (वन एवं खेती) संकेतकों का स्पष्ट आकलन किया जाना चाहिए और परियोजना की योजना व लागतों के भीतर बच्चों व परिवारों के विकास की स्पष्ट योजना होनी चाहिए (जो सरकारी विभागों द्वारा जारी किए जा रहे अनुदानों के अलावा होगी)।
- इस सर्वेक्षण में यह ब्यौरा भी शामिल होगा कि खनन कार्यों से मौजूदा संसाधनों पर क्या असर पड़ेगा, जल संसाधनों, संस्कृतियों और सामाजिक संस्थानों पर क्या प्रभाव पड़ेगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि किसी पर भी बहुत ज्यादा प्रभाव न पड़ें।
- खनन योजना में इस बात का संकेत जरूर होना चाहिए कि आधाररेखा सर्वेक्षण के अनुसार अभी के मुकाबले बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, सुरक्षा या आर्थिक विकास के लिए कंपनी क्या करने जा रही है।
- इस बात का ब्यौरा शामिल होना चाहिए कि खनन परियोजना से समुदायों की मौजूदा आर्थिक और विकास संबंधी स्थिति में किस तरह के सुधार आएंगे (अभी ईआईए दस्तावेजों में आमतौर पर इसी बात का उल्लेख होता है कि समुदायों को परियोजना से अप्रत्यक्ष लाभ मिलेंगे)।
- पुनर्वास योजना पट्टा अनुबंध का अभिन्न अंग होनी चाहिए और पुनर्वास योजना में इस बात का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए कि बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ने वाले हैं और आधार रेखा सर्वेक्षण के आधार पर उनके पुनर्वास की क्या योजना बनाई गई है। इसमें विस्थापित/प्रभावित परिवारों को आजीविका मुहैया कराना भी शामिल होना चाहिए। विधवाओं और ऐसी एकल मांओं पर खास ध्यान दिया जाना चाहिए जिनके बच्चे मानसिक और/या शारीरिक रूप से विकलांग हैं।
- पुनर्वास किसी परियोजना के शुरू होने से पहले समयबद्ध ढंग से शुरू हो जाना चाहिए। इसमें शौचालय और पीने के पानी सहित सम्मानजनक और पर्याप्त आवास सुविधा, पानी की नियमित आपूर्ति, पुनर्वास/पुनर्स्थापन व्यवस्था, स्कूल, बिजली, गर्भवती महिलाओं मांओं और एकल मांओं के लिए पूरक पोषण से युक्त आंगनवाड़ी केंद्र भी होना चाहिए।
- जबरिया विस्थापन के बाद पैदा होने वाली शराबखोरी और हिंसा की समस्या को दूर करने के लिए इस बात का लिखित आश्वासन लिया जाना चाहिए कि खान कंपनी पुनर्वास बस्ती के भीतर या आसपास शराब की दुकानें नहीं खोलेगी और न ही उनको बढ़ावा देगी।
- खनन क्षेत्रों के भीतर और खानों के आसपास पुनर्वास बस्ती के अलावा भी बुनियादी ढांचे के विकास पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके लिए आंगनवाड़ी केंद्रों, स्कूलों, कॉलेजों और परंपरागत व सरकारी स्वास्थ्य केंद्रों, जनसंसाधनों, मकानों, सड़कों और यातायात सुविधाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए।
- यह स्पष्ट होना चाहिए कि पानी, जंगल और राजस्व भूमि का कितना हिस्सा खनन गतिविधियों के लिए जारी किया जाएगा। इस बारे में जल संसाधन विभाग के साथ-साथ स्थानीय विभाग से भी इजाजत ली जानी चाहिए।
- कंपनी को इस बात की गारंटी देनी चाहिए कि गांव के स्कूल, आंगनवाड़ी, जल स्रोतों और स्वास्थ्य केंद्रों के आसपास खनन कार्य नहीं होंगे।
- ट्रकों और लॉरी आदि की पार्किंग के लिए गांव से दूर निश्चित स्थानों का ही इस्तेमाल किया जाए। यह स्थान पट्टे पर मंजूरी से पहले तय कर देना चाहिए ताकि बाद में बच्चे लगातार आने-जाने वाली आबादी के कारण सामाजिक रूप से असुरक्षित परिस्थितियों का शिकार न बन सकें।
- नियमित ऐहतिहाती कार्रवाइयों (जो कानून में पहले से मौजूद हैं) के जरिए धूल और जल प्रदूषण पर अंकुश लगाया जाएगा लेकिन अगर नियमित रूप से ऐसे प्रयास नहीं किए जो रहे हैं तो कंपनी को दंडित करने के लिए कार्रवाई की जाएगी।
- खनन कंपनी की ओर से मजदूरों और समुदायों के स्वास्थ्य की जांच और इलाज का इंतजाम किया जाना चाहिए। इस संबंध में जो नतीजे सामने आते हैं उनको कंपनी कार्यालय में सार्वजनिक जांच के लिए उपलब्ध रखा जाना चाहिए। ये रिपोर्ट्स पट्टे में तय नियमित अंतराल पर या एमएमडीआर अधिनियम की खान सुरक्षा नियमावली में उल्लिख नियमित अंतराल पर जिला चिकित्सा एवं स्वास्थ्य अधिकारी के पास भी जमा करायी जानी चाहिए।
- यदि इनमें से किसी भी प्रावधान का उल्लघंन होता है और उससे बच्चों पर असर पड़ रहे हैं तो पट्टा रद्द कर दिया जाना चाहिए। निर्धारित

योजना और निगरानी समिति की सिफारिशों के अनुरूप पुनर्वास न होने की स्थिति में सजा भी पहले से तय होनी चाहिए।

खनन कार्यों के दौरान खान योजनाः

- उपरोक्त सभी आश्वासन समयबद्ध रूप से पूरे हो जाने चाहिए।
- जिस समय खान योजना तैयार की गई थी उस समय कंपनी, समुदाय, मजदूरों, संबंधित विभागों, बाल अधिकार समितियों और गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) सहित सभी संबंधित पक्षों के साथ मिलकर तय किए गए सामाजिक विकास संकेतकों के आधार पर एक समयबद्ध/नियमित आकलन किया जाए।
- संबंधित विभागों और बाल अधिकार समितियों के साथ-साथ स्थानीय समुदायों, परियोजना प्रभावितों और गैर-सरकारी संगठनों के साथ परामर्श के आधार पर समयबद्ध रिपोर्ट्स और फॉलोअप कार्रवाइयों का ब्यौरा जमा कराया जाना चाहिए।
- कर्मचारियों के साथ-साथ खनन परियोजनाओं के आस-पास रहने वाले समुदायों को भी निशुल्क स्वास्थ्य सेवाएं और अस्पताल उपलब्ध कराएं जाएं। बाल स्वास्थ्य केंद्रों की विशेष व्यवस्था की जाए जो खनन कार्यों के कारण पैदा होने वाले प्रदूषण और अन्य समस्याओं को संबोधित कर सकें।
- खनन कंपनियों को गंभीर बीमारियों के इलाज के लिए अलग से एक स्वास्थ्य निधि रखनी चाहिए और उसका संचालन कंपनी से स्वतंत्र होना चाहिए। अगर खनन गतिविधियों के कारण बच्चों में स्वास्थ्य समस्याएं/विकार/जन्मजात विकृतियां पैदा होती हैं तो खान कंपनियों को इसका मुआवजा देना चाहिए। इस बारे में कंपनी द्वारा पक्षपातपूर्ण मेडिकल रिपोर्ट्स की समस्या से बचने के लिए स्वतंत्र चिकित्सकीय प्रमाणन की व्यवस्था की जानी चाहिए। कुछ मौजूदा खान क्षेत्रों में बच्चे भारी स्वास्थ्य समस्याओं से जूझ रहे हैं। ऐसे स्थानों की शिनाख्त की जानी चाहिए और उन्हें स्वास्थ्य इमरजेंसी क्षेत्र घोषित करके वहां तत्काल प्रभाव से सघन स्वास्थ्य हस्तक्षेप कार्यक्रम चालू किया जाना चाहिए।

खनन पश्चात योजना :

- खान बंदी योजना में बच्चों की सुरक्षा व विकास के लिए स्पष्ट वित्तीय आबंटन और कार्यक्रम तय होना चाहिए। मिसाल के तौर पर, इस बात की व्यवस्था की जानी चाहिए कि खान बंद हो जाने के बाद पुनर्वास बस्ती में स्कूल कैसे चलेंगे, और क्या कंपनी ने स्कूलों के संचालन के लिए शिक्षा विभाग से मंजूरी ली है या नहीं। इस संक्रमण काल तथा खानबंदी के बाद की अवधि के लिए कंपनी द्वारा क्या आर्थिक प्रतिबद्धताएं व्यक्त की गई हैं, इस बात का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए।
- खान बंदी के बाद मजदूरों और स्थानीय समुदायों के लिए एक आजीविका योजना तय की जानी चाहिए ताकि बाद में परिवारों का पेट पालने के लिए बच्चों को पढ़ाई न छोड़नी पड़े (जैसा कि कोलार में केजीएफ के बंद हो जाने के बाद हुआ है)। खान बंद हो जाने के बाद कंपनियां अपने अस्पताल और चिकित्सा सुविधाएं रातोंरात बंद कर देती हैं जिससे टाउनशिप और पुनर्वास बस्तियों के पास कोई चिकित्सा सुविधाएं बाकी नहीं बचतीं।
- इस बात की औपचारिक व्यवस्था होनी चाहिए कि जब कंपनी खान बंद करेगी तो इन सेवाओं को सरकारी स्वास्थ्य विभागों को सौंपने की क्या प्रक्रिया होगी और संक्रमण की अवधि में कंपनी क्या आर्थिक दायित्व निभाएगी।

सामान्य सिफारिशें

छोटी खानें : लघु खनन एवं खानों में खान मजदूरों और उनके बच्चों के अधिकारों की रक्षा की दृष्टि से तय पूर्व शर्तों में निम्नलिखित प्रावधानों को शामिल किया जाना चाहिए :

- खान मजदूरों की मजदूरी और कार्यस्थितियों का ब्यौरा स्पष्ट रूप से तय होना चाहिए और वह किसी महत्वपूर्ण सार्वजनिक स्थान पर उपलब्ध होना चाहिए ताकि कोई भी उसे देख सके। खान मजदूरी के खतरनाक स्वरूप को देखते हुए इस व्यवसाय में उचित मजदूरी तय की जानी चाहिए ताकि मजदूरों के परिवारों के लिए उचित जीवन स्थितियां सुनिश्चित की जा सकें और बाल मजदूरी को रोका जा सके।
- मजदूरों को पर्याप्त सुरक्षा उपकरण और सुरक्षात्मक वर्दी दी जानी चाहिए। खनन पट्टा जारी करते हुए दुर्घटना लाभों और बीमे की व्यवस्था सुनिश्चित होनी चाहिए।
- महिला कामगारों को खानों की धूल और शोर से दूर बालवाड़ियों की सुविधा दी जानी चाहिए। वहां पूर्णकालिक केयरटेकर, पूरक पोषण की व्यवस्था होनी चाहिए। महिलाओं को काम के दौरान अपने शिशुओं की देखभाल के लिए बीच-बीच में अवकाश दिया जाना चाहिए। मजदूरों और बालवाड़ी में जाने वाले बच्चों/शिशुओं के लिए खान स्थल पर पीने का साफ सुरक्षित पानी मुहैया कराया जाना चाहिए।
- मजदूरों को यूनियनों में संगठित होने और अपने सरोकार व्यक्त करने की आजादी होनी चाहिए।
- 'एथिकल स्टोन्स'[310] जैसे मानक जो सिफारिशों के रूप में नहीं हैं बल्कि विभिन्न प्रकार के कानूनों की वैधानिक अपेक्षाओं पर आधारित हैं, उनको स्पष्ट रूप से स्थापित किया जाना चाहिए और हीरे, कीमती पत्थरों, ग्रेनाइट आदि से संबंधित खनिजों/उत्पादों को ऐसी स्वतंत्र ऐजेंसियों द्वारा अनिवार्य प्रमाणन के तहत रखा जाना चाहिए जो कानूनन सार्वजनिक जांच और न्यायिक कार्रवाई के तहत आती हों।
- खान पट्टों को तर्कसंगत बनाने और अल्प-उत्पादक भंडारों व अवैध

310. देखें परिशिष्ट 1

खानों को छांटकर अलग करने की बहुत भारी जरूरत है। इस बात की व्यवस्था की जानी चाहिए कि कौन सी जमीन का अधिग्रहण किया जा रहा है, उस क्षेत्र की आवश्यकता का क्या औचित्य है, कौन-कौन से गैर-विस्थापन विकल्पों पर विचार किया जा चुका है और उस क्षेत्र में क्या कार्ययोजना होगी।

खनन प्रभावित बच्चे : कुछ व्यावहारिक कदम

1. राज्य एवं जिला स्तरीय निगरानी समिति का गठन किया जाना चाहिए जिसमें बाल सुरक्षा के लिए जिम्मेदार सभी संबंधित विभागों को शामिल किया जाएगा। निगरानी और शिकायतों के निपटारे की प्रक्रिया में स्वतंत्र नागर समाज संगठनों को भी शामिल किया जाना चाहिए। इस समिति के पास प्रांतीय एवं राष्ट्रीय बाल/मानवाधिकार आयोगों और संबंधित विभागों के सामने इन मुद्दों के प्रतिनिधित्व का औपचारिक अधिकार होना चाहिए।
2. खान मंत्रालय को स्थानीय अभिशासन संस्थानों (जिला, ब्लॉक) और समुदाय के साथ मिलकर क्षेत्रीय योजना तैयार करनी चाहिए जिसमें इस बात का स्पष्ट विवरण हो कि जिस अयस्क की खुदाई की जाएगी उसकी मात्रा और गुणवत्ता क्या होगी, कितने क्षेत्रफल में खनन कार्य चलेंगे, उस क्षेत्र का जनसांख्यिकीय स्थिति कैसी है, उत्खनन के लिए आर्थिक नियोजन जिसमें मजदूरों की संख्या, मजदूरों की किस्म (स्थानीय, प्रवासी), तकनीक की किस्म, सामाजिक लागत जिसमें वेतन भी शामिल है, मजदूरों के अनुमान और सुनिश्चित कार्यावधि (प्रवासी मजदूरों के संबंध में), आवास, पीने का पानी, बिजली, प्रारंभिक बाल्यास्था देखभाल (आंगनवाड़ी) और प्राथमिक शिक्षा या उसकी अनुपस्थिति में एनसीएलपी स्कूल, शौचालय, पीडीएस सुविधा और अन्य आवश्यक चीजों, इन सबका स्पष्ट ब्यौरा होना चाहिए। इन कामों के लिए सरकारी खजाने से नहीं बल्कि कंपनी/प्रोमोटर से धन की व्यवस्था की जानी चाहिए।
3. सार्वजनिक क्षेत्र कंपनियों को सबसे पहले अपने कामों से फैले दुष्प्रभावों को दूर करने और उसके बाद मौजूदा खानों में निश्चित समय-सीमा के अनुसार बच्चों व उनके परिवेश पर पड़े विनाशकार प्रभावों को दूर करने के लिए एक अनुकरणीय प्रयास करना चाहिए। इन प्रयासों की नियमित अंतराल पर स्वतंत्र समितियों द्वारा जांच की जानी चाहिए। इस दुरुस्तीकरण योजना में यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि प्रत्येक कंपनी इस काम के लिए कितना बजट आबंटित कर रही है और कमेटी को इस बात का ब्यौरा भी देना चाहिए कि इस मद में कितना खर्चा किया जा चुका है।
4. लाभों के बंटवारे की व्यवस्था भी फौरन स्थापित की जानी चाहिए ताकि सब कुछ फौरी अल्पकालिक आर्थिक राहत तक सीमित न हो बल्कि उसमें खानबंदी के पश्चात जमीन को दोबारा उपजाऊ बनाने और व्यावहारिक आजीविका कार्यक्रमों सहित समुदायों व मजदूरों के दीर्घकालिक टिकाऊपन की भी व्यवस्था होनी चाहिए। कंपनियों के मुनाफे या करों का एक हिस्सा इन कार्यक्रमों और सीडब्ल्यूसी कमेटियों को भी दिया जाना चाहिए ताकि वे और अच्छी तरह काम कर सकें।
5. नए खान पट्टे तब तक जारी न किए जाएं जब तक पर्याप्त दुरुस्तीकरण और संस्थागत व्यवस्था विकसित न कर ली गई हो। अनुसूचित क्षेत्रों में कोई निजी खनन पट्टा जारी नहीं किया जाना चाहिए और समता जजमेंट का शब्द और भावना, दोनों स्तरों पर सम्मान किया जाना चाहिए।
6. राष्ट्रीय असंगठित क्षेत्र आयोग ने जो नया सामाजिक सुरक्षा विधेयक प्रस्तुत किया है उसमें उपरोक्त वैधानिक एवं नीतिगत सिफारिशों, खासतौर से प्रवासी खान मजदूरों से संबंधित सिफारिशों को शामिल किया जाए और उसमें पर्याप्त सामाजिक सुरक्षा लाभों पर ध्यान दिया जाना चाहिए जो प्रत्यक्ष रूप से बच्चों के विकास और सुरक्षा में सहायक हों।

निष्कर्ष

उपरोक्त सिफारिशों और मौजूदा सुरक्षा प्रावधानों को जल्दी से जल्दी लागू करने और खनन प्रभावित बच्चों की मदद के लिए सरकार को आर्थिक आबंटन और मानव संसाधनों की व्यवस्था करके संबंधित नीतियों और कानूनों को संजीदगी से आगे बढ़ाना चाहिए। बच्चों के लिए मौजूद संस्थागत सहायता कार्यक्रमों के वास्ते केंद्रीय और प्रांतीय बजटों में पर्याप्त संसाधन दिए जाने चाहिए और इन कानूनों की निगरानी के लिए पैसा दिया जाना चाहिए ताकि इन्हें सही मायनों में लागू किया जा सके।

उपरोक्त कानूनी और नीतिगत प्रयासों को तब तक अमली जामा नहीं पहनाया जा सकता जब तक नागर समाज संगठनों, ट्रेड यूनियनों, प्रभावित समुदायों, मजदूरों तथा मानवाधिकार संगठनों की ओर से इस बारे में ठोस एडवोकेसी और अभियान नहीं चलाया जाएगा। नागर समाज संगठनों और मानवाधिकार संगठनों के बीच समन्वय भी बहुत जरूरी है ताकि खनन प्रभावित क्षेत्रों में बच्चों के अधिकारों को प्राथमिकता मिल सके। जब तक सरकारी पक्षों पर इस बात के लिए सख्त दवाब और लॉबिंग नहीं होगी कि वे कानूनों को गंभीरता से लागू करें और जब तक जनता की चौकसी व लॉबिंग में इस बात पर जोर नहीं दिया जाएगा कि वे बच्चों को नुकसान पहुचांने वाले मौजूदा आर्थिक मॉडल की हिमायत छोड़कर बच्चों के विकास और सुरक्षा के लिए अनुकूल नीतियां बनाएं तब तक खानों की तली से आ रही बच्चों की पुकार सुनाई नहीं दे पाएगी। हमें उम्मीद है कि प्रभावित समुदाय, गैर-सरकारी संगठन और मानवाधिकार संगठन, खनन प्रभावित बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए सक्रिय निकाय इस अध्ययन को एक साधन के रूप में इस्तेमाल करेंगे।

भाग 4

परिशिष्ट - सूचना अधिकार अधिनियम के हमारे अनुभव

सूचना अधिकार अधिनियम, 2005 के हमारे तजुर्बे

इस अध्ययन के लिए सूचनाएं एकत्र करने के वास्ते हमने भारत में बच्चों के विकास और उनकी समस्याओं से संबंधित विभिन्न विभागों से सूचनाएं हासिल करने का प्रयास किया है। इस प्रक्रिया में हमने सूचना अधिकार (आरटीआई) अधिनियम के तहत खनन उद्योग में बाल अधिकारों के विभिन्न आयामों की स्थिति जानने के लिए कई जगह आरटीआई आवेदन भेजे थे। यहां हम इस संबंध में मिले अनुभवों और कठिनाइयों का एक संक्षिप्त ब्यौरा दे रहे हैं।

हमने सरकार से निम्नलिखित के बारे में सूचनाएं मांगी थी :

- बाल मजदूरी के आंकड़े
- शिक्षा संबंधी आंकड़े
- स्वास्थ्य
- सुरक्षा संबंधी मुद्दे, पानी, आवास, पुनर्वास, मानव व्यापार, एचआईवी/एड्स, खाद्य सुरक्षा संसाधनों के रूप में वन एवं कृषि, खानों में रोजगार; परिवारों के आर्थिक मुद्दे जैसे मजदूरी, सुरक्षा, नरेगा जैसे अन्य विकास कार्यक्रम।
- हमने सार्वजनिक क्षेत्र की कोयला खनन कंपनियों को भी आवेदन भेजकर उनके यहां रोजगारों, पुनर्वास, बाल मजदूरी, जंगलों, जल संसाधनों एवं भावी विस्तार योजनाओं के बारे में जानकारी मांगी थी।

आवेदनों की प्रक्रिया में आने वाली मुश्किलें

आरटीआई कानून का मकसद अभिशासन एवं चौकसी में जनता की सहभागिता और सुगमता सुनिश्चित करना है। इस कानून ने सरकार के पास मौजूद सूचनाएं हासिल करने में निश्चय ही मदद दी है जोकि पहले एक असंभव कार्य था। लेकिन इस कानून का इस्तेमाल करने की प्रक्रिया में भी कई ऐसी चुनौतियां और मुश्किल प्रक्रियाएं हैं जो आवेदक का पसीना निकाल देती हैं। हमारे सामने आई कुछ चुनौतियां इस प्रकार थीं :

- केंद्रीय अधिनियम और विभिन्न राज्य स्तरीय अधिनियमों में असंगतियां और स्पष्टता का अभाव।
- बहुत सारी वेबसाइट्स पर लोक सूचना अधिकारियों (पीआईओ) का संपर्क विवरण सही ढंग से नहीं दिया गया था। या तो कोई सूचना नहीं दी गई थी या गलत सूचना दी गई थी जिससे इस आधार पर आवेदन खारिज हुए कि आवेदन सही पीआईओ के नाम नहीं भेजा गया था। बहुत सारी वेबसाइट्स पर पुरानी सूचनाएं उपलब्ध थीं। इन कारकों की वजह से कई बार आवेदन खारिज हुए। इन समस्याओं के कारण आवेदनों में कुछ कमियां छूट गईं थीं जिनके कारण सही व्यक्ति के नाम नए सिरे से आवेदन भेजने पड़े।
- सिंगरेनी कोलियरीज़ कंपनी लिमिटेड (एचसीसीएल) ने सूचना देने के लिए पैसा मांगा। बहुत सारी वेबसाइट्स पर फीस भुगतान के बारे में सही सूचना नहीं दी गई थी या वेबसाइट्स पर इस बात का कोई उल्लेख नहीं था। भुगतान व्यवस्था के मसले पर राज्यों के बीच असंगतियां हैं। कुछ राज्यों में सरकारी विभाग अदालती फीस स्टाम्प ही स्वीकार कर रहे हैं लेकिन कुछ राज्यों में डिमांड ड्राफ्ट जमा कराने पड़ते हैं। इन कारणों से भी हमारे कई आवेदन खारिज हुए और फलस्वरूप दोबारा आवेदन भेजने पड़े। हमने पाया कि ज्यादातर डाकघरों में कोई पावती पत्र उपलब्ध नहीं था और एडहॉक पावती पर्चियां दी जा रही थीं। लिहाजा, हम कुछ पावतियां हासिल नहीं कर पाए।
- ज्यादातर जवाब हमारे लिए फौरन उपयोगी नहीं थे क्योंकि हमारा आवेदन विभाग के किसी दूसरे हिस्से या किसी और स्तर पर भेज दिया गया था। कई बार हमें यह भी कहा गया कि हम किसी और विभाग से सूचना मांगें क्योंकि संबंधित विषय उस विभाग के दायरे में नहीं आता। ऐसा लगता है कि शासन तंत्र इस अधिनियम को भावना के स्तर पर सम्मान देने की बजाय किसी न किसी वजह से आवेदनों को खारिज करने का बहाना ढूंढ़ता है। कई बार राज्य सरकारों ने केंद्र सरकार के पास और केंद्र सरकार ने राज्य सरकारों के पास आवेदन जमा कराने को भी कहा।
- कुछ उत्तरों में वस्तुस्थिति से संबंधित तथ्य भेजने की बजाय नियमों और कानूनों की प्रतियां हमें भेज दी गई थीं। मसलन, जब हमने अदा की जा रही वास्तविक मजदूरी या निश्चित खान स्थलों पर विशेष लाभों के बारे में जानना चाहा तो हमें न्यूनतम मजदूरी, समाज कल्याण लाभों आदि से संबंधित नियम भेज दिए गए जिसका अर्थ यह था कि संबंधित क्षेत्र की सभी कंपनियों इन दिशानिर्देशों का पालन कर रही हैं। इस बात का कोई प्रमाण नहीं दिया गया था कि विभाग ने यह पता लगाने के लिए क्या प्रयास किया है कि इन दिशानिर्देशों का वास्तव में पालन किया जा रहा है या नहीं।
- विभिन्न राज्यों के श्रम विभागों से मिली एक आम प्रतिक्रिया यह थी कि वहां कोई बाल मजदूरी नहीं है। यह इस बात को नजरअंदाज करने का तरीका था कि खानों में बच्चे और महिलाएं भी काम करती हैं। इससे पता चलता है कि बाल मजदूरी की स्थिति को दर्ज करने में कितनी गैर-संजीदगी बरती जा रही है।

टेबल 2.44 में कुछ आवेदनों और उन पर आई प्रतिक्रियाओं का ब्यौरा दिया गया है।

टेबल 2.44 : आरटीआई अधिनियम के तहत जमा कराए गए आवेदनों और उन पर आई प्रतिक्रियाओं का संक्षिप्त ब्यौरा

आरटीआई अधिनियम, 2005 के तहत पूछे गए सवाल	हमें मिली प्रतिक्रियाएं
श्रम विभाग	
1. विभिन्न खानों में काम करने वाले बच्चों और औरतों की कुल संख्या (बच्चों का लैंगिक और खनन क्षेत्र के अनुसार ब्यौरा दिया जाए)। 2. खान मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी, काम के घंटे, स्वास्थ्य सुविधाओं, खान मजदूरों के लिए शिक्षा व क्रेच की सुविधा, आवास, पानी, स्वच्छता सुविधाओं, सामाजिक सुरक्षा, दुर्घटना लाभ आदि का ब्यौरा दिया जाए। 3. खानों में कार्यरत बाल मजदूरों और महिला मजदूरों की स्थिति के बारे में कितनी शिकायतें मिली हैं और उन पर क्या कार्रवाई की गई है।	**महाराष्ट्र** * सहायक श्रम आयुक्त (मध्य)-3 मुंबई, जिला थाणे, जिला रायगढ़ और मुंबई उत्तर-पूर्वी क्षेत्र कार्यालय के प्रशासकीय अधिकार क्षेत्र में स्थित पत्थर की खदानों में कोई महिला और बच्चे मजदूरी नहीं कर रहे हैं। * मजदूरी की दर : न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अनुसार। * विभाग को अभी तक कोई शिकायत नहीं मिली है। **गोवा** * खनन एवं पत्थर खदान क्षेत्रों में कोई महिला और बच्चे काम नहीं कर रहे हैं। * मजदूरी की दर : न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अनुसार। * विभाग को कोई शिकायत नहीं मिली। **उड़ीसा** * मजदूरी : न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अनुसार। * अंगुल जिले में खान मजदूरों को श्रम कानूनों के अनुसार स्वास्थ्य सुविधाएं व लाभ मिल रहे हैं। उन्हें प्रथम उपचार सुविधाएं मिलती हैं। डिस्पेंसरियों में खान मजदूरों का इलाज किया जाता है। खानों में मजदूरों के लिए शिक्षा सुविधाएं, बालवाड़ियां और विश्राम कक्ष बने हुए हैं। वहां खान मजदूरों को पीने के पानी, सफाई और आवास की सुविधाएं दी जा रही हैं। मुआवजे की स्थिति में श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के अनुसार मुआवजा दिया जाता है। * कार्यालय के पास ऐसी कोई सूचना नहीं है कि बारबिल की खानों में बच्चे भी मजदूरी कर रहे हैं। लोहा खनन उद्योग में कार्यरत महिलाओं की संख्या 650 है और मैंगनीज की खानों में 600 महिलाएं मजदूर हैं। अभी तक दुर्घटना की कोई सूचना नहीं आई है और खतरनाक कार्य, काम के घंटों आदि के बारे में कोई शिकायत विभाग को नहीं मिली है। * सुंदरगढ़ जिले की खानों में कोई बाल मजदूर नहीं है। खानों और पत्थर की खदानों में लगभग 5,000 औरतें काम कर रही हैं। सभी खानों में मजदूरों के लिए विश्राम कक्ष और क्रेच मौजूद हैं। 50 प्रतिशत खान मजदूरों को मौके पर ही आवास सुविधा दी गई है। कल्याण विभाग की ओर से मजदूरों को आवास ऋण दिया जाता है।

आंध्र प्रदेश

* इलाके की खानों और पत्थर की खदानों में कोई बच्चा काम करता नहीं पाया गया है। मैंगनीज की खानों में लगभग 550, फॉस्फोरस की खानों में 3, रेत की खदानों में 10 और पत्थर की खदानों में 1200 महिलाएं काम कर रही हैं।
* मजदूरी : न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अनुसार।
* स्वास्थ्य, आवास, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा एवं अन्य सुविधाओं के विषय में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है।
* कार्य सुरक्षा के बारे में कोई शिकायत नहीं मिली है।

झारखंड (धनबाद)

* खानों में कोई बच्चा व महिला मजदूर नहीं हैं।
* मजदूरी : न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अनुसार।
* अभी तक खतरनाक श्रम, बाल मजदूरों व महिला मजदूरों की स्थिति के बारे में कोई शिकायत नहीं मिली है।

श्रम मंत्रालय (केंद्रीय)

* पिछले तीन साल के दौरान किए गए निरीक्षणों में खानों में 79 महिलाएं काम करती पाई गई हैं। खानों में कोई बाल मजदूर काम नहीं कर रहा था।
* खतरनाक श्रम, बाल मजदूरों व महिला मजदूरों की स्थिति के बारे में कोई शिकायत नहीं मिली है।

छत्तीसगढ़ (रायपुर)

* खानों व पत्थर की खदानों में 184 महिला मजदूर हैं लेकिन कोई बाल मजदूर नहीं था।
* मजदूरी : न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अनुसार, और कोई सूचना नहीं।
* खतरनाक श्रम, बाल मजदूरों और महिला मजदूरों की स्थिति के बारे में कोई शिकायत नहीं मिली।

कर्नाटक (बेल्लारी)

* बेल्लारी के उपायुक्त के अनुसार बेल्लारी में 103 बाल मजदूर पाए गए हैं और संदुर तालुक की खुली खानों में 62 बाल मजदूर पाए गए हैं।

मध्य प्रदेश

* अभी तक कोई पावती नहीं मिली।

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग

1. सिलिकोसिस और टीबी के कुल कितने मामले दर्ज किए गए हैं।
2. आईएमआर।
3. एचआईवी/एड्स के कुल कितने मामले दर्ज किए गए हैं।
4. महिलाओं व बच्चों की खरीद-फरोख्त के कुल कितने दर्जशुदा मामले रहे हैं।

तमिलनाडु

* टीबी के कुल दर्जशुदा मामले : कड्डालौर जिले में 2008 में 3701, 2009 में 1904
* तमिलनाडु में एचआईवी/एड्स के 517 और कड्डालौर जिले में 191 मामले दर्ज किए गए हैं।

	* कड्डालौर जिला, विरुद्धाचलम सब-डिवीजन, निवेली सब-डिवीजन और टिट्टागुड्डी सब-डिवीजन में महिलाओं व बच्चों की खरीद-फरोख्त का कोई मामला प्रकाश में नहीं आया है। * कड्डालौर जिले में आईएमआर 22.6 है। **गोवा** * उत्तरी गोवा में टीबी के कुल दर्ज मामले : 4848 * उत्तरी गोवा में एचआईवी/एड्स के दर्ज मामले : 634 (2005-09) **आंध्र प्रदेश** * 2008-09 के दौरान चित्तूर जिले में 6 मानव व्यापार पीड़ितों को मुक्त कराया गया और उन्हें 10,000 रुपये प्रति पीड़ित की दर से आर्थिक सहायता दी गई। कुरनूल, कुडप्पा और विशाखापत्तनम जिलों में ऐसा कोई मामला सामने नहीं आया है। * चित्तूर जिले में एचआईवी/एड्स के कुल दर्जशुदा मामले 18,228, कुडप्पा जिले में 8,904, कुरनूल जिले में 14,646 और विशाखापत्तनम जिले में 23,143, (अक्तूबर 2009 तक)। **स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग** * जवाब में हमसे कहा गया कि हमें यह आवेदन इंडियन काउंसिल फॉर मेडिकल रिसर्च (आईसीएमआर) के पास भेजना चाहिए। **आईसीएमआर** * यहां से जवाब मिला कि हम यह आवेदन राष्ट्रीय व्यावसायिक स्वास्थ्य एवं सुरक्षा संस्थान (एनआईओएच) के पास भेजें। **एनआईओएच** * यहां से जवाब मिला कि ये प्रश्न उनके विभाग से संबंधित नहीं हैं।
वन विभाग	
1. खनन कार्यों के लिए अधिग्रहित किए गए आरक्षित वनों का कुल क्षेत्रफल बताएं। 2. अगर कोई जमीन अधिग्रहित की गई है तो उसका पट्टा अवधि, क्षतिपूरक वृक्षारोपण और स्थिति के बारे में बताएं।	**गोवा** * खनन जैसी गैर-वानिकी गतिविधि के लिए कोई वन भूमि अधिग्रहित नहीं की गई है। * किसी वन्य जीव अभयारण्य के क्षेत्रफल में खनन गतिविधियां नहीं चल रही हैं। * उत्तरी गोवा डिवीजन में खनन कार्यों के लिए 248.1598 हैक्टेयर क्षेत्रफल जारी किया गया है। **छत्तीसगढ़** * खनन कार्यों के लिए जगदलपुर आरक्षित वन का अधिग्रहण किया गया : 2696.220 हैक्टेयर। * खनन कार्यों के लिए बीजापुर आरक्षित वन का अधिग्रहण किया गयाः 1.9545 हैक्टेयर। **आंध्र प्रदेश** * अभी तक कोई पावती नहीं मिली।

	तमिलनाडु * अभी तक कोई पावती नहीं मिली। **उडीसा** * सूचना देने के लिए आवेदक से व्यक्तिगत पहचान सिद्ध करने को कहा गया। पहचान का साक्ष्य भेजने पर भी अभी तक कोई सूचना नहीं मिली है।
कृषि एवं सिंचाई विभाग 1. जलस्तर में आए परिवर्तनों से खेती पर क्या प्रभाव पड़े हैं और इसके क्या कारण हैं। 2. जल स्तर में बदलाव और खनन गतिविधियों के कारण कितनी जमीन खेती के लिए अयोग्य हो चुकी है। 3. फसलों की पैदावार में गिरावट या फसल चक्र व नई फसली बीमारियों में संस्तुत बदलावों से संबंधित सूचना। 4. क्या कार्रवाई की गई।	**कर्नाटक** * कृषि विभाग ने सुझाव दिया कि यह आवेदन नगरपालिका एवं जलापूर्ति विभाग को भेजा जाए। * नगरपालिका एवं जलापूर्ति विभाग ने यह आवेदन सिंचाई विभाग के पास भेजने का निर्देश दिया। * सिंचाई विभाग ने जवाब दिया कि आवेदन में उल्लिखित प्रश्न उनसे संबंधित नहीं हैं। **तमिलनाडु** * कृषि विभाग ने सुझाव दिया कि यह आवेदन जल विभाग को भेज दिया जाए। * जल विभाग ने अपने उत्तर में कहा : भूमिगत जल स्तर में सुधार के लिए भूमिगत जल शाखा ने दो परियोजनाएं शुरू की हैं : - कुएं खोद कर भूमिगत जल स्तर में कृत्रिम सुधार, और - कृत्रिम जल स्तर सुधार योजना के लिए मास्टर प्लान। कड्डालौर जिले में अधिकतम, न्यूनतम एवं औसत जल स्तर (जनवरी-दिसंबर 2007) : न्यूनतम 0.26, अधिकतम 102 और औसत 14.72
पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास विभाग संबंधित जिलों में 2007-08 और 2008-09 में नरेगा गतिविधियां : 1. जॉब कार्ड धारकों को कितने दिन रोजगार मुहैया कराया गया। 2. जॉब कार्डों की संख्या। 3. किस तरह के काम किए गए।	**महाराष्ट्र (पुणे)** * कोई पावती नहीं मिली **कर्नाटक** * कोई पावती नहीं मिली **तमिलनाडु** * कोई पावती नहीं मिली
कोयला खनन कंपनियां 1. कंपनी द्वारा अभी तक अधिग्रहित कुल जमीन। 2. नई परियोजनाओं के अंतर्गत भूमि अधिग्रहण के लिए प्रस्तावित कुल क्षेत्रफल। 3. विस्थापित या प्रभावित परिवारों को दिया गया पुनर्वास। 4. मुआवजा।	**एससीसीएल** * हमारे प्रारंभिक पत्र के जवाब में हमसे 1,364 रुपये की फीस मांगी गई ताकि अपेक्षित सूचना इकट्ठा करने के लिए अतिरिक्त मानव संसाधनों की व्यवस्था की जा सके। * बाद में उन्होंने निम्नलिखित सूचना भेजी :

5. कितने स्कूल खोले गए, इन स्कूलों में विस्थापित परिवारों के कितने बच्चे जा रहे हैं। इन स्कूलों में कंपनी की ओर से जलापूर्ति और स्वच्छता जैसी कौन सी सुविधाएं दी गई हैं, शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात, मिड-डे मील, अस्पताल कितने खोले गए, कितने विस्थापित परिवारों के पास हॉस्पीटल कार्ड/उपयोग का अधिकार है, डाक्टरों की संख्या, उपलब्ध सुविधाएं आदि।
6. कंपनी अस्पताल में कितनी व्यावसायिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं की पहचान व उपचार किया गया।
7. पिछले पांच साल के दौरान सीएसआर गतिविधियां और उन पर व्यय।
8. कितने विस्थापित/प्रभावित परिवारों को नौकरी/रोजगार दिया गया, रोजगार का ब्यौरा, स्तर, किस्म बताएं।

- कुल विस्थापित परिवार 3,925 और उन्हें दिया गया कुल मुआवजा 753.30 लाख रुपये। 10 हाईस्कूल और एक अपर प्राइमरी स्कूल खोला गया। इन स्कूलों में परिशोधित पानी, स्वच्छता, मिड-डे मील सुविधाएं उपलब्ध हैं। यहां 3,581 विस्थापित बच्चे पढ़ रहे हैं।
- जिन परिवारों की जमीन छिनी उनकी संख्या : 1,138; उन्हें बदली फिलर के रूप में रोजगार दिया गया है।

निवेली लिग्नाइट कॉरपोरेशन लिमिटेड

* नई परियोजनाओं के लिए 20,130 हैक्टेयर क्षेत्रफल प्रस्तावित है।
* विस्थापन के बारे में कोई आंकड़े नहीं मिले।
* अस्पताल का कोई प्रस्ताव नहीं है लेकिन समुदाय के लागों का उनके स्वास्थ्य केंद्रों में ईलाज चल रहा है।
* समुदाय के 1,827 लोगों को अकुशल श्रमिकों के रूप में पक्की नौकरी मिली।

सीसीएल

* 2001 परियोजना प्रभावित परिवारों को विभिन्न परियोजनाओ में पुनर्वासित/स्थानांतरित किया गया।
* कंपनी द्वारा दिया गया मुआवजा : 6859.43 लाख रुपये।

बीसीसीएल

* कुल विस्थापित परिवार : 4,870
* 4,684 विस्थापित परिवारों को मैरिट और शैक्षिक योग्यता के अनुसार रोजगार दिए गए।
* कंपनी द्वारा 5148.42 हैक्टेयर जमीन का अधिग्रहण किया गया।
* कंपनी द्वारा 15 अस्पताल स्थापित किए गए।

वेस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड

* कंपनी के कारण 30 जून 2009 तक 16,700 परिवार विस्थापित और प्रभावित हुए।
* योग्यता के अनुसार 16,700 परिवारों को रोजगार और 5,500 रुपये माहवार समग्र वजीफा दिया गया।
* जून 2009 तक कंपनी द्वारा 20,815.17 हैक्टेयर जमीन का अधिग्रहण किया गया।
* 42 नई परियोजनाओं के लिए 23,289.43 हैक्टेयर क्षेत्रफल का अधिग्रहण प्रस्तावित है।
* अभी तक 6521 परिवारों को पुनर्वास दिया जा चुका है।
* 107.24 करोड़ रुपये कंपनी द्वारा मुआवजे पर खर्च किए गए हैं।

एमसीएल

* 360 विस्थापित परिवारों को सामान्य मजदूरों के रूप में रोजगार मिला है।

* कंपनी द्वारा 3067.41 एकड़ जमीन का अधिग्रहण किया गया है।
* कंपनी ने जमीन के मुआवजे के लिए 14,07,75,400 रुपये और मुआवजे व पुनर्वास के लिए 12,37,0000 रुपये खर्च किए।

ईस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड (ईसीएल)

* ईसीएल ने 31 मार्च 2009 में अपनी स्थापना से 13,749 हेक्टेयर जमीन का अधिग्रहण किया है।
* ईसीएल ने नई परियोजना के लिए 209.33 हैक्टेयर जमीन के अधिग्रहण के लिए और पुरानी परियोजना के विस्तार हेतु 2267.67 हैक्टेयर जमीन के अधिग्रहण का आवेदन दिया है।
* कोयले और रेत की रॉयल्टी किसी स्थानीय पंचायत को नहीं बल्कि राज्य सरकार को अदा की जाती है।

जल प्रदूषण

1. कंपनी की गतिविधियों के कारण प्रदूषित जल का विवरण, पानी की सफाई के लिए उठाए गए कदम, कोई स्वास्थ्य समस्या, स्थानीय लोगों से मिली शिकायतें।
2. खनन संबंधी कार्यों के लिए मोड़े गए/प्रयुक्त जल स्रोत।
3. आपकी कंपनी द्वारा कितने गांवों में पीने का पानी भेजा गया है, विवरण दें।

निवेली लिग्नाइट कॉरपोरेशन लिमिटेड

* लिग्नाइट खनन के लिए भूमिगत पानी और बहते पानी, दोनों का इस्तेमाल किया जाता है। खनन कार्यों के कारण भूमिगत पानी में प्रदूषण संभव नहीं है।
* खान स्थल के निकट जल संसाधन नहीं हैं। पानी के नमूने हर 6 महीने में एक बार जांचे जाते हैं।
* जल प्रदूषण के कारण स्वास्थ्य समस्याओं के बारे में अभी तक कोई शिकायत नहीं मिली है।
* कंपनी जिला राजस्व प्राधिकरण के दिशानिर्देशों के अनुसार गांवों की जल संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता दे रही है।
* खनन कार्यों के लिए चुने गए इलाके में भूमिगत जल स्तर पर नजर रखना आवश्यक नहीं है क्योंकि खान विस्तार में लगातार उतार-चढ़ाव आते रहते हैं।

एचसीसीएल

* पानी में कोई प्रदूषण नहीं पाया गया है। न ही इलाके में जल प्रदूषण के बारे में कोई शिकायत मिली है।
* खानों से निकलने वाले अवशिष्ट पानी की गुणवत्ता का समय-समय पर आकलन, वर्कशॉप में उपचारित उत्सर्जक पदार्थों की जांच, आवासीय बस्ती से निकलने वाले पानी की गुणवत्ता और जमीन की सतह से मिलने वाले पानी की जांच की जाती है।
* आसपास के गांवों में बोरवैल और कुंओं तथा आसपास की जल राशियों के पानी की गुणवत्ता पर भी कंपनी के सभी खनन क्षेत्रों में हर तीन महीने में जांच की जाती है।
* भूमिगत जल स्तर पर लगातार नजर रखी जाती है। खराब मौसम और बरसात के कारण आने वाले उतार-चढ़ावों के अलावा अभी कोई उल्लेखनीय बदलाव देखने में नहीं आया है।

निष्कर्ष

आरटीआई कानून का मकसद यह है कि प्रभावित नागरिकों को या जनहित में काम कर रहे व्यक्तियों/संस्थानों को सरकारी कार्यालयों के पास उपलब्ध सूचनाएं आसानी से मिलें। लेकिन इस साधन का इस्तेमाल करना भी हताशा और थकन भरी यात्रा है क्योंकि अभी भी सरकारी महकमों में सूचनाएं उपलब्ध कराने की इच्छा नहीं है। राज्य नियमावलियों में बहुत सारे ऐसे नियम, प्रक्रियाएं और रुकावटें पैदा कर दी गई हैं जो केंद्रीय कानून से भिन्न हैं। विभिन्न विभागों की वेबसाइट्स पर भी सही सूचनाएं नहीं हैं जिससे आवेदन प्रक्रिया के बारे में और भ्रम पैदा होता है। कई बार बेहद सतही कारणों से आवेदन खारिज कर दिए जाते है जिसका परिणाम ये होता है कि आवेदक हताश होते हैं और वे सरकारी निकायों में इस कानून के इस्तेमाल से कतराने लगते हैं। जब तक वेबसाइट और सरकारी दफ्तरों में उपलब्ध सूचना सटीक, नवीनतम और सहज पहुंच के भीतर नहीं होगी तब तक आरटीआई कानून अपना लक्ष्य हासिल नहीं कर पाएगा। लिहाजा, स्वयं आरटीआई कानून के बारे में भी समुचित सूचनाएं फैलाना जरूरी है। विभिन्न विभागों और राज्यों के बीच नियमों और प्रक्रियाओं के स्तर पर जो असंगतियां हैं उनको दूर किया जाना चाहिए ताकि इस कानून के बारे में फैले भ्रम का खत्म किया जा सके। अभी तक जो सूचनाएं मिली हैं, खासतौर से बाल मजदूरी के विषय में, उनसे पता चलता है कि सरकार के पास उपलब्ध सूचना और शासन तंत्र में रिपोर्टिंग की प्रक्रिया की समीक्षा आवश्यक है जिससे प्राथमिक आंकड़ों और सरकारी विभागों द्वारा भेजे गए आंकड़ों के बीच भारी फर्क को समझा जा सके। पानी, खेती, फसल चक्र आदि के बारे में हमने जो जानकारियां मांगी थीं उनमें से कुछ सूचनाएं संबंधित विभागों के पास उपलब्ध नहीं है या वे ऐसे रूप में उपलब्ध नहीं हैं कि उनके आधार पर कोई निष्कर्ष और समझदारी हासिल की जा सके। क्योंकि सरकारी विभागों के संसाधन और सेवाएं खान कंपनियों की गतिविधियों से प्रभावित हो रही हैं इसलिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि उनके पास पानी, प्रदूषण, ऊर्जा एवं स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के रुझानों की समझ और सटीक आंकड़े उपलब्ध हों। इन आंकड़ों के आधार पर कंपनियां अपनी गतिविधियों के कारण पैदा हो रही किसी समस्या का जिम्मा लेने को तैयार नहीं होतीं।

महाराष्ट्र

टेबल में दिखाया गया है कि 1999-2001 में यहां 1,777 पत्थर खदानें थीं और उनसे 1954.09 लाख रुपये का राजस्व इकट्ठा किया गया था (16 जिलों से)। 2008-09 में यह राजस्व बढ़कर 2990.32 लाख रुपये हो गया था (केवल 3 जिलों से)। यह वृद्धि इस बात का संकेत है कि पत्थर की खदानों की संख्या बढ़ रही है और इससे पता चलता है कि असंगठित क्षेत्र मजदूरों की संख्या में भी इजाफा हो रहा है।

महाराष्ट्र में पत्थर की खदानों से सरकार को मिला राजस्व

क्षेत्र	जिला	खदानों की संख्या	1999-2001 राजस्व राशि, लाख रुपये	2008-09 राजस्व राशि, लाख रुपये
कोंकण	मुंबई उपनगर			
	थाणे	34		
	रायगड़	13	2.25	
	रत्नागिरि	8	126	
	सिंधुदुर्ग	23	115.07	
पुणे	पुण	182		27.88877
	सतारा	42		1,535.44
	शोलापुर	2		
	सांगली	31	155	1,427
	कोल्हापुर	15		
नासिक	नासिक	27	190.88	
	धुले	15		
	नंदुरबुर	15		
	जलगांव	2	511.94	
	अहमदनगर		388.48	
औरंगाबाद	औरंगाबाद	116		
	जलना	21		
	परभनी	9	80.3	
	हिंगोली		25.23	
	बीड	17	27	
उत्तरी महाराष्ट्र	नांदेड	17		
	उस्मानाबाद	5	0.59	
	लातूर	34	250.38	
	नागपुर	350		
	वर्धा	80	51.26	
	भंडारा	104	106.98	
	गोंडिया	69	63,40,738	
	चंद्रपुर	198	111.5	
	गढ़चिरौली	86		
उत्तरी महाराष्ट्र	अमरावती	62		
	बुलढाना	41		
	अंकोला	22		
	वासिम	28	48.85	
	यवतमाल	104		
	कुल	1,772	1,945.09	2,990.329

कर्नाटका

नीचे दी गई टेबलों में बेल्लारी में कुल बच्चों की संख्या, स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या, ड्रॉप-आउट्स और विभिन्न कार्यक्रमों के तहत दोबारा स्कूलों से जोड़े गए बच्चों की संख्या का ब्यौरा दिया गया है। ये आंकड़े बेल्लारी जिले में सक्रिय संगठन सखी द्वारा आरटीआई आवेदनों के जरिए इकट्ठा किए गए हैं।

बेल्लारी जिले में बच्चों की ड्रॉप-आउट दर, 2006-08

तालुक	6-14 वर्ष के कुल बच्चे	6-14 वर्ष के स्कूली बच्चे	बीच में पढ़ाई छोड़ चुके बच्चे	स्कूल न जाने वाले 7 साल से अधिक उम्र के बच्चे	कुल	प्रतिशत
पूर्वी बेल्लारी	54,794	50,816	1,012	399	1,411	2.58
पश्चिमी बेल्लारी	51,299	47,553	865	279	1,144	2.23
हदगाली	29,518	26,322	467	25	492	1.67
एच.बी. हल्ली	28,987	25,209	1,242	57	1,299	4.48
होसपेट	60,997	55,139	1,325	181	1,506	2.47
कुडलिगी	50,985	45,857	621	101	722	1.42
संदुर	38,675	33,906	1,742	129	1,871	4.48
सिरीगुप्पा	39,019	34,212	521	267	788	2.02
कुल	354,247	319,014	7,795	1,438	9,233	2.61

स्रोत : स्थानीय संगठन सखी, होसपेट द्वारा आरटीआई आवेदन भेजने पर सर्व शिक्षा अभियान की ओर से मिली सूचना।

बेल्लारी जिले में बच्चों की शिक्षा का विवरण, वर्ष 2007

तालुक	बच्चों की संख्या	6-14 वर्ष आयु वर्ग		7-14 वर्ष आयु वग			
		स्कूल जाने वाले बच्चे	स्कूल में दाखिल बच्चों की संख्या	7 साल से अधिक उम्र के पढ़ाई छोड़ चुके बच्चे क	7 साल से अधिक उम्र के बच्चे जो स्कूल में दाखिल नहीं हैं ख	कुल क + ख	प्रतिशत
पूर्वी बेल्लारी	55,079	50,057	3,703	1,083	236	1319	2.39
पश्चिमी बेल्लारी	49,923	45,655	3,589	424	255	679	1.36
हदगाली	29,512	26,387	2,815	290	20	310	1.05
एच.बी. हल्ली	28,899	25,258	2,561	1042	38	1080	3.74
होसपेट	59,789	55,419	4,001	276	93	369	0.62
कुदलिगी	50,126	45,246	4,491	371	18	389	0.78
संदुर	36,094	32,275	3,337	392	90	482	1.34
सिरीगुप्पा	39,678	34,596	4512	377	193	570	1.44
कुल	**349,100**	**314,893**	**29,009**	**4,255**	**943**	**5,198**	**1.49**

स्रोत : स्थानीय संगठन सखी, होसपेट द्वारा आरटीआई आवेदन भेजने पर सर्व शिक्षा अभियान की ओर से मिली सूचना।

बेल्लारी जिले में बच्चों की शिक्षा का विवरण, वर्ष 2007

तालुक	6-14 वर्ष के कुल बच्चे 6–14 years)	6-14 वर्ष के स्कूली बच्चे	स्कूल न जाने वाले 7 साल से कम उम्र के बच्चे	स्कूल न जाने वाले बच्चे (7-14 साल की उम्र के बच्चे)			
				बीच में पढ़ाई छोड़ चुके बच्चे क	स्कूल न जाने वाले 7 साल से अधिक उम्र के बच्चे ख	कुल क + ख	प्रतिशत
पूर्वी बेल्लारी	57,020	52,651	3601	458	286	726	1.2732375
पश्चिमी बेल्लारी	51,949	47,662	3,624	441	222	663	1.7262517
हदगाली	30,020	27,171	2,606	231	12	243	.8094604
एच.बी. हल्ली	29,670	26,509	2,413	679	56	735	2.4772497
होसपेट	64,638	60,360	3,781	376	112	488	0.7549739
कुदलिगी	51,689	47,370	3,929	303	81	384	0.7429047
संदुर	39,935	36,633	2,829	376	96	472	1.1819206
सिरीगुप्पा	43,051	38,011	4,170	524	346	870	2.020859
कुल	**367,972**	**336,367**	**26,953**	**3,388**	**1,193**	**4,581**	**1.2449**

स्रोत : स्थानीय संगठन सखी, होसपेट द्वारा आरटीआई आवेदन भेजने पर सर्व शिक्षा अभियान की ओर से मिली सूचना।

बेल्लारी जिले में विभिन्न कार्यक्रमों के तहत वापस स्कूलों में लाए गए ड्रॉप-आउट बच्चों का विवरण, वर्ष 2006

तालुक	ड्रॉप-आउट बच्चे (7-14 वर्ष)	चिन्नारा अंगला के जरिए प्राथमिक स्कूलों में दाखिल बच्चे	स्कूलों में पढ़ रहे ड्रॉप-आउट बच्चे	घर पर पढ़ रहे बच्चे	अभियान के जरिए स्कूल में दाखिल बच्चे	12 महीने से बोर्डिंग स्कूलों में बच्चे	6 महीने से बोर्डिंग स्कूल में बच्चे	वैकल्पिक स्कूलों में	स्कूलों में दाखिल कराए गए कुल बच्चे	वर्तमान में स्कूल न जाने वाले बच्चे	अन्य बच्चों का विवरण (प्रवासी)
पूर्वी बेल्लारी	1,411	639	103	134	379	0	0	0	1255	156	0
पश्चिमी बेल्लारी	1,144	557	128	132	367	0	68	0	1252	0	108
हदगाली	492	447	26	60	0	0	0	26	559	0	67
एच.बी. हल्ली	1,299	564	16	27	110	22	44	16	799	500	0
होसपेट	1,506	242	355	51	295	0	0	0	943	563	0
कुदलिगी	722	571	0	47	121	40	0	0	779	0	57
संदुर	1,871	241	311	46	79	0	0	14	691	1,180	0
सिरीगुप्पा	788	660	13	15	40	0	0	0	728	60	0
कुल	**9,233**	**3,921**	**952**	**512**	**1,391**	**62**	**112**	**56**	**7,006**	**2,459**	**232**

नोट : पश्चिमी बेल्लारी, कुदलिगी और हदलिगी में बेल्लारी जिले से बाहर के अतिरिक्त बच्चे भी पाए गए। ये बच्चे संभवतः बेल्लारी जिले के नहीं हैं बल्कि दूसरे जिलों से आए हैं और खानों व अन्य कार्यस्थलों पर कार्य कर रहे हैं।

स्रोत : स्थानीय संगठन सखी, होसपेट द्वारा आरटीआई आवेदन भेजने पर सर्व शिक्षा अभियान की ओर से मिली सूचना।

बेल्लारी जिले में ड्रॉप-आउट बच्चों का विवरण (फरवरी 2008)

तालुक	फरवरी 2007-08 के बीच ड्रॉप-आउट (7-14 वर्ष)	बेल्लारी के ड्रॉप-आउट बच्चे	कुल ड्रॉप-आउट बच्चे	विभिन्न कार्यक्रमों में ड्रॉप-आउट बच्चों के दाखिले						विभिन्न कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के बाद ड्रॉप-आउट बच्चों की संख्या	गिनती से बाहर ड्रॉप-आउट बच्चे जिनको वापस स्कूलों में लाया गया है
				चिन्नारा अंगाला	आरबीसी	एनआरबीस	अभियान के जरिये दाखिल	टेंट स्कूल	कुल बच्चे		
पूर्वी बेल्लारी	1,319	14	1,333	645	90	115	526	97	1473	0	140
पश्चिमी बेल्लारी	679	18	697	278	60	30	361	109	838	0	141
हदगिली	310	155	465	245	0	26	0	0	271	194	
एच.बी.हल्ली	1,080	0	1,080	594	0	0	40	0	634	446	
होसपेट	369	245	614	201	46	0	138	143	528	86	
कुदलिगी	389	117	506	320	103	0	0	0	423	83	
संदुर	482	0	482	157	0	0	79	346	582	0	100
सिरीगुप्पा	570	0	570	238	100	0	47	0	385	185	
कुल	**5,198**	**549**	**5,747**	**2,678**	**399**	**171**	**1191**	**695**	**5134**	**994**	**381**

स्रोत : स्थानीय संगठन सखी, होसपेट द्वारा आरटीआई आवेदन भेजने पर सर्व शिक्षा अभियान की ओर से मिली सूचना।

शब्दावली

आंगनवाड़ी : यह भारत सरकार का एक कार्यक्रम है जिसमें छोटे बच्चों और मांओं की देखभाल की जाती है। यह कार्यक्रम 0-6 वर्ष के बच्चों के लिए चलाया जा रहा है। भारत सरकार ने आंगनवाड़ियों को बच्चों की भूखमरी व कुपोषण से निपटने के लिए आईसीडीएस कार्यक्रम के तहत शुरू किया था।

कारीगरी खनन : कारीगर या लघु खनिक किसी खान कंपनी का अधिकृत कामगार नहीं होता। वह अपने संसाधनों के सहारे स्वतंत्र रूप से खनन कार्य करता है। इस तरह के कामगार प्रायः मौसमी आधार पर काम करते हैं।

आकलन सर्वेक्षण मूल्यांकन रिपोर्ट (एएसईआर) : प्रथम नामक एनजीओ द्वारा शुरू किया गया एएसईआर सर्वेक्षण भारत में किसी गैर-सरकारी निकाय द्वारा किया जाने वाला सबसे बड़ा पारिवारिक सर्वेक्षण है। इस सर्वेक्षण में हर साल 6-14 साल की उम्र के बच्चों के दाखिलों और उनके पढ़ने व अंकगणित की क्षमता को मापा जाता है।

गरीबी की रेखा से नीचे (बीपीएल) : भारत सरकार ने यह गरीबी का पैमाना तय किया है जिसके आधार पर ऐसे व्यक्तियों और परिवारों की शिनाख्त की जाती है जिनको सरकारी सहायता की जरूरत है। यह रेखा विभिन्न मानकों के आधार पर तय होती है और ये मानक अलग-अलग राज्यों के बीच तथा राज्य के अलग-अलग इलाकों में भिन्न रहे हैं।

सेंट : दक्षिणी भारत में इस्तेमाल होने वाली जमीन की माप इकाई। एक सेंट - 1/100 एकड़ (40.468 वर्ग मीटर)।

सेंट्रल एम्पावर्ड कमेटी (सीईसी) : 17 सितंबर 2002 को पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा गठित सीईसी की जिम्मेदारी वन एवं वन्य जीव तथा पर्यावरण संबंधी अन्य मुद्दों पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए आदेशों का अनुपालन सुनिश्चित करना है।

दलित : यह शब्द परंपरागत रूप से निचली जातियों में माने जाने वाले समूहों द्वारा अपने लिए खुद चुना गया नाम है। दलितों में पूरे दक्षिण एशिया की बहुत सारी जातियां आती हैं और ये विभिन्न भाषा क्षेत्रों में फैली हुई हैं। दलित शब्द मराठी भाषा से आया है जिसका अर्थ होता है 'पिसा हुआ', 'दबा हुआ', 'कुचला हुआ' या 'खंड-खंड'।

जिला शिक्षा सूचना व्यवस्था (डीआईएसई) : इसे देश के सभी जिलों में सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम की निगरानी के लिए विकसित किया गया था।

पर्यावरण प्रभाव आकलन (ईआईए) : भारत में 1994 में पर्यावरण ीय स्वीकृति के उद्देश्य से यह व्यवस्था विकसित की गई थी जिसमें पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 के अंतर्गत 'पर्यावरण प्रभाव आकलन अधिसूचना 1994' के नाम से एक अलग अधिसूचना जारी की गई थी। इस कानून में कहा गया था कि मुख्य परियोजनाओं के दीर्घकालिक और अल्पकालिक प्रभावों का आकलन किया जाना चाहिए और पर्यावरण पर पड़ने वाले नकारात्मक और सकारात्मक लाभों का मूल्यांकन होना चाहिए।

पांचवीं अनुसूची : पांचवीं अनुसूची (संविधान के अनुच्छेद 240(1) के अंतर्गत) मूल रूप से आदिवासियों को अपनी जमीन पर अधिकार की गारंटी देती है। पांचवीं अनुसूची निश्चित क्षेत्रों (अनुसूचित क्षेत्र) और इन इलाकों में रहने वाले आदिवासियों के प्रशासन व नियंत्रण से संबंधित है।

मुक्त समय-पूर्व एवं सचेत सहमति (एफपीआईसी) : यह अधिकार आदिवासियों/जनजातीय समुदायों के आत्मनिर्णय के अधिकार पर आधारित है। यह अधिकार अपनी जमीन और भू-भाग पर परंपरागत एवं ऐतिहासिक अधिकार से गहरे तौर पर जुड़ा हुआ है। मोटे तौर पर एफपीआईसी के अधिकार का मतलब यह है कि स्थानीय लोगों को अपनी परंपरागत निर्णय व्यवस्था के अनुसार एक सहमति पर पहुंचने और फैसले लेने का अधिकार है।

ग्रीनफील्ड क्षेत्र : यह शब्द ऐसी जमीन के लिए इस्तेमाल किया जाता है जो किसी शहर या ग्रामीण इलाके में अब तक अविकसित थी लेकिन अब उसका या तो खेती के लिए या सौंदर्यीकरण के लिए प्रयोग किया जा रहा है या उसे प्राकृतिक रूप में छोड़ दिया गया है।

सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) : किसी देश के व्यापक आर्थिक उत्पादन की मूलभूत माप। यह किसी देश की सीमाओं के भीतर एक साल के दौरान तैयार होने वाली वस्तुओं और सेवाओं के कुल मूल्य का योग होता है।

हैक्टेयर : क्षेत्रफल की एक माप जिसका जमीन को मापने के लिए इस्तेमाल किया जाता है (1 हैक्टेयर = 10000 वर्ग मीटर)।

मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) : स्वास्थ्य, साक्षरता और जीवन स्तर, इन तीन आयामों को मिलाकर 'मानव विकास' के स्तर पर देशों को क्रम देने की एक समग्र व्यवस्था।

शिशु मृत्यु दर (आईएमआर) : प्रति 1000 जीवित प्रसवों में से एक साल के भीतर दम तोड़ देने वाले नवजात शिशुओं की संख्या।

एकीकृत बाल विकास योजना (आईसीडीएस) : यह कार्यक्रम 0-6 वर्ष के बच्चों के स्वास्थ्य व पोषण की दशा में सुधार लाने के लिए शुरू किया गया था।

जनसंख्या स्थिरता कोष : पारिवारिक स्वास्थ्य एवं कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा स्थापित इस निधि का मकसद टिकाऊ आर्थिक वृद्धि, सामाजिक विकास और पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकताओं के अनुरूप 2045 तक जनसंख्या को स्थिर करने वाली गतिविधियों को लागू करना है।

लोकायुक्त : यह अधिकारी राजनेताओं और बड़े सरकारी अधिकारियों द्वारा किए जा रहे भ्रष्टाचार को उजागर करने में लोगों को मदद देता है।

महुआ : यह एक भारतीय उष्ण कटिबंधीय पेड़ है जिसका आदिवासियों के जीवन में भारी महत्व होता है। इसका भोजन, दवाइयां बनाने और शराब बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

मुख्य श्रमिक : ऐसे मजदूर जो संदर्भ अवधि (जैसे 6 माह या अधिक) में ज्यादातर समय काम कर रहे थे।

मंडल : मंडल, तालुक या तहसील जिले और राज्यों के नीचे की एक प्रशासकीय इकाई होती है।

सीमांत श्रमिक : ऐसे मजदूर जो संदर्भ अवधि (जैसे 6 माह से कम) में अधिकांश समय काम नहीं कर रहे थे।

मिड-डे मील : इस कार्यक्रम में सभी कार्य दिवसों पर स्कूली बच्चों को निःशुल्क दोपहर का भोजन दिया जाता है। इस कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं : कक्षा में बच्चे भूखे न रहें, स्कूल में दाखिले या उपस्थिति बढ़े, सभी जातियों के बच्चों का बेहतर समाजीकरण हो, कुपोषण दूर हो और महिलाओं के लिए रोजगार के जरिए सामाजिक सशक्तिकरण किया जाए।

सहस्राब्दी विकास लक्ष्य (एमडीजी) : ये आठ अंतर्राष्ट्रीय विकास लक्ष्य हैं जिन्हें सभी 192 संयुक्त राष्ट्र सदस्य देशों और कम से कम 23 अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने सन् 2015 तक हासिल करने का संकल्प लिया है। भीषण गरीबी पर अंकुश लगाना, बाल मृत्यु दर में कमी लाना, एड्स जैसी महामारियों का मुकाबला करना और विकास के लिए एक वैश्विक साझेदारी विकसित करना इन लक्ष्यों में शामिल है।

लघु रत्न : भारत सरकार सार्वजनिक क्षेत्र को ज्यादा कुशल और प्रति. स्पर्धी बनाने के लिए उन्हें अधिक स्वायत्तता व शक्तियां देती है ताकि वे लगातार मुनाफा अर्जित कर सकें। अगर किसी सार्वजनिक क्षेत्र इकाई को लघु रत्न की मान्यता दी जाती है तो इससे उसे पूंजी व्यय, संयुक्त उद्यम कंपनियों की स्थापना, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण समझौते और मानव संसाधन विकास संबंधी योजनाएं लागू करने में और ज्यादा आजादी मिल जाती है।

राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संस्थान (नाको) : एक राष्ट्रीय संस्था जो स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत आती है। यह संस्थान भारत में एचआईवी/एड्स की रोकथाम, मरीजों की देखभाल व सहायता के लिए प्रयास करता है।

राष्ट्रीय बाल श्रमिक परियोजना (एनसीएलपी) : केंद्रीय श्रम एवं रोजगार मंत्रालय की योजना जिसमें बाल मजदूरी से निकाले गए बच्चों के लिए विशेष स्कूलों की व्यवस्था की गई है।

राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएचएफएस) : पूरे भारत में परिवारों के एक प्रतिनिधिक नमूने के आधार पर किया जाने वाला विशाल, बहुचक्रीय सर्वेक्षण। इस सर्वेक्षण से प्रांतीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर प्रजनन दर, शिशु एवं बाल मृत्यु दर, परिवार नियोजन व्यवहार, प्रसूता एवं बाल स्वास्थ्य, प्रजनन स्वास्थ्य, पोषण, खून की कमी, स्वास्थ्य व परिवार नियोजन सेवाओं के सदुपयोग व गुणवत्ता से संबंधित सूचनाएं प्रदान की जाती हैं।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005 (नरेगा) : इसे महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005 का नया नाम दिया गया है। इस कार्यक्रम में ग्रामीण इलाकों के ऐसे परिवारों को एक वित्त वर्ष के भीतर 100 दिन के मजदूरी आधारित रोजगार का आश्वासन दिया जाता है जिनके सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करने को तैयार हैं।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संस्थान (एनएसएसओ) : सांख्यिकी एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय, भारत सरकार का संस्थान जो कई चक्रों में राष्ट्रव्यापी, विशाल और सतत् सर्वेक्षण कार्यक्रम आयोजित करता है।

अन्य पिछड़ी जातियां (ओबीसी) : भारतीय संविधान में अन्य पिछड़ी जातियों को 'सामाजिक एवं शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग' कहा गया है। सरकार का दायित्व है कि वह इन जातियों के सामाजिक व शैक्षिक विकास पर ध्यान दे।

पंचायती राज (अनुसूचित क्षेत्र विस्तार) अधिनियम, 1996 : भारतीय संविधान के 73वें संशोधन के जरिए पारित प्रगतिशील कानून जिसने अनुसूचित क्षेत्रों में वास्तविक आदिवासी स्वशासन हेतु एक पृथक व प्रगतिशील वैधानिक एवं प्रशासकीय व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त किया है।

शिक्षाकर्मी/पैराटीचर : स्कूलों व वैकल्पिक शिक्षा केंद्रों में विभिन्न प्रकार के शिक्षण संबंधी पदों के लिए यह शब्द इस्तेमाल होता है। मोटे तौर पर ऐसी किसी भी नियुक्ति को शिक्षाकर्मी कहा जाता है जो उस राज्य में अभी तक की नियुक्तियों से भिन्न है। मोटे तौर पर इसका आशय समुदाय द्वारा भर्ती किए गए ऐसे अध्यापकों से होता है जो सामान्य अध्यापकीय वेतनमान से कम वेतन पर होते हैं, वे औपचारिक व वैकल्पिक स्कूलों में न्यूनतम संभव समय के भीतर सीमित आर्थिक संसाधनों के सहारे मूलभूत शिक्षा की जरूरत को पूरा करने के लिए रखे जाते हैं।

पट्टा : जमीन या घरों के मालिकाने का अनुबंध।

प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र (पीएचसी) : यह भारत में ग्रामीण स्वास्थ्य

व्यवस्था का आधार है। इनका मकसद ग्रामीण आबादी की स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करना है। प्रत्येक पीएचसी एक लाख की आबादी के लिए उत्तरदायी होता है और उसका दायरा 100 गांवों में फैला होता है। प्रत्येक पीएचसी में एक मेडिकल ऑफिसर, ब्लॉक विस्तार शिक्षक, एक महिला स्वास्थ्य सहायक, एक कंपाउंडर, एक ड्राइवर और प्रयोगशाला तकनीशियन होते हैं। पीएचसी को एक जीप और छोटी-मोटी शल्य चिकित्सा करने के लिए जरूरी सुविधाएं दी जाती हैं। पीएचसी की स्थापना व संचालन राज्य सरकार के हाथ में होता है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) : इस योजना में रियायती दर पर गरीबों को अनाज दिया जाता है। इसके तहत चलने वाली दुकानों को राशन की दुकान या उचित दर दुकान कहा जाता है।

लोक सूचना अधिकारी (पीआईओ) : आरटीआई अधिनियम के तहत सभी विभागों को एक पीआईओ तैनात करना चाहिए जो सूचना के लिए आने वाले आवेदनों को स्वीकार करेगा। इस अधिनियम के तहत सूचना के लिए आवेदन करने वाले भारतीय नागरिकों को सूचना मुहैया कराना पीआईओ की ही जिम्मेदारी होती है।

सलवा जुडुम : गोंडी भाषा के इस शब्द का अर्थ होता है 'शांति यात्रा'। यह छत्तीसगढ़ में सरकार द्वारा शुरू की गई माओवाद विरोधी विवादास्पद योजना है।

समता फैसला : सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया यह फैसला समता नामक गैर-सरकारी संगठन की याचिका के जवाब में दिया गया था। संगठन ने खनन कंपनियों के खिलाफ और आदिवासियों के भूमि अधिकारों की रक्षा के लिए लंबे संघर्ष के बाद न्यायालय में याचिका दायर की थी।

सर्व शिक्षा अभियान : यह कार्यक्रम एक निश्चित समय के भीतर देश के सभी बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने के लिए चलाया गया एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम है।

अनुसूचित क्षेत्र : मुख्य रूप से आदिवासी आबादी वाले क्षेत्र। अनुसूचित क्षेत्र देश के नौ राज्यों में फैले हुए हैं।

अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परंपरागत वनवासी (मान्यता एवं वन अधिकार) अधिनियम, 2006 : यह कानून जमीन और अन्य संसाधनों पर वनवासी समुदायों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए पारित किया गया एक महत्वपूर्ण कानून है।

लिंग अनुपात : प्रति 1000 पुरुषों पर महिलाओं की संख्या।

विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड) : एक ऐसा निश्चित भौगोलिक क्षेत्र जहां देश के सामान्य आर्थिक कानूनों के मुकाबले ज्यादा उदार आर्थिक कानून चलते हैं।

राज्य घरेलू उत्पाद (एसडीपी) : आमतौर पर एक वित्त वर्ष के दौरान राज्य की सीमा के भीतर पैदा होने वाली सभी वस्तुओं और सेवाओं के आर्थिक मूल्य का योग।

तालुका : देखें मंडल।

विमुक्त जाति : भारत के ऐसे घुमंतू समुदाय जो सैकड़ों साल से घूम-घूम कर जीवनयापन कर रहे थे। जाति व्यवस्था की जकड़ के कारण उनके पास जीने के कोई स्थायी साधन नहीं होते थे और उन्हें अमानवीय परिस्थितियों में जीने के लिए विवश किया जाता था।

धात्री रिसोर्स सेंटर
फॉर वीमेन ऐण्ड चिल्ड्रेन

Samata
Assertion for people

HAQ सेंटर फॉर चाइल्ड राइट्स

mm&P
माइन्स, मिनरल्स ऐण्ड पीपुल